भारतीय अर्थशास्त्र

सरल अध्ययन

(Indian Economics Made Easy)

आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, पटना, पंजाब, कलकत्ता, बिहार, राजस्थान, दिल्ली, सागर, उज्जैन, गोरखपुर, नागपुर आदि अनेक विश्वविद्यालयों के पिछले १० वर्ष के प्रश्न पत्रों एवं पाठ्य-क्रम के आधार पर तथा परीक्षा की दृष्टि से संभावित प्रश्नों के उत्तर

लेखक
प्रो० अवध किशोर सक्सेना
अध्यक्ष, अर्थशास्त्र-विभाग
नानक चन्द डिग्री कालेज, मेरठ
भूतपूर्व प्राध्यापक
बी. एन. एस. डी. कॉलिज, कानपुर।

पूर्णतया संशोधित एवम् परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण १६५८

प्रकाशक
राजहंस प्रकाशन मन्दिर
मेरठ।

[मूल्य ५ रुपए

"सरल अध्ययन माला" के अन्तर्गत प्रकाशित उपयोगी पुस्तकें

१ भारतीय अर्थशास्त्र सरल अध्ययन ले०—प्रो० अवध किशोर सक्सेना एम ए
२ अर्थशास्त्र के सिद्धांत सरल अध्ययन ले०—प्रो० अवध किशोर सक्सेना एम ए
३ यूरोपीय इतिहास सरल अध्ययन ले०—प्रो० ए के गुप्त व प्रो० एस] गुप्ता
४ राजनीति विज्ञान सरल अध्ययन ले०—प्रो० गगा प्रसाद गग एम ए
५ नागरिक शास्त्र सरल अध्ययन ले०—प्रो० दया प्रकाश रस्तोगी एम ए
६ भारतीय इतिहास सरल अध्ययन ले०—प्रो० मिथिलेश चन्द उपाध्याय एम ए
७ विश्व भूगोल सरल अध्ययन ले०—प्रो० गुप्ता एम ए
८ अर्थशास्त्र सरल अध्ययन ले०—प्रो० विजयपालसिंह एम ए
९ भौतिक शास्त्र सरल अध्ययन ले०—प्रो० शान्ति प्रसाद गग एम एससी
प्रथम भाग—प्रथम प्रश्न पत्र
द्वितीय भाग—द्वितीय प्रश्न पत्र
१० रसायन शास्त्र सरल अध्ययन ले०—प्रो० जे के खन्ना एम एससी
प्रथम भाग—अकार्बनिक तथा प्रयोगिक
द्वितीय भाग—कार्बनिक तथा भौतिक
११ प्राणी शास्त्र सरल अध्ययन ले०—प्रो० एस० डी० माथुर एम एससी
१२ वनस्पति शास्त्र सरल अध्ययन ले०—प्रो० एस० डी० अग्रवाल एम एससी
१३ प्रयोगिक वनस्पति सरल अध्ययन ले०—प्रो० एस० डी० अग्रवाल एम एससी
१४ हिन्दी साहित्य का इतिहास सरल अध्ययन ले०—प्रो० वत्स एम. ए
१५ बीजगणित सरल अध्ययन ले०—प्रो० पूरनमल गुप्ता एम ए
१६ स्थिति विज्ञान सरल अध्ययन ले०—प्रो० पूरनमल गुप्ता एम ए
१७ गति विज्ञान सरल अध्ययन ले०—प्रो० पूरनमल गुप्ता एम ए
१८ ठोस ज्यामिति सरल अध्ययन ले०—प्रो० पूरनमल गुप्ता एम ए

प्रथम सस्करण	जनवरी	१९५८
द्वितीय सस्करण	सितम्बर	१९५८

प्रकाशक
राजहस प्रकाशन मन्दिर,
मेरठ।

मुद्रक
राजहस प्रेस
मेरठ।

द्वितीय संस्करण की भूमिका

भारतीय अर्थशास्त्र का प्रथम संस्करण छः माह की अल्प अवधि में ही समाप्त हो गया, इससे मुझे विशेष प्रसन्नता है। यह इस बात का निश्चित प्रमाण है कि विद्यार्थियों के लिए मेरा प्रयास उपयोगी सिद्ध हुआ। विद्यार्थियों और प्राध्यापकों ने पुस्तक को अपनाया इसके लिए वह मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस पुस्तक का नया संस्करण प्रस्तुत कर रहा हूँ। नवीनतम आंकड़े देने के साथ साथ भिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा १९५८ की परीक्षाओं में पूछे गये परीक्षा प्रश्नों एवं भारत की नवीन आर्थिक समस्याओं, प्रगति तथा नई नई योजनाओं के आधार पर परीक्षा की दृष्टि से सम्भावित प्रश्नों के आधार पर बहुत से नये प्रश्नों का समावेश किया है।

प्रस्तुत पुस्तक इस बात को ध्यान में रखकर लिखी गई है कि इससे परीक्षा में सफलता प्राप्त करने में विद्यार्थियों को पूरी सहायता मिल सके। भारतीय अर्थ-शास्त्र पर जो भी पाठ्य पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं उनका मूल्य इतना अधिक है कि वे हर विद्यार्थी की क्षमता से बाहर हैं। हिन्दी भाषा में प्रश्नोत्तर रूप में एक अच्छी पुस्तक का बाजार में अभाव देखते हुये तथा परीक्षा पास करने के लिये एक अच्छी पुस्तक की आवश्यकता का अनुभव करते हुये भारत के उन सभी विश्वविद्यालयों के जिनमें हिन्दी माध्यम है बी० ए० के अर्थशास्त्र पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें उन सभी विषयों को सम्मिलित कर लिया गया है जो भारतीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत पढ़ाये जाते हैं अथवा परीक्षा में पूछे जाते हैं। जिन प्रान्तों में भारतीय अर्थशास्त्र इण्टरमीडियेट कक्षाओं में पढ़ाया जाता है वहां इन कक्षाओं के विद्यार्थी भी इससे पूरा लाभ उठा सकते हैं।

पुस्तक सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है। कठिन हिन्दी शब्दों के स्थान पर सरल हिन्दुस्तानी शब्दों का प्रयोग किया गया है। हिन्दी शब्दों के पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द भी साथ ही साथ दिये गये है ताकि विद्यार्थियों को समझने में सुविधा हो।

भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन में नवीनतम आंकड़ों का विशेष महत्व है। प्रस्तुत पुस्तक में नवीनतम तथा अधिकृत आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। इस विषय में एक और बात भी महत्वपूर्ण है। बहुत अधिक आंकड़े तथा तालिकाएं देना विद्यार्थियों को परीक्षा की दृष्टि से लाभदायक नहीं है क्योंकि न तो वह उन सबको याद कर सकता है और न इतने कम समय में परीक्षा में लिख सकता है। इसलिए पुस्तक में वे ही आंकड़े दिए गये हैं जो अत्यन्त आवश्यक तथा नवीनतम हैं।

मुझे आशा है कि प्रस्तुत संस्करण पाठकों को और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। पुस्तक में सुधार के जो भी सुझाव मुझे प्राप्त होंगे उनका मैं हृदय से स्वागत करूंगा।

सितम्बर, १५, १९५८

— अवध किशोर सक्सेना

विषय सूची

प्रश्न संख्या — पृष्ठ संख्या

अध्याय १—परिभाषा तथा क्षेत्र

अध्याय २—भौगोलिक पृष्ठ भूमि

अध्याय ३—भारतीय जनसंख्या

अध्याय ४—भारत में आर्थिक संक्रान्ति

अध्याय ५—भारतीय कृषि समस्यायें

अध्याय ६—भूमि का उपविभाजन तथा उपखण्डन

अध्याय १९—कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योग

अध्याय २०—औद्योगिक श्रम

अध्याय २१—यातायात के साधन

अध्याय २२—भारत में आर्थिक नियोजन



अध्याय १

परिभाषा तथा क्षेत्र

प्रश्न १—भारतीय अर्थशास्त्र की परिभाषा कीजिए। इसके क्षेत्र पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डालिये और इसके महत्व को स्पष्ट कीजिये ?

Q 1 Define Indian Economics and discuss its scope Also discuss its importance

भारतीय अर्थशास्त्र की परिभाषा
(DEFINITION OF INDIAN ECONOMICS)

भारतीय अर्थशास्त्र की परिभाषा करने से पूर्व हमे यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय अर्थशास्त्र शब्द के तीन प्रकार से अर्थ लगाये जाते हैं जो यद्यपि भ्रमात्मक हैं किन्तु साथ ही महत्वपूर्ण भी हैं। उदाहरण के लिये —

(१) भारतीय अर्थशास्त्र भारतीय आर्थिक विचारो का इतिहास है—इसका अर्थ यह है कि कुछ विद्वान भारतीय अर्थशास्त्र को भारतीय विचारको की आर्थिक विचार धाराओ का इतिहास-मात्र मानते है। दूसरे शब्दो मे शुक्र और कौटिल्य से लेकर वर्तमान समय तक के भारतीय अर्थशास्त्रियो की विचार धाराओ के इतिहास को भारतीय अर्थशास्त्र कहा जाता है। वास्तव मे भारतीय अर्थशास्त्र का यह अर्थ सही नही है। क्योकि इस प्रकार का कोई क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नही है।

(२) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त का भारतीय उदाहरणों द्वारा निरूपण—कुछ विद्वानो के अनुसार भारतीय अर्थशास्त्र वह विषय है जिसमे भारतीय उदाहरणो की सहायता से अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो का निरूपण किया जाता है। यह दृष्टिकोण भी सत्य नहीं है क्योकि प्रत्येक देश की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितिया एक समान नही होती और वे समयानुसार बदलती रहती है इसलिये अर्थशास्त्र के सिद्धान्त भारतीय परिस्थितियो पर ठीक उसी प्रकार लागू नही हो सकते जिस प्रकार वे अन्य देशो पर लागू होते हैं अथवा हुए हैं।

(३) भारतीय अर्थशास्त्र नूतन एव मौलिक आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है जो पुराने अर्थशास्त्र से भिन्न हैं —इसका अर्थ यह हुआ कि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त भिन्न २ देशो के लिये भिन्न २ होते है और भारतीय अर्थशास्त्र एक नवीन प्रकार के आर्थिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करता है जो पूरी तरह भारतीय होते हैं तथा पश्चिम म प्रचलित और मान्य आर्थिक सिद्धान्तो स सर्वथा भिन्न होते हैं। यह दृष्टिकोण पूर्णतया गलत है क्योकि भारतीय अर्थशास्त्र किसी प्रकार के नवीन सिद्धान्तो का प्रतिपादन नही करता।

अब प्रश्न यह उठता है कि भारतीय अर्थशास्त्र का वास्तविक अर्थ क्या है और इसकी सरल परिभाषा क्या होनी चाहिये ? इस सम्बन्ध मे १८९२ मे माधव गोविन्द रानाडे ने दक्षिण कालेज पूना मे भाषण देते हुए भारतीय अर्थशास्त्र के वास्तविक अर्थ पर प्रकाश डाला था और उस समय भारत की आर्थिक परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुये उन्होने यह बताया था कि भारतवर्ष का आर्थिक हित किस बात मे है। रानाडे को सही अर्थों मे भारतीय अर्थशास्त्र का जन्मदाता मानते हैं। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होने राष्ट्रीयता को ध्यान मे रखते हुये भारतीय आर्थिक समस्याओ का अध्ययन किया और यह बताया कि जो नीति इङ्गलैंड के लिये हितकर सिद्ध हो सकती है वह आवश्यक रूप से भारतवर्ष के लिये भी हितकर सिद्ध होगी यह मान लेना भूल है क्योकि भारत की परिस्थितिया बिल्कुल भिन्न हैं। उन्होने यह भी बताया कि अर्थशास्त्र के जो सिद्धान्त योरूप के देशो पर पूरी तरह सच्चे सिद्ध होते हैं वे भारत पर भी उसी रूप मे लागू नही हो सकते।

इस प्रकार भारतीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत हम भारत की आर्थिक समस्याओ, उन पर प्रभाव डालने वाले कारणो और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उनको हल करने के उपायो का अध्ययन करते हैं। यही भारतीय अर्थशास्त्र का सही और वास्तविक अर्थ है। दूसरे शब्दो मे भारतीय अर्थशास्त्र की सरल परिभाषा निम्नलिखित शब्दों म की जा सकती है "राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भारत के आर्थिक जीवन के विकास, भारत की आर्थिक समस्याओं तथा उनको हल करने से सम्बन्धित किए गये उपायो और योजनाओं का अध्ययन भारतीय अर्थशास्त्र कहलाता है"। इस प्रकार भारतीय अर्थशास्त्र किन्ही नवीन सिद्धान्तो का प्रतिपादन न करके एक प्रकार से व्यवहारिक अर्थशास्त्र का विश्लेषण करता है जो अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तो पर आधारित है और जिसमे भारतीय परिस्थितियो तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विशेष महत्व है।

भारतीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र

(SCOPE OF INDIAN ECONOMICS)

भारतीय अर्थशास्त्र की परिभाषा करते समय हमने देखा कि इसमे भारत की आर्थिक समस्याओ, उनके कारणो तथा उनके समाधान से सम्बन्धित किए गए प्रयत्नों का अध्ययन किया जाता है। भारतीय आर्थिक जीवन का विकास, उस पर प्रभाव डालने वाली बातें जैसे भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक साधन, सामाजिक संस्थायें तथा जनसंख्या की समस्याओं आदि का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दो मे भारतीय अर्थशास्त्र मे हमारे आर्थिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार किया जाता है।, भारतीय कृषि, उद्योग, व्यापार, भारतीय उद्योग, राष्ट्र, उनकी समस्यायें एव विकास, भारतीय श्रम, भारतीय यातायात के साधन, भारतीय देशी तथा विदेशी व्यापार, भारत की अर्थ व्यवस्था, भूमि व्यवस्था, भारत सरकार की आर्थिक नीति और उसका देश के आर्थिक विकास पर प्रभाव तथा आर्थिक नियोजन इत्यादि के प्रश्नो पर सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है।

भारतीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि इसमे हम केवल वर्तमान आर्थिक समस्याओ का ही अध्ययन नही करते वरन् भूतकालीन आर्थिक स्थिति तथा उसकी समस्याओं का अध्ययन भी करते हैं क्योंकि उसी से हमें वर्तमान समस्याओ के वास्तविक कारणो का पता चलता है और भविष्य के लिए इनके समाधान के उपाय खोज निकालने मे सहायता मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय अर्थशास्त्र म हम भूत काल से शिक्षा ग्रहण करते हैं और भविष्य के लिए उपाय खोजते हैं। अन्त म हम यह कह सकते है कि भारतीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र काल और समय की सीमाओ म बधा हुआ नही है।

भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन का महत्त्व

(IMPORTANCE OF INDIAN ECONOMICS)

भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्व रखता है चाहे वह अर्थशास्त्र का विद्यार्थी हो अथवा राजनैतिक कार्यकर्त्ता अथवा व्यापारी। देश की वर्तमान स्थिति मे यह परम आवश्यक हो गया है कि भारत म रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार देश के आर्थिक विकास मे योग प्रदान करे और इस महान काय के लिये जो पचवर्षीय योजनाए चल रही हैं उन्हे सफल बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करे। यह तभी सम्भव हो सकेगा जब हम भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन करें और देश की आर्थिक समस्याओ को भली प्रकार समझे। भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमे व्यवहारिक, शिक्षा–सम्बन्धी तथा राजनैतिक सभी प्रकार के लाभ होते हैं।

स्वतन्त्र भारत के सामने अनेक आर्थिक समस्याए है जैसे कृषि उत्पादन को बढाने की समस्या, उद्योग धन्धो के विकास की समस्या, श्रम हितकारी कार्य, यातायात के साधनो मे वृद्धि, बेरोजगारी की समस्या खाद्य सामग्री की समस्या, जनसख्या की समस्या तथा ग्राम उन्नति की समस्या इत्यादि इत्यादि। देश का भविष्य इन्ही समस्याओ के समाधान पर निर्भर है। राजनैतिक स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना आवश्यक है। देश मे इस प्रकार की अर्थ व्यवस्था स्थापित करना है जिसमे कोई गरीब न हो कोई बेरोजगार न हो, धन का समान वितरण हो और लोगो का रहन सहन का स्तर ऊचा हो। यह एक जटिल कार्य है जिसे पूरा करने के लिए हमारी राष्ट्रीय सरकार पचवर्षीय योजनाओ के द्वारा महान कार्य कर रही है। इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद से भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन का व्यवहारिक महत्व बहुत बढ़ गया है।

जो व्यक्ति उद्योग धन्धो मे अथवा व्यापार मे लगे हुए है उनके लिए भी भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन का विशेष महत्त्व है। मजदूरो की कार्यक्षमता बढाने के लिये, वस्तुओ के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए तथा देशी तथा विदेशी व्यापार की समस्याओ को समझने के लिए भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है।

जो व्यक्ति देश के आर्थिक तथा सामाजिक सुधारो के कार्य मे लगे हुए हैं और देश के नेता कहलाते है उनके लिए भी भारतीय अर्थशास्त्र का विशेष महत्व है। मजदूरो की गन्दी बस्तियो की सफाई, नई मजदूर बस्तियो का निर्माण, मजदूरी के ढाचे मे परिवर्तन कारखानो मे काम करने वालो को मिलने वाली सुविधायें, श्रम आन्दोलन, श्रम सम्बन्धी कानून तथा इस प्रकार की अन्य बातो मे सुधारक के लिए यह आवश्यक है कि पहले समस्या को भली प्रकार समझा जाए। भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन इस दिशा मे विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो सकता है।

अन्त मे हम यह कह सकते है कि भारतीय अर्थशास्त्र उन महत्वपूर्ण विषयो मे से है जिसका अध्ययन देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण ही नही एक प्रकार से आवश्यक भी है।

प्रश्न २—भारत की अर्थ व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। इनका देश की राष्ट्रीय आय पर क्या प्रभाव है। (आगरा १९५३)

Q 2 What are the basic features of Indian Economy? What is their influence on the National Income of India? *(Agra 1953)*

उत्तर—प्रत्येक देश की अर्थ व्यवस्था की अपनी कुछ विशेषताये होती हैं जिनका उस देश के आर्थिक विकास से गहरा सम्बन्ध होता है। भारत की अर्थ व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताय हैं —

(१) भारत की कृषि प्रधानता —भारतीय अर्थ व्यवस्था की सबसे बडी विशेषता यह है कि भारत की अधिकाश जन-सख्या ग्रामो मे रहती है और कृषि द्वारा अपनी जीविका उपार्जन करती है।

(२) जनसख्या की अधिकता —देश के आर्थिक विकास को देखते हुए भारत मे जन सख्या की अधिकता है जिसके फलस्वरूप देश मे बेरोजगारी गरीबी, अर्द्ध रोजगार, रहन सहन का नीचा स्तर तथा प्रति व्यक्ति कम आय आदि के दोष पाये जाते हैं। जन सख्या की अधिकता का श्रम की कार्य कुशलता पर भी बुरा पडा है।

(३) अर्थ व्यवस्था का असन्तुलित विकास —भारत मे विभिन्न प्रकार के पेशों मे लगे हुए लोगो का अनुपात यह बताता है कि हमारे देश की अर्थ व्यवस्था सन्तुलित नही है। उदाहरण के लिए भारत के ७० प्रतिशत व्यक्ति खेती पर निर्भर है जबकि उद्योगो मे काम करने वालो की सख्या १० प्रतिशत से भी कम है तथा यातायात, व्यापार आदि व्यवसायो मे कार्य करने वालो की सख्या और भी कम है।

(४) यातायात तथा सवाहन के साधनो का अविकसित होना—भारत जैसे विशाल देश मे जहां अधिकतर लोग ग्रामो मे रहते हैं यातायात तथा सवाहन के साधनों का बहुत अधिक महत्व है किन्तु दुर्भाग्यवश इनका विकास पूरी तरह नही हुआ विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रो मे अच्छी सडको की बहुत भारी कमी है। इसका देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव रहा है।

(५) औद्योगिक विकास की कमी — भारत में जितनी बड़ी मात्रा में खनि पदार्थ तथा प्राकृतिक साधन पाये जाते हैं उनको देखते हुए भारत में उद्योग धंधो विकास संतोषजनक नहीं रहा है। बड़े उद्योगों की बात तो छोड़िए, कुटीर त ग्राम उद्योग जो प्राचीन भारत की अर्थ व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते उनका भी एक प्रकार से विनाश हो गया। पिछले कुछ वर्षों में सरकार उनके पु निर्माण पर जोर दे रही है।

(६) पूंजी की कमी—देश में पूंजी का सचय तथा राष्ट्रीय बचत की स्थि सन्तोषजनक नहीं है। साथ ही बैंक आदि साख संस्थाओं का भी पूरी तरह विक नहीं हुआ है।

(७) भूमि तथा सम्पत्ति का असमान वितरण — देश में आर्थिक ए सामाजिक असमानता स्पष्ट तथा व्यापक रूप से देखने को मिलती है। जहा ओर धनी पूंजीपति तथा जमीदार वर्ग के लोग हैं वहां दूसरी ओर भारी संख्या ऐसे लोग भी पाये जाते हैं जो बहुत गरीब तथा पिछड़े हुए हैं और सदैव ही शो.ण के शिकार रहे हैं। भूमि हीन व्यक्तियों की संख्या भी बहुत अधिक है।

(८) सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं का प्रभाव — भारत में सामाजि संस्थाये जैसे जाति प्रथा, संयुक्त परिवार की प्रथा आदि का देश की अर्थ व्यव पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। लोगो के व्यवसाय तथा उनके जीवन की विधि आदि जाति प्रथा की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है इसके अतिरिक्त, धार्मिक विचार ..। नथा सामाजिक रीति रिवाजो का भी भारतीय अर्थ व्यवस्था पर गहरा प्रभ है। अभी तक लोगो के दृष्टिकोण म व्यापक रूप से वह दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं - है जो देश के आर्थिक विकास के लिए परम आवश्यक है।

राष्ट्रीय आय पर प्रभाव— उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत - राष्ट्रीय आय के कम होने का एक प्रमुख कारण यहा की अर्थ व्यवस्था का असन्तुलि होना है। कृषि इस प्रकार का व्यवसाय नहीं है जो अकेले इतनी बड़ी संख्या के भा को सभाल सके। अधिकतर किसान साल में कई महीने तक बेकार रहते हैं। कुटी तथा ग्राम उद्योगो की कमी के कारण समस्त ग्रामाण जनता को पूर्ण रोजगार न मिलता। इसका राष्ट्रीय आय पर बुरा प्रभाव पड़ता है दुर्भाग्य की बात यह है जिस देश में ७० प्रतिशत व्यक्ति कृषि कार्य करते हो वहा भी खाद्यान्न तथा । यक वस्तुओ की कमी पाई जाये।

जहा तक उद्योग धधो का प्रश्न है उनका विकास बहुत मन्द गति से हुआ यद्यपि देश की परिस्थिति छोटे तथा बड़े उद्योग धधो के विकास के लिए बहु उपयुक्त है। देश में पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक साधन पाये जाते है परिस्थितिया भी अनुकूल हैं। कारण जो भी हो उद्योग धधो के विकास के अ का भारत की राष्ट्रीय आय पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। अन्य देशो में पिछले ५ या ६० वर्ष की अवधि में वहा की राष्ट्रीय आय कई गुना बढ़ गई है।

कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करने के लिए कृपि की त्पादनशीलता को बढाना आवश्यक है क्योकि एक विकसित अर्थ व्यवस्था मे अनाज था कच्चे माल की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। सके साथ ही निकट भविष्य म बेरोजगारी तथा अर्द्ध रोजगार की समस्या को हल रने के लिए कुटीर तथा ग्राम उद्योगो का विकास अति आवश्यक है। इससे कृपि र से जनसख्या के भार को कम करने मे सहायता मिलगी। अन्तिम समाधान बडे माने के उद्योगो तथा तृतीय श्रेणी के व्यवसायो के विकास के द्वारा ही हो सकता है।

वर्तमान स्थिति को देखते हुए हम कह सकते है कि जिस गति से पचवर्षीय ोजनाओ पर काम हो रहा है उसके परिणाम स्वरूप भारत की राष्ट्रीय आय मे २० ा २५ प्रतिशत की वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। जन सख्या की वृद्धि की दर तथा न्य बातो को देखते हुए यह मानना पडेगा कि अगले बीस वर्ष म भी कृपि म काम रने वालों का प्रतिशत भाग ६० से कम नहीं हो सकेगा। हमारी राष्ट्रीय सरकार े देश की अर्थ व्यवस्था के सन्तुलित विकास के हेतु दूसरी पचवर्षीय योजना मे उद्योगो े विकास पर अधिक महत्व दिया है और यह एक उत्साह वर्धक बात है।



अध्याय १

भौगोलिक पृष्ठ भूमि

प्रश्न ३—भारत की भौगोलिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए यह स्प॰ कीजिए कि उनका भारत के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

Q. 3. Describe the Geographical Environments of India is their influence on the Economic Development of the country ?

उत्तर—किसी देश की भौगोलिक परिस्थितियों का अर्थ उस देश की स्थिति जलवायु, मिट्टी की बनावट, नदियां तथा पर्वत, खनिज पदार्थ वन सम्पत्ति तथा समुद्र तट इत्यादि से होता है। किसी भी देश का आर्थिक विकास बहुत कुछ वहाँ की प्राकृतिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों पर होता है। देश की कृषि, उद्योग-धन्धे, व्यापार तथा लोगों के रहन-सहन का स्तर, यह सब बातें भौगोलिक परिस्थितियों पर ही निर्भर होती है। भारत के आर्थिक विकास पर यहां के प्राकृतिक साधनों और भौगोलिक परिस्थितियों का क्या प्रभाव रहा है यह जानने से पूर्व हमे इस बात का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये कि भारत की भौगोलिक स्थिति क्या है और भारत मे कौन से प्राकृतिक साधन कितनी मात्रा मे पाये जाते है। निम्नलिखित वर्णन से हमे यह जानने मे सहायता मिलेगी कि वास्तव मे भारत का आर्थिक विकास यहाँ की *भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक साधनों पर बहुत कुछ निर्भर है।*

प्राकृतिक स्थिति (Natural Situation)—भारत गणराज्य का कुल क्षेत्रफल लगभग १२३०००० वर्ग मील है जो उत्तर-दक्षिण मे दो हजार तथा पूर्व पश्चिम मे १७०० मील तक फैला हुआ है। भारत के उत्तर मे हिमालय पहाड की श्रेणियां है जिनका भारत के आर्थिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत के दक्षिण मे समुद्र है जो अरब सागर तथा बगाल की खाडी से घिरा हुआ है इस प्रकार भारत के तीन ओर समुद्र है जो पानी के रास्ते भारत को ससार के अन्य देशो मे मिलाता है।

भारत को तीन मुख्य प्राकृतिक भागो मे बाँटा जा सकता है (१) उत्तर का पहाडी प्रदेश (२) गगा सिंध का मैदान (३) दक्षिणी पठार तथा पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तट।

(१) उत्तर का पहाडी प्रदेशः—उत्तर मे हिमालय की शृखलाए भारत की उत्तरी सीमा पर लगभग १६५० मील तक फैली हुई हैं और भारत को एशिया के अन्य भागो से पृथक करती है। हिमालय भारत की रक्षा करता है जलवायु तथा

, र्षा को प्रभावित करता है और कई महत्वपूर्ण नदियाँ प्रदान करता है। इसके
. तिरिक्त हिमालय पर पाये जाने वाले वन भारत को लकड़ी के अतिरिक्त अन्य बहुत
। आवश्यक पदार्थ प्रदान करता है।

(२) गङ्गा और सिंध का मैदान—यह वह भाग है जिसमे सबसे अधिक जनसख्या का घनत्व पाया जाता है। गङ्गा सिंध तथा ब्रह्मपुत्र नदियो से घिरा हुआ यह भाग पूर्व-पश्चिम मे लगभग १५०० मील लम्बा और उत्तर-दक्षिण म १५० मील चौड़ा है। यह मैदान बहुत अधिक उपजाऊ है और कृषि के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। सिंचाई की सुविधाओ के कारण आर्थिक दृष्टि से यह भाग भारत के लिये बहुत अधिक महत्व रखता है।

(३) दक्षिण का पठार—यह भाग दक्षिण भारत मे शामिल है और समद्र की सतह से इसकी औसत ऊंचाई लगभग २००० फीट है। पूरब में पूर्वी घाट तथा पश्चिम मे पश्चिमी घाट से घिरा हुआ है। नर्मदा ताप्ती महानदी कृष्णा कावेरी आदि नदियाँ इसमे से होकर बहती हैं। यह भाग कृषि के अतिरिक्त खनिज पदार्थो से भरपूर है और देश के लिये इसका बहुत अधिक आर्थिक महत्व है।

नदियां भारत मे नदिया का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि खेती के लिये इनसे जल प्राप्त होता है और सिचाई के लिय नहर निकाली जाती है। इसके अतिरिक्त नदियो से जल विद्युत उत्पन्न करने का कार्य भी लिया जाता है। कुछ नदिया यातायात के लिये जलमार्ग प्रदान करती हैं। हिमालय से निकलने वाली नदियो म गङ्गा यमुना आदि प्रसिद्ध हैं इनके अतिरिक्त नर्मदा ताप्ती, कृष्णा कावेरी गोदावरी तथा महानदी आदि भारत की महत्वपूर्ण नदियां हैं। नदियो का भारत के आर्थिक ेवन पर गहरा प्रभाव है।

जलवायु—भारत मे लगभग सभी प्रकार की जलवायु पाई जाती है जिसका • म यह है कि भ रत मे लगभग सभी प्रकार की फसलें उत्पन होती है और सभी प्रकार की वनस्पति यहा पाई जाती है इस प्रकार कृषि के अतिरिक्त उद्योगो के लिये विभिन्न प्रकार का कच्चा माल तो प्राप्त होना ही है साथ ही लोगो के स्वास्थ्य और कार्य-कुशलता पर भी जलवायु का गहरा प्रभाव पड़ता है।

वर्षा—भारत के सभी भागो मे समान रूप से वर्षा नही होती। कुछ भाग जैसे आसाम बगाल पश्चिमी घाट तथा तराई के भाग ऐसे हैं जहाँ बहुत अधिक वर्षा होती है दूसरी ओर राजस्थान तथा पजाब के कुछ भागो मे बहुत कम वर्षा होती है। देश के अन्य भागो मे समान रूप से पर्याप्त मात्रा म वर्षा हो जाती है। वर्षा का मुख्य समय जून से सितम्बर मास तक है। भारत मे वर्षा मुख्य रूप से मानसून के कारण होती है जिसकी सबसे बडी विशेषता उसकी अनिश्चितता है।

वन—वन भारत की सबसे बडी सम्पत्ति है। वे जलवायु व वर्षा पर प्रभाव डालते हैं। मिट्टी के कटाव को रोकते हैं और अन्य प्रकार की वस्तुए प्रदान करते हैं।

ाय अन्य देशो की भी सहायता कर सकेगा और इस सबका श्रेय बहुत कुछ भारत ो भौगोलिक परिस्थितियो और प्राकृतिक साधनो को होगा।

प्रश्न ४—*भारत का आर्थिक विकास उसके सामाजिक वातावरण पर कि कार निर्भर रहा है स्पष्ट कीजिए।* (आगरा ५७ लखनऊ ४६)

Q. 4 How far the Economic Development of India has bee- conditioned by its social environments ? Discuss fully

(Agra 57 Lucknow 46)

उत्तर:—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसके आर्थिक जीवन पर समाज की रचना, सामाजिक रीति-रिवाज, सामाजिक सस्थाओ तथा धर्म इत्यादि का गहरा प्रभाव पड़ता है। प्राचीन समाज के सगठन के अनुसार ही देश की अर्थ व्यवस्था ढलती रहती है। सामाजिक और धार्मिक सस्थाओ का जितना गहरा सम्बन्ध भारत के आर्थिक विकास से रहा है उतना शायद किसी अन्य देश का रहा हो। आज भी भारतवासियो का आर्थिक जीवन बहुत कुछ यहा की धार्मिक और सामाजिक सस्थाओ से प्रभावित है यद्यपि पुरानी परम्परायें और सगठन अब एक नये रूप मे उत्पन्न हो रहे हैं। भारत की आर्थिक समस्याओ का उचित ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमे यहा की सामाजिक और धार्मिक सस्थाओ का पूरा ज्ञान होना चाहिये। प्राचीन समय से भारत के लोगो मे इन सस्थाओ के प्रभाव के कारण एक विशेष प्रकार का आर्थिक दृष्टिकोण विकसित होता रहा है जिसमे आध्यात्मिकता सासारिक सम्पदा के प्रति उदासीनता, परलोकवाद ग्राम व्यवस्था तथा कृषि-प्रधानता पचायतो का महत्व छोटे-छोटे उद्योगो की प्रधानता तथा आर्थिक क्षेत्र मे धार्मिक भावनाओ की प्रधानता इसकी मुख्य विशेषताए रही है। *भारत की धार्मिक और सामाजिक सस्थाओ मे* निम्नलिखित आर्थिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

(१) जाति प्रथा (Caste system)—जाति-प्रथा प्राचीन भारत की वर्ण व्यवस्था का ही एक स्वरूप है जो समय और परिस्थितियो के कारण बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। वर्ण व्यवस्था मे कर्म के अनुसार जातिया बनी थी और *श्रम विभाजन इसका मुख्य आधार था। प्रारम्भ मे केवल चार जातिया बनी थी* किन्तु धीरे-धीरे उन्होने असख्य जातिओ और उपजातियो का रूप धारण कर लिया। यदि हम जाति की परिभाषा करना चाहे तो हम कह सकते हैं कि यह किसी विशेष व्यवसाय से सम्बन्धित व्यक्तियो तथा कुटुम्बो का वह समूह है जो अपने को किसी वर्ण का अग अथवा किसी प्रसिद्ध पूर्वज की सन्तान मानता है और उसके रीति-रिवाज तथा विवाह इत्यादि अपनी जाति की परम्पराओ के अनुसार होते हैं। मनुष्य के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर जाति का कठोर बन्धन रहता है और वह आसानी से उसका उल्लघन नही कर सकता।

जातिया मुख्य रूप से श्रम विभाजन के आधार पर बनती हैं जैसे सुनार, लुहार, बढ़ई, नाई, धोबी, कुम्हार इत्यादि। एक निश्चित प्रकार का कार्य करने वाले लोग उस जाति से सम्बन्धित रहते है। वे उसे छोड़कर दूसरी जाति म शामिल नही हो

सकते। उनका व्यवसाय तथा रोजगार जन्म से ही निश्चित हो जाता है।

कुछ जातियां कौम पर भी आधारित होती हैं जो प्राचीन समय से कौम (Race) से सम्बन्धित होती हैं और उसी के अनुरूप उनका जीवन, तथा रीति रिवाज बने हुए होते हैं जैसे उत्तर प्रदेश में भाट तथा चेरू और पंजाब, राजस्थान में जाट गूजर तथा मेव इत्यादि।

कुछ जातियां इस प्रकार भी बन जाती हैं कि किसी धार्मिक मत अथवा को मानने वाले अथवा किसी धार्मिक नेता के अनुयायी एक पृथक समूह बना लेते और वह एक प्रकार की जाति बन जाती है।

जाति प्रथा के लाभ (Advantages of caste System)— व्यवस्था से हम को अनेकों लाभ प्राप्त होते हैं। जिनके कारण ही हम अपनी भली प्रकार एवं सुगमता से कर सकते हैं। नीचे हम इन लाभों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) जाति प्रथा ने ही श्रम विभाजन को प्रोत्साहित किया और इसकी में सहायक सिद्ध हुई। जाति प्रथा में पैतृक व्यवसाय की पूर्ण रक्षा होती रहती है जिसका प्रत्यक्ष परिणाम यह निकला है कि श्रम की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। यही कारण है कि भारतवर्ष में कुटीर उद्योग धंधों का इतना अधिक महत्व है।

(२) प्राचीन समय में जब शिक्षा संस्थाओं का पूर्णतया विकास न हो पाया था तब बचपन से ही मानव अपने घर का काम सीखता था और उसमें निपुण हो जाता था इससे यह लाभ होता था कि उसकी कार्य क्षमता बढ़ती थी।

(३) पैतृक व्यवसाय होने के कारण व्यवसाय में वृद्धि होती है इससे कुटुम्ब के व्यवसाय अथवा शिल्प की ख्याति उसकी व्यवसायिक उन्नति में सहायक होती है।

(४) जाति प्रथा के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति का धंधा उसके जन्म से ही निश्चित ही रहता था उसके अधिक सोचने की आवश्यकता नहीं होती थी तथा बड़ा होकर अपने धंधों की उन्नति में प्रयत्नशील रहता था।

(५) जाति प्रथा के कारण कोई भी व्यक्ति बुरा काम करते हुए डरता था क्योंकि उसको यह भय था कि कहीं वह जाति से निकाल न दिया जाये।

परन्तु इससे लाभ होने पर भी व्यक्तिगत उत्साह को काफी ठेस पहुंची। इन सब लाभों की प्राप्ति हमको केवल प्राचीन समय में ही थी। आधुनिक युग में इस से कोई भी लाभ नहीं है वरन् हानि ही है वर्तमान समय में इससे राष्ट्रीयता को भी चोट पहुंचती है।

जाति प्रथा के दोष (Disadvantages of caste System) -वर्तमान समय में जाति प्रथा का रूप बिगड़ गया है घर घर में छुआछूत की बीमारी है। जातियों में उपजातियों का जन्म हुआ और इसका परिणाम यह हुआ कि आज भारत में तीन हजार जातियां हैं जिनसे उन्नति में बाधा पड़ती है।

(१) इससे राजनैतिक एकता का विनाश होता है और देश की प्रत्येक जाति एक दूसरे के सहयोग के स्थान पर शत्रुता की भावना रखती है।

(२) जाति प्रथा से मजदूरो मे एकता नही रहती क्योंकि सब जातियो के मजदूर श्रमिक सघ के सदस्य नही बनते और इसमे मिल मालिको को श्रमिको का शोषण करने का अवसर मिलता है।

(३) जाति प्रथा म मनुष्य केवल अपना जातीय व्यवसाय ही करता है इससे श्रम की गतिशीलता को हानि पहुँचती है।

(४) इससे अनावश्यक व्यय होता है क्योंकि प्रत्येक जाति मे विवाह, जन्म मृत्यु के अवसर पर रीति रिवाज के अनुसार अधिक धन व्यय करना पड़ता है।

(५) जाति प्रथा मे प्रत्येक जाति का व्यवसाय सीमित रहता है इससे एक जाति के लोग दूसरे व्यवसाय मे पू जी नही लगाते। अत इसका पूँजी की गतिशीलता पर भी प्रभाव पड़ता है।

(६) ऊँची जाति के लोग हाथ का काम करना उचित नही समझते इससे श्रम शक्ति का विनाश होता है इसस राष्ट्रीय सम्पत्ति मे वृद्धि भी नही हो पाती।

आजकल शिक्षा के प्रचार के कारण जाति प्रथा की बुराइयो को भली प्रकार जाना जा सका है। किन्तु जाति प्रथा की जडें हमारे समाज मे इस प्रकार फैली है कि उनको उखाड कर फेंकना कठिन कार्य है।

सयुक्त कुटुम्ब प्रणाली (Joint family System) —सयुक्त परिवार प्रथा का हिन्दू समाज मे एक विशेष स्थान एव महत्व है। इसके अन्तर्गत परिवार के सब व्यक्ति पीढियो तक एक ही कुटुम्ब मे रहते हैं तथा उनका खान पान भी सम्मिलित रूप से होता है यदि कोई व्यक्ति कुटुम्ब से अलग रहता है तो उसको बुरा समझा जाता है। कुटुम्ब की देख भाल का भार परिवार के सबसे वृद्ध मनुष्य पर रहता है। कुटुम्ब के सब व्यक्ति अपनी आय उसी व्यक्ति का देते हैं। इससे आपस मे प्रेम एव सहकारिता की भावना का विकास होता है।

सयुक्त परिवार के गुण (Advantages of Joint family system)

(१) इससे खर्च मे किफायत होती है। सब व्यय एक साथ होने के कारण [illegible] आती है।

(२) परिवार मे सबको अपनी योग्यता अनुसार काम मिल जाता है जिससे पालन पोषण सुगमता से हो जाता है। इससे श्रम विभाजन को तथा कर्तव्य पालन को प्रोत्साहन मिलता है।

(३) सयुक्त परिवार नागरिकता की प्रथम सीढी है इसमे सहयोग एव एकता को प्रोत्साहन मिलता है

(४) इससे खेतो को छिन्न भिन्न तथा टुकडे होने से बचाया जा सकता है।

(५) इस प्रथा मे धन के सचय को भी अधिक प्रोत्साहन मिलता है।

(६) इसमे सभी अनाथ अन्धो एव विधवाओ का भी पालन पोषण आसानी से हो जाता है और सभी की प्रतिष्ठा बनी रहती है।

संयुक्त परिवार के दोष (Disadvantages of joint family system) —उपरोक्त लाभ होते हुये भी इस प्रणाली मे अनेक हानिया पाई जाती है। आधुनिक युग मे आर्थिक विकास के लिए यह प्रणाली बाधा सिद्ध हो रही है। इसकी हानियां निम्नलिखित है।

(१) इसका मुख्य दोष यह है कि श्रम की गतिशीलता का ह्रास होता है क्योंकि परिवार के व्यक्तियो को किसी प्रकार की चिन्ता तो होती नही इस कारण वह घर पर ही पडे रहते हैं।

(२) इसमे व्यक्ति को अपनी उन्नति करने का अवसर नही मिलता। परिवार के लोग उसके विकास मे बाधा उत्पन्न करते हैं उसे अपनी इच्छा के अनुसार व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता नहीं होती।

(३) इस प्रणाली से यह भी हानि है कि परिवार के सब व्यक्ति कार्य नही करते तथा इसमे समाज निर्धनता की ओर जाता है क्योकि व्यय अधिक और आय कम।

(४) सयुक्त परिवार मे स्त्रियो को सबसे पर्दा करना पडता है इससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है इसमें शिक्षा को भी प्रोत्साहन नहीं मिलता।

आजकल जबकि देश सब क्षेत्रो मे उन्नति कर रहा है, देश के औद्योगिक विकास तथा आवागमन के साधनो की उपलब्धी के कारण श्रमिको मे गतिशीलता बढती जा रही है। आधुनिक युग म शिक्षा के प्रसार के कारण इस प्रणाली का विनाश होता है।

उत्तराधिकार का नियम (Law of inheritence) —सयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का उत्तराधिकारी के नियम से घनिष्ट सबध है और इसका हमारे आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव है। हमारे देश म उत्तराधिकार के दो प्रमुख नियम हैं। प्रथम जो बगाल मे प्रचलित है-इसके अनुसार पिता की मृत्यु के बाद लडके जायदाद के मालिक होते हैं। जायदाद का बटवारा भाईयो म होता है परिवार का मुखिया जायदाद का मालिक होता है वह चाहे उसे बेचदे या और जायदाद खरीद ले। इसके अनुसार स्त्रियो को उनका हक नही मिलता। दूसरे प्रकार का नियम बगाल को छोडकर समस्त भारत मे प्रचलित है। जिसके अनुसार पिता के होते हुये, जायदाद पर सभी सदस्यो का अधिकार होता है परिवार का मुखिया सम्पत्ति की देखभाल करता है। सदस्य की इच्छानुसार जायदाद का वह बटवारा हो सकता है। पुत्र जन्म लेते ही जायदाद का हिस्सेदार बन जाता है हिन्दू एव मुसलमान दोनो ही समाजो मे सम्पत्ति का विभाजन होता है जिसका प्रभाव देश के आर्थिक विकास पर पडता है। अभी पिछले कुछ वर्षों मे सरकार ने उत्तराधिकार के कानून को नये सिरे से बनाया जिसके अनुसार हिन्दू परिवारो म पुत्रों के साथ साथ पुत्रियां को भी पिता की सम्पत्ति मे समान अधिकार प्राप्त हो गय है। इसका स्त्रियो की आर्थिक दशा पर गहरा प्रभाव होगा।

उत्तराधिकार के नियम का सबसे बडा आर्थिक प्रभाव यह है कि वैमनस्य घर नही कर पाता क्योकि छोटे बडे सबको अपना भाग सुगमता से मिल जाता है इससे समाज मे पूंजीवाद को भी प्रोत्साहन नही मिलता और सब पूर्ण रूप से अपने पैरो पर खडे हो जाते हैं उनको एक दूसरे पर निर्भर नही रहना पडता ? इसका मुख्य दोष यह है कि पू जी के ब टवारे से कोई भी सदस्य बडा कार्य नही कर पाता क्योकि पू जी को एकत्र करना एक समस्या हो जाती है इससे मुकदमेबाजी को भी प्रो साहन मिलता है तथा खेत छोटे २ हो जाते हैं जिन पर वैज्ञानिक ढग से खेती नही हो पाती और इससे पैदावार बहुत कम हो जाती है और देश की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है।

ग्राम पचायत (Village Panchayats) – भारत मे ५ लाख से भी अधिक गाव हैं। प्राचीन समय मे ग्राम की देखभाल के लिए पचायतो का सगठन किया जाता था पचायतो से सामाजिक सगठन बना रहता है वास्तविकता मे यह बात सत्य है कि पचायतें एक छोटे रूप से राज्य की सभी विशेषताये रखती हैं और यदि सरकारी प्रबन्ध वहा से हटा लिया जाय तब भी यह अपने सदस्यो की रक्षा के लिये काफी है। इनका विनाश अग्रेजो के आने से हुआ परन्तु इसके महत्व को महात्मा गाधी एव आजकल हमारी सरकार ने समझा है। १६४८ मे उत्तर प्रदेश मे पचायत राज्य कानून पास किया गया और अन्य राज्यो ने भी इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये हैं एव किए जा रहे हैं।

अन्त मे हम कह सकते हैं कि भारत के आर्थिक सगठन तथा विकास पर धर्म, रीति रिवाज सामाजिक परम्पराओ का भाव बहुत अधिक पडा है। जातीयता, धार्मिक अन्धविश्वासो के कारण ही हमारे देश का हनन विदेशियो द्वारा हुआ परन्तु आज का भारत इन सब बन्धनो को तोडने मे प्रयत्नशील है और आर्थिक उन्नति के पथ पर अग्रसर है।

प्रश्न ५—"भारत एक धनी देश है जिसमे निर्धन लोग रहते है।" इस कथन सत्यता पर प्रकाश डालिए। (राजपूताना १६५१)

"India is a rich country inhabited by poor people" Discuss the above statement.

Or

भारत के प्राकृतिक साधनों का वर्णन कीजिए और बताइये कि किन कारणो से इनका पूरी तरह विकास नही हो सका। (आगरा १६५४)

Describe the Natural Resources of India Why have they not been properly exploited? *(Agra 1954)*

उत्तर —भारत एक विशाल देश है जो यद्यपि निर्धन है किन्तु यहा लगभग वे सभी प्राकृतिक साधन पाये जाते हैं जो किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिये आवश्यक हैं। इन प्राकृतिक साधनो का समुचित विकास न होने के कारण भारत के लोग निधन है और मुख्यत. खेती पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वैसे

७० प्रतिशत कोयला प्राप्त होता है। ऐसा अनुमान है कि भारत मे कुल ६०००० लाख टन कोयले का भण्डार है जिसमे से ६००० लाख टन उत्तम श्रेणी का कोयला है। भारत मे इस समय लगभग १००० कोयले की खानें हैं जिनसे ३४० लाख टन कोयला एक वर्ष मे निकाला जाता है। भारत सरकार ने कोयला उद्योग को एक लोकहितकारी उद्योग घोषित किया हुआ है। १९१९ मे झरिया के पास एक ईंधन अनुसन्धान केन्द्र (Fuel Research Institute) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य कोयले की खानो की जांच करना तथा कोयले के उत्पादन से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्य करना है। भारत मे प्रति व्यक्ति कोयले का उत्पादन अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है। कोयला उद्योग की उन्नति के लिये एक कोयला बोर्ड की स्थापना भी की गई।

(२) मैंगनीज—मैंगनीज के उत्पादन में रूस को छोड़कर भारत का ससार मे दूसरा स्थान है इसका उपयोग स्पात के बनाने मे किया जाता है। मध्य-प्रदेश मे ससार की सबसे अच्छी मैंगनीज की खानें हैं। इसके अतिरिक्त विहार, बम्बई, मद्रास, उडीसा, राजस्थान आदि राज्यो मे भी यह धातु पाई जाती है। अमेरिका तथा अन्य योरोपीय देश इसके मुख्य ग्राहक हैं और इसका अधिकाश भाग विदेशो को निर्यात कर दिया जाता है। भारत मे कुल ११·२ करोड टन मैंगनीज के भण्डार का अनुमान है जिसमे से लगभग १० करोड टन मध्य प्रदेश तथा बम्बई राज्यो मे है।

(३) अभ्रक—भारत ससार मे इसका सबसे बडा उत्पादक है और ससार की लगभग ८० प्रतिशत आवश्यकताओ को पूरा करता है। भारत की कुल निर्यात मे से लगभग ७० प्रतिशत अमेरिका को जाता है दूसरा बडा ग्राहक इङ्गलैंड है। इसकी अधिकाश खानें विहार राज्य मे पाई जाती हैं। इसके बाद मद्रास तथा राजस्थान का नम्बर है। इस धातु का मुख्य उपयोग विजली से सम्बन्धित उद्योगो मे होता है। यह लगभग ३३०० वर्ग मील के क्षेत्र मे पाया जाता है।

(४) लोहा—भारत म बहुत बडी मात्रा मे कच्चा लोहा पाया जाता है। भारत मे कच्चे लोहे के कुल भण्डार का अनुमान २१०० करोड टन लगाया गया है। जब तक देश मे लोहे के बडे कारखाने स्थापित नही होते और देश मे कच्चे लोहे की खपत नही बढती उस समय तक सरकार जापान आदि देशो को लोहे के निर्यात को विशेष प्रोत्साहन दे रही है। विहार, उडीसा, मध्य-प्रदेश, मैसूर इसके मुख्य केन्द्र हैं। इस खनिज पदार्थ के उत्पादन मे भारत को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

(५) पैट्रोल—भारत मे पैट्रोल अधिक मात्रा मे नही पाया जाता। आसाम राज्य मे डिगबोई नामक स्थान पर तेल के कुए है जिनसे प्रतिवर्ष लगभग ४ लाख टन कच्चा तेल प्राप्त होता है जबकि भारत की वार्षिक आवश्यकता ५० लाख टन की है शेष विदेशो से आयात करके भारत मे साफ किया जाता है जिसका कारखाना बम्बई के पास ट्राम्बे नामक स्थान पर है। भारत सरकार के प्रयत्नो से कुछ विदेशी विशेषज्ञ भारत लाये गये हैं जो तेल की खोज कर रहे हैं। इनके अनुसार पञ्जाब

राजस्थान, बगाल, उडीसा, मद्रास, आन्ध्र, केरल आदि राज्यो मे तेल प्राप्त होने की सम्भावना है। ऐसी आशा की जाती है कि निकट भविष्य मे ऐसे स्थानो का पता लगेगा जहाँ से भारत को अधिक मात्रा मे पैट्रोल प्राप्त हो सके।

(६) **सोना**—मैसूर राज्य मे कोलर नाम की खानो से लगभग सोने के कुल उत्पादन का ६५% भाग प्राप्त होता है। ससार के कुल उत्पादन का केवल २% भारत मे उत्पन्न होना है। कोलर की सोने की खानो का राष्ट्रीयकरण १९५६ मे कर दिया गया था।

(७) **नमक**—पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश तथा राजस्थान मे से बडी मात्रा मे नमक प्राप्त होता है और नमक उत्पन्न करने वाले देशो मे भारत का ऊंचा स्थान है। अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के बाद काफी मात्रा मे नमक भारत से निर्यात भी होता है।

(८) **इलमेनाइट**—इस धातु के उत्पादन मे भारत दिन प्रतिदिन प्रगति कर रहा है और ससार के प्रमुख उत्पादको मे से है। यह सफेद रङ्ग की धातु सीस के स्थान पर प्रयोग हो सकती है और मुख्य रूप से केरल राज्य मे पाई जाती है। भारत मे इस महत्वपूर्ण धातु का कुल भण्डार लगभग ३५०० लाख टन है जिसका अभी तक पूरी तरह से प्रयोग नही हो रहा है। भविष्य मे इसके समुचित विकास की आशा की जाती है।

(९) **मोनोजाइट**—यह धातु भी केरल राज्य पाई जाती है। अणुशक्ति के लिये इस पदार्थ को सुरक्षित रखना अति आवश्यक है।

(१०) **क्रोमाइट**—भारत मे कच्चा क्रोमाइट पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। लगभग २ लाख टन उच्च श्रेणी का तथा ११·२ लाख टन निम्न श्रेणी का भण्डार भारत मे है। बिहार, बम्बई, मद्रास, मैसूर, उडीसा तथा काश्मीर आदि राज्यो मे पाया जाता है।

(११) **मैगनेसाइट**—इसका प्रयोग सीमेंट, सीसा, कागज, रबर तथा हवाई जहाज उद्योगो मे होता है। यह मद्रास, बिहार, काश्मीर, मैसूर, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश मे पाया जाता है। नवीनतम अनुमान के अनुसार इसके कुल भण्डार ८२५ लाख टन हैं।

(१२) **बाक्साइट**—इस पदार्थ की खानें समस्त देश मे फैली हुई हैं। यह पैट्रौल साफ करने तथा उससे सम्बन्धित उद्योगो मे प्रयोग होता है और ऐलमोनियम बनाने मे भी प्रयोग होता है। भारत मे लगभग २८० लाख टन बाकसाइट के भडार पाये गये हैं।

(१३) **ताम्बा**—यह अधिक मात्रा मे नही पाया जाता। प्रतिवर्ष ३ लाख ७० हजार टन तावा प्राप्त किया जाता है जो देश की आवश्यकताओ को देखते हुये बहुत कम है। शेष बाहर से मगाना पडता है। इसकी खान राजस्थान, बिहार आध्र प्रदेश मे पाई जाती है।

(१४) **चूने का पत्थर**—यह मुख्य रूप से सीमेंट बनाने तथा इमारतें आदि

बनाने मे प्रयोग किया जाता है। यह बिहार, मध्य-प्रदेश, राजस्थान मे पाया जाता है।

(१५) जिपसम—इसका प्रयोग सीमेंट तथा प्लास्टर आदि बनाने में होता है। यह मद्रास, राजस्थान तथा हिमाचल प्रदेश मे पाया जाता है।

(१६) सीसा—यह कम मात्रा मे पाया जाता है जिसकी खानें केवल एकाध स्थान पर ही मिलती हैं।

उपरोक्त खनिज पदार्थों के अतिरिक्त अन्य बहुत से खनिज पदार्थ भारत मे पाये जाते हैं जिनका वर्णन यहा आवश्यक नही है।

खनिज पदार्थों के भावी विकास की समस्या

हम यह देख चुके हैं कि भारत खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से बडा भाग्यशाली देश है और भारत के भूगर्भ मे इतनी बडी मात्रा मे यह दौलत छिपी पडी है जिसका हमे अभी तक पूरी तरह ज्ञान भी नही है। भारत के औद्योगीकरण के लिए इन खनिज पदार्थों का बहुत बडा महत्व है क्योंकि इनके बिना बडे तथा महत्वपूर्ण उद्योगो की स्थापना नही हो सकती। कोई भी देश खनिज पदार्थों को केवल आयात करके अपनी आवश्यकताओ को पूरा नही कर सकता तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता की बात सोच भी नही सकता। कोयला और लोहा वह मुख्य खनिज पदार्थ हैं जिन पर प्रारम्भिक रूप से औद्योगीकरण का प्रश्न निर्भर है। दुर्भाग्य का विषय है कि पिछले ५० वर्ष के अनुभव के बाद भी खानो से खनिज पदार्थ निकालने के काम मे टैक्नीकल कार्य कुशलता मे कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हुई। खानों की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया है और खानें खोदन के तरीके आज भी ऐसे है जिनमे काफी बरबादी होती है। होना यह चाहिए कि जो पदार्थ इस समय किफायत के साथ न निकाले जा सके उन्हे भविष्य के लिए छोड दिया जाय।

भारत सरकार के १९५६ के औद्योगिक नीति सबन्धित प्रस्ताव मे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि खानें खोदने का कार्य अब सरकार स्वय करेगी। लोहे के जो नये कारखाने लग रहे है उनके लिये प्रतिवर्ष ११० लाख टन कच्चे लोहे की आवश्यकता होगी जब कि कच्चे लोहे का वार्षिक उत्पादन इस समय केवल ५० लाख टन है। इसी प्रकार ऐलमोनियम उद्योग के लिए ११२००० टन बाकसाइट की आवश्यकता होगी जब कि इसका वर्तमान उत्पादन केवल ७५ हजार टन है।

भारत सरकार ने विदेशी विशेषज्ञो की सेवाओ को प्राप्त करने का प्रयत्न किया है जिससे भारतीय विशेषज्ञो के सहयोग से नई नई खानो का पता लगाया जा सके। इन प्रयत्नो से कई एक महत्वपूर्ण खानो का पता चला है जो भविष्य के लिए उपयोगी होंगी।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने इस बात की आवश्यकता अनुभव की कि खनिज पदार्थों के विकास तथा उनकी सुरक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाये जायें और इस उद्देश्य से १९४८ मे एक कानून पास किया। इसी प्रकार

१६४८ तथा १६५६ मे औद्योगिक नीति के जो प्रस्ताव पास किए उनमे खनिज पदार्थों को स्पष्ट रूप से उद्योगो की भांति मान्यता दी और उन्हे केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण मे ले लिया। भारत सरकार ने प्राकृतिक साधन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान का मन्त्रालय भी स्थापित किया है जो खानो तथा खनिज पदार्थों की खोज आदि से सम्बन्ध रखता है। बड़े उद्योगो को आवश्यक सूचना तथा सलाह देने के लिए १६४८ मे खनिज सूचना केन्द्र (Mineral Information Bureau) की स्थापना की गई है इसी वर्ष इंडियन ब्यूरो आफ माइन्स की स्थापना की गई जो भारत सरकार के विशेषज्ञ तथा सलाहकार के रूप मे कार्य करता है।

दी जीयोलाजीकल सर्वे आफ इण्डिया का विभाग जो १८५१ मे स्थापित हुआ था तथा इसने पिछले १०० वर्षों से खनिज सम्पत्ति सम्बन्धी हमारे ज्ञान मे वृद्धि की और इस बात की छानबीन की कि वास्तव मे कितनी खनिज सम्पत्ति कहां-कहां पाई जाती है। इस विभाग की सेवायें विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

खनिज पदार्थों से सम्बन्धित टैक्नीकल शिक्षा प्रदान करने के लिये १६२६ मे एक संस्था धनबाद नामक स्थान पर स्थापित की गई थी जिससे प्रतिवर्ष काफी संख्या मे विद्यार्थी पास होकर निकलते हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे भी इस विषय की शिक्षा दी जाती है।

भारत सरकार की खनिज सम्बन्धी नीति—दूसरी पंचवर्षीय योजना मे यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया है कि सरकार देश के भावी विकास मे खनिज सम्पत्ति से सम्बन्धित किस प्रकार की नीति पर चलेगी। इस नीति की उल्लेखनीय बात यह है कि ऐसे खनिज पदार्थों के भावी विकास का उत्तरदायित्व सरकार का रहेगा जो अणुशक्ति, लोहा तथा स्पात, कोयला लिगनाईट, खनिज तेल मैंगनीज, क्रोम, जिप्सम गन्धक सोना, तांबा, सीसा, टिन, जस्ता, आदि से सम्बन्धित है। इनके अतिरिक्त अन्य खनिज पदार्थ धीरे धीरे सरकार के अधीन आते जायेंगे।

इस प्रकार हम देखते है कि खनिज पदार्थो के सम्बन्ध मे भारत का भविष्य उज्ज्वल है और सरकार की नवीन औद्योगिक नीति का भारत के भावी औद्योगिक विकास पर उत्साह-जनक प्रभाव होगा।

प्रश्न ७—भारत मे पाये जाने वाले शक्ति के साधनो का संक्षिप्त वर्णन कीजिए और उनके भावी विकास की सम्भावना पर प्रकाश डालिये। यह भारत के आर्थिक विकास के लिए कहा तक पर्याप्त हैं? (बिहार १६५०)

Give a brief description of the available sources of power in India How far can they be developed in future? Are they sufficient for India's Economic Development? *(Behar 1953)*

Or

भारत मे उपलब्ध शक्ति के साधन क्या हैं? वर्तमान समय मे सस्ती शक्ति के विकास की प्रगति पर प्रकाश डालिए। (पटना १६५०)

What are the various sources of Power in India? What progress has been made in the development of cheap power resources?

(Patna 1950)

उत्तर.—प्रत्येक देश की औद्योगिक, कृषिक तथा यातायात सम्बन्धी उन्नति के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है जो विभिन्न साधनों से प्राप्त की जाती है। मानव शक्ति, पशु शक्ति, वायु शक्ति, तथा ईंधन की शक्ति का प्रयोग तो प्राचीन काल से ही होता आया है। किन्तु कोयले की शक्ति, तेल की शक्ति तथा बिजली आदि का महत्व आधुनिक युग में बहुत अधिक बढ़ गया है क्योंकि बड़े २ कारखानों को चलाने के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। भारत में निम्नलिखित शक्ति के साधन पाये जाते हैं।

(१) मानव शक्ति—भारत मुख्य रूप से कृषि प्रधान देश है और उस की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर है। आज भी भारतीय कृषि मानव शक्ति प्रमुख है इसके अतिरिक्त देश के कुटीर उद्योग तथा अन्य छोटे २ धन्धे मानव शक्ति से ही चलते हैं क्योंकि मानव शक्ति की भारत में कोई कमी नहीं है। आज भी देश में मानव शक्ति का पूरी तरह प्रयोग नहीं हो रहा है और बहुत से लोग बेरोजगार हैं। भविष्य में यदि सब लोगों को रोजगार दिया गया और पूरी तरह मानव शक्ति का प्रयोग हुआ तो देश की आर्थिक उन्नति में कोई संशय नहीं है।

(२) पशु शक्ति—भारत में भारी संख्या में पशु जैसे बैल, घोड़े ऊंट इत्यादि कृषि यातायात तथा अन्य कार्यों के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं और देश की वर्तमान अर्थ व्यवस्था में इनका काफी महत्व है। दुर्भाग्य से भारत में पशुओं की संख्या तो बहुत है किन्तु उनकी नस्ल अच्छी नहीं है और सुधारने के लिये पूरी तरह प्रयत्न नहीं किये जा रहे है।

(३) वायु शक्ति—इसका प्रयोग मुख्य रूप से पहाड़ी स्थान पर किया जाता है। भारत में इसका अधिक महत्व नहीं है।

(४) ईंधन की शक्ति—भारत में प्राचीन काल से बड़ी मात्रा में वन पाये जाते रहे हैं जिनकी लकड़ी और लकड़ी का कोयला शक्ति के साधन के रूप में प्रयोग होता रहा है। वनों के कट जाने से तथा शक्ति के अन्य साधनों के विकास हो जाने से ईंधन शक्ति का महत्व औद्योगिक क्षेत्र में कम हो गया है फिर भी घरों में खाना बनाने के लिए तथा अन्य कुटीर उद्योगों में ईंधन शक्ति का प्रयोग आज भी होता है। ऐसी आशा की जाती है कि जल विद्युत शक्ति का पूर्ण विकास हो जाने से इसका महत्व बहुत कम हो जायेगा।

(५) कोयला शक्ति:—कोयला शक्ति का प्रयोग भाप के रूप में होता है। भारतीय रेलें तथा बहुत से कारखाने कोयले की शक्ति से चलाये जाते हैं। भारत में बहुत बड़ी मात्रा में कोयले की खानें पाई जाती हैं किन्तु यह खानें मुख्य, जिनसे बिहार तथा बंगाल में है। देश के सब भागों में कोयला भेजने में

यातायात पर व्यय होता है जिससे यह सस्ती शक्ति का साधन नहीं हो सकता है। फिर भी जिन क्षेत्रो मे कोयले की खाने पाई जाती हैं वहा की औद्योगिक उन्नति मे इस का महत्वपूर्ण स्थान है। कोयले के वार्षिक उत्पादन का ३३ प्रतिशत रेलो द्वारा, ३७ प्रतिशत कल कारखानो मे तथा शेष ३० प्रतिशत अन्य कार्यो मे प्रयोग किया जाता है।

(६) तेल शक्ति — मिट्टी का तेल तथा पैट्रोल और उससे बनी हुई वस्तुए शक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन मानी जाती है। यह छोटी मशीनें ट्रैक्टर मोटर मोटर कार ट्रक, बस, हवाई जहाज तथा समुद्री जहाज आदि के चलाने के काम मे आता है। दुर्भाग्यवश भारत मे इसकी बहुत कमी है। देश की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये बडी मात्रा म इसका आयात किया जाना है। इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि देश मे ऐसे नये क्षेत्रो का पता लगाया जाये जहा से खनिज तेल प्राप्त हो सके। गन्ने के शीरे से पावर एल्कोहल नाम की वस्तु तैयार की जाती है जो पैट्रोल के स्थान पर अथवा उसके साथ मिलाकर प्रयोग मे लाई जाती है।

(७) जल शक्ति अथवा जल विद्युत शक्तिः—भारत की आर्थिक और प्राकृतिक परिस्थितियों को देखते हुये बिजली सबसे सस्ती, उपयोगी तथा महत्वपूर्ण शक्ति का साधन है। इसके विकास के लिये देश मे अनन्त साधन पाये जाते हैं। बिजली वैसे तो कोयला मिट्टी का तेल और अणु शक्ति की सहायता से भी बनती है किन्तु पानी से बनने वाली बिजली सबसे सस्ती होती है और भारत के लिये यही सबसे उपयुक्त है। भारत म जल विद्युत के विकास की आवश्यकता प्रथम महायुद्ध के बाद ही अनुभव होने लगी थी किन्तु इसके विकास के लिए वास्त प्रयत्न उस समय प्रारम्भ हुये जब देश स्वतन्त्र हुआ और हमारी राष्ट्रीय सरकार ने यह अनुभव किया किया कि भारत मे बडी मात्रा मे जल विद्युत उत्पन्न की जा सकती है तथा देश के औद्योगिक तथा कृषि क विकास के लिए यही सबसे उपयुक्त शक्ति का साधन है। भारत की नदिया तथा झरने प्रति वर्ष ४०० लाख किलोवाट बिजली तक उत्पन्न कर सकते है। इस समय अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे प्रति व्यक्ति बिजली का औसत बहुत कम है। उदाहरण के लिए अमेरिका मे प्रति व्यक्ति बिजली का वार्षिक उपभोग २००० यूनिट से अधिक है जबकि भारत मे केवल ■ यूनिट है।

भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना मे जल विद्युत के विकास पर सबसे अधिक जोर दिया गया था और जो योजनाए प्रारम्भ की गई थी उन्हे पूरा करने के लिए दूसरी योजना में भी व्यवस्था की गई है। प्रमुख योजनाओ मे कोसी योजना, हीरा कुण्ड योजना भाखरा नागर योजना दामोदर घाटी योजना, रिहन्द योजना, तुग द्रा याजना आदि शामिल है। इन योजनाओ क पूरा हो जाने से देश की औद्योगिक [illegible] की आवश्यकताओ क लिय पर्याप्त विद्युत शक्ति प्राप्त होने लगेगी।

पिछले ८ वर्षों मे बिजली का उत्पादन ४०७३३ लाख किलोवाट से बढकर ८५६२४ लाख किलोवाट हो गया है अर्थात् १११ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। भारत सरकार के केन्द्रीय जल तथा विद्युत आयोग (Central water and power Commission) ने देश की जल विद्युत शक्ति-उत्पादन क्षमता की छानबीन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों से जो पश्चिमी घाट की ओर जाती हैं तथा दक्षिणी भारत की पूरब की ओर बहने वाली नदियो से ११५ बडी योजनाओं के द्वारा १४४ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न हो सकती है। देश के अन्य भागो मे छानबीन चल रही है। ऐसा अनुमान है कि समस्त भारत में २५० लाख किलोवाट तक बिजली उत्पन्न की जा सकती है।

क्या भारत मे शक्ति के साधन देश के आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त हैं—उपरोक्त विवेचन मे हमने देखा कि भारत मे मानव शक्ति तथा पशु शक्ति के अतिरिक्त कोयला तथा बिजली ही शक्ति के प्रमुख साधन हैं। कोयले की शक्ति का प्रयोग सारे देश मे सुगमतापूर्वक तथा किफायत के साथ नही किया जा सकता क्योंकि एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने मे इस पर बहुत अधिक व्यय होता है। यदि हम चाहते हैं कि देश के सभी भागों का समान आर्थिक विकास हो तो बिजली का ही सहारा लेना पडेगा। बिजली की शक्ति की सबसे बडी विशेषता यह है कि सस्ती होने के साथ साथ ३०० तथा ४०० मील तक सुगमतापूर्वक ले जाई जा सकती है और एक बडे क्षेत्र का आर्थिक विकास इसके कारण सम्भव हो सकता है।

अब हमे देखना यह है कि भारत जैसे देश मे जहा कृषि की दशा बहुत शोचनीय है और जहा उद्योगो का समुचित विकास होना अभी शेष है वहा बहुत बडी मात्रा मे बिजली की आवश्यकता होगी। भारतीय ग्रामो के पुनर्निर्माण तथा कुटीर उद्योगो के विकास के लिए प्रत्येक गांव मे बिजली का पहुचाना आवश्यक है। इसी प्रकार कृषि से सम्बन्धित बहुत से कार्य जिनमे बिजली के कुओ की सिंचाई सबसे प्रमुख है बिजली की उपलब्ध मात्रा पर निर्भर है। इधर नगरो के विकास के लिए तथा बडे उद्योगों की स्थापना और यातायात के साधनो की कार्य क्षमता को बढाने मे बिजली सहायक हो सकती है। हम यह मानते हैं कि भारत को भविष्य मे बहुत अधिक मात्रा मे बिजली की आवश्यकता होगी किंतु जलविद्युत के साधन भी देश के पास कम नही हैं। केवल उनका विकास करने की आवश्यकता है।

प्रथम पचवर्षीय योजना के अनुसार भारत मे ३५० लाख किलोवाट बिजली का उत्पादन हो सकता है। इस दृष्टि से देश को चार भागो मे बाटा गया है।

(१) हिमालय से निकलने वाली नदिया तथा उनकी सहायक नदिया जिनसे

२०० लाख किलोवाट बिजली प्राप्त हो सकती है।

(२) मध्य भारत की नदियाँ जैसे नर्वदा, ताप्ती तथा महान्दी इत्यादि जिनसे ५४० लाख किलोवाट बिजली तैयार हो सकती है।

(३) दक्षिणी पठार की पूरब की ओर बहने वाली नदियां जिनसे ७० लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न हो सकती है।

(४) दक्षिणी पठार की पश्चिम की ओर बहने वाली नदियां जिनसे ४० लाख किलोवाट बिजली तैयार हो सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के पास सस्ती बिजली उत्पन्न करने के पर्याप्त साधन हैं जो देश की आर्थिक विकास के लिए शक्ति की आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

प्रश्न ८— देश के आर्थिक विकास में जल विद्युत का क्या महत्व है ? भारत की महत्वपूर्ण जल-विद्युत योजनाओं का उल्लेख कीजिए।

(राजस्थान १९५१, ५४, आगरा ५०, पटना ५१)

***What is the importance of Water Power in the Economic* Developement of India ? Describe the important Hydro-electric schemes of India**

(Rajasthan 1951 54 Agra 50 Patna 51)

भारत के आर्थिक विकास में जलविद्युत का महत्व

स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद से लेकर अब तक भारत में जलविद्युत का काफी न हुआ है। इसका एक मात्र कारण यह है कि भारत जैसे गरीब देश के आर्थिक के लिये जलविद्युत ही सबसे सरल और सस्ती शक्ति प्रदान कर सकती है। भारत की कृषि उद्योगों यातायात के साधनों तथा लोगों के जीवन में जलविद्युत का निम्नलिखित महत्व है —

कृषि के लिए महत्व — भारतीय कृषि तथा ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में बिजली का महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है। बिजली के कुए सिंचाई के लिए पानी प्रदान करते हैं। अभी तक खेती मानसून पर निर्भर रहती है। यदि वर्षा ठीक समय पर और पर्याप्त मात्रा में हो गई तो खेती सुधर जाती है अन्यथा किसान को गम्भीर आर्थिक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। देश के विभिन्न भागों में नहरों का जाल बिछाना इतना सुगम नहीं है। बिजली के कुओं का खोदना इससे कहीं आसान और सस्ता है। दक्षिण पठार तथा कुछ पहाड़ी भागों को छोड़कर शेष मैदानी क्षेत्रों में बिजली की सहायता से सिंचाई की सुविधाएं प्रदान करके खेती की उपज को बढ़ाया जा सकता है। इसका सबसे बड़ा प्रभाव यह होगा कि किसान को वर्षा के ऊपर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी। बिजली से खेती के यन्त्रीकरण में भी बड़ी सहायता मिलती है। बिजली से चलने वाली बहुत सी ऐसी मशीनों का प्रयोग किया जा सकता है जिससे मानव शक्ति तथा पशुशक्ति दोनों की बचत हो

सकती है और इनका प्रयोग अन्य कार्य के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि बिजली भारतीय कृषि तथा ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने मे सहायक होगी।

उद्योगों के लिए महत्व — भारत के कुछ थोडे से भागो को छोडकर शेष में उद्योगो का विकास शक्ति के साधनो की कमी के कारण अभी तक नही हो सका है। बिहार, उडीसा बगाल के कुछ क्षेत्र, राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा अन्य बहुत से भाग ऐसे हैं जहा पर्याप्त मात्रा मे कच्चा माल उपलब्ध है किन्तु शक्ति के अभाव मे उनका विकास नही हो सका है। नदी घाटी योजनाओ के फलस्वरूप नये उद्योगो की स्थापना मे सहायता मिलेगी। वर्तमान उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हो सकेगा और देश के सभी भागो का समान रूप से औद्योगिक विकास हो सकेगा। बिजली का सबसे अधिक महत्व कुटीर तथा घरेलू उद्योगो के लिये है। अभी तक अधिकाश कुटीर उद्योग बिना शक्ति के अथवा मनुष्य की हाथ पैर की शक्ति से चलाये जाते हैं इससे इनकी कार्य-क्षमता भी कम रहती है और पूरी तरह इनका विकास नही होन पाता। बिजली की सहायता से छोटे उद्योगो का विकास करके देश की बेरोजगारी की समस्या को दूर किया जा सकता है और कृषि पर से जनसख्या के भार को कम किया जा सकता है। जापान का उदाहरण हमारे सामने है जहा छोटे कुटीर उद्योगो का विकास बिजली की सहायता से किया गया है और आज जापान ससार के उन्नतिशील देशो मे गिना जाता है। बिजली की सबसे बडी विशेषता यह है कि कम से कम खर्च से प्रत्येक गाँव तक पहुचाई जा सकती है। प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे बिजली के विकास मे जो प्रगति हुई है अथवा हो रही है उसका प्रभाव अब से १० या १५ वर्ष के बाद भारत की औद्योगिक प्रगति पर देखने को मिलेगा। देश के वह भाग जो आज वीरान और पिछडे हुये माने जाते हैं वे भारत की औद्योगिक उन्नति के प्रतीक होगे।

यातायात के साधनों के लिये बिजली का महत्व.—रेलें भारत के यातायात की प्रमुख साधन मानी जाती है। बम्बई आदि के कुछ थोडे से भागो को छोडकर शेष स्थानो मे रेलें कोयले से चलती हैं। रेलो के विकास के कार्यक्रम मे बिजली से चलने वाली रेलो के विस्तार का प्रश्न भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बिजली से चलने वाली रेलो मे खर्चा कम बैठता है, जनता को सुविधा रहती है और इसकी कार्य कुशलता भी अधिक होती है। भारत सरकार इस बात को पूरी तरह अनुभव करती है कि बिजली के द्वारा रेलों के सचालन से कोयले की बचत होगी तथा रेल गाडियों को चलने की गति भी तीव्र का जा सकेगी। यथासम्भव बिजली से चलने वाली रेलो के विकास के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। विशेषकर बडे बडे नगरो की यातायात की समस्याओ को सुलझाने के लिए बिजली की रेलो की बडी आवश्यकता है।

सामान्य आर्थिक जीवन मे बिजली का महत्व:—किसी भी देश के आर्थिक

विकास का माप वहा के लोगो के रहन-सहन के स्तर से लगाया जा सकता है। बिजली के प्रयोग से हमारा सामान्य जीवन सुखी बन जाता है और हमारे रहन-सहन का स्तर भी ऊंचा उठता है। उदाहरण के लिये बिजली की रोशनी, पंखे, रेडियो, खाने पकाने के चूल्हे तथा अन्य बहुत सी वस्तुएं हमारे दैनिक जीवन के प्रयोग मे आती है। जब बिजली के प्रयोग की सुविधा प्रत्येक ग्रामवासी को भी प्राप्त होने लगेगी तो हम गर्व के साथ यह कह सकेंगे कि हमारा देश आर्थिक विकास की एक बडी मंजिल तय कर चुका है।

भारत की महत्वपूर्ण जलविद्युत योजनायें

भारत के विभिन्न राज्यो मे बिजली की योजनाएं सन् १९४७ से पूर्व पूरी हो चुकी थीं और जो इसके बाद चालू की गई है उनका संक्षिप्त विवरण निम्न लिखित है :—

मैसूर राज्य:—सर्व प्रथम १९०२ मे शिवसमुद्रम शक्ति ग्रह के निर्माण से मैसूर राज्य की बिजली की आवश्यकताओ को पूरा किया गया। इसके अतिरिक्त राज्य की बढती हुई आवश्यकताओ को देखते हुये दो अन्य शक्तिगृह बन ये जा रहे है जिनमे भाखडा योजना भी शामिल है। इस पर १० ७५ करोड रुपया व्यय होगा और ४१००० किलोवाट बिजली उत्पन्न हो सकेगी।

बम्बई राज्य—बम्बई राज्य मे बिजली के तीन पुराने कारखाने लोनावाला, ... घाटी तथा नीलामूला हैं। इनका प्रबन्ध टाटा एण्ड सस के हाथ मे है। इन ...नों से लगभग ... ५ लाख किलोवाट बिजली बनती है। इसके अतिरिक्त बम्बई ... ने कोयना नदी योजना बनाई है जिस पर ३८ करोड २८ लाख रुपया व्यय ... । इस योजना मे २४०००० किलोवाट बिजली उत्पन्न हो सकेगी। बम्बई राज्य की सरकार ने एक बिजली ग्रिड विभाग की स्थापना भी की है जो सारे राज्य म बिजली पहुचाने की योजना बना रहा है।

मद्रास राज्य:—मद्रास मे पाईकारा योजना १९२९ मे बनी थी और १९३५ से इससे बिजली प्राप्त हो रही है। मैसूर योजना तथा पापनाशम योजनाएं भी बिजली प्रदान कर रही हैं। इनके अतिरिक्त भवानी योजना पर कार्य हो रहा है जिस पर १ करोड रुपया व्यय होगा और १०००० किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी।

उत्तर प्रदेश राज्य—यहा गङ्गा ग्रिड योजना द्वारा २७००० किलोवाट बिजली प्राप्त की जाती है। गङ्गा की नहरो पर १० मे से ७ बिजली घर बन चुके हैं। इसके अतिरिक्त सरकार ने अनेक स्थानो पर छोटी २ योजनाओ को पूरा करके बिजली का उत्पादन बढाया है। राज्य की सबसे महत्वपूर्ण योजना रिहन्द योजना है जिससे २ ५ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। शारदा नहर योजना पूरी हो चुकी है और ४०००० किलोवाट बिजली इससे मिलने लगी है।

पूर्वी पंजाब—१९३७ ३८ में मडी योजना तैयार हुई थी किन्तु इससे जिन क्षेत्रो को बिजली मिलती थी उनमे से बहुत से पाकिस्तान मे चले गये हैं। इस समय

भाखडा नागल योजना पर पजाब की आशाए निर्भर हैं। इसके पूरा होने पर ४ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होने लगेगी। इस समय त गगूवाल तथा कोटला नामक दो शक्तिगृह बन चुके हैं और ४८००० किलोवाट बिजली प्राप्त होने लगी है।

बिहार राज्य—कोसी योजना बिहार की प्रमुख योजना है। इस पर ६६ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान है। इससे ' ‚ लाख किलोवाट बिजली प्राप्त हो सकेगी। यह योजना १० वर्ष मे पूरी होगी।

पश्चिम बङ्गाल राज्य—पश्चिम बगाल तथा बिहार राज्य मे बहने वाली दामोदर नदी पर ७ बाघ बाधने की यह योजना है जिसमे से बोकारो थर्मल शक्ति गृह बन चुका है जिससे १५०००० किलोवाट बिजली प्राप्त होने लगी है। दूसरी पच-वर्षीय योजना मे दुर्गापुर थर्मल शक्तिगृह के निर्माण से १५०००० किलोवाट बिजली प्राप्त होगी तथा बोकारो शक्तिगृह की क्षमता २२५००० किलोवाट तक बढ जावेगी। इस कुल योजना के पूरा होने पर ३७५००० किलोवाट बिजली मिलने लगेगी। मयूराक्षी योजना भी पश्चिम बगाल की महत्वपूर्ण योजना है। इससे ४००० किलो-वाट बिजली प्राप्त होगी।

उडीसा राज्य—उडीसा राज्य की सबसे महत्वपूर्ण योजना हीराकुण्ड योजना है जो महानदी पर तैयार की जा रही है। इस पर बनने वाले मुख्य शक्तिगृह से १२२००० किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। अब तक एक शक्तिगृह २४००० किलो-वाट का बन चुका और शेष तीन शक्तिगृह इस वर्ष के अन्त तक पूरे होने का अनु-मान है। इस योजना मे बिजली के उत्पादन को बढाने की एक अन्य योजना भी स्वीकार कर ली गई है।

आन्ध्र प्रदेश राज्य —आन्ध्र प्रदेश तथा मैसूर राज्य के सम्मिलित सहयोग से तुगभद्रा योजना पर कार्य हो रहा है। इस योजना के आधार कई शक्तिगृह बन ये जावेंगे जिनसे दोनो राज्यो को बिजली प्राप्त हो सकेगी।

मध्यप्रदेश तथा राजस्थान राज्य—इन दोनो राज्यो ने मिलकर चम्बल योजना पर कार्य शुरू किया है। इस योजना से ६६१०० किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। यह योजना १६६२ तक पूरी हो जावेगी।

प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजना में जल-विद्युत का विकास —भारत के क्षेत्रफल तथा जनसख्या को देखते हुए अभी जल विद्युत के विकास की इस देश म काफी सम्भावना है भारत मे प्रति व्यक्ति बिजली का औसत वार्षिक उत्पादन ३ किलोवाट घण्टे है जबकि कनाडा मे ४=६० किलोवाट घण्टे इगलैंड म १ ७३ किलोवाट घण्टे तथा जापान मे ७१५ किलोवाट घन्टे हैं। इस कमी को ध्यान मे रखते हुये केन्द्रीय जल तथा शक्ति आयोग (The Central Water and Power Commission) ने देश मे जल विद्युत के विकास की सम्भावनाओ के विस्तृत सर्वेक्षण का कार्य अपने हाथ मे लिया है इस खोज के अनुसार दक्षिण भारत के पठार तथा पश्चिमी घाट मे बहने वाली नदियो से १४४ लाख किलोवाट

बिजली पैदा की जा सकती है। जिसके लिए आयोग ने ११५ बड़ी योजनाओं के बारे में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी है। देश के अन्य भागों के लिये भी इसी प्रकार के विस्तृत सर्वेक्षण किये जा रहे हैं। वर्तमान अनुमानों के अनुसार यह संकेत मिलता है कि भारत में कुल ३५० लाख किलोवाट बिजली पैदा करने की क्षमता पाई जाती है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत विभिन्न राज्य सरकारों ने सार्वजनिक तथा निजी (Public and Private Sectors) क्षेत्रों में जल विद्युत के विकास की योजनाओं पर कार्य प्रारम्भ किया यद्यपि अधिक बल सार्वजनिक क्षेत्र की योजनाओं पर ही दिया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में जल विद्युत विकास की १४२ योजनाओं पर काय किया गया जिनमें से अनेक योजना के काल में ही पूरी हो गई और शेष दूसरी पंचवर्षीय योजना म पूरी हो जायेंगी। प्रथम योजना में जो बिजली की योजनायें पूरी हो चुकी है और उनसे बिजली मिलने लगी है उनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है —

	(क्षमता किलोवाट में)
१—नागल (पंजाब)	४८०००
२—बोकारो (बिहार)	१५००००
३—चोला (बम्बई)	५४०००
४—खापरखेड़ा (मध्यप्रदेश)	३००००
५—मायर (मद्रास)	३६०००
६—मद्रास शहर विकास योजना	३००५०
७—माछकुण्ड (आन्ध्र प्रदेश-उडीसा)	३४०००
८—पथरी (उत्तर प्रदेश)	२००००
९—सारदा (उत्तर प्रदेश)	४१०००
१०—सेंगलम (केरल)	४८०००
११—जोग (मैसूर)	७२०००

इस प्रकार हम आशा करते हैं कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत में जल विद्युत के निर्माण के क्षेत्र में काफी विकास हो सकेगा।

प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना के काल में होने वाले बिजली के कुल उत्पादन का ब्योरा निम्नलिखित तालिका से विदित है —

वर्ष	उत्पादन (लाख किलोवाट प्रति घण्टा)
१९५१	५८५८४
१९५२	६१२००
१९५३	६६२७६
१९५४	७४४००
१९५५	७६८३६

१९५६	९६१०८
१९५७	१,८३४८
१९५८	१,८८५६ (फरवरी तक)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत मे जल विद्युत के उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि होती आ रही है।

प्रश्न ६— भारत की प्रमुख नदी घाटी योजनाओं का वर्णन कीजिए और बताइये कि इनका देश की कृषि और उद्योगो पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(आगरा १९५३, १९५५)

Describe the principal River Valley Projects of India What will be their influence on Indian Industries and agriculture ?

Or *(Agra 1953, 55)*

भारत की बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओ का उल्लेख कीजिए और इन के भविष्य पर प्रकाश डालिए।

(आगरा १९५२)

Describe the Multi-Purpose River Valley Projects of India and Discuss their future

(Agra 1952)

भारत मे नदी घाटी योजनाओ की आवश्यकता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से भारत निरंतर आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा है। भारत की सबसे बड़ी समस्या यहा के लोगों की गरीबी तथा बेरोजगारी है। इन दोनो के मूलकारण मे कृषि की पिछड़ी हुई अवस्था प्राकृतिक प्रकोप जैसे बाढ़ आदि, सिंचाई की सुविधाओ का अभाव तथा उद्योग धधों के समुचित विकास का न होना है कृषि के लिए मानसून की वर्षा पर निर्भर रहना होता है जिसके कारण एक प्रकार की अनिश्चितता सदैव बनी रहती है। एक ओर तो पानी के अभाव के कारण बहुत सी खेती योग्य भूमि पर खेती नही हो पाती और दूसरी ओर बहुत सी नदियो के पानी पर नियन्त्रण न होने के कारण प्रतिवर्ष बाढ आ जाती है जिससे खेती को बहुत अधिक हानि होती है यह मानना पड़ेगा कि भारत म इतनी अधिक मात्रा मे जल सम्बन्धी साधन हैं कि उनका ठीक प्रकार से प्रयोग करके न केवल देश की खाद्य समस्या को स्थायी रूप से हल किया जा सकता है वरन् बाढ़ो की रोक थाम तथा जल विद्युत की शक्ति के विकास से देश के औद्योगिक विकास मे भी सहायता मिल सकती है। इन्ही सब उद्देश्यो को ध्यान म रखकर हमारी राष्ट्रीय सरकार ने अनेक नदी घाटी योजनाये बनाई है जिनकी सफलता पर ही देश का भविष्य निर्भर है। इन नदी घाटी योजनाओ को बहुउद्देशीय योजनायें भी कहते हैं क्योकि इनसे एक साथ कई उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

भारत की नदिया समस्त देश मे लगभग समान रूप से फैली हुई हैं हमारा

अन्तिम लक्ष्य १५ से २० वर्ष की अवधि म सिंचाई वाली भूमि के क्षेत्रफल को दुगना कर देना है इससे खाद्य उत्पादन म जो वृद्धि होगी वह न केवल अनाज की कमी को दूर करगी वरन् भविष्य में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भी पर्याप्त होगी। भारत की कुछ प्रमुख नदी घाटी योजनाओं का विवरण नीचे दिया जाता है।

भारत की प्रमुख नदी घाटी योजनायें

इस समय भारत म १५३ नदी घाटी योजनाओं पर कार्य हो रहा है जिनम से ६ बहुउद्देशीय योजनायें हैं, १४० सिंचाई योजनायें है तथा ४३ जलविद्युत योजनायें हैं। इन सब योजनाओं से १२ योजनाय बड़ी मानी जाती हैं जिनकी लागत ४३६ करोड रु० होगी शेष १४३ योजनाओं पर १५१ करोड रुपया व्यय होगा इनके अतिरिक्त १२२ अन्य योजनाओं के बारे म सर्वेक्षण का कार्य चल रहा है। धन के अभाव के कारण उन पर निकट भविष्य म कार्य प्रारम्भ होने की कोई सम्भावना नही है। निम्नलिखित नदी घाटी योजनाय उल्लेखनीय हैं।

(१) भाखरा नॉगल योजना

यह भारत की सबसे बडी योजनाओं म से है जिसके अन्तर्गत सिवालक की पहाड़ियों के बीच सतलज नदी पर ७४० फुट ऊचा बाध बांधा जा रहा है जो अपने नमूने का ससार में सबसे ऊंचा बाध होगा। ६५० मील लम्बी नहरें तथा २००० मील लम्बी सहायक नहरें बनाई जाएगी। इस योजना पर १९४५ म कार्य प्रारम्भ हुआ था इसके पाच अग है अर्थात भाखड़ा डाम, नागल डाम, नागल नहर गागूवाल तथा कोटला बिजली घर और भाखडा नहर प्रणाली। अब तक नॉगल डाम, नागल नहर गागूवाल तथा कोटला बिजली घर बनकर तैयार हो चुके हैं। भाखरा डाम पर कार्य तेजी से चल रहा है और इसके १९६० तक बन कर तैयार हो जाने की आशा है।

१९५६ – १९५७ मे भाखडा नहर प्रणाली मे पजाब और राजस्थान में १५८२९१ एकड भूमि की सिंचाई की गई। आशा की जाती है कि योजना पूरी हो जाने पर लगभग ६६ ७ लाख एकड भूमि की सिंचाई हो सकेगी और ३६ लाख एकड भूमि को अतिरिक्त जल मिल सकेगा। इस प्रकार ८.१ लाख टन गेहू तथा अन्य अनाज, ५ १ लाख टन कपास १ ५ लाख टन गन्ना तथा ० ३ लाख टन दालें और तिलहन के अतिरिक्त उपज होगी।

जलविद्युत के क्षेत्र मे गागूवाल तथा कोटला बिजली घरो के अतिरिक्त जो नागल नहर पर बने हुए है दो अन्य बिजली घर भाखड़ा डाम पर बनाये जाय गे। इस समय गागूवाल तथा कोटला बिजली घरो से ४८ हजार किलोवाट बिजली प्राप्त की जा रही है इन दोनो बिजली घरो म २८ हजार किलोवाट बिजली बनाने की लगाने की योजना है। जब भाखडा डाम के दोनो बिजली घर बन कर तैयार

हो जाये गे तो भाखरा नागल योजना की कुल उत्पादन क्षमता ६४००० किलोवाट हो जायगी।

(२) हीराकुंड योजना

उडीसा राज्य मे महानदी के पानी पर नियन्त्रण करके इस योजना से ६ ७ लाख एकड भूमि की सिंचाई सबलपुर तथा बोलन गिरि नामक जिलो मे हो सकेगी और १८ ७ लाख एकड भूमि की सिंचाई प्रतिवर्ष कटक और पुरी जिलो में हो सकेगी इस योजना का मुख्य बाघ १५७४८ फीट लम्बा है जो ससार का सबसे लम्बा बाध है मुख्य बाध के दोनों तरफ बडी बडी झीले बनाई जाएंगी जिनका क्षेत्रफल २८८ वर्ग मील होगा इस योजना पर ७० ७८ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान है। बाघ के किनारे जो बिजली घर बनगा उसकी उत्पादन क्षमता १२३००० किलोवाट होगी। मुख्य बाध तथा झीलें बन चुकी हैं और बिजली घर से ४८ हजार किलोवाट बिजली तैयार की जा रही है जो रूरकेला (Rourkela, स्पात के कारखाने तथा अन्य समवर्ती औद्योगिक क्षेत्रो तथा नगरो को प्रदान की जा रही है। मुख्य बडी नहरें तथा अनक सहायक नहरो की खुदाई हो चुकी है और सितम्बर १९५६ से नवम्बर १९५७ तक १ ४ लाख एकड भूमि पर सिंचाई की जा चुकी है। बिजली की बढती हुई मांग को देखते हुए बिजली के विकास की अन्य योजना की स्वीकृति दे दी गई है जिसकी उत्पादन क्षमता ९२२५०० किलोवाट होगी।

(३) दामोदर घाटी योजना

इस बहुउद्देशीय योजना से दामोदर तथा इसकी सहायक नदियो के पानी पर अधिकार प्राप्त किया जायगा जो प्रतिवर्ष बगाल तथा बिहार राज्य में महान विनाश का कारण बनती है पूरी हो जाने पर तिलइया (Tilaiya) कोनार (Konar) मैथोन (Maithon)तथा पचेत पहाडी (Panchet Hill) नामक चार बाध इस योजना के अन्तर्गत बनाये जा रहे हैं। इनमे से तीन बाधो के साथ १५०००० किलोवाट बिजली उत्पन्न करने की क्षमता रखने वाले ३ बिजली घर तथा ३७५००० किलोवाट की कुल क्षमता रखने वाले दो अन्य बिजली घर बोकारो (Bokaro) तथा दुर्गापुर नामक स्थान पर बनाय जा चुके है। इसके अतिरिक्त दूर-दूर तक बिजली ले जाने वाली लाइनें तथा दुर्गापुर पर एक सिंचाई बाध (Irrigation Barrage) और उसके साथ नहरें तथा सहायक नहरें बनाई जाएगी।

९९ फुट ऊचा तथा १२०० फुट लम्बा तलइया बाध १९५३ मे उद्घाटित कर दिया गया है और उसी के साथ बोकारो बिजली घर भी चालू हो गया।

कोनार बाघ १९५५ मे बन कर तैयार हो गया। मैथोन (Maithon) बाध अक्तूबर १९५७ मे बनकर तैयार हो गया है जिसमे १२ लाख एकड फीट पानी की सग्रह की क्षमता है और इस पर बना हुआ बिजली घर ६० ००० किलोवाट बिजली उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। यह बिजली घर भी अक्तूबर १९५७ मे चालू हो गया है।

इन सब बाधों में सबसे बड़ा बाध पंचेत पहाड़ी (Panchet Hill) जिस पर कार्य चल रहा है इसका मुख्य उद्देश्य बाढ़ की रोक थाम करना है। इसके निकट ४० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न करने वाला एक बिजली घर १९५८ में चालू हो जायगा।

२८ फीट ऊंचा तथा २२७१ फीट लम्बा सिंचाई बांध पश्चिमी बंगाल में दुर्गापुर नामक स्थान पर अगस्त १९५५ में बनकर तैयार हो गया जिससे १०.२६ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई हो सकेगी। १५५० मील लम्बी नहरें बनेंगी जो ५८-५९ तक तैयार हो जाएगी। इनमें से ८५ मील लम्बी नहरें जहाजरानी के लिए प्रयोग होंगी।

दामोदर घाटी योजना को पूरा करने के लिये भारत को विश्व बैंक (World Bank) से ऋण प्राप्त हुआ है।

(४) तुंगभद्रा योजना

यह योजना आंध्र प्रदेश तथा मैसूर राज्य के संयुक्त प्रयत्न से बनाई जा रही है। इसके अन्तर्गत तुंगभद्रा नदी पर ७६४२ फीट लम्बा और १६२ फीट ऊंचा एक बांध बनाया जा रहा है जिसके साथ नहरें तथा दोनों ओर बिजली घर बनेंगे। इस बांध का उद्घाटन १९५३ में हुआ। बांध के साथ १४६ वर्ग मील के क्षेत्रफल वाली एक बड़ी झील होगी और दोनों ओर की दो बड़ी नहरों से कुल मिलाकर ८.३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। एक बिजली घर बांध के बिल्कुल नीचे और दूसरा १५ मील लम्बी नहर के अन्त पर बनाया जायगा। मुख्य बांध लगभग बन चुका है और बिजली घर से १८००० किलोवाट बिजली का उत्पादन भी होने लगा है।

(५) कोसी योजना

इस योजना का मुख्य उद्देश्य बाढ़ की रोक थाम करना तथा सिंचाई की सुविधायें प्रदान करना है। योजना की पहली इकाई के अन्तर्गत नेपाल राज्य में हनुमान नगर से ३ मील ऊपर एक बांध का निर्माण होगा। दूसरी इकाई में कोसी नदी के दोनों तरफ बाढ़ से रक्षा के लिये १५० मील लम्बे पुश्ते (Embankments) बनाये जायेंगे। योजना की तीसरी इकाई में पूर्वी कोसी नहर का निर्माण करना है जो हनुमान नगर बांध से प्रारम्भ होगी और १३, ९७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करेगी। इस योजना पर कार्य चल रहा है और नदी के दोनों ओर के पुश्ते (Emb ankments) बनकर लगभग पूरे हो चुके हैं।

(६) चंबल योजना (प्रथम चरण)

इस योजना का प्रथम चरण राजस्थान तथा मध्य प्रदेश के संयुक्त प्रयत्न से चालू किया गया है। इसमें गांधी सागर बांध, गांधी सागर बिजलीघर, कोटा बांध (Kotah Barrage) तथा इसके दोनों ओर नहरें बनाने का काम सम्मिलित है। गांधी सागर

बांध से जो झील बनेगी उसमें ६८.५ लाख एकड फीट पानी जमा हो सकेगा और नहरों से १ लाख एकड भूमि की सिचाई हो सकेगी। इसके अतिरिक्त योजना के प्रथम चरण में ७५ हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न हो सकेगी वैसे तो योजना के १९६२ तक पूरा होने की आशा है किन्तु १९५९-६० से बिजलीघर तथा सिचाई की सुविधा मिलने लगेगी।

(७) रिहन्द योजना

उत्तर प्रदेश राज्य के मिर्जापुर जिले में रिहन्द नदी पर ३०६५ फीट लम्बा और २९४.५ फीट ऊंचा बांध बनाया जा रहा है। सम्बन्धित झील में ८६ लाख एकड फीट पानी जमा हो सकेगा और २.५ लाख किलोवाट की क्षमता रखने वाले बिजली घर का निर्माण होगा। इस योजना से प्रत्यक्ष रूप से उत्तर प्रदेश में १७ लाख एकड भूमि तथा बिहार में ५ लाख एकड भूमि की सिचाई हो सकेगी। योजना १९६०-६१ तक पूरी हो जाने की आशा है इस पर ५२६ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है।

(८) कोयना योजना

इस योजना के प्रथम चरण में बम्बई राज्य में कोयना नदी पर २०८ फीट ऊंचा बाँध बनाया जायगा और एक सुरंग द्वारा नदी के पानी को ऐसे स्थान की ओर मोड़ा जायगा जहां से १५७० फीट ऊंचा झरना बन सके। नीचे चार बिजली घर जिनमें से प्रत्येक से ६० हजार किलोवाट बिजली प्राप्त हो सकेगी, बनाए जायेंगे। इस योजना पर ३८.२८ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान है और यह १९६१ के अन्त तक बन कर तैयार हो जायगी।

(९) भाद्रा योजना

मैसूर राज्य में भाद्रा नदी पर यह बहुउद्देशीय योजना बनाई जा रही है जिसमें २.३४ लाख एकड भूमि की सिचाई और ३३२०० किलोवाट बिजली प्राप्त होगी योजना पर २४.४२ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है और यह १९६१ तक बन कर पूरी हो जायगी।

(१०) ककरापारा योजना

बम्बई सरकार द्वारा बनाई गई यह योजना ताप्ती घाटी के विकास का प्रथम चरण है। सूरत से ५० मील ऊपर ककरापारा के निकट पथरीले स्थान पर २०३८ फीट लम्बा और ४५ फीट ऊंचा एक बांध १९५३ में बनकर तैयार हो चुका है। सम्बन्धित नहरें १९६० तक बन जायेंगी। इस योजना से ५.५ लाख एकड भूमि की सिचाई होगी।

(११) नागरजूना सागर योजना

आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी पर ३७० फीट ऊंचा बांध बनाया जायगा जिसके साथ ६.३० लाख एकड फीट पानी जमा करने वाली एक झील होगी और बांध के दोनों ओर नहरें निकाली जाएंगी जिससे अकाल ग्रस्त क्षेत्रों की सिंचाई हो

सकेगी। योजना का प्रथम चरण १९६३–६४ तक पूरा हो जायगा। इस योजना पर कुल ८६.३३ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है। बांध के दाहिनी ओर वाली नहर से ९.७० लाख एकड तथा बायी ओर वाली नहर से ७.९ लाख एकड भूमि की सिंचाई होगी और ७५ हजार किलोवाट बिजली का निर्माण हो सकेगा।

(१२) मयूराक्षी योजना

यह योजना पश्चिम बगाल सरकार की एक प्रमुख योजना है जो विशेष रूप से सिंचाई की योजना है। यद्यपि इसमे बिजली का निर्माण भी होगा जो बगाल के मुरशिदाबाद तथा वीरभूमि जिलो तथा बगाल के सथाल परगना को बिजली प्रदान करेगी। योजना का प्रथम चरण १९५१ मे पूरा हो चुका है। १०५ फीट ऊचा और २,१७० फीट लम्बा एक भव्य बाध जिसे अब कनाडा बाध के नाम से पुकारते हैं १९५५ मे पूरा हो गया जिसके दोनो ओर की नहरो से ७.२ लाख एकड भूमि की सिंचाई होगी।

(१३) माछकुण्ड योजना

यह योजना आन्ध्र प्रदेश तथा उडीसा राज्य ने सयुक्त रूप से चालू की है जिसमे माछकुण्ड नदी के पानी को रोक कर बिजली बनाई जायगी। १,३४५ फीट लम्बा और १७६ फीट ऊचा एक बाध जालापत नामक स्थान पर बन चुका है और ५१ हजार किलोवाट बिजली बनाने वाली ३ इकाईया चालू हो गई है और ३ अन्य इकाईया भी चालू की जाएगी जिसमे से प्रत्येक की क्षमता २३ हजार किलोवाट होगी।

• **दी घाटी योजनाओं की प्रगति**—प्रथम पचवर्षीय योजना मे छोटी तथा बडी नदी घाटी योजनाओ से ६३ लाख एकड भूमि पर सिंचाई की गई। दूसरी पचवर्षीय योजना मे १.२ करोड एकड अतिरिक्त भूमि की सिंचाई हो सकेगी जिसमे से ९० लाख एकड भूमि की सिंचाई उन योजनाओ से होगी जो प्रथम पचवर्षीय योजना के काल मे चालू हो गई थी। १९६१ के अन्त तक कुल मिलाकर ८.८८ करोड एकड भूमि पर सिंचाई होने लगेगी।

प्रथम पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे कुल २३ लाख किलोवाट बिजली का निर्माण होता था। प्रथम योजना म ११ लाख किलोवाट बिजली का अतिरिक्त निर्माण होवेगा। ऐसी आशा है कि अगले १० वर्ष म भारत मे १.[illegible] करोड किलोवाट बिजली बनने लगेगी जिसमे से ५६ लाख किलोवाट की वृद्धि दूसरी योजना मे होगी।

नदी घाटी योजनाओं का कृषि तथा उद्योगों पर प्रभाव—जैसा कि हम ऊपर देख चुके है इन योजनाओ का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक भूमि पर सिंचाई की सुविधायें प्रदान करना है जिससे वर्षा के ऊपर निर्भरता समाप्त हो सके। यह कार्य नहरो के निर्माण तथा बिजली के कुओ के बनने से पूरा हो सकेगा। सिंचाई

की सुविधाओं से कृषि उत्पादन मे बहुत अधिक वृद्धि होगी और देश की अर्थ व्यवस्था पर इसका गहरा प्रभाव पडेगा। इसके अतिरिक्त इन योजनाओं से बाढ की रोक थाम होगी जो देश के कुछ भागो में प्रतिवर्ष एक दैवी प्रकोप के रूप मे भारी हानि पहुचाती है और अकाल तथा रोग का कारण बनती है और जिस कारण सरकार को प्रतिवर्ष करोडो रुपया आर्थिक सहायता के रूप म व्यय करना पडता है। कहने का तात्पर्य यह है कि नदी घाटी योजनाओं से वीरान, पिछडे तथा उजडे हुए प्रदेश लहलहाते हुये कृषि प्रदेशों का रूप धारण कर लेंगे । बिजली से ग्रामों में कुटीर उद्योगो का विकास होगा तथा बेरोजगारी की समस्या सुगमता पूर्वक हल हो सकेगी।

इन योजनाओं का देश के औद्योगिक विकास पर भी गहरा प्रभाव पडेगा। राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उडीसा, बगाल तथा मैसूर आदि राज्यों म खनिज पदार्थों का विशाल भडार है किन्तु उनका उचित प्रयोग नही हो रहा है। सस्ती बिजली के निर्माण से इन प्रदेशो मे बडे बडे उद्योग धधों का निर्माण होगा जो देश की आर्थिक उन्नति का वास्तविक प्रतीक होगा और जिससे राष्ट्रीय आय बढेगी और लोगो का रहन सहन का स्तर ऊचा होगा।

प्रश्न १०—वन भारत की अर्थ व्यवस्था मे किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होते हैं। भारत सरकार की वन सम्बन्धी नीति क्या है? (आगरा, ५०)

In what ways do forests prove useful to the Indian Economy? What is the forest policy of the Indian Government. (*Agra 1950*)

Or

भारत की अर्थ व्यवस्था मे वनो का क्या महत्व है? इनकी दशा सुधारने के लिए क्या उपाय किये गये हैं? (आगरा ५१, पटना ५२)

What is the importance of forests in the Economy of India? What steps have been taken to improve their condition?

(*Agra 1951, Patna 52*)

उत्तर—भारत मे वनो का आर्थिक महत्व बहुत है वनो से ही भारत की जलवायु तथा वर्षा भी प्रभावित होते है। वन बाढो को भी रोकते हैं भूमि के कटाव पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं रेगिस्तान के प्रसार को रोकते हैं। इनके अतिरिक्त हमको वनो से अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त होते है जो आर्थिक दृष्टि से देश के लिये काफी उपयोगी सिद्ध होते है।

भारत मे वनो का कुल क्षेत्रफल २७७७७० वर्ग मील है जो देश के कुल क्षेत्रफल का १९.२ प्रतिशत है। समस्त वनो मे से लगभग ५० प्रतिशत भाग ही व्यापार के योग्य है और शेष भाग कोई अधिक महत्व नही रखता। वास्तव में इतने विशाल देश के लिये यह क्षेत्र बहुत कम है। दूसरी ओर देश के अधिकतर प्रदेशो से वनो की मात्रा जनसख्या के अनुपात मे पर्याप्त से कम है। केवल मद्रास आसाम तथा मध्यप्रदेश मे यह अनुपात से अधिक है। राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के कुछ

भागो मे वनो मे कमी होने के कारण वहा रेगिस्तान की मात्रा बढती जा रही है क्योंकि वनों के कट जाने से वर्षा पर बुरा प्रभाव पडता है। ऐसा इसलिये है कि जनसंख्या के बढ जाने से कृषि विस्तार के लिए वनो को साफ कर लिया गया है।

भारत मे जो वन पाये जाते हैं उनमे सागौन, साल, देवदार इत्यादि लकडी अधिक प्रसिद्ध हैं। अधिक मात्रा मे वनों का कट जाना देश के लिए अहितकर है। इस लिये हमारी सरकार वन महोत्सवो के द्वारा इसके क्षेत्रफल बढाने मे प्रयत्नशील है।

भारत में वनो की उपयोगिता

भारत मे वन एक राष्ट्र सम्पत्ति है। भारत जैसे देश मे समय समय पर अन्नाभाव हो जाता है क्योंकि खेती वर्षा पर निर्भर होती है और वन के अभाव से वर्षा अच्छी नही होती। दूसरी ओर जो बहुमूल्य पदार्थों की प्राप्ति होती है उनसे बडे बडे उद्योगो का सचालन किया जाता है। दूसरे वनो से फल तेल, वनस्पति इत्यादि की प्राप्ति होती है। वनो से प्राप्त होने वाले लाभो को हम दो भागो मे बांट सकते है अर्थात् प्रत्यक्ष लाभ और अप्रत्यक्ष लाभ।

अप्रत्यक्ष लाभ —(१) वन हवा के वेग को रोकते हैं जो खेती के लिए हानिप्रद होती है तथा यह पशु पक्षियो तथा शिकार के जानवरो को आश्रय देते हैं।

(२) विशेष परिस्थितियो मे देश के स्वास्थ्य को बढाकर देश की रक्षा मे सहायता करते है।

(३) यह प्रबल बाढो को रोकने मे सहायता देते हैं। नदियो मे पानी के बहाव को निरन्तर बनाये रखते हैं तथा जल की पूर्ति को पूर्ण रूप से नियमित रखते है।

(४) वे भूमि को कटाव से बचाते है एव उपज मे वृद्धि करते है।

(५) जलवायु को अच्छा बनाने मे वन काफी सहायक सिद्ध होते हैं। यह वायु को नमी प्रदान कर वर्षा को भी प्रभावित करते है।

(६) इन से देश के सौन्दर्य मे बढोत्री होती है क्योंकि प्राकृतिक सौन्दर्य ही देश के सौन्दर्य को बढा सकता है।

प्रत्यक्ष लाभ —अप्रत्यक्ष लाभो के अतिरिक्त इनसे अनेक ही प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं जो भारत के लिए विशेष महत्व रखते हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(१) किसानो को मकान बनाते समय जो लकडी की आवश्यकता पडती है वह जगलो से ही प्राप्त होती है। जलाने के वास्ते भी लकडी वनो से ही प्राप्त होती है।

(२) महत्वपूर्ण उद्योग जैसे दियासलाई, कागज, लाख आदि सभी वनो पर पूर्ण रूप से निर्भर रहते है। यदि सब वनो को नष्ट कर दिया जाये तो बडे बड़े उद्योग सब नष्ट हो जायेंगे।

(३) वनो मे गोद, चमडा कमाने के लिये छाल, अनेक प्रकार के रंग तथा तारपीन का तेल बडी मात्रा मे प्राप्त होता है।

(४) वनो मे हमको महत्वपूर्ण औषधियां जडी बूटियां भी प्राप्त होती हैं जिनका हमारे जीवन मे घनिष्ट सम्बध रहता है।

(५) वनो से जानवरो का पालन पोषण होता है इनके न होने से देश की आर्थिक स्थिति खराब हो जाने का भय रहता है।

हम वनो के उत्पादन को दो भागो मे बाट सकते है। प्रथम बडे उत्पादन एव द्वितीय छोटे उत्पादन। छोटे उत्पादन के अन्तर्गत लाख राल, तारपीन, आवश्यक तेल बांस, चमडा कमाने की सामग्री बूटियां आदि आती हैं। १९४४—४५ के अनुसार छोटे उत्पादनो का मूल्य २,२१०८२ रु० था। वनो पर दियासलाई का उद्योग पूर्ण रूप से निर्भर है। दियासलाई की तीलियां एव उसके रखने के लिये डिब्बो की लकडी वनो से ही प्राप्त होती है। कागज उद्योग के लिये बास तथा सबाई घास (कागज बनाने के लिये एक विशेष प्रकार की घास) हमको वनो से प्राप्त होती हैं। लाख के क्षेत्र मे भारत विश्व भर मे प्रथम स्थान रखता है। यह बिहार, उडीसा, मध्य प्रदेश हैदराबाद एव मध्य आसाम मे विशेष कर उत्पन्न होती है। ७० प्रतिशत लाख तो केवल छोटा नागपुर से ही मिलती है। ६५ प्रतिशत लाख भारत से ब्रिटेन, अमेरिका, जापान एव जर्मनी को भेजी जाती है। भारत मे चमडा लाख द्वारा भी बनाया जाता है तथा ग्रामोफोन रिकार्ड, वारनिश, इसुलेटर आदि के बनाने मे भी लाख की आवश्यकता पडती है। राल भी महत्वपूर्ण वस्तु है इसका प्रयोग बीरोजा तारपीन के तेल बनाने में किया जाता है। यह कागज, साबुन एव औषधियो के बनाने मे भी सहायक सिद्ध होती है। राल रग तथा चमडा कमाने मे भी प्रयोग होती है। कागज उद्योग के लिये बास के जगल पर्याप्त मात्रा मे हैं जो सम्भवत कभी भी समाप्त न होंगे।

वनो के बडे उत्पादनों मे इमारती लकडी व जलाने की लकडी आती है। इमारती लकडी जिसका प्रयोग, रेल के डिब्बे, स्लीपर, फर्नीचर तथा कृषि से सम्बधित कुछ औजारो के बनाने मे किया जाता है। १९४४ मे इस प्रकार की लकडी का उत्पादन २७५०००००० टन हुआ था। यह लकडी साल, देवदार, सागौन, इत्यादि विभिन्न प्रकार के पेडो से प्राप्त होती है।

यातायात के साधन उपलब्ध न होने से हम इससे विशेष लाभ न उठा सके हैं। *इन साधनो के अभाव के कारण लकडी नदियो मे बहाकर लाई जाती है।* जब से भारत का विभाजन हुआ है तब से इस उद्योग को बहुत चोट पहुँची है। विभाजन से हमारी काश्मीरी वन सपत्ति इस प्रकार रुक गई है जैसे कि उसको बोतल मे बन्द कर दिया हो।

वनो के सम्बन्ध मे भारत अन्य देशो से काफी पीछे है क्योंकि हम करोडो रुपये की लकडी बाहर से मँगाते है परन्तु हम इस बात की आशा करते है कि १० वर्ष बाद हम इस क्षेत्र मे आत्म निर्भर हो जायेंगे।

भारत मे वनों की आर्थिक स्थिति की आलोचना—दुर्भाग्य का विषय है कि सरकार की जो नीति भूतकाल म वनो के सम्बध मे रही है उसका बुरा प्रभाव पडा है। बहुत से उपयोगी वन किसी न किसी कारण वश काट दिये गये हैं और जो बाकी हैं उनका पूर्ण रूप से प्रयोग नही हो सका है क्योंकि देश म सस्ते यातायात की कमी है। जगलो के अन्दर दूर तक जाकर उपयोगी पदार्थों का पता लगाना और उन्हें बाहर लाना एक कठिन कार्य है। काश्मीर की पहाडियो तथा हिमालय प्रदेश म बहुत काफी मात्रा मे ऐस वन पाए जाते हैं जिनका अभी तक कोई उपयोग न हो सक है। यातायात के साधनो की उपलब्धि तथा सडकों के बनने से स्थिति कुछ सुधर सक्ती है।

पिछले कुछ दिनो मे सरकार ने जो अनुसधान किए हैं उनके परिणाम-स्वरूप बहुत से नये उद्योगो को जन्म मिला है। देहरादून मे "वन अनुसधान शाला" इस क्षत्र मे महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। अभी कुछ समय पूर्व चौथा अन्तर्राष्ट्रीय वन सम्मेलन भारत म हुआ था जिनमे ससार के अधिकतर देशो ने भाग लिया था और इस बात पर विचार विमर्श किया था कि वनो की उपयोगिता किस प्रकार बढाई जा सकती है।

भारत सरकार की वन नीति—भारत के आर्थिक विकास मे वन एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और इसलिए सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वनो को सुरक्षित रखते हुए उनके विनाश को रोके। दूसरी ओर इस प्रकार के वन लगाये जायें जो आर्थिक दृष्टि से देश के लिए उपयोगी हो। देश की पिछली सरकार सदैव वनों को आय का एक साधन मानती रही थी और बडी लापरवाही के साथ वनों का विनाश होता रहा जिसके कारण बहुत से दुष्परिणाम निकले। जब से सरकार का ध्यान वनो की उपयोगिता की ओर गया है तब से प्रत्येक राज्य मे वन विभागो की स्थापना हो गई है और वनो की व्यवस्था उनकी सुरक्षा तथा उनका उपयोग इन्ही विभागो के द्वारा होता है। शासन की दृष्टि से वन तीन भागो मे बाटे गये हैं। (१) सुरक्षित वन, (२) सरक्षित वन (३) अरक्षित वन। १९४६–४७ मे ६५७७ वर्गमील जगल सुरक्षित थे और ७८२८ वर्गमील सरक्षित थे और शेष अरक्षित थे। अरक्षित वनो पर सरकार कोई नियन्त्रण नही रखती और न ही उन पर वैज्ञानिक प्रयोग करती है। कुछ विद्वानो का मत है कि यह वर्गीकरण दोषपूर्ण है। इसके स्थान पर नवीन वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है कि इमारती लकडी तथा ईंधन पैदा करने वाले वन एक वर्ग मे पशुओ को चारा प्रदान करने वाले दूसरे वर्ग में और शेष तीसरे वर्ग मे।

१९४८ मे सरकार ने जो वन नीति बनाई थी उसमे वनों को चार भागो मे बाटा था। (१) वे वन जिनकी सुरक्षा जलवायु तथा भौगोलिक कारणो से आवश्यक है। (२) वे वन जिनसे व्यापार के लिए मूल्यवान लकडी मिलती है। (३) घास के मैदान जो नाम मात्र के वन हैं और जो पशुओ को घास प्रदान करते हैं। (४) छोटे २

अध्याय ५

भारतीय कृषि समस्यायें

प्रश्न १६—भारत की प्रमुख कृषि समस्याओं का उल्लेख कीजिए और उनके समाधान के उपाय बताइये ? (आगरा १६४६, लखनऊ १६४६, इलाहाबाद १६५४ पटना १६५२, पंजाब ५१, ४६, ४६)

Discuss the main problems of Indian Agriculture and Suggest remedies for their solution *(Agra 46, Lucknow 46, Allahabad 54, Patna 52, Punjab 51, 49, 46)*

उत्तर—भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ लगभग ७० प्रतिशत लोग कृषि उद्योग पर निर्भर है। राष्ट्रीय आय समिति के अनुमान के अनुसार भारत की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग ५०% कृषि तथा पशु पालन से प्राप्त होता है। आवश्यक खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त कृषि के द्वारा ऐसी अनेक वस्तुयें भी उत्पन्न होती हैं जो अन्य उद्योगों में कच्चे माल के रूप मे प्रयोग की जाती हैं। नि सदेह आर्थिक जीवन मे कृषि का स्थान और महत्व सबसे ऊपर है।

दुर्भाग्य वश कृषि का इतना महत्व होते हुये भी हमारे कृषि उद्योग का स्थिति बडी शोचनीय है। हमारे देश की ३५% जनसख्या पेट भर भोजन नहीं पाती है। और देशो की तुलना मे हमारे देश मे कृषि की कुशलता ५०% से भी कम है। हमारे देश में कृषि के ढग पुराने हैं। गाव के निवासी अपना जीवन स्तर ऊचा नहीं कर पाते। प्रशुल्क आयोग ने लिखा है—"जब तक सरकार किसानो के प्राचीन दृष्टिकोण को न बदलवा दे और उनम जीवन स्तर ऊचा करने के उत्साह न पैदा कराये, उस समय तक सुधार के कार्यों से कोई सन्तोषजनक परिणाम नही निकलेगा। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि इसकी मुख्य समस्या मनोवैज्ञानिक है न कि तानि क।" उपरोक्त तथ्य पर हम कह सकते हैं कि कृषि उद्योग देश की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिय पर्याप्त अन्न उत्पन्न करने म असमर्थ पाता है। अपने खाद्य के लिये भारत-वर्ष को प्रतिवर्ष अन्य देशो से अन्न मगाना पडता है इसके मुख्य कारण क्या हैं इन पर अब हम विचार करेंगे।

वर्तमान कृषि की मुख्य समस्याएं

(१) प्राचीन दोषपूर्ण कृषि पद्धति—हमारे देश में उपज के कम होने का मुख्य कारण है प्राचीन ढग से खेती का होना। देश मे न तो गहरी खेती की प्रणाली प्रचलित है और न ही विस्तृत खेती की। पुराने ढग के घिस हुये औजारो से अधिक परिश्रम करने से भी अधिक अन्न नही उपज पाता। आधुनिक साधनों के अभाव मे

हम कृषि का वैज्ञानिक विधि से संगठन करने की बात सोच भी नहीं सकते। पाश्चात्य देशों में कृषि उद्योग की उन्नति का मुख्य कारण यह है कि उन्होंने सभी कार्य आधुनिक यन्त्रों की सहायता से सम्पादित किये हैं। विदेशों के किसानों की स्थिति को देखते हुये हमारे देश के किसान कितना विरोधाभास प्रस्तुत करते हैं।

(२) **खेतों का छोटा तथा छिटका होना**—भारतवर्ष में जनसंख्या की वृद्धि के कारण अधिक जनता कृषि पर निर्भर है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक किसान की भूमि बटने २ बहुत कम रह गई है और वह थोड़ी सी भूमि भी एक चक न होकर छोटे २ टुकड़ों में इधर उधर बिखरी हुई है। खेतों के छोटे होने के मुख्य कारण जनसंख्या में वृद्धि, उद्योग धन्धों की उन्नति में बाधा व्यक्तिगत विचारों की उत्पत्ति, संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का अन्त तथा पिता की मृत्यु के बाद जमीन का उसके वारिसों में विभाजन आदि है। उपरोक्त कारणों से खेत इतने छोटे हो गये हैं कि उनके चारों ओर न तो बाढ़ आदि ही बांधी जा सकती है और न ही उसमें भली प्रकार हल ही घूम सकता है जिसके कारण फसल कम पैदा होती है, व्यय बढ़ता है और फसल की देख भाल नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक ढंग की खेती करना भी असम्भव है।

(३) **पशुओं की खराब दशा**—भारतीय कृषि में पशुओं का विशेष स्थान है क्योंकि बैलों की सहायता से खेती की जाती है, कुओं से जल खींचा जाता है, अनाज को मंडियों तक ले जाने में इनकी सहायता ली जाती है परन्तु इनका स्वास्थ्य बहुत खराब है। वे कमजोर एवं बुरी नस्ल के हैं। उनको पेट भर भोजन नहीं मिलता, उनकी देखभाल भली प्रकार से नहीं हो पाती। इन सभी कारणों से वह बीमार हो जाते हैं और ऐसी स्थिति में उनसे काम लिया जाता है और उनके खराब स्वास्थ्य का प्रभाव खेती पर पड़ता है अर्थात् यह कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण समस्या है।

(४) **खाद की कमी**—एक भूमि पर लगातार कृषि करने से उसकी उर्वरा-शक्ति का ह्रास होता है जिसको पूरा करने के लिये खाद की आवश्यकता पड़ती है। खाद कई प्रकार की होती है जैसे गोबर, मनुष्यों का मलमूत्र, कम्पोस्ट खली रसायनिक खाद और हरी खाद। परन्तु गरीबी के कारण केवल गोबर की ही खाद डाली जाती है और वह भी बहुत कम मात्रा में क्योंकि किसान उपले पाथकर उसको जलाने के काम में लाते हैं अर्थात् समस्त गोबर को भी खाद के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता। खली भी खाद के प्रयोग में आती है लेकिन बड़ी मात्रा में तिहलन बाहर भेज दिया जाता है। डाक्टर वोयलकर ने एक बार कहा था कि 'भारत से तिहलन निर्यात करना भारतीय उर्वरा शक्ति का निर्यात करना है।"

(५) **सिंचाई के साधनों में कमी**—सिंचाई का अभाव एक अकेला शक्तिशाली कारण है जिसने भारतीय कृषि को नष्ट भ्रष्ट कर रखा है। भारतीय कृषि वर्षा पर निर्भर रहती है जो अनिश्चित तथा अनियमित है। भारत में जोती हुई भूमि के केवल १९ प्रतिशत भाग में सिंचाई के साधन प्राप्त हैं।

(६) **उत्तम बीज का अभाव**—किसान जो बीज बोता है वह अच्छे किस्म

के नही होते । दूसरी ओर गरीबी के कारण उनको महाजन पर निर्भर रहना पडता है और जैसे बीज वह दे देता है वैसे ही उनको बोना पडता है। यह बीज इतने खराब होते हैं कि फसल अच्छी नही हो पाती ।

(७) यातायात तथा विपणन की असुविधायें —भारत म यातायात की कमी के कारण किसानो को काफी परेशानी उठानी पडती है। जो सडकें है वह भी कच्ची होने के कारण बरसात मे दलदल मे इतनी खराब हो जाती है कि विवश होकर किसान गाव के महाजन के अधीन रहता है। बाहरी ससार से उसका कोई सम्पर्क नही रहता। किसान को अपनी फसल का उचित मूल्य भी नही मिल पाता ।

(८) कृषको का ऋण ग्रस्त होना — भारतीय कृषक सदैव ऋण के भार स दबा रहता है। इस ऋण के कई कारण हैं जैसे पैतृक ऋण किसानो की गरीबी उद्योग की कमी, फिजूल खर्ची मुकदमे बाजी लगान की बुरी प्रथा आदि। इसमे उसमें अधिक उत्पन्न करने की न तो इच्छा रहती है और न उ साह ही रहता है।

(९)क्रय विक्रय की असुविधा — किसानो की अज्ञानता का लाभ व्यापारी उठाते हैं। निर्यात म दलालो का इतना अधिक हाथ है कि वे किसान से मनमाना लाभ उठाते हैं। गरीब किसान अधिक अन्न उपजाने म असमर्थ है जिसको वह मडी ले जाकर बचे। यदि ऐसा करता है तो वहा आढती उनको पूरी तरह स लूटते हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कृषि के उत्पादन बिक्री क ढग बहुत दोषपूर्ण है। कृषक को अपनी उपज का पूरा मूल्य नही मिलता। इससे अधिक उत्पादन करन म वह निरुत्साह हो जाता है।

(१०) पूजी का अभाव — भारतीय कृषक की निर्धनता कृषि के विकास म सबसे बडा रोडा है। साथ ही यह भी सत्य है कि कृषक के निर्धन होने का सब से बडा कारण कृषि की हीनावस्था है। वस्तुत दोनो का अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। कृषक उन्नति करना चाहता है पर धन के अभाव से वह अपनी उन्नति म अपने आपको असमर्थ पाता है।

(११) प्राकृतिक प्रकोप — भारत मे प्राकृतिक प्रकोपो का आए दिन जोर रहता है। कभी समय पर वर्षा नही होती और सूखा पड जाती है और कभी इतनी अधिक वर्षा हो जाती है कि खेती बर्बाद हो जाती है। भारत मे बाढ का प्रकोप भी प्रतिवर्ष होता ही रहता है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक ढग से खेती न करने के कारण किसान की बहुत सी फसल कीडो तथा पौधो की बीमारियो के कारण नष्ट हो जाती है और उसे भारी हानि उठानी पडती है।

(१२) लगान तथा मालगुजारी प्रथा — भूमि की व्यवस्था इतनी खराब है कि कृषि मे उन्नति होना असम्भव है। जमीदारी प्रथा से किसानो की दशा बडी शोचनीय थी। वह मनमाना लगान वसूल करते थे। इस दोषपूर्ण व्यवस्था ने सदा शोषण, अत्याचार, भूस्वामियो तथा आर्थिक दासता को ही जन्म दिया है।

(१३) ग्राम उद्योगो की कमी — भारतीय कृषि की एक समस्या ग्रामीण

श्रमिको की है। इन लोगो को खाली बैठना पड़ता है क्योंकि ग्रामीण धंधो का पतन हो गया है जिसके कारण निर्धनता का प्रकोप बढ़ता है।

(१४) उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त विदेशी सरकार की उदासीनता एव अकर्मण्यता, कृषि प्रशिक्षण का अभाव कृषि अनुसधान का अभाव आदि के कारण भी हमारी कृषि इतनी गिरी अवस्था मे रही है।

इन समस्याओ के समाधान के उपाय:— भारत की बढ़ती हुई जनसख्या को ध्यान मे रखते हुए कहा जा सकता है कि भारत मे कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने की सबसे अधिक आवश्यकता है। इस लक्ष्य पर पहुचने के लिए १९४७–५२ मे अधिक अन्न उपजाओ योजना चालू की गई जिसके अन्तर्गत १९४९–५० मे ६६३१७ और १९५०–५१ मे ११७,४२७ नये कुओ का निर्माण और पुराने कुओ की मरम्मत हुई। १९५१—५२ मे ४३०००० एकड भूमि का उपादेयकरण केन्द्रीय ट्रैक्टर सगठन द्वारा किया गया। इन्ही वर्षों मे ०६१६४ टन रसायनिक खाद का वितरण किया गया। इसके अतिरिक्त २३७२०१२ टन उत्तम बीजो का वितरण भी गावो मे किया गया।

इसके अतिरिक्त १९५१ मे कृषि नियोजन द्वारा कृषि की स्थिति मे उन्नति करने का प्रयत्न किया गया। कृषि नियोजन के अन्तर्गत निम्नलिखित बातो पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रति एकड, पैदावार बढ़ाना, पौधो के रोगो पर नियन्त्रण, पशुओ की दशा मे सुधार, बेकार भूमि का उपादेयकरण, यातायात की सुविधाओ को प्रदान करना, खाद, कम्पोस्ट और रासायनिक खादो का प्रयोग, उत्तम बीज की पूर्ति सहकारी समितियो का सगठन, खेतो की चकबदी, सिचाई साधनो का विकास, फलो और सब्जी के उत्पादन मे वृद्धि तथा कुटीर उद्योग धधो के विकास इत्यादि हैं।

प्रथम पचवर्षीय योजनाओ मे राष्ट्रीय योजना आयोग ने सबसे अधिक महत्व कृषि सिचाई, सामूहिक विकास के कार्यो को दिया था और इन्ही चीजो को प्राथमिकता दी थी जिससे देश मे और कच्चे माल की उत्पत्ति मे वृद्धि हो, कृषि और सामूहिक विकास पर ३६१ करोड सिचाई पर १६८, बहु उद्देशीय योजनाओ पर, २६६ करोड केवल जल शक्ति योजनाओं पर १२७ करोड रुपया व्यय किया गया। इन सब योजनाओ का तात्पर्य था कृषि उत्पादन मे वृद्धि। योजना की सिफारिश के अनुसार हर प्रदेश मे भूमि सरक्षण बोर्ड स्थापित किया गया जिससे भूमि को क्षरण से बचाया गया और नये जगलो का निर्माण किया गया। आर्थिक स्थिति को ठीक करने के लिए कुटीर उद्योगो पर विशेष ध्यान दिया गया जिसके विकास के लिए प्रदेशीय सरकार ने १२ करोड तथा केन्द्रीय सरकार ने १५ करोड रुपए की व्यवस्था की। पशुओ के चारे एव उनकी चिकित्सा पर भी विशेष ध्यान देने से कृषि की हालत सभल सकती है अत प्रथम योजना मे पशुओ की देखभाल के लिये १४ २·५२ लाख रुपये मजूर किए थे। पशुओ की स्थिति मे सुधार भी आवश्यक है अत आयोजना मे उत्तम स्वास्थ्य वाले पशुओ के मालिको को पुरस्कार दिये जाने की व्यवस्था की गई। खाद

की समस्याओ के समाधान के लिये सिंद्री (विहार) मे एक उद्योगशाला स्थापित की गई इसकी उत्पत्ति बढ जाने से किसानो को सस्ते पैसों मे खाद मिल जाया करेगी।

द्वितीय योजना मे कृषि के विकास के लिए ३४१ करोड रुपए, अन्य कृषि नियोजन के लिए १७० करोड रुपए पशु सुधार के लिए ५६ करोड रुपए, सिचाई की सुविधा के लिए ३८१ करोड रुपए सहकारिता के लिये ४७ करोड रुपए और बाढ नियन्त्रण के लिये १०५ करोड रुपए ी व्यवस्था की है।

दूसरी पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष अर्थात् १९५६-५७ मे कृषि उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है। अनाज का उत्पादन गत वर्ष की अपेक्षा ५.२% बढा है और १९५३-५४ के उत्पादन के बरावर हो गया है जो अधिकतम अर्थात् ६८७ लाख टन था। १९५५-५६ की तुलना मे इस वर्ष कपास, गन्ना तथा तिलहन के उत्पादन मे भी क्रमशः १८ प्रतिशत, १३ प्रतिशत तथा ६ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। कृषि उत्पादन का सूचक अक (Index Number) जो १९५५-५६ मे ११५.९ था वह १९५६-५७ मे बढकर १२३ हो गया। कृषि समस्या के समाधान के जो उपाय किये गये हैं उनमे से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं —

१—सिंचाई के साधनो का विकास।
२—बजर तथा बेकार भूमि को खेती योग्य बनाना।
३—अच्छी तथा रसायनिक खाद का वितरण।
४—अच्छे बीज के वितरण की व्यवस्था।
५—धान की जापानी ढग मे खेती।
६—सहकारी खेती को प्रोत्साहन।
७—भूमि की चकबन्दी।
८—कृषि साख की व्यवस्था मे सुधार।
९ लगान तथा मालगुजारी प्रथा मे सुधार।
१०—कृषि बिक्री प्रथा मे सुधार।
११—फसल प्रतियोगिता।
१२—अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन।

उपरोक्त सभी उपायो की सफलता तथा कठिनाइयो का विवेचन हम आगे चलकर अन्य प्रश्नो के उत्तर मे करेंगे। यहा इतना कह देना काफी है कि यदि जनता सरकार से सहयोग करे और सहकारिता के आधार पर ग्राम्य अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण किया जाए तो यह सभी समस्याए आसानी से हल हो सकती हैं।

प्रश्न १७ क्षेत्रीय विवरण के आधार पर भारत की प्रमुख फसलो का वर्णन कीजिये। जलवायु तथा सिंचाई के साधनों का इन पर क्या प्रभाव है ?

(लखनऊ १९५४, पजाब १९५१, आगरा १९५६)

Describe the regional distribution of principal crops of India What is the influence of climate and Irrigational facilities on them

(Lucknow 44 Punjob 51, Agra 56)

उत्तर – सम्पूर्ण भारत का क्षेत्रफल ८११ मिलियन एकड है किन्तु इसमे से ६१५ मिलियन एकड भूमि ही प्रयोग मे लाई जाती है। शेष १९६ मिलियन एकड भूमि मे पर्वत, रेगिस्तान तथा ऐसे वन है जहाँ मनुष्य पहुच नहीं सकता। ३२४ मिलियन एकड भूमि पर खेती होती है। इसमे लगभग ३५.५ मिलियन एकड भूमि पर एक से अधिक फसलें उत्पन्न की जाती है। इस क्षेत्र मे लगभग ७८ प्रतिशत क्षेत्रफल खाद्य फसलो तथा १७ प्रतिशत क्षेत्रफल अखाद्य फसलो से ढका रहता है। बगीचो की फसले जैसे चाय, कहवा रबड और मसालो मे ११ प्रतिशत भूमि प्रयुक्त की जाती है।

भारत के अधिकतर भाग की भूमि बहुत उपजाऊ तथा नम है। उत्तरी भारत मे दो ऋतुएं नियमानुसार होती हैं सर्दी तथा गर्मी, अर्थात् दो फसले भी उत्पन्न होती हैं। शीतकाल मे गेहूँ, जौ, सरसो, तम्बाकू पोस्त तथा गर्मी मे चावल गन्ना, मक्का, आदि की फसलें उपजाई जाती हैं। दक्षिण भारत मे अधिक शीत न पडने के कारण वहाँ इन फसलो का पैदा करना असम्भव है। कृषि विभाग के निरीक्षण मे कृषि की बहुत उन्नति हुई है और इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि वैज्ञानिक तरीको से नई २ फसलें उपजाई जाए।

प्रमुख खाद्य फसलें

अब हम भारत की प्रमुख फसलो का वर्णन करेंगे। खाद्य फसलो के अन्तर्गत धान, गेहूँ, मक्का प्रमुख हैं।

धान (Rice)—धान भारत की अधिकाश जनसख्या का मुख्य भोजन है। अत: इसके लिये भूमि ऐसी होनी चाहिए जहा पानी रुक सके और मिट्टी मे आर्द्रता बनाये रखने की शक्ति हो। यह पानी मे अधिक पनपता है। यही कारण है कि निचले मानसूनी प्रदेश वाले क्षेत्रो मे इसकी खेती काफी अच्छी होती है। भारत मे चावल भी कई प्रकार का पाया जाता है। उनके प्रकार के अनुसार खेती भी भिन्न २ समय मे नियम विधियो द्वारा होती है। हमारे देश के प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र बगाल, मद्रास, बिहार, आसाम, उडीसा बम्बई उत्तर-प्रदेश तथा मध्यप्रदेश हैं। भारत-पाक विभाजन के बाद सिन्ध से प्राप्त होने वाला चावल भी बन्द हो गया है। अत चावल उत्पत्ति का बढाया जाना आवश्यक है किन्तु खेद के साथ कहना पडता है कि यहा पर प्रति एकड चावल की उत्पत्ति बहुत कम है। इधर पिछले कुछ वर्षो मे चावल उगाने की जापानी पद्धति के द्वारा चावल उगाया जा रहा है जिससे उत्पादन मे कुछ वृद्धि हुई है। फिर भी अभी चावल हमे ब्रह्मा से आयात करना पडता है।

गेहूँ (Wheat)—चावल के उपरान्त देश मे उत्पन्न होने वाली फसलो मे गेहू का भी महत्वपूर्ण स्थान है। गेहू उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र उत्तर प्रदेश, पूर्वी पजाब, बिहार, मध्यप्रदेश तथा राजपूताना हैं परन्तु गेहूँ का उत्पादन भी हमारे देश में प्रति एकड बहुत कम है। यहा प्रति एकड का औसत ७ मन गेहूँ उत्पन्न किया जाता है जबकि पाकिस्तान में ही प्रति एकड ८ मन गेहूँ उत्पन्न होता है। यही नही देश में

भी विभिन्न राज्यों मे गेहू के प्रति एकड उत्पादन मे काफी भिन्नता है। बिहार मे प्रति एकड ८८२ lb जबकि हैदराबाद मे २३१ lb होता है। भारत-पाकिस्तान विभाजन के पश्चात् सिंध तथा पंजाब के उपजाऊ मैदान देश से पृथक हो गये हैं जिससे गेहू के उत्पादन मे कमी हो गई है। जबकि गेहूँ की माग निरन्तर बढती जा रही है अत विदेशो से आयात करना पडता है किन्तु अब सरकार अन्नोत्पादन की ओर विशेष ध्यान दे रही है। प्रति एकड भूमि मे वृद्धि हो इस आशय से सिंचाई की व्यवस्था की जा रही है। रसायनिक खादो का वितरण किया जा रहा है। वे क्षेत्र जो अब तक बेकार थे अब उनमे ट्रैक्टर तथा हारवेस्टर द्वारा गेहू पैदा करने की व्यवस्था की जा रही है। आशा है कि निकट भविष्य में इस दिशा मे भारत आत्मनिर्भर हो जायगा।

गन्ना (Sugar cane)—गन्ना उत्पादन मे भारत का प्रमुख स्थान है। गन्ने का उत्पादन पूर्णतया शक्कर उद्योग की उन्नति पर निर्भर है। गन्ना उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हमारे देश मे उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल के कुछ भाग हैं। उत्तम कोटि का गन्ना भी इन्ही भागो मे उत्पन्न किया जाता है। U P. तथा बिहार की सरकारो ने गन्ने के उत्पादन, उसके विक्रय आदि पर समय समय पर नियन्त्रण रखा है जिससे चीनी शक्कर उद्योग पर भी प्रभाव पडा है। हाल ही मे राष्ट्रीय सरकार ने गन्ने की किस्म तथा परिमाण बढ़ने की ओर विशेष ध्यान दिया है। कोयम्बटूर मे एक Care Breeding station खोला गया है। कृषि विभाग ने भी गन्ने की विभिन्न किस्मो के उत्पादन का प्रचार किया है जिससे प्रति एकड गन्ने की उत्पत्ति मे काफी वृद्धि होगी।

इसके अतिरिक्त खाद्यान्न फसलें इस प्रकार हैं —

ज्वार, बाजरा, रागी—न्यूनाधिक मात्रा मे इनका उत्पादन समस्त देश मे होता है पर उत्तरप्रदेश के कुछ शुष्क भाग, बम्बई, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मद्रास मे इसका उत्पादन अधिक होता है। ये खरीफ की फसलें हैं। इनके लिये पानी की विशेष आवश्यकता नही पडती। इनमे अपेक्षाकृत पौष्टिक तत्व कम होते हैं।

मक्का—मक्का देश के निर्धन मनुष्यो का भोजन है। बिहार, उत्तरप्रदेश तथा पंजाब मे इसकी खेती अधिक होती है। खाद्यान्न के अभाव मे इसका भी आयात करना पडता है।

जौ—भारत मे जौ का जितना उत्पादन होता है उसका ½ भाग उत्तरप्रदेश मे ही होता है। शेष बिहार तथा पजाब मे उत्पन्न किया जाता है। जौ किसानो का एक प्रमुख भोजन है। इसका प्रयोग शराब बनाने में भी किया जाता है। विभाजन के पूर्व हम जौ का निर्यात करते थे किन्तु तत्पश्चात् खाद्यान्नो के अभाव के कारण इसका निर्यात बद कर दिया गया।

दालें—हमारे भोजन मे दालों का विशेष महत्व है। हम विभिन्न प्रकार की दालो का उत्पादन करते हैं जैसे अरहर, मूंग, उरद, मसूर, चना आदि। उत्तरप्रदेश तथा बिहार मे दालो का उत्पादन मुख्य रूप से होता है। चना दाल के साथ साथ

भोजन का अंग भी है। यहां से विदेशों को कुछ चने का निर्यात भी किया जाता है।

तिलहन—भारत में कई प्रकार के तिलहन का उत्पादन होता है। तिलहन के प्रमुख दो प्रकार है (अ) खाद तिलहन, (ब) इसके अन्तर्गत तिल मूंगफली सरसो आदि हैं।

मूंगफली—इसकी उपज के लिये शुष्क जलवायु तथा रेतीली मिट्टी की आवश्यकता होती है सिंचाई की कोई भी आवश्यकता नहीं भारत में इसके उत्पादन का प्रमुख स्थान मद्रास है। इसके अतिरिक्त बम्बई हैदराबाद, मध्यप्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश के कुछ भागो मे इसकी खेती होती है। भारत मूंगफली का निर्यात मूंगफली तथा इसके तेल के रूप में करता है।

तिल—तिल उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र सौराष्ट्र, हैदराबाद राजस्थान उत्तर-प्रदेश आदि राज्यों में हैं। इसको बाहर भी भेजा जाता है। तिलहन के सम्बन्ध मे जो ध्यान देने योग्य बात है वह यह कि पिछले वर्षों मे कच्चे माल के स्थान पर तेल के रूप मे तिलहन का निर्यात बढता रहा है। यह काफी लाभप्रद है। इससे हमारे तेल उद्योग को तो लाभ होगा ही साथ ही पशुओं के लिये खली भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जायेगी।

सरसों—सरसो तीसी रेंडी की खेती भी काफी होती है और इसका भी निर्यात किया जाता है।

रेशे वाले पदार्थ—रेशे वाले पदार्थों में कपास, जूट प्रमुख है।

कपास—भारत मे कपास का उत्पादन तो सन्तोषजनक है किन्तु इसकी किस्म घटिया होती है। किस्म की हीनता के निम्नलिखित कारण हैं —

(अ) यह कपास देश मे चलने वाली प्रचंड हवा और सूखा का भलीभांति मुकाबला नहीं कर सकती है।

(ब) इस घटिया कोटि की कपास को ऊन मे मिलावट करने के लिए विदेशों को निर्यात करके अच्छा मूल्य प्राप्त कर लिया जाता है। अत सुधार करने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया।

यही नहीं देश मे इसकी प्रति एकड़ पैदावार बहुत कम है। रूई का महत्व समझते हुये भारतीय रूई की किस्म तथा उसके प्रति एकड़ उत्पादन मे वृद्धि करने के प्रयास भी कृषि विभाग ने किये हैं। १९१९ में भारतीय कमेटी की स्थापना की गई थी। १९२१ मे इसके सुझावों पर ध्यान देते हुये केन्द्रीय रूई कमेटी की स्थापना की गई। १९२२ मे भारत रूई संघ का भी निर्माण कर दिया गया। केन्द्रीय रूई कमेटी ने रूई के किस्म मे सुधार करने मे काफी प्रयत्न किया। उक्त कमेटी ने प्रयोगशालाएं स्थापित कीं और बम्बई, इन्दौर तथा अन्य स्थानों पर अनुसन्धान कार्य किए। १९२३ मे मिलावट रोकने के अभिप्राय से Cotton transport Act भी पास किया गया था।

भारत पाक विभाजन से रूई उत्पादन को भारी धक्का पहुंचा है। हमारी २७ लाख एकड़ कपास उत्पादक भूमि पाकिस्तान मे चली गई है। भारतीय मिलो को भी जिस उत्तम कोटि की रूई की आवश्यकता पड़ती है वह भी पाकिस्तान म उत्पन्न होती है। आज हमे काफी मात्रा म रूई का आयात करना पड़ता है।

भारत मे कपास उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र मध्यप्रदेश, बरार, हैदराबाद, मैसूर, मद्रास बम्बई आदि हैं जिनम उत्तम कोटि की कपास के उत्पादन के लिए काफी सुविधाय है। पूर्वी पजाब राजस्थान आदि म भी कपास का उत्पादन होता है और यदि सिचाई की यहा पर उचित व्यवस्था हो जाए तो उत्तम कोटि की कपास उत्पन्न की जा सकती है।

जूट—हमारे देश म विश्व के उत्पादन का ३६ ५ प्रतिशत भाग जूट उत्पन्न होता है। विभाजन के बाद जूट उत्पादन करने वाले बगाल के प्रमुख जिले पाकिस्तान म चले गय हैं पर जूट की मिले भारत म ही हैं जिस समय पाकिस्तान से विनिमय दर सम्बन्धी समझौता हुआ उसस पूर्व उत्पादन के अभाव के कारण इन मिलो म काम करने के घण्टो मे कमी करनी पड़ी तथा कुछ मिलें बन्द भी रही। पटसन के लिए पाकिस्तान पर इतना अधिक आश्रित रहना उचित न समझकर भारत सरकार ने पटसन के उत्पादन म वृद्धि करने के लिए चेष्टा की है तथा उत्तरप्रदेश, मद्रास, ट्रावनकोर कोचीन म इसकी खेती करने की बात सोची जा रही है।

पेय पदार्थ—इनमे चाय कहवा प्रमुख है —

चाय—चाय की माग दिनो दिन बढती जा रही है। भारत के प्रमुख चाय उत्पादन क्षेत्र आसाम दार्जिलिंग, नीलगिरी देहरादून, कागडा घाटी आदि है। चाय की कुल उपज का लगभग ७० प्रतिशत भाग विदेशो को भेज दिया जाता है।

कहवा—इसका उत्पादन दक्षिण भारत म किया जाता है। १९५१–५२ के आकड़ो के अनुसार भारत से १६ १ हजार हडरवेट कहवे का निर्यात किया गया जिसकी लागत ० ६ करोड़ रुपये थी।

अन्य पदार्थ

तम्बाकू—इसके उत्पादन म भारत का तीसरा स्थान है भारत के प्रमुख तम्बाकू उत्पादक क्षेत्र मद्रास के गुन्टूर, कृष्णा तथा गोदावरी जिले, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा बिहार हैं। भारत स इसका निर्यात किया जाता है।

रबर—रबर का आर्थिक महत्व दिनो दिन बढता जा रहा है। भारत म रबर मुख्य रूप से दक्षिण मद्रास, कुर्ग, मैसूर राज्य मे होती है। भारत म प्रतिवर्ष लगभग १६५०० टन रबर का उत्पादन होता है जब कि ससार के उत्पादन का १ प्रतिशत से कुछ ही अधिक है अत रबर के उत्पादन मे वृद्धि करने की बड़ी आवश्यकता है।

भारत में मुख्य फसलों का क्षेत्रफल तथा वार्षिक उपज का अनुमान निम्नलिखित तालिकाओं से लगाया जा सकता है —

तालिका I (क्षेत्रफल)

हजार एकड

फसल का नाम	१९५१—५२	१९५६— ७
चावल	७३७१३	७८१७४
गेहू	२३४०४	३२८९१
गन्ना	४७२२	५०१६
ज्वार	३९३९६	४११९४
बाजरा	२३५२२	२७ ४२
मक्का	८१७६	६२४४
जौ	७८०७	८५६४
दालें	२३४७३	२७६०९
मूंगफली	१२१५१	१३१०१
कपास	१६२०१	१६८४३
पटसन	१९५१	१८८३
चाय	७८२	—
कहवा	२३०	—
तम्बाकू	७१३	१०२२
रबर	१४८	—

नोट —उपरोक्त तालिका मे चाय, कहवा तथा रबर के १९५६—५७ के आकडे उपलब्ध नही है।

तालिका II (वार्षिक उत्पादन)

हजार टनो मे

फसल का नाम	१९५१–५२	१९५६–५७
चावल	२०९६४	२८१४२
गेहूँ	६०८५	९०६८
गन्ना	६०६६०	६६८९०
ज्वार	५९८१	७४२७
बाजरा	२३०९	२९२६
मक्का	२०४३	३०२०
जौ	२३३०	२७४४
दालें	३१५२	३४५८
मूंगफली	३१४२	४०८६
कपास	३१३३	४७२३
पटसन	४६७८	४२११
चाय	६४१	—
कहवा	५५	—
तम्बाकू	२०६	३०६
रबर	३२	—

नोट :—कपास, पटसन का उत्पादन हजार गाठो मे तथा चाय और कहवे का उत्पादन हजार पौंड मे दिया गया है।

उपरोक्त दोनो तालिकाओ से विदित होता है कि भारत मे गत वर्षो मे लगभग सभी फसलो के क्षेत्रफल तथा उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है जिसका कारण कुछ सीमा तक प्रथम पच वर्षीय योजना की सफलता भी है।

जलवायु तथा सिंचाई के साधनों का प्रभाव—हम जानते हैं कि किसी भी फसल को उगाने के लिए दो तीन बातो की विशेष आवश्यकता पड़ती है। सर्वप्रथम देश की मिट्टी उपजाऊ तथा किसी विशेष फसल के अनुकूल होनी चाहिये। सौभाग्य से भारत के विभिन्न भागों में अलग अलग प्रकार की जो मिट्टी पाई जाती है लगभग सभी फसलों को पर्याप्त मात्रा मे उगाने के लिये उचित है। दूसरी बात जलवायु की अनुकूलता है। इस दृष्टि से भी भारत काफी भाग्यशाली देश है। विभिन्न फसलों का वर्णन करते समय हम जलवायु के प्रभाव पर प्रकाश डाल चुके हैं। तीसरी तथा सबसे महत्वपूर्ण बात पानी की है। पानी फसलों को जीवन प्रदान करता है। भारत में अधिकतर फसले वर्षा के अनुसार बोई और काटी जाती हैं और उसी पर निर्भर होती हैं भारत मे वर्षा अनिश्चित है तथा देश के सब भागो मे समान रूप से नही होती। इस कमी को पूरा करने का दूसरा उपाय सिंचाई के साधनो का विकास है। भारत मे प्राचीन काल से नदियो, तालाबो झीलो तथा कुओं की सहायता से सिंचाई की जाती है और फसलो को आवश्यकतानुसार पानी देने का प्रयत्न किया जाता है। सिंचाई के यह साधन देश के प्रत्येक भाग मे उपलब्ध नही है और जहा है वहा पर्याप्त नही हैं। इसलिये नहरो का निर्माण तथा बिजली के कुओं आदि के निर्माण से सिंचाई की व्यवस्था की जा रही है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जब भारत मे सिचाई की छोटी बडी सभी योजनायें पूरी हो जायेंगी तो देश की कृषि मे क्रान्तिकारी उन्नति हो जायेगी और बड़ी मात्रा मे सभी प्रकार की फसलें उगाई जा सकेंगी। देश का आर्थिक भविष्य बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर है।

प्रश्न १८—भारतीय कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई के साधनो का क्या महत्व है? भारत मे सिंचाई के कौन २ से साधन पाये जाते हैं? सिंचाई के साधनों के विकास के लिए क्या प्रयत्न किये गए हैं? (आगरा ४६, ४८, ३८ ३२, लखनऊ ४८ ४७, पटना ५२, पजाब ३६)

Q 18 What is the importance of irrigation to Indian Agriculture? What are the various means of irrigation found in India? What efforts have been made to develop them?

Agra 49, 48 38 32, Lucknow 48, 47 Patna 52, Punjab 39)

सिंचाई का महत्व—भारत वर्ष एक कृषि प्रधान देश है जहा अनादि काल से ही भारतीय किसान का भाग्य वर्षा पर निर्भर रहा है। हमारे देश मे मरु भूमि तथा अर्ध मरु भूमि क्षेत्र कुल भूमि के अनुपात से अधिक है अत हमारे कृषि उद्योग के लिए सिंचाई का बहुत अधिक महत्व है। राष्ट्रीय समृद्धि के दृष्टिकोण से भी सिंचाई का बहुत अधिक महत्व है क्योकि खाद्यान्न और उद्योगो के लिये कच्चा सामान कृषि से ही प्राप्त होता है। परन्तु वर्षा से ही भारत मे पानी की अधिकाश आवश्यकता की पूर्ति होती है और हमारी कृषि वर्षा की दया पर पूर्णतया निर्भर है। भारत के आर्थिक जीवन मे सिंचाई का इतना अधिक महत्व होते हुए हम आवश्यकता इस बात की है कि सिंचाई की उपयुक्त सुविधाओ के विकास द्वारा पानी के प्राकृतिक साधनो

सचित क्षेत्र में अधिकतम वृद्धि करनी है तो व्यक्तिगत कूपों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि करना अनिवार्य है। कुआ खोदना व्यक्तिगत कार्य है और उसके निर्माण के लिए तकावी ऋण देकर तथा उससे सुधारी हुई भूमि पर कोई अतिरिक्त कर लगा कर सरकार भी उसे प्रोत्साहित करती है। जिन स्थानों पर व्यक्तिगत जोत बहुत छोटी है वहाँ सरकारी समितियां कुए खोद सकती है। अकाल जांच आयोग ने यह सुझाव पेश किया था कि सरकार को भूमि के नीचे के पानी के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करनी और प्रकाशित करनी चाहिए और कुआँ खोदने के बारे में ग्रामीणों को सलाह देने के लिए विशेष अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए।

विद्युत कूप (Tube wells)—वैज्ञानिक युग में विद्युत कूप का महत्व सिंचाई क्षेत्र में बहुत अधिक है। पक्के कुओं में बिजली द्वारा पानी ऊपर उठाया जाता है इससे घन्टे में ३३ हजार गैलन पानी खिंचता है और लगभग ४०० एकड भूमि की सिंचाई हो सकती है। इन कुओं से सिंचाई करने में लाभ है जैसे (अ) इनके बनाने में केवल एक बार ही व्यय करना पडता है (ब) इनकी देख रेख में बहुत कम धन व्यय होता है। (स) कुओं का पानी नहरों के पानी से अधिक लाभकारी होता है। (द) प्रत्येक कृषक को पानी आवश्यकतानुसार नापकर दिया जाता है जिससे उसे पानी के लिए न तो प्रतीक्षा करनी पडती है और ना ही उसके खेतों में बेकार पानी भरा रहता है।

हमारी राष्ट्रीय सरकार ने १६४८ में विद्युत कूपों के विषय में दो अमरीकी विशेषज्ञों को सलाह के लिए बुलाया था। उत्तर प्रदेश में गंगाधारी विद्युत कूप योजना के अंतर्गत १७०० कुओं का निर्माण हो चुका है। पंजाब, बिहार में भी इस प्रकार के कुओं के निर्माण की कई योजनायें बनाई जा चुकी हैं।

सन् १६५५ के अन्त तक २२८६ नलकूप भारत अमरिका टेकनिकल सहकारी कार्यक्रम में, ६ नलकूप अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के अन्तर्गत व २०४३ नलकूप राज्यों की योजनाओं के अन्तर्गत किये जा चुके है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में कुओं द्वारा सिंचाई करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न किए जा रहे है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि राजकीय तथा व्यक्तिगत दोनो साधनों द्वारा कुओं की संख्या में वृद्धि की जाये और इस साधन को प्रोत्साहन दिया जाये।

तालाब—प्राचीन काल से तालाब भारतीय कृषि व्यवस्था के विशेष अंग रहे हैं। पंजाब को छोडकर लगभग सब ही भागों में तालाब पाये जाते है। सबसे अधिक संख्या तालाबों की मद्रास प्रान्त में पाई जाती है वहां इनकी संख्या ३०,००० है। तालाबों का प्रयोग प्रायः उन स्थानों में होता है जहां पर कुओं या नहरों से सिंचाई की व्यवस्था नहीं है। तालाबों से सिंचाई के मुख्य केन्द्र दक्षिण राजपूताना, दक्षिण भारत, मध्य भारत हैदराबाद तथा मैसूर हैं।

आधुनिक युग में बहुत से तालाब नष्ट हो गये हैं अतः अब हमारी भारत सरकार उनके निर्माण एवं मरम्मत पर विशेष ध्यान दे रही है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि जहां नहरों या अन्य बड़े सिंचाई के साधनों का उपयोग नहीं हो

\ **नस्ल सुधारने के उपाय**.—नस्ल सुधारने के लिए यह अति आवश्यक है कि बीमार, बूढे तथा अशक्त साडो को समाप्त कर किया जाये। इससे चारे की समस्या का भी बहुत कुछ समाधान होगा। इसके साथ ही साथ गावो मे अच्छे साडो को भी भेजा जाये। भारतीय कृषि कमीशन ने बताया था कि भारत में अच्छे साडो की बहुत कमी है। अतः १० लाख सॉडों की अति आवश्यकता है। भारतीय कृषि अनुसधान समिति ने अच्छे नस्ल के साडो का पता लगा लिया है और उसका कहना है कि इनका प्रयोग गावो मे अवश्य होना चाहिए। हमारे देश मे कई सरकारी फाम हैं जहा उत्तम साड तैयार किये जाते हैं जिनकी संख्या प्रतिवर्ष ७५० है जिनको विभिन्न गावो मे भेजा जाता है। इस समय कृत्रिम गर्भाधान द्वारा प्रजनन कराकर नस्ल सुधारने का भी प्रयत्न किया जा रहा है।

हमारी राज्य सरकारो ने एक पशु सुधार एक्ट पास किया है जिससे बेकार साडो को नपुंसक किया जाता है। नस्ल सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ६०० ऐसे प्रमुख ग्राम केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक प्रमुख ग्राम केन्द्र ३—४ गावो मे होगा। इन केन्द्रो मे पशुओ की नस्ल, दुग्धोत्पादन आदि का विशेष ध्यान तथा विस्तृत लेखा रखा जायगा। इनके अतिरिक्त १५० कृत्रिम प्रजनन केन्द्र भी खोलने की व्यवस्था की गई है। और दूसरी पचवर्षीय योजना मे १२०० प्रमुख ग्राम केन्द्र तथा ३०० कृत्रिम प्रजनन केन्द्र खोलने की योजना है। अत योजनाओ के पूरा हो जाने पर इस समस्या का काफी समाधान हो जायेगा।

रोगों को दूर करने के उपाय—रोगो से बचाने के लिये यह अति आवश्यक है कि गावो में पशु चिकित्सालय खोले जाए। इनके अभाव से ही जानवरो का ठीक से उपचार नहीं हो पाता और मृत्यु का ग्रास बन जाते है। इस समय देश मे २००० पशु अस्पताल हैं परन्तु इनमे कुशल डाक्टरो की बहुत कमी है। कुछ ऐसे अस्पताल भी होने चाहिए जो गावो मे घूम-घूम कर इलाज करें। सरकार को अस्पतालो का निर्माण शहरो की बजाय गाँवों मे करना चाहिए जिससे अधिक लाभ उठाया जा सके।

पोकनी बीमारी सबसे भयानक तथा छूत की बीमारी है। अत ऐसे जानवरो को टीका लगा देना चाहिए जिससे इसका प्रभाव कम हो जाए। भारत ने इस क्षेत्र मे काफी प्रयास किया है पर विशेष सफलता नही मिली है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात हुआ है कि पशुओ की हालत बडी खराब है और यह जटिल समस्या का रूप धारण करती जा रही है। बिना पशुओ की उन्नति के देश की उन्नति असम्भव है इसलिए भारत की उन्नति के लिए पशुओं की उन्नति परम आवश्यक है।

प्रश्न २१—कृषि का यन्त्रीकरण भारत के लिये कहां तक उपयुक्त है? विवेचना कीजिये। (राजपूताना ५०, दिल्ली ५४, कलकत्ता ५५, ५१)

How far Mechanization of Agriculture is suitable for India? Discuss fully. *(Rajputana 50, Delhi 54, Calcutta 55, 51)*

कृषि यन्त्रीकरण का अर्थ
(MEANING OF MECHANIZATION)

आज का युग विज्ञान का युग है। मानव परिश्रम को कम करने तथा भूमि की उत्पादनशीलता को बढाने के लिये लगभग सभी पश्चिमी देशो मे बडी बडी मशीनो का प्रयोग खेती के लिये किया जाता है। भूमि का जोतना, बीज बोना, फसल काटना तथा उसका ग्रेडिंग आदि का कार्य मशीनो की सहायता से होता है। प्रत्येक कार्य के लिये विशेष प्रकार की मशीनो का आविष्कार कर लिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि भूमि की उत्पादनशीलता बहुत अधिक हो गई है और अब खेती के लिए बहुत अधिक मनुष्यो की आवश्यकता नही पडती। इससे किसान तथा ग्रामीणों का रहन-सहन का स्तर बहुत ऊंचा उठ गया है। यहां हमे देखना यह है कि क्या भारत मे भी खेती का यन्त्रीकरण किया जा सकता है और यदि किया जा सकता है तो उसका देश पर क्या प्रभाव होगा।

भारत मे कृषि का यन्त्रीकरण
(MECHANIZATION IN INDIA)

भारत एक अति प्राचीन देश है और अनादिकाल से भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। भारत मे प्राचीन समय से ही साधारण यन्त्र जैसे हल इत्यादि त । बैलो और मानव की शक्ति के सहयोग से खेती होती आई है और आज भी होती है। जहा अन्य देशो मे विज्ञान की प्रगति के साथ साथ खेती का यन्त्रीकरण कर दिया गया है वहा भारत आज अपनी भी प्राचीन परम्परा को निभाता आ रहा है।

भारत मे खेती के यन्त्रीकरण का प्रश्न इसलिये उत्पन्न हुआ है कि यहा अन्य देशो की अपेक्षा प्रति एकड उपज बहुत कम है जबकि देश की जनसख्या और अनाज की आवश्यकताए बहुत अधिक बढ गई हैं। देश मे आए दिन खाद्य सकट बना रहता है। कम उपज के बहुत से कारण है जिनमें से एक यह भी है कि भारतीय किसान आज भी अज्ञान है और उन्ही पुराने तरीको से खेती करता है जिनका आज के वैज्ञानिक युग मे महत्व नही रहा। ससार बहुत आगे निकल गया है और हम आज भी १५० वर्ष पहले की दुनिया मे रह रहे है। जब तक आधुनिक वैज्ञानिक ढग से यन्त्रीकरण के आधार पर खेती नही की जावेगी भारत की समस्या हल नही हो सकती। चीन जैसे देश मे भारत की अपेक्षा कम कृषि योग्य भूमि है किन्तु वहा की उपज भारत से चार पाच गुनी अधिक है।

इस बात मे किसी को कोई सन्देह नही हो सकता कि कृषि का यन्त्रीकरण भारत के लिये हितकर ही नही, आवश्यक भी है किन्तु प्रश्न यह है कि भारत की वर्तमान परिस्थितियो मे क्या कृषि का यन्त्रीकरण सम्भव भी है या नही। यह निर्णय करने के लिए हमे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) भूमि की उपलब्धता तथा जनसख्या के दबाव की दृष्टि से भारत की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। भारत की जनसख्या ३६ करोड से ऊपर है जिसमे से ७०

प्रतिशत से भी अधिक लोग अपनी जीविका खेती के सहारे प्राप्त करते है । कृषि के यन्त्रीकरण से भारत की अधिकाश जनसख्या बेकार हो जावेगी । जब तक इन लोगो के लिये रोजगार के अन्य साधन विकसित नही होते उस समय तक खेती का यन्त्रीकरण भारत मे बडे पैमाने पर लागू नही हो सकता ।

(२) अर्थशास्त्री उत्पत्ति के तीन प्रमुख साधन मानते हैं अर्थात् भूमि, श्रम तथा पूंजी । ये तीनो एक दूसरे के स्थान पर कुछ सीमा तक प्रतिस्थापित हो सकते हैं । यदि श्रम की कमी हो अथवा पूंजी सस्ती हो तो श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग किया जा सकता है जैसा कि अन्य देशो ने खेती का यन्त्रीकरण करके किया है । किन्तु भारत मे इसका उल्टा है । हमारे यहा पूजी की कमी है और श्रम की अधिकता है तथा श्रम पूजी की अपेक्षा सस्ता है इसलिये यहा समस्या पूजी के स्थान पर श्रम क प्रयोग करने की है । भारत मे कृषि के यन्त्रीकरण के परिणाम उल्टे सिद्ध होने का भय है ।

उपरोक्त विवेचन का यह अर्थ नही लगाया जा सकता कि भारत सदैव गरीब तथा पिछडा हुआ ही रहेगा तथा विज्ञान ने जो सुविधायें प्रदान की हैं उनका लाभ नही उठा सकता । धीरे-धीरे तथा कुछ सीमित क्षेत्रो मे कृषि का यन्त्रीकरण किया जा सकता है शेष के लिए हमे उस समय की बाट देखनी होगी जब देश मे औद्योगीकरण के द्वारा सारी जनता के लिये रोजगार के साधन उपलब्ध न हो जायें और देश मे पूंजी की कमी दूर न हो जाय । अभी तक तो भारत म पूंजीगत वस्तुय बाहर से ही मगानी पडती हैं और इसके लिए भारत के पास पर्याप्त साधन नही हैं ।

यन्त्रीकरण की प्रमुख बाधायें
(LIMITATIONS OF MECHANIZATION)

(१) खेती के यन्त्रीकरण की सबसे बडी कठिनाई यह है कि भारत मे खेतो का आकार बहुत छोटा है । छोटे आकार के खेतो पर भारी यन्त्रों का प्रयोग नही हो सकता । यदि सामाजिक समानता के आधार पर भूमि का पुन. वितरण कर दिया जाय तो खेती का आकार और भी छोटा हो जाएगा । यह कठिनाई उस समय दूर हो सकती है जब एक ग्रामीण की सारी भूमि पर सहकारी खेती की जाए ।

(२) खेती के यन्त्रीकरण से बेरोजगारी की समस्या और भी जटिल हो जाने का भय है । भारी सख्या मे लोग खेती से पृथक हो जायेंगे और वर्तमान श्रम उद्योगो मे इनकी खपत नही हो सकती ।

(३) हमारी कृषि व्यवस्था मे पशुओ का विशेष महत्व है । वे अनेक प्रकार के कार्यो के लिए प्रयोग मे लाये जाते हैं । कृषि के यन्त्रीकरण से फालतू पशुओ की समस्या भी हमारे सामने उत्पन्न होगी ।

(४) कृषि के यन्त्रीकरण के लिये व्यापक सिंचाई की सुविधाओ का होना भी परम आवश्यक है । अनिश्चित मानसून वर्षा वाले देश मे यन्त्रीकरण के पूरे लाभ नही उठाये जा सकते । सिंचाई के साधनो का पूर्ण विकास इससे पहिले हो जाना चाहिये ।

(५) यन्त्रीकरण के लिये देश मे आवश्यक मशीनो का निर्माण, सस्ती बिजली, खनिज तेल तथा लोहा और इस्पात आदि की आवश्यकता होती है। भारत मे इन सब चीजो की भारी कमी है।

(६) भारत मे जो भी कृषि यन्त्र प्रयोग मे लाए जा रहे हैं वे विदेशो से आयात किये गये है उनकी टूट-फूट तथा मरम्मत आदि की पूरी सुविधाए भारत मे उपलब्ध नही है तथा इनका खर्चा इतना अधिक है कि एक साधारण किसान इनके प्रयोग से लाभ नही उठा सकता।

(७) भारतीय किसान की अज्ञानता तथा अशिक्षा के कारण इन मशीनो तथा यन्त्रो का प्रयोग उनके लिये सम्भव नही है। भारतीय किसान प्राचीन यन्त्रो के प्रयोग के अतिरिक्त और कुछ नही जानता और न जानना चाहता है।

खेती के यन्त्रीकरण की सम्भावना
(FUTURE POSSIBILITIES)

वर्तमान हालत मे खेती का यन्त्रीकरण केवल निम्नलिखित क्षेत्रों मे सफलता-पूर्वक हो सकता है —

(१) बजर तथा बेकार भूमि को खेती योग्य बनाने के लिये बडी मशीनो का प्रयोग किया जा सकता है। केन्द्रीय तथा राज्य ट्रैक्टर सगठनो ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। दूसरी पचवर्षीय योजना मे इस सस्था द्वारा १५ लाख एकड बजर भूमि को खेती योग्य बनाने का विचार है। उत्तर-प्रदेश के तराई तथा गगा खादर के क्षेत्रो मे जगल आदि साफ करके बडे-बडे फार्म बनाये गये है जिन पर यन्त्रो की सहायता से खेती होती है।

(२) मध्य-प्रदेश राजस्थान तथा अन्य कम आबादी वाले क्षेत्रो म जहा काफी मात्रा मे भूमि उपलब्ध है और सिचाई की सुविधाओ का विकास हो चुका है वहा खेती का यन्त्रीकरण किया जा सकता है।

(३) जिन क्षेत्रो मे खेती की चकबन्दी हो चुकी है और सहकारी खेती को प्रोत्साहन मिल रहा है वहा यन्त्रीकरण सुगमतापूर्वक हो सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं भारत मे कृषि के यन्त्रीकरण में अनेक बाधायें है किन्तु इनका सामना करते हुए भारत को धीरे-धीरे कृषि का यन्त्रीकरण करना है। ऐसा किए बिना कम उपज, गरीबी, रहन सहन का नीचा स्तर तथा बेरोजगारी आदि की समस्या दूर नही हो सकती। प्रारम्भ में भारत को साधारण तथा छोटे कृषि यन्त्रों का निर्माण करना चाहिए जिनमे छोटे ट्रैक्टर आदि शामिल हैं। देश में बहुत से ट्रैक्टर केन्द्रो की स्थापना की जाए जिनम किसानों को उनके प्रयोग की शिक्षा दी जा सके। इस समय इस प्रकार का एक केन्द्र भोपाल मे स्थापित हो चुका है और दूसरी पचवर्षीय योजना मे एक अन्य केन्द्र के स्थापित होने की आशा है। इस बात की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाए कि किसानों को किराए पर इन मशीनो आदि को सेवा प्राप्त हो सके और इसके लिए उन्हे अधिक व्यय न करना पडे।

भारत की बड़ी-बड़ी पन बिजली योजनाओं के पूरा हो जाने से सिंचाई के साधनों में वृद्धि होगी और खेतों पर सस्ती बिजली मिल सकेगी जिसमे कृषि के यन्त्रीकरण मे सुगमता होगी। यह हर्ष का विषय है कि हमारे किसान कुछ-कुछ इन कृषि यन्त्रों से परिचित होने लगे हैं और इनके महत्व को समझने लगे हैं। यन्त्रीकरण की सफलता के लिए सहकारी खेती की व्यवस्था परम आवश्यक है।

अन्त मे हमे यह नही भूलना चाहिये कि भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए निकट भविष्य मे खेती का सम्पूर्ण यन्त्रीकरण न तो सम्भव है और न हितकर ही।

प्रश्न २२—भारत मे सामुदायिक विकास योजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों की प्रगति पर प्रकाश डालिए। (राजपूताना १९५५)

Throw some light on the *progress of Community Projects* and National Extension Service Blocks in India. *Rajputana 1955*

उत्तर—सामुदायिक विकास योजनाओं का उद्देश्य भारतीय गावों मे रहने वाली जनता के व्यक्तिगत तथा सामूहिक विकास मे सहायता प्रदान करना है। ५ जनवरी १९५ को भारत तथा अमेरिका के बीच जो टैक्नीकल सहयोग समझौता हुआ था उसके अन्तर्गत सामुदायिक विकास की योजनाओं पर अमेरिका तथा भारत के परस्पर सहयोग से प्रयत्न करने का निश्चय किया गया और इस समझौते के उपरान्त अमेरिका द्वारा ५ करोड डालर तथा भारत सरकार द्वारा ५० करोड रुपये इन योजनाओं को सफल बनाने के हेतु व्यय करने का निश्चय किया गया।

२ अक्तूबर १९५२ को ५५ सामुदायिक विकास योजनायें आरम्भ की गई प्रत्येक योजना का क्षेत्र लगभग ५०० वर्ग मील तथा जनसख्या लगभग २ लाख है और इसमे ३०० गाव सम्मिलित किये जाते है।

एक सामुदायिक विकास योजना को तीन विकास खंडो मे बाट दिया जाता है। इस प्रकार एक विकास खड मे लगभग १०० गाव और औसत जनसख्या ५०००० से ७०००० तक होती है।

सामुदायिक विकास योजना द्वारा भारत की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का पुनर्निर्माण करना है और ग्रामीण जीवन के लगभग सभी अगो का सामूहिक रूप मे विकास करना है। जो कार्य सामुदायिक विकास योजना के अन्तगत आते हैं उनका विवरण इस प्रकार है —

(१) कृषि और इससे सम्बन्धित कार्य—इस कार्य के अन्तर्गत बेकार पडी भूमि को खेती योग्य बनाना, उत्तम बीज तथा खाद की व्यवस्था करना, तालाब, नहरो कुओ आदि की सहायता से सिंचाई को सुविधायें प्रदान करना, फलो और सब्जी की खेती बढाना, यांत्रिक सलाह प्रदान करना उत्तम एव नवीन औजारो की व्यवस्था करना तथा बिक्री की सुविधायें करना, भूमि क्षरण को रोकना, सहकारी समितियो की स्थापना करना आदि कार्य सामुदायिक विकास योजना के अन्तगत किये जाते हैं।

(२) यातायात की सुविधायें प्रदान करने का कार्य—विकास योजना मे इस

बात का प्रयत्न किया जाता है कि एक गाव दूसरे गाव से सडक द्वारा मिला दिया जाये, इन सडको का निर्माण ग्रामीणों के श्रम की सहायता से हो रहा है। यह छोटी छोटी सडकें जो गावो मे बनाई जाती है किसी बडी सडक के साथ जोड दी जाती हैं जो पत्थर द्वारा बनाई जाती है।

(३) शिक्षा प्रसार—इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक शिक्षा, बेसिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और काम करने वालों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाता है तथा ग्रामीण कारीगरों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र भी खोले जाते हैं।

(४) स्वास्थ्य रक्षा कृषकों की कार्यक्षमता मे वृद्धि करने के हेतु उनके स्वास्थ्य में सुधार करना अति आवश्यक है अत आयोग ने प्रत्येक योजना क्षेत्र मे ८ प्राथमिक चिकित्सा इकाइयो की स्थापना का आयोजन किया है। इकाई मे एक अस्पताल और एक एक औषधालय होता है जो सारे क्षेत्र मे घूमता है। बीमारी को रोकने के लिए गाव की सफाई मलेरिया हैजा, चेचक और क्षय नियन्त्रण और पानी की सफाई पर विशेष बल दिया जाता है।

(५) सहायक धन्धे—जो कृषक खेती में लगे हुये हैं वे भी वर्ष के अधिकांश महीनों मे लगभग बिना काम के रहते हैं। शेष मजदूर तो बेकार रहते ही है। अत ग्रामीण कुटीर उद्योगो का विकास कर्य बेकारी को दूर करने के लिये इस योजना का मुख्य अग है।

(६) भवन निर्माण कार्य—इस बात की व्यवस्था योजना के अन्तर्गत की गई है कि अच्छे घर बनाने की कला, सीमेंट ईंट आदि की व्यवस्था, पार्क व चौडी गलियों के निर्माण कार्य की व्यवस्था की जाय।

(७) प्रशिक्षण—विकास योजना के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए ३० केन्द्र स्थापित किय गये हैं और प्रत्येक मे ७० व्यक्तियो को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था की गई है।

(८) समाज कल्याण—ग्रामीण क्षेत्रो मे स्वस्थ मनोरंजन के साधनो का काफी अभाव है। अतः योजना आयोग ने क्षेत्र मे बसने वाले व्यक्तियों के लिए मेले, प्रदर्शनी का प्रबन्ध खेल कूद फिल्मों द्वारा समाज शिक्षा का प्रबन्ध किया है यह कार्य उनके समाज कल्याण मे काफी सहायक सिद्ध हुए हैं।

सामुदायिक विकास योजना की प्रगति—जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं सामुदायिक विकास योजना का कार्यक्रम २ अक्तूबर १९५२ को ५५ विकास योजनाओं से प्रारम्भ किया गया था और प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्त तक अर्थात् ३१ मार्च १९५६ तक लगभग भारत की कुल ग्रामीण जनसंख्या का $\frac{1}{4}$ भाग इन योजनाओं के अन्तर्गत लाने का लक्ष्य था। सामुदायिक विकास योजनाओं के साथ ही साथ २ अक्तूबर १९५३ से लगभग समान उद्देश्य रखने वाली कुछ अन्य योजनये चालू की गई जिन्हे राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड के नाम से पुकारते हैं। यह योजनाए पूर्णतया भारत सरकार के द्वारा चलाई जा रही है। समय समय पर इनमे

से कुछ को सामुदायिक विकास योजनाओं के लिये चुन लिया जाता है ताकि इन पर अधिक विस्तृत ढंग से विकास का कार्य हो सके।

प्रथम पचवर्षीय योजना के काल में कुल मिलाकर १२०० विकास खण्ड, ७०० सामुदायिक विकास तथा ५०० राष्ट्रीय प्रसार सेवा के अन्तर्गत चालू करने का लक्ष्य रक्खा गया था और इस पर ५७.८ करोड रुपया व्यय करने का अनुमान था। हर्ष का विषय है कि प्रथम पचवर्षीय योजना के यह लक्ष्य पूरी तरह प्राप्त कर लिए गये और देश की लगभग ¼ ग्रामीण जनता इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आ गई। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अर्थात् १९६०–६१ तक समस्त देश को राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड के आधीन विकसित करना है जिसमें से चालीस प्रतिशत विकास खण्डों को सामुदायिक विकास खण्डों में परिवर्तित कर दिया जाएगा। इस कार्य पर २०० करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है।

अबतक जो २१५२ विकास खड निर्धारित किये गये हैं और जिनपर विकास कार्य चल रहा है उनका विस्तृत ब्योरा निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है —

क्रम	खण्ड निर्धारित	खण्ड जिनपर कार्य हो रहा है	ग्राम जो इनके आधीन हैं	जनसख्या (लाखो म)
प्रगाढ विकास खण्ड				
१९५२—५३	२०६	२०६	७२८८	१६९
१९५४—५५	५६	५६	८ ८४	४२
१९५५—५६	१५१	१५२	२१४ =	१४२
१९५६—५७	२५०	२५०	३६०७३	१८६
१९५७—५८	१८६½	१८६½	२५५३०	११२
राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड				
१९५४—५५	१९½	१९½	२८९३	१८
१९५५—५८	१८७	१८७	२७ ९१	१३८
१९५६—५७	४९५	४९५	६६६११	३३३
१९५७—५८	५९७	५९७	६००८४	३७२
कुल योग	२१५२	२१५२	२७६०२६	१४९४

जून १९५७ के अन्त तक ११८९५७ ग्राम जिनकी जनसख्या लगभग ७ ३ करोड है सामुदायिक विकास कार्य क्रम के अन्तर्गत आ चुके हैं। दूसरी ओर १५७०६९ ग्राम जिनकी जन सख्या ८ ६ करोड है राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड की योजना के अन्तर्गत आ चुके है। दूसरी पचवर्षीय योजना के शेष वर्षों मे जो कार्य किया जायेगा उसका अनुमान इस तालिका से लगाया जा सकता है—

वर्ष	राष्ट्रीय प्रसार सेवा खंडो की संख्या	प्रसार सेवा खंड जो सामुदायिक विकास खंडो मे परिवर्तित किये जायेंगे
१९५८—५९	७५०	२६०
१९५९—६०	९००	३००
१९६०—६१	१०००	४६०

सामुदायिक विकास योजनाओ की वित्त व्यवस्था

इन योजनाओ के लिये धन जनता तथा सरकार दोनो के सहयोग से प्रदान होता है। प्रत्येक विकास क्षेत्र में जनता से द्रव्य, श्रम तथा वस्तुओ के रूप मे स्वेच्छा से साधन प्राप्त होते है। जो धन सरकार की ओर से व्यय किया जाता है उसे केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारे मिलकर प्रदान करती हैं। केन्द्रीय सरकार का व्यय कुल व्यय के आधे के बराबर होता है जब कि उसकी अधिकतम सीमा ६ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष तक हो सकती है।

इस कार्य क्रम के लिये अमेरिका से जो सहायता मिलती रही है उसका प्रयोग विदेशो से आवश्यक सामान आयात करने के लिये किया जाता है १९५२–५३ से १९५७–५८ तक १४ २७ मिलियन डालर की विदेशी सहायता की व्यवस्था की गई थी। जिसमे से १ दिसम्बर सन् १९५७ तक ११ ८० मिलियन डालर्स के मूल्य का सामान अमेरिका से मगा कर राज्य सरकारो को बाटा जा चुका है

सामुदायिक विकास योजनाओं की सफलता

विभिन्न क्षेत्रो मे सामुदायिक विकास योजनाओ के द्वारा जो लक्ष्य प्राप्त किये जा चुके हैं उनका अनुमान निम्नलिखित ब्योरे से स्पष्ट है —

(१) औद्योगिक बस्तियां — कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगो को प्रोत्साहन देने तथा उनके विकेन्द्रीयकरण के उद्देश्य से ६ बड़ी औद्योगिक बस्तियो तथा २० छोटी ग्रामीण औद्योगिक बस्तियो की स्थापना सामुदायिक विकास योजनाओ के अन्तर्गत की जा चुकी है।

(२) *ग्रामीण मकानों की व्यवस्था — ग्रामीण मकान बनाने की योजना के* प्रथम चरण म १०० योजनाओ पर कार्य आरम्भ किया गया जिसमे से प्रत्येक के लगभग पाच गाव हैं।

(३) सहकारी समितियां — सरकारी अधिकारियो के सहयोग से ५०००० *नई सहकारी समितियां स्थापित हो जा चुकी है जिनमे ३११ लाख नए सदस्य* भर्ती किय जा चुके हैं।

(४) रसायनिक खाद वितरण — कृषि उत्पादन मे वृद्धि के हेतु २०७१८ हजार टन रसायनिक खाद का वितरण किया गया जिसस उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है।

(५) अच्छे बीज का वितरण — रासायनिक खाद की भांति ही कृषि उत्पादन की वृद्धि अच्छे और सुधरे हुए बीज पर भी निर्भर होती है। इस उद्देश्य से सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ३० जून १९५७ तक १००३६ हजार टन अच्छे बीज का वितरण किया गया।

(६) फल और सब्जी के बाग लगाने का कार्य — सामुदायिक विकास कार्यक्रम में फल तथा सब्जी के नए बाग लगाने के कार्य को भी प्रोत्साहन दिया गया और १०२६ हजार एकड भूमि पर बाग लगाये गये।

(७) बंजर भूमि को खेती योग्य बनाने का कार्य — बंजर तथा अनुपजाऊ भूमि को खेती योग्य बनाने का कार्य भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। कारण यह है कि इसके बिना स्थाई रूप से कृषि उत्पादन में वृद्धि कर सकना सम्भव नहीं है। इसी लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम में २३२६ हजार एकड भूमि को खेती योग्य बनाया गया और ३८०७ हजार एकड अतिरिक्त भूमि पर सिचाई की सुविधायें प्रदान की गई।

(८) नालियों तथा सड़कों का निर्माण:— इस कार्यक्रम में ६१४० लम्बी पक्की सडकें, ५६००० मील लम्बी नई कच्ची सडकें, ५२००० मील लम्बी पुरानी सडकों की मरम्मत तथा १२१ लाख गज लम्बी नालियों का निर्माण किया गया। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात की सुविधाओं में वृद्धि हुई और ग्रामों की सफाई में सहायता मिली है।

(९) शिक्षा का प्रसार — सामुदायिक विकास कार्यक्रम में प्रौढ शिक्षा तथा बेसिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया है। २५ हजार नये स्कूलों की स्थापना हुई, १०३५५ स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित किया गया और ७० हजार प्रौढ शिक्षा केन्द्र खोले गये। इस सब कार्यक्रम से ग्रामीण जनता को पढने लिखने योग बनाने में विशेष योग मिला है।

इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्र, शिशु कल्याण केन्द्र, ग्रामीण शौचालय तथा कुए आदि में सुधार करके ग्रामीण स्वास्थ्य को सुधारने के प्रयत्न किए जा रहे हैं।

सामुदायिक विकास में जन सहयोग

जनता के सक्रिय सहयोग के बिना सामुदायिक विकास योजनाओं का सफल होना असम्भव है। सितम्बर १९५६ तक भूमि, नकद धन तथा श्रमदान के रूप में जनता से जो योग प्राप्त हुआ है उसका मूल्य ४.६ करोड रुपये लगाया गया है जबकि सरकार द्वारा कुल मिलाकर ७१.२ करोड रुपया व्यय किया गया इसका अर्थ यह हुआ कि सरकारी व्यय का ६१ प्रतिशत जनता के सहयोग द्वारा प्राप्त हुआ।

कर्मचारियों का प्रशिक्षण

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए भारी संख्या में शिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। इस बात को ध्यान में रखते हुये देश

मे ६८ प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं जिनमे ग्राम सेवको (Village level workers) को प्रशिक्षित किया जाता है। कृषि की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए ७८ प्रारम्भिक कृषि स्कूल तथा १८ कृषिक उद्योग शालाए स्थापित की गई हैं। ग्राम सेविकाओ के लिए २५ प्रशिक्षण केन्द्र हैं। अन्य उच्च कर्मचारियो के लिए प्रथक केन्द्रो की व्यवस्था है। इस प्रकार प्रशिक्षित कार्य-कर्ताओ के द्वारा देश क प्रत्येक ग्राम को स्थाई रूप से विकसित करने म सहायता मिलेगी।

उपसहार — सामुदायिक विकास योजनायें कृषि विकास जीवन स्तर सुधार, ग्रामो की सफाई शिक्षा का प्रबंध, ग्राम उद्योगो का विकास सडको का सुध र, मकानो की व्यवस्था तथा अन्य सभी प्रकार से ग्रामोत्थान के हतु बनाई गई हैं और आशा की जाती है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक समस्त देश के ग्रामो का इनसे लाभ प्राप्त होगा। कुछ आलोचको का ऐसा विचार है कि अभी भारत म इस प्रकार की योजनाओ के सफल होने योग्य वातावरण उत्पन्न नही हुआ है और इन योजनाओ मे धन के अपव्यय के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ नही है। सम्भवत ऐसे लोग भारत की वर्तमान आवश्यकताओ से अनभिज्ञ हैं। वर्तमान परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुए ही इस काय क्रम की आवश्यकता अनुभव की गई। यह वह काय-क्रम है जिसके द्वारा सहकारी आत्मनिर्भरता तथा स्थानीय प्रयत्न से ग्रामीण जनता सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकती है। योजना को सफल बनाने के लिए जनता का सहयोग वांछनीय है। बस यही सफलता का महान साधन है।

के सिद्धान्त पर खेती की व्यवस्था की जाये। भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति मे यह उपाय सुगम प्रतीत नही होता।

एक तरीका यह भी हो सकता है कि व्यक्तिगत भूसम्पत्ति को किसान स्वेच्छा से एकत्रित करके उसमे सहकारिता के आधार पर खेती की व्यवस्था करे। इसमे व्यक्तिगत भू सम्पत्ति भी बनी रहेगी और उद्देश्य की पूर्ति भी हो जावेगी। यह उपाय भारतीय परिस्थितियो के अनुकूल है और इस दिशा मे सरकार द्वारा प्रयत्न किये जा रहे है।

जिस प्रकार इटली मे सरकार ने धन देकर सभी पुरानी भूमियो को लेकर आर्थिक जोत का निर्माण किया वह रीति भारत मे भी अपनाई जा सकती है किन्तु इस कार्य के लिये इतने अधिक धन की आवश्यकता होगी कि सरकार सम्भवतया निकट भविष्य मे इतना धन उपलब्ध न कर सके। दूसरे इससे अन्य कई समस्याये भी उत्पन्न हो जायेंगी।

(२) आर्थिक जोतों की रक्षा— जो जोत इतने बडे हैं कि उन्हे आर्थिक जोत कहा जा सके अथवा जिनका निर्माण चकबन्दी के बाद हो उनकी रक्षा पुनः उपविभाजन एवं उपखण्डन से होनी चाहिये। ऐसा करने के लिये या तो उत्तराधिकार के कानूनो मे सुधार किया जाये और भूमि के बटवारे को रोका जाये या इस प्रकार की कानूनी व्यवस्था की जाये कि एक न्यूनतम सीमा से कम मात्रा की भूमि का विभाजन कानूनन अवैध होगा। यह उपाय अधिक सुगम है और विभिन्न राज्यो मे इस प्रकार की व्यवस्था की गई है अथवा की जा रही है। यह स्पष्ट है कि यदि आर्थिक जोतो की रक्षा नही की गई तो यह समस्या कभी हल नही होगी विशेष रूप मे भारत जैसे कृषि प्रधान देश मे जहाँ की जनसख्या तेजी से बढ रही है और जहा के अधिकतर लोग गाव मे रहते हैं और खेती पर निर्भर है।

चकबन्दी और उसकी प्रगति

भूमि की चकबन्दी का काय सहकारी समितियो की सहायता से प्रथम १६२०-२१ मे पजाब प्रान्त मे शुरू किया गया। १६३६ मे पजाब सरकार ने चकबन्दी कानून पास किया जिसके अनुसार चकबन्दी को अनिवार्य कर दिया गया। पजाब ने इस कार्य मे जो सफलता प्राप्त की उसे देखकर दिल्ली, उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्य-प्रदेश तथा अन्य राज्यो ने भी इस दिशा मे प्रयत्न किये और सहकारी चकबन्दी समितियो का निर्माण किया।

चकबन्दी के कार्य को शीघ्र समाप्त करने के लिये आजकल इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि सरकार कानून द्वारा अनिवार्य रूप से अपने विशिष्ट कर्मचारियो की सहायता से इस कार्य को करे। चकबन्दी के कार्य मे जो कठिनाइया उत्पन्न होती है वह इस प्रकार हैं —

(१ भूमि की भिन्नता—वर्षा, स्थिति, मिट्टी की बनावट, उपजाऊपन तथा सिंचाई की सुविधाओ की दृष्टि से सब भूमि एक समान नही होती और कोई व्यक्ति

अपने अच्छे खेत को छोड़कर दूसरे चक में घटिया भूमि लेना पसन्द नही करता ।

(२) किसानों की अज्ञानता—अभी तक किसान इतने अशिक्षित हैं कि वह चकबन्दी के लाभों को नहीं समझते और सरकार से सहयोग नहीं करते ।

(३) भूमि के स्वामित्व सम्बन्धी रिकार्ड की त्रुटियां—जमींदारी प्रथा के दिनों से पटवारी आदि के जो कागजात चले आ रहे हैं उनमें भूमि के स्वामित्व से सम्बन्धित अनेक गलतियां हैं और उनके खाने पूर्ण नहीं हैं । इन कागजात में आवश्यक सुधार किये बिना चकबन्दी का कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता ।

विभिन्न राज्यों में चकबन्दी की दिशा में हुई प्रगति:— प्रथम तथा दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं में भूमि की चकबन्दी के प्रश्न पर विशेष महत्व दिया गया है । कृषि उत्पादन में वृद्धि की समस्या के तात्कालिक महत्व को देखते हुये चकबन्दी के कार्य को शीघ्र अति शीघ्र समाप्त करने की आवश्यकता बहुत अधिक बढ़ गई है । योजना आयोग ने सिफारिश की है कि यह कार्य सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय प्रसार के कार्यक्रमों के अन्तर्गत किया जाय । इस कार्य के लिये पर्याप्त आर्थिक सहायता तथा परामर्श केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को प्रदान किया जा रहा है ।

प्रारम्भ में चकबन्दी का कार्य सहकारी समितियों के द्वारा स्वेच्छापूर्वक किया गया किन्तु इसकी प्रगति मन्द रही । बाद में सरकार द्वारा कुछ दबाव से कार्य किया गया । १९४७ में बम्बई राज्य ने चकबन्दी सम्बन्धी एक योजना बनाई इसके पश्चात् १९४८ में पंजाब तथा पेप्सू, १९५१ में उड़ीसा, १९५२ में उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश, १९५४ में राजस्थान, १९५ में पश्चिम बंगाल तथा १९५६ में बिहार और हैदराबाद सरकारों के द्वारा कार्य प्रारम्भ किया गया । विभिन्न राज्यों में १९५५–५६ तक जो प्रगति हुई है उसका अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है —

राज्य का नाम	चकबन्दी का क्षेत्रफल (लाख एकड़)	
	१९५५–५६ में	१९५५–५६ तक
बम्बई	६·८	२१ २
मध्य-प्रदेश	१ १	७८ ९
पञ्जाब	६ ५	४८ १
पेप्सू	५ ३	१३ ३
उत्तर-प्रदेश	—	४३ ९

उत्तर-प्रदेश में १९५५–५६ में पांच जिलों में से प्रत्येक की एक तहसील में चकबन्दी का कार्य शुरू किया गया । १९५५–५६ के अन्त तक २१ जिलों में एक-एक तहसील में चकबन्दी का कार्य चल रहा था । कुछ आवश्यक कठिनाइयों के कारण इस कार्य को तीव्र गति से समस्त जिलों में एक साथ लागू नहीं किया जा सकता किन्तु कृषि सुधार की अन्य योजनाओं के साथ इस कार्य पर भी पूरा जोर दिया जा रहा है ।

प्रश्न २४—उत्तर प्रदेश मे भूमि के उपविभाजन तथा उपविघटन की समस्या की सीमायें और स्वरूप क्या है ? इसके उपचार के लिए क्या प्रयत्न किए गए हैं तथा चकबन्दी का किसान की आर्थिक स्थिति पर क्या प्रभाव होगा ?
(लखनऊ १९४८)

What is the nature and extent of sub-division and fragmentation of holdings in U P. What steps have been taken to solve the problem ? What will be the influence of consolidation on the economic condition of the agriculturist ? *(Lucknow 1948)*

उत्तर प्रदेश में भूमि के उपविभाजन तथा उपखण्डन की समस्या

भारत के अन्य राज्यो की भांति उत्तर प्रदेश मे भी भूमि के उपविभाजन तथा उपखडन की समस्या एक विशाल रूप धारण किए हुए है। उत्तर प्रदेश मे भी इस समस्या के लगभग वे ही कारण है जो अन्य राज्यों मे हैं और जिनका उल्लेख हम एक अन्य प्रश्न का उत्तर देते समय कर चुके हैं। १९४० मे उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि उत्तर प्रदेश मे प्रति किसान औसत जोत का आकार ३.३६ एकड है जो आर्थिक जोत की दृष्टि से बहुत कम है। अखिल भारतीय कृषि मजदूर जाच समिति के अनुसार कुल क्षेत्रफल का ८३४ प्रतिशत भाग २५ एकड से कम के जोतो के रूप में पाया जाता है और ८८ प्रतिशत भाग २५ से ५० एकड तक के जोत के रूप मे पाया जाता है। शेष भाग ८० एकड से अधिक के जोतो के रूप मे है। योजना आयोग के अनुसार ८७ १ प्रतिशत क्षेत्रफल २५ एकड से कम के जोतो के रूप मे है और शेष १५ एकड से अधिक के आकार के जोतों के रूप मे है। इन दोनो साधनो स हमे जो आकडे उपलब्ध हुये हैं उनसे यह बात स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश की अधिकाश कृषि भूमि मे जोत आर्थिक जोत नही कहे जा सकते। एक दूसरी गणना के अनुसार इस राज्य मे २१ प्रतिशत किसानो के पास ५ एकड से भी कम भूमि है तथा ३८ प्रतिशत किसानो के पास भूमि की मात्रा १ एकड से भी कम है।

उपचार के लिए किए गए प्रयत्न

सहकारी समितियो द्वारा तथा स्वेच्छा से चकबन्दी का कार्य सन्तोष जनक प्रगति नही कर सका। १९३८ म उत्तर प्रदेश सरकार ने चकबन्दी सम्बन्धी एक कानून पास किया था। जिस पर कुछ कारणो वश कोई काम नही हो सका। चकबन्दी के कार्य मे सबसे बडी बाधा जमींदारी प्रथा की थी जिसके उन्मूलन के बिना चकबन्दी का कार्य हो सकना लगभग असम्भव था। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद उत्तरप्रदेश सरकार ने सर्व प्रथम जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया और उसके पश्चात् १९५३ मे उत्तरप्रदेश चकबन्दी कानून (U. P Consolidation of holdings Act) पास किया जो सरकार द्वारा नियुक्त चकबन्दी समिति के सुझावो पर आधारित था। यह कानून पजाब के चकबन्दी कानून स मिलता जुलता है क्योंकि पजाब म चकबन्दी के कार्य मे जो अनुभव प्राप्त हुए और जो सफलतायें मिली उनसे उत्तर प्रदेश सरकार ने भी प्रेरणा ली। इस कानून के अनुसार भूमि के टुकडो का ऐसा

ब्यौरा तैयार किया जाता है जिसमे भूमि की किस्म, उसका क्षेत्रफल, पिछले बन्दोबस्त के अनुसार लगान की दर तथा लगान का विवरण होता है। इसी प्रकार प्रत्येक किसान की भूमि उसकी किस्म, लगान फसल, तथा क्षेत्रफल आदि का ब्यौरा भी तैयार किया जाता है। इसके पश्चात् भूमि की किस्म तथा सिंचाई आदि की सुविधाओ के आधार पर भूमि के चक बनाये जाते हैं और प्रत्येक किसान को उसकी भूमि के बदले ऐसे चक मे भूमि दी जाती है जहा उसके अधिकाश खेत स्थित हो। यदि भूमि की किस्म की भिन्नता के कारण उसके मूल्य मे कुछ भिन्नता होती है और किसी किसान को बढिया भूमि के स्थान पर घटिया भूमि मिलती है तो उसे इसका मुआवजा दिया जाता है। साथ ही उसे अपनी भूमि के वृक्षो कुओ तथा मकानो का भी मुआवजा मिलता है। चकबन्दी का जो ब्यौरा तैयार किया जाता है उस पर किसान आपत्ति कर सकता है जिन पर मुकदमे के बाद जो अन्तिम फैसला होता है उसी के अनुसार अन्तिम रूप से चकबन्दी का ब्यौरा तैयार करके चकबन्दी योजना लागू कर दी जाती है और किसान अपनी नई भूमि के स्वामी बन जाते हैं। चकबन्दी की योजना के कारण कोई मुकदमा दीवानी अदालत मे दायर नही किया जा सकता। चकबन्दी के लिए ४ रुपये प्रति एकड का व्यय निश्चित किया गया है जो उन किसानो से लिया जाता है जिनकी भूमि की चकबन्दी की जा रही है। प्रारम्भ मे चकबन्दी का कार्य केवल जिलो की एक एक तहसील मे चालू किया गया था और इसकी सफलता के बाद धीरे २ अन्य जिलो मे चालू किया जा रहा है। सरकार का विचार सारे राज्य मे इस कार्य को ५ वर्ष के अन्दर समाप्त कर देने का है। किन्तु प्रशिक्षित तथा अनुभवशील अफसरो और कर्मचारियो की कमी के कारण कुछ बाधाये उत्पन्न हो रही है। मई १९५७ मे सरकार ने चकबन्दी कानून मे कुछ सशोधन किये हैं जिसके अनुसार किसानो की भूमि सन् ५३ के कानून के अनुसार चकबन्दी मे शामिल होगी। इसके अतिरिक्त चकबन्दी अफसरो को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे सयुक्त डीतो का स्वय विभाजन कर सके। इन सशोधनो से चकबन्दी का कार्य शीघ्र तथा सरलता पूर्वक हो सकेगा। इस समय विभिन्न जिलो की लगभग २६ तहसीलों में चकबन्दी कार्य चल रहा है। चकबन्दी के कार्य पर कुल १८ करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है।

चकबन्दी का किसानो की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव

किसानो की आर्थिक स्थिति के सुधार मे तथा भारतीय कृषि की स्थाई उन्नति के मार्ग मे दो बडी बाधाये थी—एक जमीदारी प्रथा तथा दूसरी भूमि के उप विभाजन तथा खण्डन के कारण। उत्तर प्रदेश सरकार ने जमीदारी उन्मूलन करके किसान को आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी और उन्नति के मार्ग पर बढने के नये अवसर उन्हे प्राप्त हो गये। दूसरी बाधा भूमि के उपविभाजन तथा उपखण्डन की थी जिसका उपचार चकबन्दी के द्वारा किया जा रहा है जिसका परिणाम यह होगा कि राजकीय ग्राम अर्थव्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होगे। सर्वप्रथम वे सभी दोष दूर हो जायेगे जो भूमि उपविभाजन और भूमि उपखण्डन के

द्वारा हो गये थे और जिनका उल्लेख हम एक अन्य प्रश्न के उत्तर में लिख चुके हैं। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी जिससे किसान की आर्थिक दशा में समुचित सुधार होगा और उसके रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठ सकेगा। आधुनिक ढंग के वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से खेती करने का कार्य सुगम हो जायगा। देश की पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार का जो कार्य शुरू किया गया है उसका पूरा २ लाभ किसान को प्राप्त हो सकेगा। सिंचाई की सुविधाएं, अच्छी खाद, अच्छा बीज तथा साख की व्यवस्था से किसान अपनी उपज को बढ़ाने में सफल होगा क्योंकि उसके सामने अब भूमि के छोटे होने तथा बिखरे होने की समस्या हो नहीं रहेगी।

सहकारी ढंग की खेती को प्रोत्साहन देना तथा ग्राम प्रबन्ध एवं पंचायत राज्य को भावी ग्राम अर्थ व्यवस्था का लक्ष्य मानकर जो उन्नति देश करना चाहता है उस ध्येय को पाने में विशेष सहायता मिलेगी। इस प्रकार भारतीय किसान के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर चकबन्दी और भूमि सुधार का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा।

प्रश्न २५—आर्थिक जोत से आप क्या समझते हैं? भारत में आर्थिक जोत के लिये क्या प्रयत्न किये जाने चाहिएं?

(पटना १९५१, राजपूताना १९५२, १९५६)

What is an Economic Holding? What measures should be taken in India to create Economic Holdings?

(Patna 51, Rajputana 52, 56)

आर्थिक जोत का अर्थ

आर्थिक जोत से हमारा अभिप्राय भूमि के उस खण्ड से है जिसका आकार बहुत छोटा न हो और जिसका स्वामी उस भूमि पर उचित ढंग से खेती कर सके। अभी तक हमारे देश में किसानों की जोत आर्थिक नहीं है। उदाहरणार्थ किसी राज्य में औसत जोत ०.५ एकड़ तथा किसी में ३.६, २.२ एकड़ तक है। कहने का अर्थ यह है कि अधिकतर राज्यों में औसत जोत ५ एकड़ से कम है जिसका परिणाम यह है कि किसान इतनी कम भूमि पर उचित ढंग से खेती नहीं कर सकता। न तो वह आधुनिक ढंग के वैज्ञानिक औजारों का प्रयोग कर सकता है, न अच्छी खाद दे सकता है और न उसके पास इतना धन उपलब्ध हो पाता है कि वह अपनी प्रति एकड़ उपज को बढ़ाकर अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सके।

हम आर्थिक जोत की चाहे जो भी परिभाषा दें हमें यह मानना पड़ेगा कि भारत में खेतों की अधिकांश संख्या ऐसे आकार की है जिसे आर्थिक जोत नहीं कहा जा सकता। देश की जनसंख्या तथा कुल भूमि की मात्रा को देखते हुये बड़े २ कृषि फार्मों का निर्माण भारत में नहीं हो सकता जैसा कि अमरीका, रूस तथा अन्य देशों में पाया जाता है। वास्तव में यहां समस्या इस बात की है कि भूमि का वितरण इस प्रकार से किया जाये कि अधिक से अधिक भूमिहीन किसानों को भूमि प्राप्त हो सके किन्तु इसके साथ २ यह भी देखना है कि भूमि की जोत आर्थिक हो।

खेत के किस आकार को आर्थिक जोत माना जा सकता है, यह कई बातों पर निर्भर है। उदाहरण के लिए वैज्ञानिक ढंग की खेती के लिये जिसमें सब काम मशीनों से होता है जोत का आकार कम से कम ९०० एकड होना चाहिये। पुराने ढंग की खेती के लिए ७ एकड से २५ एकड की भूमि को आर्थिक जोत कहा जा सकता है। इसी प्रकार यदि कृषि का संगठन सहकारिता के आधार पर अथवा सामूहिक ढंग से किया जाता है तो जितने बड़े आकार की जोत होगी उतना ही अधिक आर्थिक लाभ होगा। यदि व्यक्तिगत रूप से खेती की जाय तो एक परिवार को एक अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिये १५ या २० एकड भूमि भी पर्याप्त है। कुछ राज्यों में तो ५ से १० एकड भूमि तक को भी आर्थिक जोत कहा जा सकता है। कांग्रेस भूमि सुधार कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि आर्थिक जोत इतनी अवश्य होनी चाहिये कि उससे उचित जीवन स्तर प्राप्त हो सके और एक साधारण आकार वाले परिवार को पूरा रोजगार मिल सके। इस रिपोर्ट में आर्थिक आधार की अपेक्षा सामाजिक आधार पर छोटी जोत की सिफारिश की गई है जिसको आधारभूत जोत कहा गया है और इस बात का सुझाव दिया गया है कि बहुउद्देशीय सहकारी समितियों की सहायता से व्यक्तिगत खेती को प्रोत्साहन दिया जाये।

उक्त कमेटी की राय में भूमि की जोत की एक उच्चतम सीमा भी निश्चित होनी चाहिये क्योंकि बहुत बड़े आकार की जोत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रतीक है जिससे शोषण बढ़ता है सामाजिक न्याय नहीं होता और अन्य बुराइयां उत्पन्न होती हैं। इसलिये कमेटी का सुझाव है कि भूमि की उच्चतम जोत का आकार आर्थिक जोत के आकार से ३ गुने से अधिक नहीं होना चाहिये। जमींदारी उन्मूलन कानून में भी जोत के अधिकतम आकार को निश्चित करने का प्रस्ताव किया गया है।

भूमि सुधार कमेटी द्वारा किसी परिवार के लिये जोत का क्षेत्रफल इस प्रकार का बताया गया है जिससे प्रतिवर्ष १६०० रुपये के औसत मूल्य का उत्पादन हो सके अथवा परिवार को मजदूरी के खर्च सहित १००० रुपये वार्षिक बच सकें।

आर्थिक जोत का निर्माण

आर्थिक जोत के निर्माण के लिये जो प्रयत्न किये गये हैं उनमें से कुछ ऐसे सुझावों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं जो कांग्रेस भूमि सुधार कमेटी द्वारा प्रस्तुत किए गये हैं। योजना आयोग ने दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी इस बात पर जोर दिया है कि सारे देश में कृषि भूमि के लिए जोत की एक उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाए जो सारे देश पर लागू हो। व्यक्तिगत जोतों की अपेक्षा पारिवारिक जोतों का निर्माण किया जाये जिनका आकार आर्थिक हो और ५ व्यक्तियों वाले एक औसत परिवार के लिए पर्याप्त हो। भारत सरकार ने १९५५ में एक आदेश जारी किया जिसके द्वारा विभिन्न राज्यों में पाये जाने वाले भूमि के जोतों की गणना की जा रही है। इस गणना के बाद सरकार के पास जो आंकड़े तथा अन्य सामग्री उपलब्ध होगी उसके आधार पर भारत सरकार आर्थिक जोत का आकार, उसकी न्यूनतम सीमा तथा उच्चतम सीमा को निर्धारित करने में सफल होगी और इस सम्बन्ध

मे आवश्यक कानून पास किया जा सकेगा।

यह स्पष्ट है कि स्वेच्छापूर्वक आर्थिक जोतो का निर्माण नही किया जा सकता। साथ ही सब राज्यो के लिये एक समान आकार के जोतो को आर्थिक जोत घोषित नही किया जा सकता। सरकार को यह देखना होगा कि किस राज्य मे कौन कौन सी मुख्य फसलें उत्पन्न होती है तथा उनके लिए कितनी भूमि की जोत उचित है तथा सिंचाई की सुविधाए किस सीमा तक और किस रूप मे उपलब्ध है तथा उपजाऊपन की दृष्टि से भूमि किस प्रकार की है। उदाहरण के लिये बजर जमीन जिसमे सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था न हो बडे आकार की भूमि को आर्थिक जोत कहा जायेगा किन्तु सिंचाई की सुविधाओ और उपजाऊ भूमि के छोटे प्रकार के जोत भी आर्थिक जोत हो सकते है।

आर्थिक जोत के निर्माण के लिए स्वेच्छापूर्वक अथवा कानून के द्वारा चकबन्दी कराने के प्रयत्न किये जा रहे हैं और विभिन्न राज्यो म इस दिशा म काफी प्रगति भी हुई है। एक बार छोटे छोटे खेतो को समाप्त करके बडे आकार क जोत का निर्माण हो जाने के पश्चात् सरकार को यह सोचना होगा कि आर्थिक आधार पर किसी किसान तथा उसके परिवार के पास कम से कम और अधिक से अधिक कितनी भूमि का होना आवश्यक है। जिन लोगो के पास आवश्यकता से अधिक भूमि होगी वह सरकार द्वारा उनसे लेकर भूमिहीन लोगो मे बाट दी जायेगी। भूदान आन्दोलन से भी इस कार्य मे काफी सहायता मिली है। जिन लोगो के पास आर्थिक जोत से कम भूमि है उन्हे और अधिक भूमि देने का प्रयत्न किया जायेगा जिसस एक परिवार का सुगमतापूर्वक जीविकोपार्जन हो सके।

हम इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि प्रथम पचवर्षीय योजना म इस बात का प्रयत्न किया गया है कि कोई व्यक्ति अथवा परिवार और अधिक भूमि प्राप्त न करने पाये। कुछ राज्यो ने मौजूदा भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने का काम भी किया है। दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि म जोत की अधिकतम सीमा निर्धारित करने का कार्य किया जायेगा। यह विचार प्रकट किया गया है कि एक परिवार के लिये आर्थिक जोत की तीन गुनी भूमि को अधिकतम सीमा माना जाए। परिवार के लिए आर्थिक जोत निर्धारित करने के दो आधार हो सकते हैं—

(१) एक परिवार कितनी भूमि पर खेती करे।

(२) जोत से औसत आमदनी क्या हो? यह दोनो कार्य कठिन है इसलिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त करने का परामर्श दिया गया है।

चकबन्दी की दिशा मे जो प्रगति हुई है वह पर्याप्त नही है और इस क्षेत्र म काफी कार्य करना अभी बाकी है। यह भी विचार प्रकट किया गया है कि शुरू म भूमि प्रबन्ध कानून कुछ चुने हुए राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डो तथा सामुदायिक विकास योजना क्षेत्रो मे लागू किया जाये।

———

अध्याय ७

कृषि पदार्थों की बिक्री

प्रश्न २६— भारतीय कृषि बिक्री प्रथा के दोषों का उल्लेख कीजिए। इसमें सुधार के लिए आपके क्या सुझाव हैं। (आगरा १९५६, ५४; इलाहाबाद ५३,४८)

Point out the main defects in the marketing of Agricultural Produce in India ? Give your suggestions for improvement

(Agra 56, 54, Allahabad 53, 48)

उत्तरः— प्राचीन समय में ग्रामीण अर्थ व्यवस्था स्वावलम्बी थी। जो कुछ पैदा होता था सारा का सारा गाँवों में ही खप जाता था। बिक्री की कोई समस्या नहीं थी। किंतु आधुनिक युग में स्थिति बदल चुकी है और आज भारत के सामने ग्रामीण माल की बिक्री की समस्या विकराल रूप धारण किये हुये है। कृषि शाही आयोग ने १९२८ में बताया था कि "जब तक खेत की उपज की बिक्री की समस्या को पूर्णतया हल नहीं किया जाता तब तक कृषि समस्या का हल अधूरा ही है।" व्यापारी एवं दलाल प्रायः काफी लाभ कमाते हैं और उसका भार किसान तथा उपभोग करने वाले पर पड़ता है। किसान की अज्ञानता, रूढ़ि वादिता, पूँजी का अभाव, यातायात के साधनों में कमी आदि ऐसी बहुत सी बाधाएं हैं जिनसे किसान को हानि उठानी पड़ती है। वर्तमान समय में बिक्री की प्रथा के बहुत से दोष हैं अतः उन पर हमको विचार करना है।

बिक्री प्रथा के दोष

ग्रामीण कृषि पदार्थों की बिक्री में बहुत से दोष हैं जिनके कारण किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिल पाताः—

(१) उपयुक्त संगठन का अभाव — किसानों में आपस में संगठन का अभाव रहता है जबकि खरीदार पूर्ण रूप से संगठित होते हैं। खेती की पैदावार लाखों छोटे छोटे किसानों द्वारा थोड़ी २ मात्रा में मण्डियों तक लाई जाती है। संगठन के अभाव से किसान बुरी तरह ठगा जाता है।

(२) माल की निम्न कोटि — कृषकों की उपज की किस्म उत्तम नहीं होती जिसके कई कारण हैं। किसान बेपरवाही से बीजों को चुनते हैं। रोग, महामारी, सूखा, फसल काटने का पुराना तरीका गोदामों का अभाव, जान बूझकर मिलावट करना, वर्गीकरण का अभाव आदि कारणों से उत्पन्न फसल निम्न कोटि की होती है। भारतीय किसान अनाज को साफ सुरक्षित एवं आकर्षक बनाये रखने के महत्व से अन-

भिज्ञ है जिसके कारण अपने उत्पन्न किये हुए पदार्थों की श्रेष्ठता के विषय मे उदासीन या अनभिज्ञ रहने से उन्हे पर्याप्त मूल्य प्राप्त नही होता।

(३) **मध्यस्थों की अधिकता** — भारतीय ग्रामीण विपणन मे बहुत अधिक मध्यस्थो का होना एक अत्यंत गम्भीर दोष है। कृषकों को अपनी फसल पैदा करने के समय से बेचने के समय तक बहुत से मध्यस्थो से काम पडता है जिसमे उसे काफी हानि होती है। यदि किसान अपनी फसल को मन्डियो मे बचना चाहे तो उसके बीच मे दलाल, आढतियों, महाजन, सरकार का आ जाना एक छोटी सी बात है। मध्यस्थो की यह बात कृषक को मिलने वाली आय मे काफी कमी कर देती है। अशिक्षा के कारण वे इन सब चतुराइयों को भली प्रकार समझने मे असमर्थ रहते हैं। भारत सरकार के द्वारा किये गये पर्यवेक्षण के फलस्वरूप ज्ञात हुआ है कि चावलो की बिक्री मे किसानों को एक रुपये के माल के बदले मे सवा आठ आने तथा गेहू की बिक्री मे पौने दस आने मिलते हैं। ऐसी हालत मे हम कल्पना कर सकते है कि किसानो को अपने माल का कितना उचित मूल्य मिलता है।

(४) **मंडी की लागत और अधिकार** — किसान को अपनी फसल आढतियो के हाथ बेचते समय बहुत से कर देने पडते हैं। जैसे तोलने वाले की मजदूरी, पल्लेदार का व्यय आदि इसके अतिरिक्त मन्डियो मे बहुत सी संस्थाएं होती हैं चौकीदार, भंगी, ब्राह्मण इत्यादि। धर्म के नाम पर मन्दिरो के लिए भी कर किसानों से लिया जाता है। नमूने के रूप मे माल लेकर उसका न तो वापिस ही किया जाता है और न ही उसका मूल्य चुकाया जाता है। शाही कृषि आयोग ने १६२८ मे बताया था कि खान देश मे कपास की बिक्री के समय प्रति गाडी के पीछे ५ या ८ सेर तक रुई नमूने के रूप मे ले ली जाती है।

(५) **तोल तथा बाटो मे भिन्नता** भारत म बाटो की भिन्नता अधिक पाई जाती है। कानपुर मे कपास के लिये ०३ पौंड का मन पाया जाता है यही नही बाट लकडी, पत्थर लोहे आदि के टुकडे के होते हैं। बाटो म गलत होने के साथ साथ यह भी पाया जाता है कि व्यापारी खरीदने और बेचने के म ग २ बाटो का प्रयोग करते हैं।

(६) **श्रेणी विभाजन का अभाव**:— भारत मे फसल का विभाजन न होकर अच्छी बुरी फसल ढेर मे मिलाकर बेची जाती है इसका बुरा प्रभाव उन पर पडता है जिनकी फसल अच्छी होती है क्योकि उनके फसल की कीमत भी खराब फसल से तें की जाती है। बाजार मे वस्तुओ के श्रेणीपन के अभाव से किसानो को हानि उठानी पडती है। आज भी रुई मे कई प्रकार की मिलावट तथा पानी के छीटे लगा कर कपास को गीला किया जाता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे भारत को कृषि वस्तु का मूल्य बहुत कम मिलता है।

(७) **यातायात के साधनों का अभाव एव असुविधाजनक** — गाव स मन्डी तक फसल ले जाने के लिए उत्तम सडको का अभाव है अत कृषि उत्पादन से यातायात मे बहुत असुविधा होती है। सडको के अभाव मे मन्डी तक उपज ले जाने म

व्यय अधिक तथा पशुओ को अधिक कष्ट होता है। अनुमान लगाया गया है कि माल ढाने का खर्चा किसान को मिले मूल्य का ७० प्रतिशत तक होता है। उपज की उचित बिक्री के लिए यातायात में उन्नति करना परमावश्यक है जिससे ट्रको आदि का आना जाना हो सके। रेलो की अधिकता से भी इस समस्या का समाधान हो सकता है।

(८) मूल्य परिवर्तन की सूचनाओ को दुर्बलता—किसानों की अपेक्षा व्यापारियो को दूर २ के भी बाजार भाव ज्ञात होते हैं। किसान अनपढ़ होने के कारण इस क्षेत्र से अनभिज्ञ होता है। ऐसी दशा मे महाजनो द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही अपनी फसल बेच देनी पडती है। जो मूल्य राजकीय पत्रो मे प्रकाशित होते हैं उनका समझना अशिक्षित किसान के लिए असम्भव है और किसान की अज्ञानता का महाजन पूरा २ लाभ उठाते हैं।

(९) फसल को सुरक्षित रखने के साधनो का अभाव—गाँव मे फसल को संग्रह करने के लिये भूमि में गड्ढ या मिट्टी की कोठिया जिन्हे कुजर-ठेका कहते हैं काम मे लाई जाती हैं यह सब मिट्टी की बनी होती है इसलिए सील, कीडे मकौडे द्वारा बहुत सी फसल नष्ट हो जाती है। अनुमान लगाया जाता है कि ३ लाख टन गेहूं गाव में इस प्रकार के संग्रह से नष्ट हो जाता है जिसका मुख्य कारण गोदाम की कमी है।

कृषि उत्पादन विपणन मे सुधार के सुझाव

उपरोक्त कथन के अनुसार इससे पता चलता है कि बिक्री की समस्या कितनी जटिल है। जब तक इस समस्या का समाधान नही किया जायेगा तब तक किसानो की आर्थिक हालत नही सुधर सकती है। इसके लिए निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं—

(१) नियन्त्रित मंडियों की स्थापना—इस प्रकार की मण्डियो का जन्म सर्व प्रथम बरार में हुआ परन्तु वहा इससे कोई विशेष लाभ प्राप्त नही हुआ। इसके बाद मध्यप्रदेश, मद्रास हैदराबाद, मैसूर राज्यो ने इस प्रणाली को अपनाया। इन मंडियो की कुछ विशेषतायें भी हैं—(अ) प्रत्येक मन्डी में क्रेता और विक्रेताओ के प्रतिनिधियो की एक समिति होती है। इनका कार्य होता है कि बाजार मे किसी प्रकार की बेइमानी ना हो। यही समिति तौल, माप तथा कटौतियो पर कड़ी दृष्टि रखती है और कृषको को सब प्रकार की सुविधायें पहुचाकर उनको दलालो से बचाना। (ब) प्रत्येक मंडी के दलालो, मध्यस्थो की समिति द्वारा रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक होता है ताकि वह किसी अनुचित कार्य पर दण्ड दिया जा सके। (स) समितियां मन्डी के झगडो का निपटारा करने का कार्य भी करती हैं।

किन्तु भारत में नियन्त्रित मण्डियो से पूरा लाभ नही उठाया जा सका है क्योंकि इसके सफल न होने में बडे बडे व्यापारियो का हाथ रहता है। दूसरे जनता अभी इनके महत्त्व तथा उपयोगिता को भली भांति समझने मे असफल रही है।

(२) तौल और बाटो मे सुधार करना—भिन्न भिन्न स्थानो पर तौलने

के बाँट भिन्न हैं तथा व्यापारी मोल लेते समय दूसरे बाटो से तोलता है और बेचते समय वह दूसरे बाटो का प्रयोग करता है। हमारी राष्ट्रीय सरकार को सभी राज्यो पर कानून द्वारा इस पर नियन्त्रण रखना चाहिये।

(३) कृषि उत्पादन का श्रेणीयन करना—जैसा कि ऊपर कहा गया था कि कृषि उत्पादन को श्रेणी मे नही बाटा जाता जिससे ईमानदार कृषको को काफी हानि होनी है। अत कृषि उत्पादन अधिनियम पास किया गया था जिसने इस क्षेत्र में काफी सफलता प्राप्त की। इस अधिनियम के अनुसार विश्वस्त व्यापारियों को लाइसेन्स देकर उनको यह अधिकार दिया जाता है कि वह सरकारी मार्केटिंग कर्मचारियो के निरीक्षण में कृषि उत्पादनो का वर्गीकरण करें। तब ऐसे उत्पादन (एगमार्क) को केवल बाजार में बिकने को भेज दिया जाता है। इसके विकास से भारत को काफी लाभ होगा।

(४) बाजार भावो की सूचना सम्बन्धी योजनायें—शाही कृषि आयोग और केन्द्रीय बिक्री विभाग के भिन्न २ अनुसन्धानो ने यह अनुभव किया कि सभी मण्डियो मे भावो की दरो में सामजस्य नही है। इसीलिए भारत के सभी रेडियो स्टेशन से भिन्न वस्तुयो के दाम प्रसारित किये जाते है। दूसरे समाचार पत्रो में भी इनको प्रकाशित किया जाता है जिनमे अभी अधिक कृषको को तो नही लाभ पहुचा है परन्तु आशा की जाती है कि इनसे भावो का ज्ञान किसानो को भली प्रकार हो जायेगा।

(५) गोदामों की सुविधायें—गोदामो के न होने से जो हानि होनी है उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसलिये गाँवो अथवा मडियो मे उत्तम प्रकार के गोदाम बनाना बहुत आवश्यक है। यह गोदाम व्यक्तिगत संस्थाओ द्वारा बनवाने चाहिए या सरकार ऋण देकर इस कार्य को पूर्ण कराये इसकी सुविधाओ के प्राप्त होने से देश एव कृषक दोनों को ही लाभ होगा।

(६) यातायात के साधनो का पर्याप्त विकास—फसल को मण्डियो तक ले जाने के लिए यातायात के साधनो की उन्नति करना परम आवश्यक है। इसलिये राजकीय और केन्द्रीय सरकारो को गाव मे मण्डी तक पक्की सडको का निर्माण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसानो को गाडियो मे रबड के पहिए लगाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। इसी प्रकार रेल और जहाजी कम्पनियो द्वारा लिए जाने वाले भाडे मे समानता होनी चाहिए तथा शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओ के यातायात के लिये रेलों में विशेष प्रकार का प्रबन्ध होना चाहिए। हमारी भारत सरकार इस ओर काफी ध्यान दे रही है और प्रयत्नशील भी है।

(७) सहकारी समितियों द्वारा वस्तु विक्रय—इस प्रकार की समितियो की स्थापना बुराइयो को दूर करने के हेतु की जानी चाहिए जिनके कार्य निम्नलिखित होने चाहिए। (अ) कृषि उत्पादनो को खरीदने और बेचने का कार्य। (ब) कृषि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के उत्पादन और विक्रय का कार्य। (स) माल को लेकर वर्गीकरण तथा प्रमाणीकरण करना आदि (द) गोदामो आदि का निर्माण करना। इन समि

तियों के विकास में अनेक कठिनाइयां हैं। निजी व्यापारी वर्ग इसका विरोधी है और इन्हें असफल बनाने की हर प्रकार से चेष्टा करता है।

प्रश्न २७—भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में सहकारी बिक्री प्रथा का क्या महत्व है ? इस प्रथा को फैलाने और अधिक सफल बनाने में क्या कठिनाइयां हैं ? उनको दूर करने के उपाय बताइये। (आगरा ५७, लखनऊ ४८)

What is the significance of co-operative Marketing in our rural economy ? What are difficulties in making it more successful and popular. Give your suggestions to remove these difficulties. *(Agra 57, Lucknow 48)*

उत्तर—वर्तमान कृषि विपणन प्रणाली की सभी बुराइयों के लिए एक मात्र औषधि सहकारी बिक्री है क्योंकि उत्पादक अलग अलग अपना सामान बेचते हैं तो उन्हें अपने माल का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। यदि उत्पादन कर्ता सहकारी समिति द्वारा सामूहिक रूप से विपणन करें तो बहुत से लाभ प्राप्त कर सकते हैं और समस्त शोषणों से बच सकते हैं। इस सम्बन्ध में शाही कृषि आयोग ने लिखा है कि अलग अलग बिक्री करने की अपेक्षा सहकारी बिक्री अधिक कुशल होती है। और मुख्य रूप से उन दशाओं में जो भारत में पाई जाती हैं इसलिए यहां सहकारी बिक्री समितियां स्थापित होनी चाहियें जो अधिक मात्रा में उपज एकत्रित कराके श्रेणी विभाजन योग्य बनायें। ऐसी समितियां उत्पादकों को भारतीय उपभोक्ताओं और विदेशी बाजारों के सम्पर्क में लायेंगी। बहुउद्देशीय सहकारी योजनाओं से भी विक्रय में काफी सहयोग मिलता है अतः इनका बहुत अधिक महत्व है।

इस महत्व को ध्यान में रखते हुए ही प्रारम्भिक समितियों के ऊपर केन्द्रीय विक्रय संघ की स्थापना की गई है जो कृषि उत्पत्ति व अन्य वस्तुओं का क्रय विक्रय करते हैं। सबसे ऊपर प्रदेशीय बिक्री संघों की स्थापना की गई है जो स्वयं भी क्रय विक्रय करते हैं तथा राज्य भर के केन्द्रीय संघों और प्रारम्भिक समितियों को ऋण देते हैं तथा अन्य प्रकार की भी सहायता देते हैं और उन पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं।

सहकारी वितरण से बहुत से लाभ हैं। एक तो इन समितियों के स्थापित होने से उत्पादक और उपभोक्ता के बीच के सारे मध्यस्थ समाप्त हो जाते हैं। किसान अपना माल सामूहिक रूप से बेचकर बहुत सी किफायत कर लेते हैं। समितियों द्वारा माल के श्रेणीकरण व प्रमाणीकरण करने से उपभोक्ता को भी अधिक लाभ होता है। यातायात की सुविधाएं प्राप्त होंगी। माल समितियों द्वारा खरीद लिया जाने से उसे अनुकूल समय पर बेचा जाता है। इससे किसान को अपनी उपज का उचित मूल्य मिलता है। सहकारी बिक्री समितियां पर्याप्त विज्ञापन एवं प्रचार भी कर सकती हैं जो किसान के लिये असम्भव है। अनियमित कटौतियां भी समाप्त हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त सहकारी बिक्री समितियां माल को सुरक्षित रखने के लिये अपने गोदाम का भी निर्माण करा सकती हैं जो किसान नहीं

बना सकता। इसके अतिरिक्त जो इन समितियों का महत्व बढाता है वह व्यर्थ है। ऋण देना जिसके द्वारा किसान अपनी आवश्यकता की पूर्ति करके अपने माल को अधिक समय तक रोकने मे समर्थ हो सकता है और साथ ही महाजन के चगुल से भी बच सकता है। इसके अतिरिक्त समय समय पर उन्हे उचित सलाह देकर व्यापारियो की धोखेबाजी से भी बचाती हैं। समितियो द्वारा उत्पादको की माल बेचने की शक्ति तथा समय की काफी बचत हो जाती है।

वस्तुत सहकारिता बिक्री के इन लाभो एव महत्व को सभी सभ्य सरकारो ने माना एव समझा है और प्रत्येक देश में इन्होने पर्याप्त और सराहनीय कार्य किया है। उपरोक्त विवरण के महत्व को समझते हुये बम्बई, गुजरात, खानदेश आदि स्थानो पर इनकी स्थापना की गई और इनको अपने कार्य मे विशेष सफलता प्राप्त भी हुई। बम्बई राज्य मे तम्बाकू, फल, शाक, लाल मिर्च, चावल तथा प्याज इत्यादि की बिक्री के लिये भी सहकारी विपणन समितियो की स्थापना की गई। पजाब, मद्रास मे भी इस आन्दोलन ने सराहनीय कार्य किया है। उत्तर प्रदेश एव बिहार राज्य ने भी इनके महत्व को भली भाति समझा है और अपने यहा गन्नो की बिक्री के लिए सहकारी समितियो की स्थापना की है। उत्तर प्रदेश में १० वर्षों में लगभग १६००० गन्ना सहकारी समितिया स्थापित हो चुकी हैं। अतएव उपरोक्त विवरण से इसकी महत्ता पर पूर्ण प्रकाश पडता है। पर इसकी प्रगति में कुछ कठिनाइया हैं।

सहकारी बिक्री प्रथा की सफलता में कठिनाइया—भारत में कृषि पदार्थों की बिक्री की समस्या का एकमात्र सुगम उपाय सहकारी बिक्री प्रथा ही हो सकती है किन्तु सहकारी बिक्री प्रथा की सफलता तथा लोकप्रियता में अनेक बाधाए हैं। निम्नलिखित विवेचन में हम इन्ही कठिनाइयो का उल्लेख करेंगे :—

(१) दोषपूर्ण साख व्यवस्था—सहकारी बिक्री प्रथा की असफलता का एक मुख्य कारण हमारी दोषपूर्ण ग्रामीण वित्त व्यवस्था है। भारतीय किसान को आज भी अपनी साख सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए गाव के महाजन अथवा आढतिए पर बहुत कुछ निर्भर रहना पडता है। इसका परिणाम यह होता है कि फसल की बिक्री के विषय में भी किसान को उन्ही पर निर्भर होना पडता है। वह इच्छा रखते हुये भी सहकारी बिक्री समिति की सेवाओं का लाभ नही उठा सकता।

(२) गोदामों की सुविधाओं का अभाव—ना तो किसान के पास न तो अनाज को सग्रह करके रखने के लिये निजी साधन हैं और न उसमें अधिक समय तक अनाज को रोके रखने की क्षमता है। सरकार द्वारा भी गोदामों आदि की पूरी तरह से व्यवस्था अभी तक नहीं की जा सकी है। रुपये की आवश्यकता तथा सग्रह करने की सुविधाओं के अभाव में किसान को विवश होकर अपनी फसल शीघ्र अति शीघ्र बनिये अथवा मडी मे आढतिये के हाथ बेचनी पडती है जो उसकी विवशता का पूरा २ लाभ उठाता है।

(३) फसल को श्रेणियों में छाटने की कठिनाई—किसान अपनी फसल का अच्छा से अच्छा मूल्य तभी प्राप्त कर सकता है जब उसकी फसल को उचित

ढग से छानबीन कर साफ किया गया हो और उसे श्रेणियो के अनुसार छाट दिया जाए। छान बीन कर साफ करने तथा वैज्ञानिक ढग से फसल की श्रेणिया बनाने की विधि का भारत में समुचित रूप से विकास नही हुआ है और न ही यह सुविधायें व्यापक रूप से भारतीय किसान को उपलब्ध है। इसलिये फसल की बिक्री की व्यवस्था मे सुधार नही हो सकता और सहकारी बिक्री प्रथा पूर्ण रूप से सफल नही हो पाती।

(४) **कर्मचारियो में शिक्षा, अनुभव, टैक्नोकल ज्ञान तथा सच्चाई का अभाव**.—सहकारी बिक्री समितियो की असफलता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इनके कार्यकर्ता तथा कर्मचारी न तो भली भांति शिक्षित होते हैं और न उन्हे सहकारी पद्धति का विशेष अनुभव होता है इसके अतिरिक्त बहुधा उनमे सच्चाई और ईमानदारी का भी अभाव देखने को मिलता है।

(५) **निजी व्यापारी वर्ग की विरोधपूर्ण नीति**—लगभग सभी स्थानो पर फसल तथा अनाज की मण्डियो मे काम करने वाला निजी व्यापारी वर्ग सहकारी बिक्री प्रथा का स्वागत नही करता वरन् उसका विरोध करता है और हर भांति उसे असफल बनाने की चेष्टा करता है क्योकि सहकारी बिक्री प्रथा की सफलता से उसे मनमानी करने के अवसर नही मिल सकते।

सहकारी बिक्री प्रथा को सफल बनाने की दिशा में सरकार द्वारा उठाये गये कदम:—रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने जो अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (All India Rural Credit Survey) का आयोजन किया था उसकी रिपोर्ट मे सहकारी बिक्री प्रथा को सफल बनाने के विषय में कुछ महत्त्व पूर्ण सुझाव दिये गये हैं। भारत सरकार ने उन्ही सुझावो के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। इन सुझावो मे से निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं:—

(१) सहकारी विकास की एक ऐसी योजना बनाना जिसमें साख, फसल की बिक्री, उसकी सफाई तथा छाट और गोदामो की सुविधाए एक ही योजना के अन्तर्गत आ जायें और सम्बन्धित विषयो के रूप में उनपर कार्य किया जा सके।

(२) **कृषि साख को फसल की बिक्री से सम्बन्धित करना**.—इसका अर्थ यह है कि किसान अपनी फसल के बदले सहकारी साख समिति से ऋण प्राप्त कर सके अथवा अपनी फसल सहकारी समिति को बिक्री के हेतु सुपुर्द करदे जो उसकी बिक्री की व्यवस्था करके उस में से किसान के ऋण का भुगतान कराने के बाद शेष धन किसान को दे दे। इस प्रकार फसल को बिक्री के लिये किसान को महाजन अथवा आढती पर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नही होगी।

(३) **फसल की सफाई तथा छानबीन का सहकारी ढग से विकास**—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है फसल को वैज्ञानिक ढग से साफ करके तथा उसकी श्रेणिया (Grading) बना देने से फसल को अच्छे दामो पर बेचने मे सुविधा मिलती है। यह कार्य किसान स्वय नही कर सकता। या तो सरकार इसे अपने हाथ में ले अथवा सहकारिता के आधार पर इसका विकास किया जाय। यही

लिया है किन्तु सरकार इतना अधिक धन नही प्रदान कर सकती कि सारा कार्य उसी के सहारे चल सके। किसान को पूरी तरह सरकारी सहायता पर निर्भर रहने की अपेक्षा आत्म निर्भर होना पडेगा। जब तक सहकारी समितियां अपने निजी साधनों से पूंजी उपलब्ध नही करती उस समय तक समस्या का स्थायी तथा वास्तविक समाधान नही हो सकता। किसानो को अपनी बचत तथा पूंजी को सहकारी समितियो मे लगाने की प्रेरणा मिलनी चाहिए और उनमे ऐसा विश्वास उत्पन्न कर देना चाहिए कि वे सहकारी समिति को सरकार का बैंक न समझकर अपना बैंक समझें जिसके वे स्वय सचालक तथा हिस्सेदार हो।

अन्त मे हम यह कह सकते हैं कि भारतीय किसान की आर्थिक समस्याओं का एक मात्र समाधान फसल की बिक्री प्रथा मे सुधार के द्वारा ही हो सकता है जिससे किसान को अपनी फसल का पूरा मूल्य मिल सके और इसके लिए सहकारी बिक्री प्रथा ही सर्वोत्तम है।

— — –

आंध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर तथा केरल राज्य को मिलाकर एक चावल वाला क्षेत्र बना दिया गया है।

अनाज जाच समिति (Food grains Enquiry Committee)—२४ जून १९५७ को भारत सरकार ने अनाज जाच समिति की नियुक्ति की जिसका कार्य उन उपायो की खोज करना था जिनके द्वारा अनाज के मूल्यो को होने वाली वृद्धि को रोकना, अनाज के सट्टे को रोकना तथा इस समस्या का स्थाई समाधान बताना था। समिति ने अपनी रिपोर्ट १९ नवम्बर १९५७ को प्रकाशित की। इसके सुझावो आदि के लिये प्रश्न २९ के उत्तर को अवश्य पढ़िये।

प्रश्न २९—अनाज के बढ़ते हुये मूल्यो को रोकने तथा खाद्य स्थिति को नियन्त्रण मे रखने के लिये भारत सरकार ने गत वर्षों मे क्या कदम उठाये हैं? इस सम्बन्ध मे अनाज जाच समिति की सिफारिशो पर विशेष रूप से प्रकाश डालिये।

What steps have been taken by the government of India in recent years to check the upward tendency of foodgrains prices and to regulate the food problem? In this connection examine the main recommendations of the foodgrains Enquiry committee of 1957

उत्तर—गतवर्षों के अनुभव से हमे विदित होता है कि एक ओर तो पचवर्षीय योजनाओ के कारण देश मे अनाज के उत्पादन मे वृद्धि हुई है और दूसरी ओर अनाज के भाव निरन्तर बढ़ते जा रहे है। इसके कारण देश के सामने खाद्य समस्या एक गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। महगे भाव पर अनाज के बिकने से देश की गरीब जन सख्या को बड़ी असुविधा तथा कठिनाई उठानी पड़ती है और सरकार को विदेशों से अधिक मात्रा मे अनाज मगाना पड़ता है। कारण यह है कि अनाज के भाव मे वृद्धि होना इस बात का सकेत है कि देश मे अनाज की कमी है। यदि देश मे अनाज की कमी है तो उसे विदेशो पर निर्भर हुये बिना किस प्रकार दूर किया जा सकता है और यदि कमी नही है तो अनाज के भाव मे निरन्तर वृद्धि होने के क्या कारण हैं इन्ही सब बातो की जाच करने के लिये २४ जून १९५७ को भारत सरकार ने अनाज जाच समिति की नियुक्ति की थी जिसने अपनी रिपोर्ट १९ नवम्बर १९५७ को प्रकाशित की थी।

समिति ने पिछले कुछ वर्षो मे पाई जाने वाली भारत की खाद्य स्थिति की समीक्षा करते हुये तथा सरकार द्वारा अनाज के वितरण, उत्पादन तथा मूल्यो की दिशा मे उठाये गये कदमो की विवेचना भी की है। महत्व पूर्ण बात यह है कि समिति ने इस बात का भी सकेत किया है कि अगले कुछ वर्षों मे भारत की खाद्य स्थिति तथा अनाज के मूल्यो की क्या प्रवृत्ति होगी।

समिति के अनुसार अनाज के व्यापार मे सट्टे की प्रवृत्तियो के कारण अनाज को दाब कर रखने (Hoarding) के प्रयत्न किये जाते हैं। ऐसा होने से अनाज

के मूल्य तेजी के साथ बढने लगते हैं और सरकार को अनाज के एक भाग से दूसरे भाग म ले जाने पर नियन्त्रण करना पडता तथा जो भडार सुरक्षित रक्खे गये है उनमे से विभिन्न राज्यो को अनाज प्रदान करना पडता है। इसके फलस्वरूप मस्त अनाज की दूकाने खोलने, सहकारी उपभोक्ता भडार तथा मिल मालिको के सगठनों की सहायता से अनाज के वितरण की व्यवस्था की जाती है। वास्तव मे यह उपाय तत्कालिक है और अधिक काल तक नही चल सकता। स्थायी रूप से राशन व्यवस्था लागू कर देना अथवा विदेशो से अनाज मगाते रहना सम्भव नही है क्योकि एक ओर तो राशन व्यवस्था उचित नही है और दूसरी ओर भारी मात्रा मे अनाज बाहर से मगाने से देश के भुगतान सन्तुलन म गडबड उत्पन्न हो जाती है। भारत के सामने विदेशी भुगतान की समस्या है जिसके कारण दूसरी पचवर्षीय योजना की सफलता मे सन्देह उत्पन्न हो गया है और सरकार के सामने यह प्रश्न है कि विदेशी मुद्रा की कमी के कारण योजनाओं मे किस प्रकार से कमी की जाय। भारी मात्रा में अनाज विदेशो से आयात करने का परिणाम यह होगा कि विदेशी भुगतान की स्थिति और अधिक बिगड जायगी और सम्भव है कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे मूल परिवर्तन करने पड जायें। यदि ऐसा हुआ और योजना असफल हुई तो यह भारत के लिये एक भारी दुर्भाग्य का विषय होगा जिसके लिये देश कदापि तैयार नही है। इस लिये यह अनिवार्य हो गया है कि अनाज के उत्पादन उसके वितरण तथा मूल्यों की समस्या का कोई समाधान देश के अन्दर ही निकाला जाय और यथासम्भव विदेशों से अनाज न मगाना पडे। अनाज के भावो म अधिक वृद्धि होना उपभोक्ताओ की दृष्टि से हानिकारक है और उनमे भारी कमी होना किसान की दृष्टि से हानिकारक है। यह दोनों ही समस्यायें देश तथा सरकार की दृष्टि से हमारी खाद्य स्थिति के असन्तुलित होने का सकेत मात्र हैं।

अनाज जाँच समिति ने यह विचार व्यक्त किया है कि अनाज के भावो की अस्थिरता अगले कुछ वर्षों तक बनी रहेगी। विशेष प्रयत्नो के द्वारा केवल भावो की असमानताओं को एक निश्चित सीमा तक कम किया जा सकता है उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए समिति ने सुझाव दिया है कि एक व्यापक अधिकारो वाला मूल्य स्थिरीकरण बोर्ड (Price Stabilization Board) की स्थापना की जाय जिसका उद्देश्य अनाज के मूल्यों को स्थिर करने का योजना तैयार करना हो। दूसरे अनाज स्थिरीकरण संस्था (Foodgrains Stabilization Organisation) की स्थापना की जाय जिसका उद्देश्य उस नीति तथा योजना को कार्यान्वित करना हो जो मूल्य स्थिरीकरण बोर्ड द्वारा निर्धारित की जाय। विशेषकर वह नीति तथा योजनायें जिनका सम्बन्ध अनाज के क्रय विक्रय से है।

अनाज के वितरण तथा व्यापार की समस्याओं के विषय म अल्पकालीन उपायो का उल्लेख करते हुये समिति ने सुझाव दिया है कि यह कार्य मुख्य रूप से सस्ते अनाज की दुकानों तथा सहकारी उपभोक्ता भडारो के द्वारा किया जाना चाहिये। इसका कारण यह है कि अनाज का व्यापार करने वाले व्यापारियों तथा सट्टे बाजो म जो प्रवृत्ति पाई जाती है उसे दूर करना परम आवश्यक है। सरकारी दुकानो तथा

सहकारी समितियों के द्वारा अनाज के वितरण से यह प्रवृत्ति रोकी जा सकती है जैसा कि वर्तमान समय में सरकार को करना पड़ता है।

देश के कमी वाले क्षेत्रों के विषय में समिति ने सुझाव दिया है कि यहाँ के लोग गरीब होने के कारण मंहगे भावों का अनाज खरीदने की क्षमता नहीं रखते। इन क्षेत्रों में बम्बई राज्य के उत्तरी जिलों से लेकर आसाम के पूर्वी जिलों तक तथा राजस्थान मध्य प्रदेश उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश बिहार तथा पश्चिमी बंगाल को सम्मिलित किया गया है। खाद्य समस्या इन क्षेत्रों में अधिक भयंकर रूप धारण करती है। इन क्षेत्रों में खाद्य समस्या के समाधान के लिये यह आवश्यक है कि सिंचाई की अधिक सुविधायें प्रदान की जायें, बाढ़ पर नियन्त्रण किया जाये तथा जनता को ग्राम उद्योग तथा छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास के द्वारा रोजगार की सुविधायें प्रदान की जायें।

विकास की योजनायें

अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' के अन्तर्गत दो प्रकार की योजनाओं पर कार्य किया जा रहा है। प्रथम योजनाएं वे हैं जिनमें कुओं की मरम्मत, तालाब, छोटे बाँध तथा बिजली के कुएं आदि बनाना और बंजर भूमि को खेती योग्य बनाना सम्मिलित है। दूसरी योजनायें वे हैं जिनमें रसायनिक तथा अन्य प्रकार की खाद तथा बीज का वितरण सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में एक ओर सिंचाई की योजनायें और दूसरी ओर खाद तथा बीज के वितरण की योजनायें हैं जिनके द्वारा अनाज के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न किया जा सकता है। १९५७–५८ में २५.९७ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई जिसमें से राज्य सरकारों को २२.९५ करोड़ रुपये केन्द्र से ऋण के रूप में तथा २.०२ करोड़ रुपए अनुदान के रूप में दिये गए। इस योजना में जो कार्य हुआ उसका विवरण इस प्रकार है—

छोटी सिंचाई योजनाएं। — १९५७—५८ में नये तथा पुराने २८१३७ कुएं तथा ३२० तालाब बनाये जाने थे अथवा उनकी मरम्मत होनी थी और अनुमान लगाया गया कि इनसे १.७३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इसके अतिरिक्त १३ हजार नल कूप तथा पर्सियन व्हील्स के द्वारा १.३८ लाख एकड़ भूमि की अधिक सिंचाई हो सकेगी। राज्य सरकारों ने सिंचाई की जो अन्य छोटी योजनाएं चालू कर रखी हैं उनसे १४.० लाख एकड़ अन्य भूमि सींची जा सकेगी।

नवम्बर १९५७ के अन्त तक भारत अमेरिका सहायता कार्य क्रम के आधीन २६५० बिजली के कुओं (Tub wells) का निर्माण हो चुका था। अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के अन्तर्गत जो बिजली के कुए लगने थे उनमें से ६०९ कुए पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में और ४०० कुए उत्तर गुजरात में लगाये गये। इस प्रकार छोटी सिंचाई योजनाओं से कुल मिलाकर २२ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जा सकेगी।

बंजर भूमि पर खेती — १९५७—५८ में मध्य प्रदेश आसाम तथा बिहार राज्यों में केन्द्रीय ट्रैक्टर संस्था द्वारा ६६२४९ एकड़ भूमि को खेती योग्य बनाया

गया । इस प्रकार १९४८ से अब तक इस संस्था द्वारा लगभग १६ लाख एकड़ बंजर भूमि को खेती योग्य बनाया जा चुका है।

खाद का वितरण — १९५६–५७ में १६.८ लाख टन कम्पोस्ट खाद का वितरण किया गया जबकि १९५५–५६ में १७.६ लाख टन कम्पोस्ट खाद का वितरण किया गया था। इसी प्रकार १९५६ में देश में ६.६ लाख टन अमूनियम सल्फेट नामक रसायनिक खाद का प्रयोग किया गया और १९५७ में ७.०० लाख टन रसायनिक खाद वितरण के लिए उपलब्ध थी।

उत्तम बीज का वितरण — १९५७–५८ में राज्य सरकारों द्वारा ४११६ बीज के फर्म (Seed Forms) स्थापित करने के लिये भारत सरकार द्वारा २.०३ करोड़ रुपए के अनुदान तथा १.८४ करोड़ रुपए के ऋण राज्य को दिए गये।

जापानी ढंग से धान की खेती — १९५३–५४ में २३.७४ लाख एकड़ भूमि पर जापानी ढंग से खेती की गई जिसके फलस्वरूप धान की औसत उपज १९.६ मन प्रति एकड़ हो गई जबकि देशी ढंग से औसत उपज १३.३ मन प्रति एकड़ होती है इस सफलता को देखते हुये १९५७–५८ में ३१ लाख एकड़ भूमि के स्थान पर ६२ लाख एकड़ भूमि पर जापानी ढंग से धान की खेती करने का लक्ष्य रखा गया और दूसरी योजना के अन्त तक ८० लाख एकड़ भूमि पर जापानी ढंग से धान की खेती होने लगेगी।

इस प्रकार यदि अनाज की पैदावार में वृद्धि करने में पर्याप्त सफलता मिली और अनाज के वितरण की उचित व्यवस्था तथा अनाज के मूल्यों पर उचित नियंत्रण रक्खा गया तो हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही भारत की खाद्य समस्या स्थायी रूप से सुलझ जायेगी।

प्रश्न १०— भारत में अक्सर अकाल पड़ते रहने के क्या कारण हैं? इन्हें रोकने के लिए क्या उपाय किए हैं। (आगरा १९५४)

What have been the causes of the frequent outbreak of famines in India? What measures have been adopted to prevent them?
(Agra 54)

उत्तर—भारत प्राचीन काल से कृषि प्रधान देश रहा है। यातायात एवं सिंचाई के साधनों के अभाव में अकाल आना स्वाभाविक ही था। १८ वीं शताब्दी तक अकाल को दैवी प्रकोप समझा जाता था जिसके फलस्वरूप लाखों व्यक्तियों एवं पशुओं का संहार हो जाता था।

अकाल का इतिहास

हिन्दू शासन काल में — हिन्दू काल में भारत में कभी देश व्यापी दुर्भिक्ष नहीं पड़ा। सर्व प्रथम दुर्भिक्ष का प्रकोप ६५० ई० में हुआ। उसके उपरान्त क्रमशः सन् ९४१ ई० १०२२ ई० और १०३३ में भयकर दुर्भिक्ष पड़े। इन दुर्भिक्षों का प्रभाव यह हुआ कि सारा देश मानव से खाली हो गया था।

मुस्लिम शासन काल में — मुस्लिम शासन काल में भी भयकर दुर्भिक्ष पड़े

जिसमे सर्व प्रथम अकाल जो भयंकर था १०२१ मे पडा था। इसके बाद चार बडे दुर्भिक्षो का प्रमाण हमको इतिहास मे प्राप्त होता है जो क्रमश इस प्रकार हैं। प्रथम मुहम्मद तुगलक के शासन काल म (१३४१) द्वितीय, अकबर के शासन काल मे जिसका प्रकोप समस्त भारत पर पडा। तृतीय शाहजहा के शासन काल मे १६३०-३१ एवं चौथा औरंगजेब के शासनकाल मे। इसके अतिरिक्त भी कई अकाल पडे परन्तु जिनका प्रकोप समस्त भारत पर नही था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल मे—इस काल मे १२ महत्वपूर्ण अकाल पडे। १८३३ मे मद्रास का अकाल बहुत ही भयकर था। १८३७ मे वर्षा के अभाव से जो दुर्भिक्ष पडा था उससे सम्बन्धित लार्ड लारस ने उसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि "मैंने अपने जीवन काल मे इतना विनाशकारी विध्वस नही देखा है जैसा १८८७ मे फैला है।"

अग्रेजी शासन काल मे— १८५८ म भारत का शासन इगलैंड के सम्राट के आधीन हो गया। इनके शासनकाल मे भी कई भीषण अकाल पडे। परन्तु इसी काल मे अकालो से मुक्त कराने के लिए सरकार द्वारा अकाल नीति का निर्धारण हुआ।

(३) **बगाल का अकाल**—(१९४३—४४) इसका प्रकोप समीपवर्ती प्रान्तो पर भी हुआ। सरकारी अनुमान के अनुसार केवल बगाल मे ही १५ लाख व्यक्तियो की मृत्यु हुई थी। द्वितीय महायुद्ध एव अग्रेज सरकार की नीतियो के कारण ही भारतीयो को इस दुर्भिक्ष का शिकार होना पडा था।

दुर्भिक्षो के कारण—खाद्यान्न की कमी के कारण ही प्राय दुर्भिक्ष का प्रकोप होता है तथा खाद्यान्न की समस्या तब आती है जब वर्षा न हो, खेत सूख जायें, बाढ म नष्ट हो जाए इत्यादि। इन कारणो के अतिरिक्त भी टिड्डी दल कृषि, रोग, तूफान, ओले युद्ध, लूट, बेकारी आयात म बाधायें यातायात के साधनो की कमी आदि कारणों से भी दुर्भिक्षो का शिकार बनना पडता है।

भारतीय खेती पूर्ण रूप से वर्षा पर निर्भर रहती है। वर्षा के अभाव से खेती का विनाश हो जाता है क्योकि सिंचाई के साधन पर्याप्त नही है। दूसरी ओर यदि वर्षा अधिक हो जाय तो भी नष्ट हो जाती है। वर्षा का अनिश्चित काल मे होना भी हानिकारक सिद्ध होता है। कई प्रदेशो म जगलो को काट दिया गया है जिनके कारण बाढ का भय सदैव बना रहता है। इसके अतिरिक्त टिड्डी दल के आक्रमण, ओलो का गिरना, खेती को कीडे लग जाना आदि दुर्भिक्ष को आमन्त्रित करते हैं। प्राचीन काल मे युद्ध एव लूट से भी दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। विजयी राज्य विजित प्रदेश की खेती को नष्ट कर डालता था एव लूट तथा आतक से आर्थिक जीवन विच्छिन्न हो जाता था जिसका परिणाम यह होता था कि लोग भूखो मरने लगते थे। आयात मे जब बाधायें पड जाती हैं तब भी अकाल की सम्भावना तीव्र हो जाती है। जैसा कि द्वितीय महायुद्ध म हुआ था। यातायात के साधनो के अभाव से भी दुर्भिक्षो का प्रकोप अधिक भयकर हो जाता है क्योकि एक स्थान से दूसरे स्थान पर खाद्यान्न ले जाना एक सुगम कार्य नहीं है। और न ही दुर्भिक्ष वाले

प्रदेश मे निकल भागना ही सुगम कार्य है जिसके कारण मानव को विवश होकर दुर्भिक्षो का शिकार होना पडता है।

दुर्भिक्ष के निवारण के उपाय—अकाल के कारणो का निवारण कृषि के सर्वाङ्गीण विकास से हो सकता है। ग्राम सुधार की वृहत योजनायें ही भारत से अकाल के भूत को सदा के लिए भगा सकती है। दुर्भिक्ष से जनता को बचाने के लिए कुछ स्थायी सुधारों की आवश्यकता है। यह उपाय निम्नलिखित हैं:—

(१) भारतीय कृषि का पुनर्गठन (२) सिंचाई के साधनो का विकास (३) खाद्यान्न पर नियन्त्रण (४) अकाल निवारण कोष की स्थापना (५) पौधो की बीमारियो को दूर करना (६) सहकारी समितियों का सगठन (७) टिड्डियों से रक्षा (८) मौसम की भविष्य वाणी (९) यातायात के साधनो का विकास (१०) सहायक उद्योगो का विकास (११) सामाजिक कुरीतिया एव अनावश्यक रूढियो का अन्त (१२) कृषकों की अशिक्षा एव अज्ञानता को दूर करना इत्यादि।

अकाल की समस्या का समाधान करने के लिये सर्व प्रथम हमको कृषको की निर्धनता दूर करनी परम आवश्यक है। किसानो की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कृषि को वैज्ञानिक ढग से करना होगा। इसके अतिरिक्त सहायक उद्योगों के विकास से कृषको की आर्थिक स्थिति सुधर सकती है। सहकारिता का विकास समुचित मात्रा मे होना चाहिये ताकि कृषक की विक्रय समस्या, धन व्यवस्था आदि अनेक प्रकार की समस्याओ का समाधान सुगमता से हो जाये। सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के लिये हमको समाज सुधार आन्दोलन का सहारा लेना पड़ेगा। सिंचाई के साधनो का विकास भूमि की स्थिति को सुधारने के लिये चकबदी करना भी परम आवश्यक है। भारत मे एक ऐसा कोष स्थापित किया जाये जिसमे से अकाल के समय धन निकाल कर खर्च किया जा सके विज्ञान द्वारा टिड्डियो मे खेत की रक्षा होनी चाहिये। यदि मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणियो मे उन्नति की जा सके तो विपरीत मौसम का प्रबध उसके आने से पूर्व ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण उपाय है वह यह है कि किसानो को शिक्षित किया जाये जिससे वह अज्ञान के अन्धकार मे से निकल सके। उपरोक्त प्रयत्नो से कृषको की आर्थिक उन्नति होकर अकालो से रक्षा की जा सकती है। डा० राधाकमल मुकर्जी के अनुसार 'भारतीय अकाल समस्या का प्रश्न इन गम्भीर भयानक परिस्थितियो से सबन्धित है, जिनके अन्तर्गत वर्षा का अभाव, साधनो की कमी, अपव्यय, भू-व्यवस्था और दुर्बल आर्थिक सगठन है। इसलिए कोई भी एक कारण अकाल के लिये जिम्मेदार नही है। ये सब व्यक्तिगत एव सामूहिक रूप मे भारतीय भूमि पर किसान के लिए अकाल का आगमन कराते है।"

उपचार सम्बन्धी नीति का विकास—प्राचीन हिन्दू काल मे अकाल निवारण की कोई स्थायी नीति नही थी। वैसे राजाओ ने अकाल के समय जनता की पूर्ण सहायता की और इस प्रकोप से बचाने का प्रयत्न किया। मुस्लिम शासको ने भी इस क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किया परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल मे भीषण

दुर्भिक्षो से जनता अपनी रक्षा न कर सकी क्योंकि कम्पनी की नीति थी भारतीयो का शोषण करना। १६ वी शताब्दी मे इसने जनता की रक्षा के लिए धन बटवाया एव सडको का निर्माण करवाया। उसके बाद भारतीय शासन अंग्रेजी सम्राट के आधीन हो गया। उडीसा के १८६५ के अकाल का मुकाबला करने के लिए राज्य द्वारा सर्व प्रथम सगठित प्रयत्न किया गया। सर रिचार्ड स्ट्रैची (Sir Richard Strachey) की अध्यक्षता में कमीशन नियुक्त किया गया जिसने निम्नलिखित सिद्धान्त पेश किये —

(१) स्वस्थ व्यक्तियो को अकाल काल मे उचित वेतन पर काम दिया जाय। (२) निर्बल व्यक्तियो को आर्थिक सहायता दी जाये। (३) खाद्यान्न वितरण की अच्छी व्यवस्था की जाये। (४) फसल नष्ट हो जाने की दशा मे लगान माफ कर दिया जाये।

१८६६–६७ के दुर्भिक्ष मे इन सिद्धान्तो को परिणित किया गया और बाद मे अनुभव से उपरोक्त सिद्धान्तो मे परिवर्तन किया गया। १८८३ म सरकार ने हर साल बजट मे १.५ करोड रुपये अकाल निवारण के लिए मजूर करना स्वीकार कर लिया। १८६८ मे सर जेम्स लायल की अध्यक्षता मे एक कमीशन नियुक्त हुआ जिसने मुख्य रूप से पहाडी लोगो और जुलाहो की सहायता के लिए सुझाव दिया था।

१६०१ मे सर मैकड नल की अध्यक्षता में १८६६ के भीषण अकाल के बाद एक कमीशन नियुक्त हुआ। इस कमीशन ने धैर्य से कार्य करने की एव भारतीयो के आत्मनिर्भरता पर अधिक जोर दिया। इसकी सिफारिश के अनुसार तकावी-ऋण दिये जायें अकाल काल मे लगान मे छूट दी जाये पशुओ के लिये चारे की उचित व्यवस्था की जाये सहकारी समितियो की स्थापना की जाये, आदि इन सुझावो के अनुसार सरकार ने अकाल निवारण के लिये काफी प्रयत्न किये।

१६४३–४४ के बगाल अकाल के बाद सर जान वुडहेड की अध्यक्षता म आयोग की नियुक्ति हुई। इन्होने भी अनेक प्रकार के सुझाव दिए जो इस प्रकार हैं। (१) अधिक अन्न उपजाओ योजना चालू की जाए। (२) अनाज का आयात किया जाय। (३) खाद्य नियत्रण रखा जाये। (४) भोजन मे पोषक पदार्थों की मात्रा बढाई जाये। (५) कृषि का विकास किया जाये। (६) खाद्य वितरण ठीक से होना चाहिए। (७) भारतीय खाद्य परिषद् एव क्षेत्रीय खाद्य परिषद् की स्थापना की जाए। (८) अनाज पर सरकारी नियत्रण होना चाहिए। (६) परिवार नियोजन की योजना चालू की जाए। सरकार ने उपरोक्त सभी सुझावो को स्वीकार कर एक स्थाई नीति अपनाई और भारत को इस भीषण प्रकोप से बचाने का भरसक प्रयत्न किया।

इसके अतिरिक्त १६०० मे भारतीय दुर्भिक्ष ट्रस्ट की स्थापना की गई। १६१६ के कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकारो को दुर्भिक्ष निवारण कोष की स्थापना का आदेश दिया गया। १६३५ के पश्चात् भी प्रान्तीय सरकारो ने इस हेतु नवीन

दोषों की स्थापना की। हमारे प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने प्रधान मंत्री राष्ट्रीय सहायता कोष की भी स्थापना की है जिसके धन से सब प्रकार की सहायता दी जाती है।

सरकार की वर्तमान नीति—हमारी राष्ट्रीय सरकार ने दुर्भिक्ष प्रकोप को दूर करने के लिए कृषि के पुनर्गठन पर अधिक जोर दिया है। इस समस्या के समाधान के लिए पंचवर्षीय योजना मे विशेष ध्यान दिया गया है। देश में सिंचाई साधनों का विकास हो रहा है। बाढ़ो के प्रकोप को रोकने के लिए नहरो का निर्माण जोरों पर है। टिड्डी दल से कृषि को बचाने के हेतु राजस्थान में टिड्डी नियंत्रण संस्था स्थापित की गई है जिसका कार्य टिड्डो के आक्रमण मे खेतों की रक्षा करना है। खाद्यान्न की कमी को देख कर सरकार सरकारी दूकानें खुलवा देती है जहा पर जनता को उचित कीमत पर अनाज मिलता है। अन्न की कमी को दूर करने के लिए एक अन्न भण्डार स्थापित हो गया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि हमारी सरकार के पास इस प्रकोप के निवारण के लिए सभी साधन उपलब्ध है। सरकार अकाल निवारण दो प्रकार से करती है। प्रथम तत्कालीन सहायता, दूसरी दीर्घकालीन सहायता। दोनो प्रकार की सहायता हमारी राष्ट्र सरकार दुर्भिक्ष काल मे देती है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि अकाल निवारण की वर्तमान नीति मे सरकार को सफलता मिली है। हमारी सरकार ने १० वर्ष मे ही खाद्यान्न की समस्या का समाधान कर लिया है। सरकार की वर्तमान नीति तथा सदप्रयत्नो के कारण और पंचवर्षीय योजनाओं के सफल हो जाने पर दुर्भिक्ष की समस्या का अंत हो जाएगा।



अध्याय ६

भू-स्वामित्व प्रणाली

प्रश्न ३१—भारत मे विभिन्न भू-स्वामित्व प्रणालियो पर प्रकाश डालिए। एक अच्छी भूस्वामित्व प्रणाली मे क्या विशेषतायें होनी चाहियें। (राजपूताना ५६)

What are the various Land Tenure Systems found in India? What should be features of a good Land Tenure System?

(Rajputana 56,

उत्तर—भारत मे मालगुजारी प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से है। हिन्दू शासन काल मे भूमि पर गाव वालो का अधिकार होता था और समस्त भूमि राजा की मानी जाती थी। किसान राजा को उपज का कुछ भाग कर के रूप मे देता था। जब यहा मुसलमानो की सत्ता स्थापित हुई तो उन्होने भी इस दिशा मे प्रथम क्रियात्मक कदम उठाये। मुगल काल मे स्थिति बदल गई। किसान ही भूमि का स्वामी बन गया। जब तक किसान खेती करता था उसे बेदखल नही किया जा सकता था। सम्राट अकबर के माल मन्त्री राजा टोडरमल ने विशेष कार्य किया था। भूमिकर किसानो से सीधा लिया जाता था। कर १० वर्ष के लिए निर्धारित कर दिया गया था। राजा टोडरमल की व्यवस्था बहुत ही प्रसिद्ध थी और वह आज भी भारतीय भूमि व्यवस्था की आधार शिला बनी हुई है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ मे शासन सत्ता आने से मालगुजारी प्रथा मे काफी परिवर्तन किया गया। इस समय सरकार द्वारा भूमि का बन्दोबस्त का प्रबन्ध किया गया। मालगुजारी की दर निश्चित कर दी गई। अब राज्य भूमि का सबसे बडा स्वामी होता था। अतः हम भारत मे प्रचलित मालगुजारी की वर्तमान प्रणालियो पद्धतियो पर प्रकाश डालेंगे।

भूमिस्वामित्व प्रणालिया—भारतवर्ष मे भूमि स्वामित्व की तीन प्रथायें प्रचलित रही हैं जमीदारी, रैयतवारी, और महालवारी। निस्सन्देह किसी भी देश की आर्थिक प्रगति और समृद्धि भूमि स्वामित्व की प्रणाली पर निर्भर होती है। उपरोक्त प्रणालियो पर अब हम अलग २ विचार करेंगे।

(१) **जमींदारी**—इस प्रथा का उदय १८वी शताब्दी के अन्त और १९वी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ। वैसे यह प्रथा मुसलमानो के शासन काल मे भी प्रचलित थी। उस समय काश्तकार किसी बडे जमीदार से भूमि लेकर खेती करते थे। जमीदारो ने मुगल साम्राज्य के पतन से लाभ उठाकर अपनी स्थिति और भी मजबूत करली थी। जमीदार का पूर्ण अधिकार भूमि पर था। वह लगान पर किसानो को

दिया करेंगे जबतक जमीदार लगान अदा करता रहेगा भूमि का स्वामित्व अधिकार उसका रहेगा। इस प्रथा से काश्तकार पूर्ण रूप से जमीदार के ऊपर निर्भर हो गया।

अस्थायी बन्दोबस्त ३०—४० साल के लिये होता अर्थात् लगान एक बार निश्चित होने के बाद ३० या ४० साल बाद फिर निश्चित किया जाता है। जमीदार, तालुकेदार, महलवार या ग्राम, इसमें जमीदार या तालुकेदार आदि अपने हिसाब की अथवा गाव वाले मिलकर कुल गांव की मालगुजारी सरकार को चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

(२) रय्यतवारी प्रथा—इस प्रथा के अन्दर सब प्रकार की भूमि पर सरकार का अधिकार होता है और काश्तकार अपना लगान सीधे सरकार को देता है किसान को अधिकार होता है कि वह चाहे स्वयं खेती करे या किसी दूसरे को दे दे। लगान अदा करते रहने पर उन्हें बदखल नहीं किया जा सकता। इस प्रथा के अन्तर्गत सरकार कोई अनुचित अधिकार नहीं रखती। लगान २० या ३० वर्ष के लिये निर्धारित कर दिया जाता है।

सबसे पहले यह प्रथा मद्रास के बड़े महल्ल में प्रारम्भ की गई तथा धीरे २ प्रान्त के अन्य भागों में भी लागू की गई। इसके बाद बम्बई प्रान्त में इस प्रथा का प्रचलन हुआ। इस प्रथा की मुख्य विशेषताएं यह हैं। (१) इस प्रथा के अन्तर्गत भूमि अधिकारी को राज्य स्वयं ही अधिकारी बना देता है। इसमें मध्यस्थों को स्थान नहीं मिलता (२) सम्पूर्ण भूमि पर राज्य का ही अधिकार होता है। (३) भूमि के अधिकारी को भूमि बदलने, छोड़ने भूमि को काम में लाने का पूर्ण अधिकार होता है। (४) वह भूमि को जब तक ही रख सकता है जब तक वह लगान अदा करता रहेगा। (५) भूमि का अधिकारी किसी भी समय खेती से त्यागपत्र दे सकता है। (६) भूमि का अधिकारी कृषक को लगान पर वर्ष भर के लिए अपने अधिकार की भूमि दे सकता है। (७) यदि राज्य शेष लगान व तकावी ऋण के चुकाने में भूमि को बेचे तो क्रेता को भूमि का पूरा अधिकार मिल जाता है। (८) मालगुजारी भूमि का लगान माना जाता है कर नहीं। (९) भूमि का प्रत्येक अधिकारी स्वयं ही मालगुजारी देने के लिये उत्तरदायी होता है। (१०) मालगुजारी २० या ३० वर्ष के लिये निश्चित कर दी जाती है।

इसका प्रचलन जब हुआ जब वस्तुओं की कीमतें चढ़ने लगी। मालगुजारी भूमि के अनुसार रुपये में निश्चित की जाती थी, पैदावार से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। इसका प्रभाव यह हुआ कि गाव में रुपय के लेन देन करने वालो का महत्व बढ़ने लगा।

(३) मालगुजारी प्रथा—इस प्रथा को पट्टेदारी भी कहते हैं। इस प्रथा का अनुसरण १८१३ में आगरा व अवध में हुआ। इसके अनुसार भूमि पर समस्त कृषकों का संयुक्त अधिकार होता है। गाव के सभी कृषक संयुक्त रूप से राज्य को भूमि कर देते हैं। जो भूमि पट्टेदार स्वयं जोतते हैं उसे सीर कहते हैं। महालवारी प्रथा

के अन्तर्गत भूमि का विभाजन मुख्यत. तीन प्रकार से होता है।

(१) एक तो पैतृक सम्पत्ति वाले गाव। इसके अनुसार भूमि का हिस्सेदार वंशानुगत रूप से भूमि का स्वामी होता है। वैसे तो गाव का भूमि पर सम्पूर्ण अधिकार होता है यद्यपि व्यक्तिगत किसान का अधिकार पैतृक होता है।

(२) यह अपैतृक सम्पत्ति वाले गांव होते हैं। ऐसे स्थानो मे भूमि का बटवारा भाईचारे के आधार पर या तो बराबर कुओ के आधार पर या हलो के आधार पर कर लिया जाता है।

(३) वे गाव जिनमे भूमि अधिकार का कोई नियम नहीं होता अपितु जो किसान पहले से जोतता चला आ रहा है उतने का ही उसे स्वामी मान लिया जाता है और वह उतने ही क्षेत्र का लगान देने के लिये उत्तरदायी होता है।

महालवारी प्रथा मे मध्यस्थो की संख्या तो कम रहती है किन्तु गाँव की जनता की संयुक्त मान्यता गाव की भूमि मे सम्मिलित अधिकार पर आधारित थी। इससे प्राचीन ग्राम समाज छिन्न भिन्न हो गए और उनके स्थान पर अव्यवस्थित व्यक्तिवाद ने जन्म ले लिया।

ऊपर हमने तीनो प्रणालियो का उल्लेख किया है। अब प्रश्न यह है कि देश की आवश्यकता तथा आर्थिक निर्माण की दृष्टि से किस प्रथा का अनुसरण किया जाये जिससे किसानो की उन्नति हो और साथ ही साथ भूमि एव राष्ट्र की भी।

अच्छी भू-स्वामित्व प्रथा की विशेषतायें

अच्छी प्रणाली वही होगी जिसमे प्रत्येक किसान का भूमि पर पूरा अधिकार हो चाहे वह उसको किसी प्रकार प्रयोग मे लाए। उसको विश्वास होना चाहिए कि वह अपने परिश्रम के फल का स्वय भोगी होगा। देश के भिन्न भिन्न भागो के लिए लाभकर खातो के क्षेत्रफल निर्धारित किये जाए। सब किसानो के पास १० एकड़ से कम भूमि नहीं होनी चाहिए और सबके खात लाभकर खाते हो। १० एकड़ के बाद भूमि के बटवारे पर नियन्त्रण लगा दिये जाए क्योकि भूमि के विभाजन से राष्ट्रीय हित के स्थान पर व्यक्तिगत हित को भी बल मिलता है जो समाज के लिये अत्यन्त घातक है। देश के किसी भी कृषक को ३० एकड से अधिक भूमि रखने का अधिकार न दिया जाय। दूसरे जो भूमि प्रयोग मे नहो लाई गई हो उसका प्रयोग किया जाना चाहिये इससे भूमिहीन किसानो की समस्या का भी समाधान होगा। गाँव की जनसख्या एव खातो की भूमि के अतिरिक्त शेष समस्त भूमि पर समाज का अधिकार हो। ग्राम समाज को सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा का प्रबन्ध, खेती की उन्नति के लिए चकबन्दी, अच्छे बीजो का प्रबन्ध, जानवरो की उन्नति, सहकारी खेती को प्रोत्साहन एव सामाजिक जीवन की समस्त समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए। ग्राम समाज को ही मालगुजारी जमा करके सरकार को देनी चाहिए।

भूमि व्यवस्था वह अच्छी मानी जायेगी जिसमे प्रत्येक किसान को अपनी पूर्ण उन्नति करने का अवसर मिल सके। किसानो को शोषण से बचाया जा सके अर्थात् उस

बेदखली का कोई भय न रहे । जब तक किसान के मन मे यह विश्वास उत्पन्न नही होता कि वह भूमि का स्वामी है और उसे कोई उसके अधिकार से बेदखल नही कर सकता उस समय तक उन्नति नही हो सकती । इसी के साथ लगान की दर भी उचित होनी चाहिये तथा किसान को आवश्यकता पड़ने पर अपनी भूमि को बेचने, रहन रखने अथवा हस्तातरित करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय समय पर भूमि कानून पास किए गये हैं और कुछ राज्यो मे जमीदारी प्रथा को समाप्त करके नई भूमि व्यवस्था की गई । भूमि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि सरकार खेती की सुधार योजना भली प्रकार कार्यान्वित कर सके । उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि गाव मे सहकारी खेती का प्रबन्ध किया जाये । नई कृषि भूमि पर सरकार स्वय खेती करे और बाद मे उन बड़े बड़े टुकड़ो मे सहकारिता के आधार पर बाट दे । सहकारी खेती के भी दो पहलू हैं प्रथम सहकारी सम्मिलित खेती, द्वितीय सहकारी उत्तम ढग की खेती । अत भारतीय कृषि उद्योग एव कृषक की आर्थिक उन्नति की दृष्टि से सहकारी कृषि पद्धति को ही प्रोत्साहन देना अधिक उपयोगी है जिसके अनुसार किसान का निजी भूमि पर स्वामित्व बना रहेगा और उसे सहकारी कृषि के लाभ भी प्राप्त हो सकेंगे ।

प्रश्न ३२— जमींदारी उन्मूलन का किसान के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ? उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार कानून की मुख्य विशेषताओ पर प्रकाश डालिए । **(आगरा १९५३,४९)**

What has been the influence of Zamindari Abolition on the economic life of the cultivator ? Discuss the salient features of the U P Zamindari Abolition Land Reforms Act *(Agra 53 49,*

उत्तर भारत म जमीदारी उन्मूलन के विषय मे अब अर्थशास्त्री राजनैतिक, व सामाजिक नेताओ और सरकार इत्यादि के बीच म कोई भी विवादास्पद तर्क नही है क्योकि जमीदारी के प्रथा के होते हुए किसानो की आर्थिक स्थिति म सुधार लाना सम्भव नही था । दूसरे महायुद्ध के बाद कृषको की कुछ स्थिति सभली थी परन्तु जमीदारो ने इन्हे पनपने नही दिया । जमीदारो को अपने लगान से मतलब था । इसलिए वे किसानो का शोषण करते थे । लगान के अतिरिक्त वह बेगार, नजराना, शादी कर आदि बहुत सा धन किसानो से वसूल करते थे । इस प्रकार किसान गरीब और ऋण ग्रस्त होता गया । इस प्रकोप से बचने के लिए किसानो ने अपनी जमीन बेची और उस पर मजदूरी का कार्य करने लगे । इससे भूमिहीन किसानो की अधिकता हो गई इससे देश के उत्पादन पर गम्भीर प्रभाव पडा । इस प्रथा मे होते हुये सरकारी निर्माण कार्य भी तीव्र गति से कार्य नही कर सका । मध्यम वर्गीय कारबारियो और व्यापारियो की आर्थिक दशा भी खराब रही और इसका प्रभाव देश के व्यापार एव उद्योग पर भी पडा । अर्थात् समस्त समाज पर इस प्रथा का बुरा प्रभाव पड़ा । इसी कारण से अखिल भारतीय काग्रेस की आर्थिक नीति का जमीदारी उन्मूलन सदैव एक महत्वपूर्ण आधार रहा है ।

१९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने जमींदारी उन्मूलन को अपने आर्थिक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग बना लिया है और धीरे धीरे समस्त राज्यों में इस नीति को केवल इस ध्येय से अपनाया जा रहा है कि इससे देश के किसानों की आर्थिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

जमींदारी प्रथा का अन्त करने के भी पक्ष में थे क्योंकि इससे किसानों का आर्थिक लाभ हुआ है। जमींदारों के शोषण से किसान बच गये और किसान अपनी भूमि पर पूर्ण रुचि से खेती करने का अधिकारी बन गया। जमींदारी प्रथा ने भूमि की चकबन्दी में सदैव रोड़े अटकाये हैं। यदि जमींदारी प्रथा का अन्त न किया जाता तो भूमि में सुधार नहीं हो सकता था। अब खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि होगी, भूमि योजना को कार्यान्वित किया जा सकेगा। इन सबसे किसान की आर्थिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

जमींदारी प्रथा के समाप्त हो जाने से किसान अपनी भूमि का स्वामी हो गया है। अब उसे बेदखली का कोई भय नहीं रहा। अब वह पूरी लगन से भूमि को सुधारने तथा पैदावार को बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील है। किसान जो लगान पहिले जमींदार को देता था उससे कम लगान अब उसे सरकार को देना पड़ता है। इस प्रकार अब उचित लगान (Fair Rent) की व्यवस्था सम्भव हो गई है। भूमि का स्वामी हो जाने से किसान की कर्जा लेने की क्षमता बढ़ गई है। अब वह उत्पादन कार्यों के लिये कम ब्याज पर कर्ज प्राप्त कर सकता है। उसे महाजन से छुटकारा पाने में सहायता मिली है। अब किसान अपनी भूमि की जमानत पर सहकारी संस्थाओं तथा भूमि बंधक बैंकों से सुगमता पूर्वक साख प्राप्त कर सकता है। इससे उसकी उत्पादनशीलता में वृद्धि होगी।

भारतीय किसानों की आर्थिक हालत पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ है कि अब चकबन्दी का कार्य बहुत सुगम हो गया है तथा भूमि सुधार और कृषि उन्नति की योजनाओं को पूरा करने में जो एक बड़ी बाधा थी वह हट गई है। इसका दीर्घकालीन प्रभाव यह होगा कि भारतीय किसान दासता तथा गरीबी के अभिशाप से मुक्त होकर सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकेगा।

उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार कानून

जमींदारी प्रथा की बुराइयों का उन्मूलन करने के लिए उत्तरप्रदेश सरकार ने यू० पी० जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार अधिनियम' पास किया जो १९५१ में अन्तिम रूप से पास करके १९५२ में कार्यान्वित कर दिया गया। इस कानून का बहुत अधिक महत्व है। इसके अनुसार यहां के भू-स्वामियों के सभी वर्ग जैसे जमींदारी, तालुकेदार, आदि का अन्त हो गया और अब केवल चार प्रकार के किसान रह गये हैं जिन्हें भूमिधर, सीरदार आसामी तथा अधिवासी के नाम से पुकारा जाता है।

इस कानून की मुख्य विशेषतायें

इस अधिनियम के अनुसार मध्यस्थों को समाप्त कर दिया गया। अर्थात् महाजनों के सभी हितों पर जैसे कृषि की भूमि के अधिकार, रास्तों और सड़कों के

अधिकार, आबादी, ऊसर भूमि नावपुलो कुओं तालाब आदि पर सरकार का अधिकार हो गया है।

जमींदारो को अब कृषको से लगान लेने का अधिकार नही रहा। उन्हे अपने अधिकारो के बदले म उचित मुआविजा दिया गया है। जो कि उनकी वास्तविक आय का ८ गुना होगा। इसके अतिरिक्त ५००० रु० या इससे कम मालगुजारी देने वाले जमीदारो को पुनर्वास अनुदान भी दिया गया है जो कि २ गुना से लेकर ० गुना तक होगा। सबसे छोटे जमींदारो को सबसे अधिक अनुदान मिला है जो ज्यादा मालगुजारी देने वालो को क्रमश कम होता जाता है और ५०००) रु से ऊपर वालो को कोई ऐसी सहायता नही दी जाती। साथ ही जमीदारो को अपनी सीर और खुद काश्त पर बिना अतिरिक्त रुपया दिये ही भूमिधर बना दिया गया है।

मुआवजे की रकम को अदा करने के लिए एक कोष का निर्माण किया गया। प्रत्येक किसान जो अपने लगान का १० गुना सरकार के पास जमा कर देता है भूमिधर बन जाता है। अर्थात् उसका भूमि पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। आशा की जाती है कि सभी कृषक कुछ समय उपरान्त भूमिधर बन जायेंगे। भूमिधर को ४० साल तक आधा लगान ही देना पडता है।

जमीदारी उन्मूलन के समय वाले किसान अपनी काश्त मे कितनी ही भूमि रख सकते हैं परन्तु भविष्य मे १० एकड से अधिक नही रखी जा सकती। और यदि किसी के पास ६½ एकड से कम हो जाने की सम्भावना है तो भूमि के विभाजन की आज्ञा नही दी जायेगी।

किसान मुख्यत दो प्रकार के होगे। वह सब किसान जो जमीदारी उ मूलन कोष मे अपने लगान का दस गुना जमा करा देता है भूमिधर कहलाता है। सभी जमीदार, सीर खुद काश्त तथा बगीचो के सम्बन्ध मे भूमिधर बन गये हैं। और उन्ह अपने खेत मे वशानुगत बेचने या किसी को देने का अधिकार भी प्राप्त है। भूमिधर अपने खेतो पर गृह निर्माण अथवा अन्य स्थायी सुधार करने के लिये स्वाधीन है। दस गुना देने के बाद उनका लगान ५०% कम कर दिया जाता है। आगामी बन्दोबस्त इस कानून के अनुसार ४० वर्ष से पहिले नही होगा।

अन्य सभी किसान साधारणतया सीरदार बन जायेंगे और उन्हे यह अधिकार होगा कि उन्मूलन कोष मे दस गुना जमा करके भूमिधर के अधिकार प्राप्त कर लें।

अधिवासी वह कृषक होगे जोकि अब तक किसी किसान के खेत को शिकमी की भाति जोत रहे थे। अब तक उनके इस अधिकार से वचित किया जा सकता था। किन्तु अब उनका अधिकार बना रहेगा। यदि वह ५ वर्ष के अन्दर भूमिधर बन जाते हैं। ऐसे किसान भूमिधर तभी बन सकते हैं जबकि उनको भू स्वामी ने ऐसा करने की आज्ञा दे दी हो। इस अवस्था मे अधिवासी को उस लगान का १५ गुना अदा करना पडेगा जो कि वह अब तक अपने भू स्वामी को देता है।

आसामी अधिकार बगीचो के किसानो कुछ अन्य प्रकार के किसानों को दिये

गये हैं। इन्हे किसी भी समय अपने अधिकारो को प्राप्त करने के लिए रुपया नही देना पडेगा।

उपरोक्त सुधारो से ग्रामीण क्षेत्रो मे सुख और सम्पन्नता के नये युग का आरम्भ हो गया है और कृषि के उत्पादन मे वृद्धि हो रही है और ग्रामीणो के रहन सहन का स्तर ऊंचा उठ रहा है।

प्रश्न ३३—भू-स्वामित्व की सुरक्षा तथा उचित लगान की दृष्टि से उत्तर प्रदेश मे जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् विभिन्न प्रकार के किसानो की स्थिति पर प्रकाश डालिए। (आगरा ५५, लखनऊ ५१ ५०)

Discuss the condition of various types of tenants in U P after the abolition of zamindari system from the point of view of security of Tenure and fair Rents *(Agra 55, Lucknow 51, 50)*

उत्तर—किसान बहुत दिनो से जमींदारी प्रथा का दास था जिसके फलस्वरूप उसकी सामाजिक एवं आर्थिक दशा बडी शोचनीय हो गई थी। त जमींदारी प्रथा की बुराइयो का विनाश करने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने यू० पी० जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार अधिनियम १९५० मे पास किया। इस कानून को १९५२ म कार्यान्वित किया गया और समस्त जमीदारियो को राज्य मे निहित कर लिया गया। इस अधिनियम ने समस्त मध्यस्था का अन्त कर दिया है और अब कृषक का सीधा सम्बन्ध राज्य से हो गया है।

इस अधिनियम द्वारा काश्तकारो की विभिन्न किस्मो को समाप्त कर दिया गया है। अर्थात् जमींदारी पथा को हटाकर खेतीहर स्वामित्व प्रथा स्थापित हो गई है। इस कानून के अनुसार भूमि व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि पर स्वामित्व रखने वाले लोगो की दो मुख्य श्रेणियां भूमिधर और सीरदार तथा दो गौण श्रेणियां—आसामी और अधिवासी है।

भूमिधर भूमिधर बनाने क लिये किसान को जमींदारी उन्मूलन कोष मे सम्बन्धित भूमि के वार्षिक लगान का दस गुना जमा करना पडता है। जब किसान दस गुना लगान पेशगी दे देता है तो उसका वर्तमान वार्षिक लगान ४० साल के लिए आधा कर दिया जाता है। भूमिधर को अपने खेत के बेचने, रहन रखने एव हस्तान्तरित करने का पूरा अधिकार प्राप्त है। किन्तु हस्तान्तरण मे उसे अधिकतम सीमा का ध्यान रखना होगा और किसी ऐसे व्यक्ति को भूमि नही दी जा सकती जो उस समय ३० एकड भूमि का स्वयं स्वामी हो। ऐसे शिकमी काश्तकारो के अतिरिक्त जो किसी असमर्थ किसान की आराजी को जोत रहे हो अथवा किसी बाग की भूमि के शिकमी हो, या ऐसी भूमि के शिकमी हो जिसके सम्बन्ध मे स्थायी अधिकार नही दिया जा सकता जैसे नदी की तलहटी की भूमि, चलती फिरती खेती वाली भूमि। शेप सभी काश्तकारो और शिकमी काश्तकारो को उनकी भूमि पर स्थायी, पैतृक और हस्तान्तरणशील अधिकार प्रदान कर दिया गया।

सीरदार—ऐसे काश्तकार जिन्हे भूमि पर मौरूसी अधिकार प्राप्त है 'सीरदार' कहलाते हैं। जब वह १० गुना अदा कर देगा भूमिधर के सब अधिकार प्राप्त कर सकेगा। 'सीरदार' को अपनी भूमि पर वशानुगत अधिकार होंगे किन्तु वह न तो अपनी भूमि को हस्तान्तरित कर सकता है और न उसे रहन रख सकता है। यह अपनी भूमि का उपयोग कृषि, फल पैदा करने और पशु पालन के अतिरिक्त किसी दूसरे कार्य मे नही कर सकते।

आसामी—जो किसान रहन की भूमि तथा वन भूमि इत्यादि पर खेती करते है उन सबको आसामी के सब अधिकार दे दिये गये है। यह अधिकार बिना कुछ रुपए दिये ही प्राप्त हो जाता है। यदि कोई भूमिधर या सीरदार स्वय खेती करने म असमर्थ हो तो वह अपनी भूमि को पट्टे पर उठा सकता है और इस भूमि के पट्टेदार को भी आसामी के अधिकार प्राप्त होंगे।

अधिवासी—ऐसे खेतीहर जो या तो सीर के काश्तकार है या शिकमी काश्तकार हैं उन्हे 'अधिवासी' कहा गया है। अधिनियम उन्हे नियम के लागू होने की तिथि से पाच वर्ष तक अपनी खेती को जोतने का अधिकार देता है और पाच वर्षो की इस अवधि के बाद वे किसी भी समय वार्षिक लगान का १५ गुना जमा करके भूमिधर बन सकते हैं।

भूमि सुधार कानून के पश्चात् उत्तर-प्रदेश म ३० जून १९५६ को विभिन्न प्रकार के काश्तकारो की भूमि का क्षेत्रफल तथा उनके द्वारा राज्य सरकार को दिए जाने वाले लगान की मात्रा निम्नलिखित है —

काश्तकार	क्षेत्रफल (लाख एकड म)	लगान की मात्रा (लाख रुपये म)
भूमिधर	१३६ ५६	३४७ ७२
सीरदार	३०२ ६६	१७० २६
आसामी	५७ ६२	११ ७६
अधिवासी	१६ ६७	१६ १७
कुल	५१७·११	५३५ ६४

व्यक्तिगत जोत को सीमित करके अधिकतम ३० एकड निश्चित कर दिया गया है। ३० एकड से अधिक भूमि कोई भी किसान नही रख सकता। लेकिन अब तक के जमीदारों को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी सीमा तक सीर या खुद काश्त भूमि रख सकते हैं। खेती के अत्यधिक बटवारे को रोकने के उद्देश्य से कानून ने यह व्यवस्था की है कि खेत का बटवारा उसी हालत मे हो सकता है जबकि इस प्रकार बाटे गये हिस्से की आर्थिक जोत ६¼ एकड से कम न हो।

विभिन्न प्रकार के किसानों की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि उत्तर-प्रदेश जमींदारी उन्मूलन से विभिन्न प्रकार के किसानो की आर्थिक दशा मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये है जिनमे से निम्न-लिखित उल्लेखनीय है :—

सर्व प्रथम बात तो यह है कि अब किसानो की इतनी अधिक श्रेणियाँ नही रही जो पहले थी। अब तो केवल चार प्रकार के किसान पाये जाते है जिनमे से भूमिधर प्रमुख हैं। भूमिधर पूरी तरह अपनी भूमि के स्वामी होते है। उन्हें कोई भूमि से बेदखल नही कर सकता। वे अपनी भूमि को हर प्रकार के कार्य के लिये प्रयोग मे ला सकते हैं। भूमि को बेचने तथा रहन रखने का उन्हे पूरा अधिकार होता है। इस प्रकार उनकी माल प्राप्त करने की क्षमता बढ गई है और किसानो की मनो-वैज्ञानिक स्थिति मे भारी परिवर्तन हो गया है। अब किसान अपने को स्वतन्त्र अनुभव करने लगा है और अपने उत्तरदायित्व को पहले से अधिक अच्छी तरह सम-झने लगा है। जहा तक लगान का प्रश्न है अब भूमिधर को अपने पुराने लगान का ५०% ही देना पडता है। पहिले की अपेक्षा अब मुकद्मेबाजी भी बहुत कम हो गई जिससे बहुत सी फिजूलखर्ची और परेशानी बच गई। इसी प्रकार चकबन्दी का कार्य बहुत सुगम हो गया है और ऐसी आशा की जाती है कि सारे राज्य मे चकबन्दी का कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद किसानो की आर्थिक दशा तथा सामाजिक दशा मे आश्चर्यजनक परिवर्तन होगे।

दूसरी श्रेणी के किसान जो आज सीरदार कहलाते हैं वह उसी समय तक सीरदार हैं जब तक कि वह अपने लगान का दस गुना जमा करके भूमिधर के अधि-कार प्राप्त नही कर लेते। इस समय भी उन्हे कोई उनकी भूमि से बेदखल नही कर सकता किन्तु उन्हे भूमि को बेचने, रहन रखने आदि का अधिकार प्राप्त नही है। वे अपनी भूमि पर केवल खेती, फल पैदा करने तथा पशु-पालन के अतिरिक्त और कोई कार्य नही कर सकते। उन्हे लगान की भी वह सुविधायें प्राप्त नही हैं जो भूमिधर किसानो को प्राप्त है। ऐसी आशा की जाती है कि समय के साथ सभी सीरदार अपने लगान का दस गुना जमा करके भूमिधर बन जावेंगे और उन्हे भी वही लाभ प्राप्त होंगे जो भूमिधरो को है।

आसामी तथा अधिवासी यह किसानो की ऐसी दो श्रेणिया हैं जिन्हे अभी भूमि मे स्वामित्व के अधिकार प्राप्त नही हैं। वे या तो दूसरो की भूमि पर खेती करते हैं या भूमिहीन मजदूर किसान है। इनकी दशा मे अभी कोई विशेष सुधार नही हुआ है। जब तक इन्हे भूमि के अधिकार प्राप्त नही होते अथवा जब तक यह भूमिधर नही बन जाते ऐसे किसान की आर्थिक तथा सामाजिक दशा मे अधिक सुधार की कम आशा करनी चाहिये। उत्तर-प्रदेश सरकार भूमि के समान वितरण तथा भूमिहीन किसानो की समस्या को सुलझाने के लिये विशेष रूप से प्रयत्नशील है।

वास्तव मे जमीदारी प्रथा के उन्मूलन मात्र से किसानो की आर्थिक तथा

सामाजिक दशा मे सुधार नहीं होता। इसके लिये और प्रयत्न भी करने पड़ते हैं। जमींदारी उन्मूलन तो केवल साधन मात्र है जिसने किसान की भावी उन्नति के द्वार खोल दिये हैं। वास्तविक कार्य तो जमींदारी उन्मूलन के बाद शुरू होता है। खेतों की चकबन्दी तथा सहकारी खेती दो ऐसे कार्य है जो भारतीय किसान के जीवन का रूप ही बदल सकते हैं। भूमि के समान वितरण की बात भी इतनी ही जरूरी है। किसी व्यक्ति के पास आर्थिक जोत से कम भूमि न हो और आवश्यकता मे अधिक भूमि न हो। जो खेती करता है वही भूमि का स्वामी है। इस दिशा में आवश्यक कदम उठाये जा रहे हैं।

इन सब बातो के साथ २ सहायक उद्योगों का विकास तथा सामुदायिक विकास योजनाओं पर बहुत कुछ निर्भर है। अन्त मे जो बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण है वह यह है कि ग्राम प्रबन्ध तथा पंचायत राज्य इस सब योजना की आधार शिला है और भविष्य इन्हीं की सफलता पर निर्भर है।

प्रश्न ३४—भारत मे कृषि समस्या बहुत महत्वपूर्ण है और इसका उस समय तक हल नहीं हो सकता जब तक सामन्त प्रणाली का कोई भी चिन्ह रहता है और जब तक आधुनिक तरीकों का प्रयोग नहीं किया जाता और सहकारी खेती को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता।"

ऊपर दिये हुये कथन पर उत्तर-प्रदेश की स्थिति को विशेष रूप से ध्यान मे रखते हुये बहस कीजिये ? (आगरा १९५८)

"Agriculture is the dominant issue in India It can not be dealt with unless all feudal relics are swept away and modern methods introduced and co-operative forming encouraged"

Discuss the above statement with special reference to Uttar Pradesh *(Agra 1958)*

उत्तर—भारत की मुख्य समस्या कृषि है—यह कथन पूर्णतया सत्य है। भारत प्राचीन काल से कृषि प्रधान देश रहा है और गाव सदैव से यहा की अर्थ-व्यवस्था का आधार रहा है। आज भारत की समस्त आर्थिक समस्याओं मे सबसे जटिल तथा महत्व रखने वाली समस्या कृषि की ही है। भारत की लगभग ७०% जनसख्या ग्रामीण है और प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर है। दुर्भाग्य की बात यह है कि भारतीय कृषि बड़ी दयनीय अवस्था मे है। हमारे देश मे कृषि उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। एक ओर तो देश की जनसख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है किन्तु दूसरी ओर अनाज के उत्पादन मे समान अनुपात मे वृद्धि नही होती जिसके कारण सदैव देश के सामने एक गम्भीर खाद्य समस्या उपस्थित रहती है। खाद्य समस्या के समाधान के लिये यह परम आवश्यक है कि देश मे अधिक अन्न उपजाया जाय जो तभी सम्भव हो सकता है जब कृषि की उन्नति तथा विकास हो।

भारतीय किसान अत्यधिक निर्धन तथा अशिक्षित हैं। वह खेती के आधुनिक तरीकों से अपरिचित हैं और अपनी निर्धनता के कारण उन्हें अपना नहीं सकता।

भारतीय किसान के पास औसत जोत का आकार बहुत छोटा है। खेतों के उपविभाजन तथा उपखण्डन के फलस्वरूप न तो किसान अपने खेतों पर कृषि यन्त्रों का प्रयोग कर सकता है और न अच्छी खाद तथा बीज के द्वारा अपनी उपज को बढ़ा सकता है। उपज का कम होना किसान की निर्धनता का एक प्रमुख कारण है और किसान की निर्धनता कृषि की उन्नति में मुख्य रूप से बाधक है।

भारतीय कृषि विशेष रूप से मानसून वर्षा पर निर्भर रहती है। समय पर वर्षा न होने अथवा अधिक वर्षा हो जाने से फसलों को भारी क्षति पहुंचती है जिसके कारण देश के सामने लगभग प्रत्येक वर्ष बाढ़ अकाल तथा अनाज की महंगाई और कमी की समस्यायें खड़ी रहती हैं।

भारतीय किसान न तो अपनी आवश्यकता के अनुसार कम ब्याज की दर पर ऋण प्राप्त कर पाता है और न अपनी फसल को बेचकर उसका उचित मूल्य उसे मिलता है। प्रत्येक अवस्था में भारतीय किसान शोषण का शिकार रहता है। उसकी उन्नति, रहन-सहन के स्तर में सुधार तथा अन्य समस्याओं का समाधान इस बात पर निर्भर है कि कृषि की उन्नति हो और कृषि उत्पादन में वृद्धि हो।

हम ऊपर देख चुके हैं कि भारत की समस्त आर्थिक समस्याओं में कृषि की समस्या सबसे जटिल तथा महत्वपूर्ण है। वैसे तो देश में उद्योग, श्रम, यातायात तथा बेरोजगारी आदि की अनेक समस्यायें हैं किन्तु इन सब में कृषि की समस्या ही सबसे गम्भीर है। कृषि की उन्नति के बिना भारत की कोई भी आर्थिक समस्या सुलझ नहीं सकती वैसे तो भारत सरकार ने विकास की पंचवर्षीय योजनायें चालू की हैं किन्तु कृषि उत्पादन के क्षेत्र में आत्म निर्भरता न आने से इन पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता पर सन्देह होने लगता है। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य अनाज के उत्पादन में देश को आत्म निर्भर बनाना है ताकि देश की जनता भूखों न मरने पाये और अनाज के लिये विदेशों का मुंह ताकना न पड़े किन्तु अब तक का अनुभव यह बताता है कि प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के होते हुए भी देश में खाद्य-समस्या आज भी उतनी ही जटिल है जितनी आज से दस वर्ष पूर्व थी। इस प्रकार यह पूर्णतः स्पष्ट है कि कृषि की समस्या भारत की मुख्य आर्थिक समस्या है।

सामन्तशाही प्रणाली का कृषि पर प्रभाव—भारत में सामन्तशाही प्रणाली का प्राचीन काल से भारतीय आर्थिक जीवन पर विशेष प्रभाव रहा है। न केवल कृषि परन् उद्योग-धन्धों आदि पर भी सामन्त प्रणाली का प्रभाव रहा है परन्तु भारतीय कृषि की वर्तमान हीन दशा बहुत कुछ इसी सामन्त प्रणाली की देन है। हमें अपने इस कथन की पुष्टि के लिये अति प्राचीनकाल के इतिहास के पन्नों को पलटने की आवश्यकता नहीं। जमींदारी प्रथा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। जमींदारी प्रथा में किसान को न तो भूमि का स्वामी माना जाता था और न उसके अधिकारों की उचित रक्षा होती थी जमींदार लोग मनमाना लगान वसूल करते थे और जब उनका जी चाहता था किसान को भूमि से बेदखल करा लिया जाता था। लगान की दर तो ऊंची थी ही किन्तु उसके अतिरिक्त नजराना, बेगार तथा अन्य कई प्रकार से

किसानो का शोषण तथा अत्याचार किया जाता था जमीदारों के अतिरिक्त उनके कारिन्दे आदि भी उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे। भूमि पर पूर्ण अधिकार न होने के कारण किसान न तो उसे बेच सकता था और न भूमि की जमानत पर ऋण प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार किसान की गरीबी ऋण ग्रस्तता, भूमि का उप-विभाजन तथा उपखण्डन प्रत्यक्ष रूप से सामन्त प्रणाली की ही देन है।

यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न राज्य सरकारो ने, मुख्यतः उत्तर प्रदेश सरकार ने जमीदारी प्रथा को समाप्त करके सामन्त प्रणाली का अन्त कर दिया है किन्तु उसके अवशेष अब तक बाकी हैं। जब तक पूर्णरूप से इन अवशेषो को भी समाप्त नही कर दिया जाता कृषि की उन्नति सम्भव नही है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने जमीदारी प्रथा का उन्मूलन करके उन समस्त किसानो को जिन्होने अपने लगान का दस गुना सरकार के पास कोष मे जमा कर दिया था भूमिधर के अधिकार प्रदान कर दिये हैं। अब समस्त भूमिधर अपनी भूमि के स्वामी है और उन्हे भूमि को बेचने तथा रहन रखने का अधिकार प्राप्त है। भूमिधर के अतिरिक्त सीरदार किसान वह हैं जिन्होने अभी तक अपने लगान का दस गुना जमा करके भूमिधर के अधिकार प्राप्त नही किए हैं यद्यपि उन्हें ऐसा करने का अधिकार है। इस प्रकार मुख्य रूप से केवल दो प्रकार के ही किसान होंगे वैसे अधिवासी किसान वह है जो अब तक किसी अन्य किसान की भूमि को शिकमी काश्तकार की भांति जोत रहे थे। जमीदारी प्रथा मे उन्हे बेदखल किया जा सकता था किन्तु अब ऐसा नही हो सकता। यदि पाच वर्ष के भीतर उनका भूस्वामी आज्ञा दे दे तो अधिवासी किसान अपने लगान का १५ गुना जमा करके भूमिधर बन सकते हैं। जो किसान रहन की भूमि तथा वन भूमि इत्यादि पर खेती करते हैं उन्हे आसामी घोषित कर दिया गया है। उन्हें यह अधिकार बिना कुछ रुपए दिए ही प्राप्त हो जाता है। आसामी किसान स्वय भूमि के स्वामी नही होते वरन् काश्तकार के रूप मे खेती करते हैं। उत्तर-प्रदेश जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार कानून से न केवल सामन्त प्रथा का अन्त हो गया है। वरन् कृषि की उन्नति के लिए आगे का मार्ग खुल गया है जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् अब उत्तर प्रदेश सरकार भूमि की चकबन्दी की ओर प्रयत्न शील है। चकबन्दी का कार्य समाप्त हो जाने के पश्चात् निश्चित रूप से कृषि के विकास मे सहायता मिलेगी। भविष्य मे किसान सहकारी ढग की खेती तथा कृषि यन्त्रो के द्वारा खेतो करके अपनी उपज को बढा सकेगा और उसकी आर्थिक स्थिति मे पर्याप्त सुधार होगा।

कृषि की उन्नति मे आधुनिक तरीको का प्रयोग—जैसा कि ऊपर कहा गया है कि पुराने ढंग से खेती करने से उत्पादन मे वृद्धि होना असम्भव है। वर्तमान युग विज्ञान का युग है विज्ञान की सहायता से कृषि के क्षेत्र मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किए गये हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानो की सहायता से इस प्रकार के यन्त्र तथा रसायनिक खाद का पता लगा लिया है जिनके द्वारा उपज को कई गुना बढाया जा सकता है। खेती के वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग अमेरिका रूस, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा अन्य

यूरोपीय देशो म सफलतापूर्वक किया ज रहा है किन्तु भारत इस दशा में अभ। बहुत पीछे है। खेतो के आकार का छोटा होना किसान की गरीवी तथा अशिक्षा, सिंचाई की सुविधाओ का अभाव तथा अन्य कारण इस काय मे बाधक रहे है। अब हमारी सरकार आधुनिक ढग की खेती को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न कर रही है। देश म कई रसायनिक खाद के क रखाने चालू किये गये हैं। ट्रैक्टरो (Tractors) के प्रयोग को प्रोत्स हन दिया गया है तथा सिंचाई की छोटी वडी अनेक योजनायें चालू की गई हैं। उत्तम बीज या वितरण तथा आधुनिक ढग की खेती के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जा रही है। आशा की जाती है कि भूमि की चकबन्दी हो जाने के पश्चात् आधुनिक ढग की खेती को सफल बनाया जा सकेगा और कृषि उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि होगी।

सहकारी खेती को प्रोत्साहन

नोट—प्रश्न के इस भाग के उत्तर के लिए कृपया प्रश्न सख्या ४१ का उत्तर पढ़िये।

अध्याय १०

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था

प्रश्न ३५—भारत में ग्रामीण ऋण के मुख्य कारण क्या हैं ? किसान की आर्थिक स्थिति पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है ? इस समस्या के उपचार के लिये क्या उपाय किये गये हैं ? अपने सुझाव भी दीजिये।

(पंजाब ४६, दिल्ली ३५,३७, ३६, पटना १६५३, ५०, इलाहाबाद ४६ ४३)

What are the main causes of Rural Indebtedness in India ? What has been its influence on the economic condition of the cultivator ? What steps have been taken to solve the problem ? Give your suggestions also

(Punjab 46, Delhi 35 37 39, Patna 53, 50, Allahabad 49 43)

उत्तर—विश्व के अन्य देशों की उन्नति में चाहे जो साधन सहायक हों पर भारत के सम्बन्ध में तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि ग्रामीण जीवन के आर्थिक उत्थान में देश का उत्थान निहित है। ग्रामीण क्षेत्रों की उन्नति का अर्थ है देश की आर्थिक उन्नति। ग्रामीण क्षेत्रों की उन्नति तभी सम्भव है जब कृषि की पर्याप्त उन्नति हो सके। कृषि प्रधान देश में ही कृषि की अवस्था कितनी दयनीय तथा शोचनीय है। यह कहने की बात नहीं इस बुरी स्थिति में कृषकों के वित्तीय साधनों का भी हाथ है जो अत्यन्त अपर्याप्त एवं दोषपूर्ण हैं। किसान के वित्तीय साधन उसकी उन्नति में बाधक हैं। हम यदि ग्रामीण जीवन का आर्थिक उत्थान करना चाहते हैं जिससे देश की आर्थिक उन्नति सम्भव हो तो हमें निश्चय ही व्यवसाय के रूप में कृषि की अवनति दोषयुक्त ग्रामीण वित्त व्यवस्था तथा जटिलतम ग्रामीण ऋण भार द्वारा निर्मित त्रिभुज को सुलझाना होगा। अतः हम कृषि के महान रोग ग्रामीण ऋण पर भी विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक दृष्टि डालें और यह समस्या क्यों खड़ी होती है और उसका समाधान क्या है इस पर विचार करें।

ग्रामीण ऋण के मुख्य कारण

यद्यपि किसान बहुत पहले से ऋण लेता चला आ रहा है परन्तु भारत में अंग्रेजों के शासनकाल के पूर्व ऋण की यह समस्या इतनी विकट नहीं थी जितनी वृद्धि अंग्रेजों के शासनकाल में हुई। भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक बढ़ने से ऋण की भी आवश्यकता में वृद्धि हुई। यह आवश्यकता आर्थिक ही नहीं थी कुछ सामाजिक जरूरतों ने भी ऋण लेने के लिये बाध्य किया। हम यहां पर किसान के ऋणी होने के कारणों पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

(१) पैतृक ऋण — बहुत से किसान अपने ऊपर पूर्वजों को ऋण का बोझा लेकर पैदा होते हैं और जिन्दगी भर उसको चुकाने के लिए दूसरों से ऋण लेकर उसे बढाते रहते हैं और यहा तक कि फिर वह पीढियो पुराना हो जाता है। यदि किसान इस नियम को समझ ले कि यदि उसके बाप पर कर्जा है और उसका बाप कुछ छोड कर ही नही मरा तब वह उस ऋण से मुक्त हो सकता है। परन्तु वह बेचारा समझ तो सब कुछ ले यदि उसको समाज समझने दे। वह अपने को सामाजिक प्राणी समझने के नाते कर्ज को चुकाना अपना धर्म समझता है। यही कारण है कि वह कर्ज चुकाने को दूसरे महाजन से कर्जा लेता है और यह कर्ज पहले से भी अधिक हो जाता है।

(२) खेतो का बटवारा:— किसानो के खेत इतने छोटे होते है कि उनमे न तो पर्याप्त उत्पत्ति ही हो पाती है और न ही उनकी हिफाजत हो पाती है। यही कारण उनको ऋणग्रस्त करने के लिए काफी है। वास्तव मे जीवन उस किसान के लिए अत्यन्त कठोर और नीरस है जिसे स्वय अपने परिवार के लिए थोडे से एकडों पर निर्भर रहना पडता है।

३) जलवायु की अनिश्चितता:— भारत मे वर्षा का कुछ ठीक नही। जब आवश्यकता होती है तब तो वर्षा होती नही और अनावश्यकता होते हुए भी इतनी अधिक वर्षा हो जाती है कि फसल सारी नष्ट हो जाती है, बाढ आ जाती है जिससे किसान को काफी हानि होती है, जिससे उसे ऋण लेना पडता है और महाजन उससे मनमाना ब्याज वसूल करते है।

(४) कृषको की अज्ञानता और अशिक्षा — सम्भवत कृषको के लिए अज्ञानता और अशिक्षा एक गम्भीर समस्या है जिसके परिणाम-स्वरूप वह बाहर और घर दोनो स्थानो पर ठगा जाता है। यदि किसान शिक्षित हो तो वह कभी भी महाजन के चंगुल मे न फसे। इन दोनो कारणो से उसको महाजन के चगुल मे फसना पडता है और महाजन मनमाना कार्य करते हैं जैसा चाहते हैं किसानो से लिखवाते है और यदि मुकदमे बाजी भी हो तब भी उन्ही की जीत होती है।

५) सहायक धधो का अभाव — आधुनिक जनसख्या का भार जमीन पर होते हुए भी ग्रामीण धंधों का अभाव है। और कृषक के साल मे ५ माह से भी अधिक बेकार रहने पर-उसका महाजन के चगुल मे फंसना स्वाभाविक ही है। दूसरे जमीन मे उपयोगिता ह्रास नियम लागू होने से पूर्ण उत्पत्ति प्रति वर्ष नही हो पाती जिसके कारण उसको महाजन के पास जाना पडता है।

(६) कृषक की शारीरिक अयोग्यता और दरिद्रता— भारतीय किसान अन्य देश के किसान से बहुत गरीब है उसकी आय इतनी कम है कि वह आय खाने के लिए भी पर्याप्त नही है जिसका परिणाम यह होता है कि उसकी शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है जिसके कारण बीमारी उसको घेर लेती है। धार्मिक, सामाजिक बधनो मे बधे होने के कारण उसको और भी कर्ज लेना पडता है। उसकी तुलना केवल एक भिखारी से ही की जा सकती है।

(७) महाजन और उसके उधार देने का तरीका —महाजन जो ऋण किसान को देता है उसपर बहुत ऊंची दर से सूद लगाता है और ब्याज लेने के बहाने प्रतिवर्ष फसल का एक निश्चित भाग बाजार भाव से कम कीमत पर ले लेता है। निर्धन किसान की भूखी हड्डियों से नोचकर मास की अन्तिम मात्रा तक लेने में साहूकार को कोई हिचकिचाहट नहीं होती और कृषक को निर्धन तथा गुलामी का जीवन बिताने को बाध्य कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप कृषक की क्रिया शक्ति पंगु हो जाती है जिससे वह घोर भाग्यवादी हो जाता है। आशा और उत्साह उसके जीवन से सदैव के लिए विदा हो जाता है। ऋण की अधिकता, कृषक की तुरन्त आवश्यकता साख का अभाव और आर्थिक दुर्व्यवस्था कृषक को पूर्णतया साहूकार की मर्जी पर छोड़ देते हैं। महाजन किसान की मजबूरी की कमजोरी का पूर्ण लाभ उठाता है।

(८) ब्याज की ऊंची दर —निःसंदेह ऋण चाहे वह भोजन या बीज के लिए ही क्यों न दिया गया हो सवाया या ड्योढ़ा हो जाता है। फसल के खराब हो जाने पर किसान को भूखा मरना पड़ता है क्योंकि महाजन तो हर हालत में पहले का तै किया हुआ भाग ले लेता है और यदि वह ऐसा नहीं करता तो ब्याज इतनी तेजी से बढ़ता है कि पीढ़ियों तक चलता है।

(९) फिजूल खर्चो और सामाजिक कुरीतियां —भारतीय कृषक बहुत अपव्यय करता है। सामाजिक बन्धन ऐसे हैं कि गरीब होते हुए भी उसे फिजूल खर्च करना पड़ता है। प्रत्येक खुशी के अवसर पर कर्ज लेकर समस्त गांव की दावत करना उसका सामाजिक कर्तव्य हो जाता है। इस खर्च को वह महाजन से लेता है और सदैव के लिए ऋणी बन जाता है।

(१०) ब्रिटिश शासन की स्थापना —ब्रिटिश राज्य के आगमन से भारतीय कृषक और भी ऋणी हो गया क्योंकि भूमि जो अब तक एक बोझा समझी जाती थी अब एक मूल्यवान सम्पत्ति बन गई है। यातायात के साधनों ने उत्पादन की बचत को बेचने के लिए नये नये बाजार खोल दिये। इसके अतिरिक्त स्थिर कानून का प्रचलन हो जाने से शान्ति स्थापना के कारण स्वयं भूमि ही ऋणों की वापसी के लिए जमानत बन गई। एक और महत्वपूर्ण बात यह हुई कि मुद्रा अर्थ व्यवस्था का विकास हो गया और व्यापार बढ़ने पर धन आ बढ़ने लगा। इस प्रकार ब्रिटिश राज्य ने उधार लेने देने दोनों ही अवसरों को बढ़ा दिया।

(११) मुकदमेबाजी —एक तो किसान अज्ञानता की अकड़ में जकड़ा होता है और फिर मुकदमेबाजी की चोट उसकी शक्ति को और भी क्षीण कर देती है। शहर में आकर वकील एवं अन्य अफसर गांव के निवासियों से इतना पैसा मांगते हैं कि उनको विवश होकर महाजन से केवल मुकदमेबाजी के लिए पैसा लेना पड़ता।

(१२) भूमि और सिंचाई के भारी कर —लगान प्रबन्ध की कठोरता किसानों को उधार लेने को बाध्य करती है और उनकी कीमती सम्पत्ति उन्हें उधार लेने में सहायता देती है।

(१३) बिक्री सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव—किसान को अपनी फसल नीचो पर बेचनी पड़ती है क्योंकि बिक्री सबंधी नियम बड़े खराब हैं। लेकिन जब वह

अनाज खरीदता है तब उसको ऊंची दर देनी पडती है। कर्ज से दबा हुआ किसान अपनी पूरी फसल महाजन के हाथ बेचने के लिये बाध्य होता है।

आर्थिक स्थिति पर प्रभाव—उत्पादन उद्देश्यों के लिए उधार ली हुई रकम आसानी से निपटाई जा सकती है परन्तु अनुत्पादक कार्यों के लिए उधार लिया हुआ धन एक प्रकार का अभिशाप है जिसका प्रभाव आर्थिक, सामाजिक एव नैतिक जीवन पर पडता है। जब किसान यह समझ लेता है कि मेरी उत्पत्ति महाजन की हो जाएगी तब वह दिलचस्पी लेना छोड देता है। इस प्रकार उत्पादन कम हो जाता है। उसको अपनी फसल कम दामो पर महाजन के हाथ बेचनी पडती है जिससे उसकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है। ऋण के द्वारा ही सामाजिक सम्बन्ध टूट जाते है। सामाजिक असन्तोष फैलता है। किसान की सम्पत्ति छिन जाती है जिसके साथ साथ उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता भी छिन जाती है। एक श्रमिक विवाह अथवा मृतक सस्कार के लिए थोडी सी रकम उधार लेता है किन्तु उसके बदले मे उसे अपने ऋणदाता से केवल नाम मात्र का गुजारा लेकर काम करना पडता है। वह आवश्यक रकम कभी भी नही बचा पाता और यह सौदा उसकी जन्म भर की दासता मे परिणत हो जाता है।

उपचार के लिए किए गए प्रयत्न तथा सुझाव

ऋण के भार से ग्रामीणो की जो दशा बिगड रही थी उससे भारत सरकार अपनी आख बन्द न कर सकी। उसने इस समस्या के समाधान के लिये कई कानूनो का निर्माण किया और प्रत्येक कानून के साथ कर्जदारो की दशा सुधारने तथा महाजनो के अत्याचार को रोकने का प्रयास किया गया। १९२० से पहले जितने कानून बने उनका एक मात्र उद्देश्य सूद की दर पर नियन्त्रण रखना था। १९३० की आर्थिक मन्दी से प्रान्तीय सरकार को ऐसा कानून बनाना पडा जिससे कृषको के ऊपर से ऋण का भार कम हो गया। इस कानून के मुख्य उद्देश्य थे—(अ) मौजूदा ऋण की मात्रा कम कर दी जाये। (ब) ऋण के देने के लिये गाव मे सस्थाए खोली जाए। (स) महाजनो से कृषको को बचाया जाए। १९१९ मे बगाल तथा सयुक्त प्रात ने ऐसे कानून का निर्माण किया जिससे पूर्णतया महाजन पर नियन्त्रण रखा जा सकता था। महाजनों के लिए लाईसेन्स बनवाना तथा ऋणियों को हिसाब लिखकर भेजना प्राय सभी प्रांतो मे अनिवार्य हो गया। फिर सरकार ने दूसरे पक्ष पर ध्यान दिया। वह था ब्याज की अधिकतम दर जिस पर सरकार ने पूर्ण नियत्रण रखने का प्रयास किया। कई कानूनो द्वारा साहूकार ऋण वसूल करने मे किसी प्रकार भी ऋणी को नही सता सकता था।

इसके बाद राज्य सरकारो ने ऋण समझौता कानून भी पास किया जिसके द्वारा ऋण दाता तथा ऋणी तथा सरकारी तथा गैर सरकारी अफसर मिलकर ऋण को कम कर देते हैं और ऋणी को इस बात की सुविधा भी प्रदान करने का उद्देश्य रखा गया कि ऋण को किश्तो मे चुका दे।

गाडगिल कमेटी ने किसानो की माली हालत के सुधार पर जोर दिया और

कुछ सिफारिशे पेश की । इन्हीं सिफारिशो को एक दूसरी एग्रेरियन कमेटी ने भी किया । यह सिफारिशें इस प्रकार है । कृषको के ऋण का पूर्ण रूपेण निर्धारण अनिवार्य हो, महाजनो को अपने ऋण को रजिस्टर्ड करवाना अनिवार्य होना चाहिये तथा अपनी पूंजी आदि का विवरण किसी निश्चित समय सरकार के सामने रखना चाहिये । *कृषक को उचित रुपया मिलने की व्यवस्था होनी चाहिये ।* इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि व्याज मूलधन से अधिक न हो जाये । कर्ज के लिए कृषक बधक बैंक होना चाहिये आदि ।

इसमे सदेह नही कि प्रत्येक प्रान्त की सरकार ने ग्रामीण की समस्या सुलझाने तथा किसान को हर प्रकार से बचत करने का प्रयास किया और इसका परिणाम भी अच्छा हुआ और महाजन तथा साहूकारो की बेईमानी तथा अनाधिकार चेष्टाए काफी कम हो गई है परन्तु इससे यह सोचना कि किसानो को अब इस सम्बन्ध मे कोई तकलीफ नहीं रह गई है पूर्णतया गलत है ।

इस समस्या का समाधान सुगमता से दो साधनो द्वारा हो सकता है—प्रथम ऋणो को निपटाने से और द्वितीय नये ऋणो पर नियन्त्रण करने से । जब तक पुराने उधार का निपटारा नही किया जायेगा कृषि मे उन्नति का होना असम्भव है । धन हीन ऋणी किसान को दिवालिया घोषित किए जाने से इस समस्या का समाधान हो सकता है । इसके बाद अदालत मे ऋण चुकाये जाने की कार्यवाही को रोक देना चाहिये । *अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋणो पर प्रतिबन्ध लगाना । यह कार्य तब ही* किया जा सकता है जब शिक्षा का प्रचार किया जाये । इस सम्बन्ध मे ग्राम पचायत बहुत कुछ कर सकती है । किसान के ऋण को सीमित करने से भी इस समस्या का समाधान हो सकता है । भूमि के हस्तान्तरण के अधिकार पर नियन्त्रण से इस समस्या को सुलझाया जा सकता है । किसान को कुर्की से मुक्त करने से भी इस समस्या का समाधान हो सकता है ।

पचवर्षीय योजना तथा ग्रामीण राजस्व पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि की वित्त पर पूर्ण विचार किया गया है और योजना आयोग ने इस सम्बध मे जो योजना बनाई थी उसमे जमीदारी प्रथा के उन्मूलन पर विशेष जोर दिया था । योजना काल मे ऋण की व्यवस्था सहकारी समितियो तथा रिजर्व बैंक से की जायेगी । सरकार भी वित्तीय सहायता प्रदान करेगी । कृषक के लिए अल्प कालीन एव दीर्घकालीन ऋण की भी व्यवस्था की गई है । कृषको के लिए दीर्घकालीन ऋण के लिए भूमि बधक बैंको की व्यवस्था की है ।

भूमि समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति है । भारत की उन्नति इसी पर निर्भर है और इसकी उन्नति के लिए सामयिक अर्थ व्यवस्था का होना एक अनिवार्य कार्य है । इस क्षेत्र मे बिना सहयोग के सफलता प्राप्त करना असम्भव है ।

प्र० ३६—भारत मे ग्रामीण साख प्रदान करने वाली विभिन्न सस्थायें कौनसी हैं । इनके दोष क्या हैं ? *तथा उन्हें दूर करने के लिए क्या उपाय किए गए हैं ?*

(लखनऊ ४६, राजपूताना ५२, ५३, ५५, इलाहाबाद ३७, ४३)

Examine the existing agencies for providing agricultural credit in India What have been their Limitations ? What steps have been taken to improve them ?

(Lucknow 49, Rajputana 52, 53, 55, Allahabad 37, 43,

उत्तर—भारत एक कृषि प्रधान देश है परन्तु फिर भी इस महान एव महत्वपूर्ण कृषि उद्योग के लिए जो अर्थ साख व्यवस्था यहा उपलब्ध है वह सगठित एव पर्याप्त मात्रा मे नही है। अग्रेजी सरकार ने इस ओर कोई विशेष ध्यान नही दिया परन्तु जो कुछ थोडी बहुत सगठित सस्थायें कृषि कार्यों की अर्थ पूर्ति के लिए स्थापित की गईं ये किसानो की आर्थिक आवश्यकता को पूरी करने मे असमर्थ थी। फलस्वरूप कृषक ऋणग्रस्त होते गये और साख की समस्या रूप धारण करती गई।

ग्रामीण साख प्रदान करने वाली विभिन्न संस्थायें

हमारे देश का सम्पूर्ण किसान-ऋण किसान को कहा से मिलता है इसके स्रोतो का वर्णन हम नीचे करते है। वर्तमान समय मे निम्नलिखित स्रोतो से किसान ऋण पाता है।

(१) गाव का महाजन—किसान को ऋण प्राप्त होने का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत गाँव का महाजन है। महाजन रुपयो को उधार देने तथा व्यापार का कार्य करते हैं। महाजन ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के अनेक पहलुओ के सम्पर्क मे रहता है। कृषि उत्पादन के सभी कार्यो तथा सामाजिक एव धार्मिक कार्यों के लिये धन उधार देता है। साधारण रूप से वह अनेक उद्देश्यो की पूर्ति करने वाली इकाई के रूप मे सक्रिय रहता है। महाजनो मे गाव के बनिये का भी समावेश किया जा सकता है क्योकि वह अपने व्यापार के साथ ही लेन देन का व्यवहार भी करता है। परन्तु यह दोनो बहुत अधिक ब्याज वसूल करते हैं। और लेन देन में ये अनुचित कार्य करते हैं और हिसाब किताब मे बहुत गडबडी रखते है।

(२) सरकार—किसानो की आर्थिक सहायता प्रदान कर उनकी ऋण सबधी समस्याओ को सुलझाने के लिये सरकार ने १६ वी शताब्दी में कई कानून पास किये। सरकार किसानो को निम्नलिखित दो अधिनियमो के अन्तर्गत उधार देती है—प्रथम भूमि सुधार अधिनियम द्वारा कुओ आदि जैसे स्थायी सुधार कार्यों के लिये दीर्घकालीन साख दिया जाता है। दूसरे काश्तकार ऋण अधिनियम के आधीन बीज, औजार, खाद, पशु आदि के लिये अल्पकालीन साख का प्रबन्ध करना। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सब ऋण उत्पादन कार्यो के लिए ही दिया जाता है। इस प्रकार के दिये जाने वाले सरकारी ऋण को तकावी कहते है।

(३) सहकारी साख समितिया—सहकारी आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य किसानों को एव ग्रामीण जनता को महाजन के चगुल से छुडाने का है। यह किसानो को कृषि कार्यों के लिये सगठित ढग पर पर्याप्त ऋण इत्यादि की व्यवस्था करता है। यह सदस्यों को निम्नलिखित उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऋण प्रदान करती है। उत्पादक कार्य जैसे खेती के चालू कार्यो के लिए अल्पकालीन ऋण, भूमि के स्थाई

सुधार के लिये दीर्घकालीन ऋण, कुछ अनुत्पादक कार्य के लिए जैसे विवाह आदि के लिये तथा पुराने ऋणों को चुकाने के लिय यह उधार दिया करती है। यह व्यक्तिगत जमानत पर और जायदाद पर भी ऋण दे देती है जो कि किश्तों द्वारा चुकाया जाता है।

(४) भूमि बन्धक बैंक—दीर्घकालीन ऋण किसानों को भूमि बधक बैंकों से भी प्राप्त होता है। भूमि बधक बैंक केवल पुराने ऋणों के भुगतान के लिये ही ऋण देते है। इन्होंने भूमि सुधार के लिए ऋण देन की ओर कोई विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया है। इनकी स्थापना सर्वप्रथम मद्रास राज्य म १९२९ में हुई तदुपरान्त बम्बई एव उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पजाब, बगाल, आसाम आदि प्रांतो म भी इसकी स्थापना म पग उठाये गये हैं।

(५) वाणिज्य बैंक—इनका इस सम्बन्ध म कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि यह कृषक को प्रत्यक्ष रूप से ऋण नही देते है। ये मध्यम वर्ग के लोगो को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं और नाम मात्र को ही कृषि की आर्थिक सहायता करते हैं।

इन स्रोतों मे पाए जाने वाले दोष

प्राचीन समय म भी महाजनो द्वारा ही कृषि को साख प्राप्त होता था परन्तु उनको वह अधिकार प्राप्त नही थे जिनसे किसान की भूमि या मकान छिन जायें और ऋण की समस्या भी बनी रहे। इस बात को प्रोत्साहन अंग्रेजी सरकार के आगमन से हुआ और महाजनो को ऐसे अवसर प्राप्त हुए जिनकी आड से वह किसान को लूटते थे। परन्तु आधुनिक युग मे किसान को देखते हुये महाजनो की उपयोगिता बहुत अधिक है और यह तब तक बनी रहेगी जब तक कृषि मे आश्चर्यजनक क्रांतिकारी परिवर्तन न आ जाय और किसान अपने पैरो पर खडा न हो जाए। किन्तु महाजनों द्वारा जो ऋण देने की प्रणाली है उसमे सुधार अति आवश्यक है नही तो वे कृषकों को पनपने नही देंगे क्योंकि महाजन लोग फसल को कर्जे के बदले किसान से सस्ते दामो में खरीद लेते हैं।

सरकार ने किसानो की ऋण समस्या सुलझाने के लिए नियम तो अवश्य बना दिए किन्तु वास्तव मे किसानो को इससे कुछ विशेष लाभ नही हो सका है क्योंकि किसान को समय पर यह सहायता नही दे पाते जबकि दूसरी ओर किसानों को महाजनो से तुरन्त एव शीघ्र ही ऋण मिल जाता है। सरकारी ऋण के लिए किसानों को पटवारी कानूनगो, नायब तहसीलदार आदि की सिफारिश की आवश्यकता पडती है जिससे उनको काफी परेशानी होती हैं। दूसरे ऋण की वसूली का तरीका बहुत कठोर है। उपरोक्त कारणो से किसानो का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

सहकारी साख समितिया एकाकी एव एकसूत्रीय हैं जो केवल ऋण की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, किसान की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति उनसे नहीं होती। आवश्यकता इस बात की है कि बहुउद्देशीय सहकारी ऋण समितियों की स्थापना की जाये जो किसानो की ऋण समस्या का समाधान करे। इन समि-

तियों से ग्रामीणों को कोई विशेष लाभ नहीं है क्योंकि अनपढ़ किसान इसके यांत्रिक रूप को समझने में असमर्थ हैं।

समाधान के लिए किए गए उपाय

इन सभी दोषों को दूर करने के लिये प्रस्तावित कृषि साख प्रमण्डलों की स्थापना की गई। इनका कार्य बड़े २ किसानों को बड़ी राशि में ऋण देना है। इसके अतिरिक्त दीर्घकालीन मध्यकालीन, अल्पकालीन सभी प्रकार के ऋणों को देने की व्यवस्था इनके अन्तर्गत की गई है। भारत जैसे देश में जहां के किसान असगठित एवं साधनहीन है कृषि अर्थ प्रमण्डल और प्रान्तीय सहकारी अधिकोष सहकार्य होना चाहिए। रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया की स्थापना से कृषि साख की व्यवस्था, देखभाल तथा आवश्यक सलाह देने का कार्य इस बैंक को सौंपा गया। बैंक का कृषि साख विभाग इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। सहकारी साख आन्दोलन को सगठित करने तथा सुचारु रूप से चलाने में रिज़र्व बैंक ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। रिज़र्व बैंक ने १९५४ में एक अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण का आयोजन किया जिसकी रिपोर्ट विशेष महत्व रखती है।

कृषि साख के पुनर्सगठन के हेतु अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण कमेटी ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये जो वास्तव में सराहनीय थे। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को सुचारुरूप से सगठित करने के लिये इस कमेटी ने ग्रामीण साख समग्रीकरण योजना प्रस्तुत की जिसका मूल स्रोत राज्य द्वारा त्रिस्पी वित्तीय प्रशासन सबन्धी तथा यांत्रिक सहायता है। इस योजना के अन्तर्गत सरकार का कार्य केवल नियन्त्रण करना, सलाह देना एव उपर्युक्त त्रिस्पी सहायता प्रदान करना होगा। इसके बाद इसने बतलाया कि व्यापारिक बैंकों को इसके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह अपनी शाखाएं कस्बों और गावों में खोलें जिससे उनकी पहुंच ग्रामीण जनता तक हो सके। यह भी बतलाया कि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में कृषि साख के क्षेत्रों में सहकारी बैंकों का उत्तरदायित्व अन्य बैंकों से अधिक है। इसलिए सरकार को इन बैंकों को सहायता देकर प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे किसानों को लाभ हो सके। सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान दिया है। इसके अतिरिक्त इस कमेटी ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि प्रारम्भिक और केन्द्रीय भूमि बधक बैंकों की स्थापना बढ़ाना भी इस समस्या के समाधान में योग देगा। उपरोक्त सुझावों पर सरकार ने विशेष ध्यान देकर इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है।

पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रगति—पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि सबन्धी अल्पकालिक साख का प्रबन्ध प्राय सहकारी समितियों और राज्य द्वारा हुआ है। इस क्षेत्र में काफी सफलता प्राप्त हो चुकी है। रिज़र्व बैंक ने इस सफलता में विशेष योग दिया है। परन्तु फिर भी भारत के अधिकतर राज्य में सहकारी बैंकों तथा सहकारी समितियों की दशा में बहुत कुछ सुधार बाकी है।

मध्यकालीन साख के लिए योजना में इस मद पर व्यय करने के लिए ५ करोड़ रुपये का आयोजन किया गया। सरकार और रिज़र्व बैंकों द्वारा स्वीकृत ऋण का ५० प्रतिशत उन क्षेत्रों में सहायतार्थ दिया जायगा जहां सामुदायिक विकास योजना

की पूर्व अनुमति से दिया जाता है अर्थात् सरकार इनके कार्यो पर पूर्ण नियंत्रण रखती है जिससे कृषको का शोषण न हो सके।

(३) अर्द्ध सहकारी बैंक—इस प्रकार के बैंको मे सहकारी संस्थाओ तथा व्यापारिक संस्थाओ दोनो के शेयर होते हैं। अधिकांश भारतीय बैंक अर्द्ध सहकारी बैंक होते है। इनमे ऋण लेने वाले सदस्यो के साथ २ कुशल व्यापारियो और बडे २ पूंजी पतियो से पूंजी की बडी २ राशियो को आकर्षित करने के लिए, ऋण न लेने वाले व्यक्तियो को शेयर लेने की स्वीकृति दी जाती है और सीमित दायित्व की व्यवस्था की जाती है। प्रत्येक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार प्राप्त होता है। भूमि की कीमत को सरकार द्वारा नियुक्त शिक्षित अफसर आंकते हैं। ऋण देने के पूर्व रजिस्ट्रार की स्वीकृति अनिवार्य होती है।

इन बैंको का संगठन करते समय इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि उसका विधान और कार्य सीधा सादा हो और प्रबन्ध उत्तम हो। इनकी सफलता राज्यो पर निर्भर है। ऋण पत्रो पर मूलधन तथा ब्याज के भुगतान की गारंटी देकर, ऋण पत्रो के कुछ भाग को मोल लेकर, तथा विशेष सुविधाएं प्रदान करके इस संस्था को सफल बनाया जा सकता है।

कार्य—यह बैंक दीर्घकालीन ऋणों को प्रदान करने का कार्य करते हैं। यह ऋण निम्नलिखित रूपो मे दिए जाते है। जैसे भूमि को खरीदने के लिये, खेतो की चकबन्दी के लिये, पैतृक ऋण चुकाने के लिये, कृषि भूमि को रहन से छुड़ाने के लिये एवं कृषि भूमि मे स्थाई सुधार करने के लिये यह बैंक ऋण देती है।

उपरोक्त कार्यो को कार्य रूप देने के लिये एक मण्डल होता है। जिसके ६ सदस्य होते हैं और जो वेतन रहित होते हैं। कृषक ऋण प्राप्त करने के लिये छपे हुये फार्म को भर कर समस्त ब्योरा देकर बैंको को समर्पित कर देते हैं। उसके बाद निरीक्षक द्वारा उक्त ब्योरे की जाच पडताल की जाती है। साथ ही साथ कृषक की ऋण चुकाने की क्षमता की जांच भी की जाती है। उपरोक्त ब्योरे की कानूनी जाच भी की जाती है। इसके बाद समस्त कागज सब-रजिस्ट्रार के पास भेजे जाते है जो जाच पडताल के बाद अपनी रिपोर्ट देता है। इस रिपोर्ट पर ही कृषक ऋण पा सकता है। यदि रिपोर्ट में ऋण ना देने को कहा गया हो तो यह बैंक कृषक को ऋण नही दे सकते। जो ऋण प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिये जाते है उन्हे डिप्टी रजिस्ट्रार के पास भेज दिये जाते हैं जो अपनी सिफारिश सहित उसे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक के पास भेज देता है। केन्द्रीय बैंक की अनुमति पर प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक ही कृषक को ऋण दे देता है। इससे पूर्व भी प्रारम्भिक भूमि बंधक बैंक द्वारा प्रार्थी से केन्द्रीय बैंक के नाम बंधक पत्र लिखकर भेजने का कार्य और किया जाता है। ऋण प्रायः २० वर्ष के लिए दिया जाता है। ऋण की संख्या ५०००) से अधिक नही होती। केन्द्रीय बैंक जिस सूद की दर पर ऋण देता है उससे १ प्रतिशत अधिक सूद पर प्रारम्भिक बैंक कृषक को देते है। ऋणी अपना ऋण किश्तो मे भी चुका सकता है। केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक प्रारम्भिक बैंको का निरीक्षण भी करता है।

महत्व—ग्रामीण ऋण के सूक्ष्म और कठिन प्रश्नों के विवेचन में सावधानी की बड़ी आवश्यकता है। बुरे ऋण और अवशिष्ट ऋण से बचने के लिये भी सावधानी की आवश्यकता है। इसका बहुत महत्व है पर इतना महत्व होने हुए भी भूमि बन्धक बैंक प्रणाली का सफल ढाचा नहीं है। मध्यप्रदेश, बरार अजमेर, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, बंगाल जैसे प्रांतों मे इसको विशेष सफलता प्राप्त नही हुई है। वास्तव में इसके महत्व को समझने के लिये किसी ने अपना ध्यान इस ओर आकर्षित भी नही किया है मद्रास प्रान्त में इस आन्दोलन को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। निःसंदेह इन बैंको से कृषि को काफी लाभ है परन्तु इनकी सफलता निम्नलिखित बातों पर निर्भर है। जमानत के तौर पर रखी जाने वाली भूमि की कीमत का सही अदाज प्रतिवर्ष वार्षिक किश्त चुकाने की सामर्थ्य, ऋण का फैसला, उसको चुकाने की शर्तें तथा किश्तों मे ठीक समय पर वसूल आदि पर ध्यान देना इनकी सफलताओं के लिये परम आवश्यक है।

इस प्रकार के बैंको की सहायता से कृषकों को पुराने ऋण मे छुटाया जा सकता है। दीर्घकालीन ऋणो से कृषि की उन्नति एवं कृषि को उत्तम ढग से आसानी से किया जा सकता है जिससे उत्पादन मे अवश्य वृद्धि होगी। निःसंदेह यह एक अच्छी योजना है जिससे इस समस्या का समाधान सुगमता से हो सकता है। उपरोक्त विवरण से इसका महत्व कितना है अनुमान लगाया जा सकता है।

परन्तु इन बैंको को और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिये इनमे कई प्रकार के सुधार करने की आवश्यकता है। प्रथम सुधार तो यह है कि इनके काम करने का ढग एकसा कर दिया जाए। दूसरे हर राज्य मे एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना करनी चाहिए। जहाँ यह नही खुल सकते हैं वहा प्रान्तीय बैंको को ही सब अधिकार प्रदान कर देना चाहिये। तीसरे जहा कृषकों की भूमि की बिक्री पर रोक है, वहाँ कानून इस प्रकार बदल देने चाहिए कि भूमि सुगमता से हस्तान्तरित की जा सके। चौथे इनको सरकारी सहायता मिलनी चाहिये।

अध्याय ११

कृषि मजदूर

प्रश्न ३८—भारत मे भूमिहीन किसानों को पूर्ण रोजगार दिलाने के लिए क्या उपाय किये गए हैं ? अपने सुझाव दीजिए। (आगरा १९५२)

What Steps have so far been taken in India to provide full employement to landless workers ? Give your own suggestions

(Agra 1952)

उत्तर— भूमिहीन किसानो से हमारा अर्थ उन व्यक्तियों से है जो खेत पर मजदूर की हैसियत से काम करते हैं और जिनके पास अपनी स्वय की कोई भूमि नही होती और यदि होती भी है तो वह इतनी कम कि उससे उसका तथा उसके परिवार वालो का पालन पोषण नही हो सकता। वैसे तो भारतीय किसान की भी आर्थिक स्थिति शोचनीय है परन्तु इन भूमिहीन मजदूर किसानो की हालत और भी बुरी है। पिछले कुछ वर्षों मे सरकार का ध्यान ऐसे भूमिहीन किसानों की दशा सुधारने तथा उन्हे पूर्ण रोजगार दिलाने की ओर गया है। इस समस्या के समाधान से पूर्व यह उचित समझा गया कि समस्या की विशालता को पूरी छान बीन कर ली जाये।

१९५१ की जनगणना के अनुसार भारत मे भूमिहीन किसानो तथा उनके परिवार वालो की कुल सख्या ४ ६ करोड है जो कृषक जनसख्या की २० प्रतिशत के लगभग है। १९५०-५१ मे कृषि श्रमिक जाच समिति ने, जिसकी रिपोर्ट १९५६ मे प्रकाशित हुई, इस विषय मे और अधिक प्रकाश डाला। इस जाच के अनुसार भारत मे ३३ ४ प्रतिशत कृषक परिवार कृषक मजदूरो के रूप मे काम करते हैं जिनमे से आधो के पास कोई भूमि नहीं है और शेष आधो के पास बहुत थोडी सी भूमि है। इस जाच से यह भी पता चला है कि ८५ प्रतिशत कृषक मजदूर केवल आकस्मिक कार्य करते हैं जैसे हल चलाना, घास खोदना तथा फसल काटना इत्यादि। एक परिवार की वार्षिक औसत आय ४८७) है और प्रति व्यक्ति आय १०४) है जबकि राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय का औसत २६५) है। इससे पता चलता है कि इन भूमिहीन किसानों की आर्थिक दशा कितनी खराब है। रोजगार के विषय मे पता चला है कि इन लोगो को साल मे केवल २१८ दिन रोजगार मिलने का औसत है यद्यपि यह औसत देश के विभिन्न भागो में एक समान नही है। २१८ दिन के औसत रोजगार मे से १८९ दिन कृषि कार्यों में तथा २९ दिन गैर कृषि कार्यों मे रोजगार मिलता है। इस प्रकार मजदूरी सहित रोजगार साल मे ७ महीने, पूर्णतया बेरोजगारी साल मे ३ महीने तथा स्वय जनित रोजगार साल मे दो महीने के लिए मिलता है। १५

प्रतिशत कृषि मजदूर ऐसे भी हैं जो भू स्वामियों के पास सारे साल काम पर लगे रहते हैं जबकि १६ प्रतिशत मजदूरों को मजदूरी सहित कोई रोजगार सारे साल तक प्राप्त नहीं होता।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भूमिहीन किसानों की गरीबी और हीन दशा का कारण रोजगार की कमी तथा कम मजदूरी की दर है। इसका मुख्य कारण यह है कि भूमि की कमी है तथा भू स्वामी किसानों की स्वय की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है।

भूमिहीन किसानों की दशा सुधारने के लिए किए गये उपाय

[MEASURES ADOPTED AMELIORATE THE CONDITION OF LANDLESS WORKERS]

भूमिहीन किसानों की समस्या का वास्तविक समाधान उस समय सम्भव होगा जबकि हमारी कृषि का नये सिरे से पुनरुत्थान हो और भूमि पर से जन संख्या का भार कम करके अन्य सहायक व्यवसायों का विकास हो। भारत सरकार इस समस्या के समाधान के लिये निम्नलिखित उपाय प्रयोग में ला रही है –

(१) जमींदारी उन्मूलन तथा शोषण का अन्त–(Abolition of Zamindari & end of Exploitation) स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद राष्ट्रीय सरकार का ध्यान भूमि व्यवस्था की ओर गया और विभिन्न राज्यों मे जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार कानून पास किये गये जिसका मुख्य उद्देश्य शोषण को समाप्त करके किसानों की आर्थिक दशा में सुधार करना था।

(२) न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण Fixation of Minimum wages) १९४८ मे न्यूनतम मजदूरी कानून पास किया गया और राज्य सरकारों को यह भार सौंपा गया कि कृषि मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये १९४८ मे एक अखिल भारतीय जाच समिति स्थापित की गई जिसमे समस्त देश के ८१३ ग्रामो मे से आकड़े प्राप्त किये गए। इस जाच के फल स्वरूप प्रथम पच वर्षीय योजना के काल मे पजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश तथा अन्य राज्यो मे न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित करदी गई है और शेष राज्य इस दिशा मे आवश्यक कदम उठाने जा रहे है।

(३) खेती योग्य बंजर भूमि के सुधार (Reclamation of cultivable waste land)–केन्द्रीय ट्रैक्टर सस्था द्वारा खेती योग्य बजर भूमि का सुधार किया जा रहा है और यह भूमिहीन किसानो को सहकारिता के आधार पर दी जा रही है। पंचवर्षीय योजना मे १५ लाख एकड भूमि को खेती योग्य बनाने तथा २० लाख एकड भूमि को सुधारने का अनुमान है इससे भूमिहीन किसानो की समस्या बहुत कुछ हल हो जायेगी।

(४) व्यक्तिगत जोत की उच्चतम सीमा निर्धारित करना (Fixation of ceilings of Individual Holdings)–सरकार एक उच्चतम सीमा निर्धारित करने जा रही है जिससे अधिक भूमि किसी व्यक्ति के पास नहीं रह

सकेगा। जिन लोगो के पास अधिक भूमि है वह उनसे प्राप्त करके भूमिहीन किसानो मे बाट दी जायेगी। अभी तक यह निश्चय नही हो सका है कि यह उच्चतम सीमा कितनी भूमि पर निर्धारित की जाए।

(५) भूदान यज्ञ (Bhoodan Movement)—आचार्य विनोबा भावे द्वारा प्रतिपादित भूदान यज्ञ म भूमि दान के रूप म प्राप्त की जाती है और उस भूमिहीन किसानो मे सहकारिता के आधार पर वितरित किया जाता है। अभी तक कुल ४३ लाख एकड भूमि भूदान के रूप मे प्राप्त हो चुकी है जिसमे से ४ लाख एकड भूमि भूमिहीन किसानो को बाट दी गई है।

(६) सहकारी ग्राम प्रबन्ध (Co-operative village Management)—योजना कमीशन का विचार है कि गाव की समस्त भूमि को एक साथ एकत्र करके सहकारिता के आधार पर खेतो कराई जाए और इसका प्रबन्ध ग्रामवासियो की एक समिति द्वारा हो। ऐसा हो जाने से भूमिहीन किसानों की समस्या स्वय हल हो जायेगी और समस्त ग्रामवासियों के सामूहिक परिश्रम के फल म यह लोग भी भागीदार बन जायेंगे। इस प्रकार उत्पादन मे वृद्धि होगी और किसी न किसी रूप म सबको रोजगार मिल सकेगा।

(७) योजना कमीशन ने इस बात की भी सिफारिश की है कि राष्ट्रीय तथा प्रत्येक राज्य के स्तर पर सरकारी व्यक्तियो के बोर्डों की स्थापना की जाये जिन । उद्देश्य भूमिहीन किसानो को बसाने के सम्बन्ध मे परामर्श देना तथा समय समय पर कार्य की प्रगति की देखभाल भी करना हो।

(८) कृषि मजदूरो का सङ्गठन (Organization of Agricultural Labour)—जिस प्रकार उद्योगो म काम करने वाले मजदूरो ने श्रम सघ स्थापित हो गये हैं उसी प्रकार कृषि मजदूरो के सगठन स्थापित होने चाहिए। प्रत्येक गाव मे एक श्रम सघ की स्थापना हो और एक केन्द्रीय सस्था स्थापित की जाए जो इन श्रम सघो के कार्य क सचालन करे। इस योजना से कृषक मजदूरो की अज्ञानता दूर होगी और उनमे एक प्रकार की जागृति तथा चेतना उत्पन्न होगी। योजना कमीशन ने सुझाव दिया है कि सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गाव म श्रम सहकारी समितियों की स्थापना होनी चाहिये और प्रत्येक विकास खण्ड मे एक श्रम सहकारी यूनियन होनी चाहिए जो प्रत्येक गाव की श्रम समितियो की देख-भाल कर सके।

(९) ग्राम उद्योगों का विकास (Development of Rural Industries) भारत सरकार इस बात के लिये विशेष रूप से प्रयत्नशील है कि हमारे देहातों के ग्राम उद्योगो का समुचित विकास हो। ग्राम उद्योगो के विकास से जनसख्या का भार भूमि पर कम हो जायगा। किसानो को रोजगार मिलेगा और कृषि की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि होगी। दूसरी पचवर्षीय योजना मे ग्राम उद्योगो के विकास की विशेष रूप से व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक विकास कार्यों मे

[उ]न लोगो को रोजगार देने का प्रयत्न किया जाता है–जैसे कुएं खोदना, सडके बनाना [त]था नहरें खोदना इत्यादि।

अन्य सुझाव (Other Suggestions)—भूमिहीन किसानो की दशा को [स]ुधारने के लिये तथा उनके पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिए उपरोक्त उपायो [क]े अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य सुझाव भी दिए जा सकते हैं :—

सिंचाई की सुविधाओ तथा खेती के तरीको मे सुधार किया जाये जिसमे [कृ]षि आय मे वृद्धि हो। कृषि आय मे वृद्धि होने से कृषि मजदूरो के वेतन की दर [ब]ढाई जा सकती है क्योकि कम कृषि आय होने पर मालिक मजदूरो को अधिक वेतन नही दे सकता। यातायात के साधनो का विकास तथा ग्रामीण ऐक्सचेंजो की स्थापना—इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रोजगार के दफ्तर बेकार लोगो को काम दिलाने का कार्य करते है उसी प्रकार ग्रामीण श्रम एक्सचेंज भूमिहीन किसान मजदूरो की सहायता कर सकें। इस कार्य के लिये यातायात के सस्ते साधनो का विकास जरूरी है।

प्रश्न १६—भूदान यज्ञ आन्दोलन पर एक छोटा सा निबन्ध लिखिये। क्या इससे भूमिहीन मजदूरो की समस्या का समाधान हो सकता है?

(पटना १६५४, पंजाब १६५५)

Write a short essay on 'Bhoodan Yojna'? Will it solve the problem of landless labourers in India? *(Patna 54, Panjab 55)*

उत्तर – भूदान आन्दोलन का विश्व के इतिहास मे विशेष महत्व है। भूदान आन्दोलन एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम है। प्रारम्भ मे इस आन्दोलन पर किसी का विश्वास नही था परन्तु आज जब सम्पूर्ण गाव के गांव भूदान मे प्राप्त हो रहे हैं इसकी महानता को समझने के लिए हमारी सरकार, राजनीतिज्ञ व अर्थशास्त्री आदि का ध्यान इस ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है।

भूदान यज्ञ का उद्देश्य है भूमि दान के रूप मे मागकर भूमिहीन किसानो मे उसका वितरण। परन्तु इसका उद्देश्य यही तक सीमित नही है। यह आंदोलन राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र मे क्रान्ति उत्पन्न करके एक वर्गहीन, शोषणहीन व दण्ड मुक्त समाज की स्थापना करना भी है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भूदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान और जीवनदान आदि कार्य मुख्य साधन हैं।

भूमि वितरण की समस्या भारत के सामने ही नही वरन् समस्त एशिया के सामने है। इस समस्या के समाधान के लिये सरकार ने कानूनी कदम उठाये हैं परन्तु इससे इस समस्या का समाधान बहुत मुश्किल है। १६५० मे तेलगाना के क्षेत्र मे इस समस्या ने भारत की आंखें खोल दी क्योकि जनता उस समय की साम्यवादी एव आतकवादी कार्यों से काफी परेशान थी। उसी समय सत विनोबा भावे वहा गये और गरीबों की दशा से प्रभावित होकर भूमि दान मे मागने लगे। जब उनको प्रथम बार दान मिला तब उनके हृदय मे इस आंदोलन को समस्त देश मे फैलाने का विचार

आया और उन्होंने यह प्रण किया कि समस्त भारत की यात्रा करके हम भूमि दान लेंगे और भूमिहीन मजदूरों को बाँटकर गरीबों की सहायता करेंगे।

विनोबा जी को अभी तक इस कार्य में पूर्ण सफलता मिली है। ऐसे महापुरुष को दान देने में भला किसको सकोच होगा? सबने इसको अपना सौभाग्य समझा और ग्रामवासियों में अमीर तथा गरीब सभी ने भूमि दान दिया। इस प्रकार विनोबा जी का भूमि धन, गांव के गांव सब दान में मिलने लगे और इस आन्दोलन की काफी प्रगति हो रही है।

इस आन्दोलन की प्रगति को देखकर इस बात की आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही भूमि समस्या का हल हो जायेगा। भूदान यज्ञ का साम्यवादी तथा एक आध अन्य दल को छोड़कर सभी राजनैतिक एवं सामाजिक दलों ने समर्थन किया है। भूमि का वितरण भी निष्पक्ष व्यक्तियों द्वारा निष्पक्ष भाव से किया जा रहा है। इसके द्वारा बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं जिनसे भूमि की समस्या का समाधान हो जाने की पूरी आशा की जा सकती है। वह कार्य निम्नलिखित हैं–(अ) भूमिहीनों को भूमि प्राप्त हो रही है इसलिए उनको सहकारी कृषि समितियों की ओर सरलता से आकर्षित किया जा सकता है। (ब) भूमिहीन को कम से कम ५ एकड़ सूखी या एक एकड़ तर भूमि देकर भूमि का वितरण हो रहा है। (स) भूदान से भूमि का न्यायपूर्ण वितरण हो जाने की सम्भावना है। (द) भूमि का मूल्य गिर रहा है अतः मुआवजे का प्रश्न समाप्त होता जा रहा है। (ढ) भूमि का वितरण ग्राम सभाओं तथा भूमिहीनों की सूचना के अनुसार हो रहा है अतः पक्षपात और भ्रष्टाचार का तनिक भी भय नहीं है।

इस आन्दोलन में शोषण विहीन व दण्ड निरपेक्ष समाज की स्थापना का लक्ष्य निहित है। पं० नेहरू के शब्दों में "भूदान यज्ञ सही तरीके का आन्दोलन है और प्रत्येक व्यक्ति का यह फर्ज है कि वह पूर्णरूपेण इसके महत्व को समझे और इसमें यथाशक्ति सहयोग दे।" इस आन्दोलन ने देश में राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अनेक कार्य किए हैं जो निम्नलिखित हैं—

राजनैतिक कार्यों के अन्तर्गत इसने जनता में पुरुषार्थ की प्रेरणा जगाकर यह भावना भरी है कि लोकतन्त्र का मूल आधार लोकशक्ति ही है। इस आन्दोलन ने यह समझाया है कि लोकतन्त्र की सफलता के लिये राज्य की सत्ता के बदले जनता की जीवनव्यापी सर्व स्पर्शी सत्ता अनिवार्य है।

आर्थिक कार्यों के अन्तर्गत यह बताया है कि उत्पादन के साधन सौदे की वस्तु नहीं है, न ही संग्रह की वस्तु है। वे उत्पादन के साधन मात्र हैं। इस लिये उनका समाजीकरण होना चाहिए। इसने महत्वपूर्ण कार्य यह भी किया है कि उत्पादन के साधन अनुत्पादक व्यक्तियों के हाथ से लेकर उत्पादक के लिए दिया है। उत्पादन के साधन पर व्यक्ति विशेष का स्वामित्व अनुचित है अतः साधनों पर समाज का अधिकार होना चाहिये। स्वामित्व का आधार बदलने के लिए आवश्यक व अनुकूल वातावरण भूदान आन्दोलन ने पैदा किया है।

सांस्कृतिक कार्यों के अन्तर्गत भूदान ने क्रांति की प्रक्रिया में अहिंसा, बंधुत्व एवं सहयोग की भावना को जागृत किया। इसने बताया कि मनुष्य की मूल-भूत सत्प्रवृत्ति पर विश्वास से ही आदर्श समाज की रचना की जा सकती है। भूदान आन्दोलन ने संसार के सामने यह सिद्ध कर दिया कि क्रांति के लिये लोक शिक्षण द्वारा व्यक्तियों के विचार परिवर्तन एवं हृदय परिवर्तन अमूल्य साधन हैं।

यदि भारत अपनी भूमि समस्या इस प्रक्रिया से हल कर सका तो वह समस्त संसार के समक्ष एक आदर्श रखेगा और संसार को यह प्रदर्शित करेगा कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन सार्वजनिक सत्तावादी प्रक्रियाओं या सर्वसत्ताधारी सरकारों द्वारा सफलता पूर्वक नहीं किये जा सकते वरन् जनतन्त्रात्मक उपायों से ही किये जा सकते हैं।

इस आन्दोलन से काफी भूमि प्राप्त हो गई है परन्तु समस्या इस बात की है कि भूमिहीनों में भूमि निष्पक्ष भाव से वितरण करने और उस पर खेती करने के लिये उन्हें अन्य सहायता देने की है। भूमि को हस्तान्तरित करने में कानून में बहुत देरी हो जाती है। इसलिये इस काम में काफी ढीलेपन से काम हो रहा है। खेती करने के लिये किसानों को बहुत बड़ी धन राशि देनी पड़ेगी क्योंकि बैल कुए हल आदि सामान के लिये वह इतनी बड़ी धन राशि नहीं व्यय कर सकते। वैसे तो काफी धन इस आन्दोलन के समय में प्राप्त हुआ है पर अब भी हमारी सरकार को ग्रामीणों तथा व्यापारियों को धन राशि दान देकर इस समस्या के समाधान में सहयोग देना चाहिये।

वितरण में जो सबसे बड़ी कठिनाई है वह यह कि भूदान में प्राप्त हुई भूमि कोई एक ही स्थान पर नहीं है। दान की गई भूमि के आस पास अन्य किसानों के भी खेत हैं। अब यदि वह भूमि एक परिवार को दे दी जाय तो एक तो यदि वह ५ एकड़ से कम होगी तो उस परिवार के लिये अपर्याप्त रहेगी, और यदि उस भूमि के पास वाली भूमि के अन्य किसान को ही यह भूमि दी जाये तो भूमिहीन खेतीहर मजदूर भूमिहीन ही रह जायेंगे।

भूमि का वितरण आर्थिक जोत के आधार पर किया जाना चाहिये जिससे प्रत्येक परिवार का भरण पोषण सुगमता से हो जाये। दूसरे प्रत्येक परिवार को भूमि एक चक में दी जानी चाहिये। भूमि ऐसे किसान को देनी चाहिये जो उस पर गत तीन वर्षों से खेती कर रहे हों। भूमि वितरण के लिये एक ऐसी समिति का निर्माण होना चाहिये जो वितरण के साथ साथ भूमि-न्यायालय के रूप में बिना किसी भेद भाव के कार्य करे।

वितरण के बाद स्वामित्व का सवाल है जिसके अनुसार किसान का स्वामित्व होने के बाद भी पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार नियम या कर्ज लेने अथवा भूमि को रहन रखने में वितरण का यह अधिकार समाप्त हो जायेगा और भूमि या तो छोटे २ टुकड़ों में बट जायेगी या साहूकारों के आधीन हो जायेगी। जिससे उपरोक्त

इस आन्दोलन के सुधारो पर पानी फिर जायेगा। अत. इसको रोकने के लिये कानून का सहारा लेना अति आवश्यक है। इस दिशा मे जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है। सरकार को यह ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है कि भूमि का उप-विभाजन तथा उपखंडन न हो सके। साथ ही कृषक की अर्थ व्यवस्था का ऐसा समुचित और सुसगठित प्रबन्ध हो कि उसे ऋण प्राप्त करने के लिये महाजन के चगुल मे न फसना पडे। तभी वास्तविक उन्नति सम्भव हो सकती है।

इस आन्दोलन से भारत मे भूमि की समस्या का अन्त हो जायेगा और कृषक सच्चे भावो मे भूमि का मालिक होगा तथा प्रत्येक ग्रामीण मजदूर आत्मनिर्भर हो जाएगा क्योकि इस आन्दोलन से भूमिहीन मजदूर भूमि पा सकेंगे और स्वय खेती करेंगे। अत गावो से मजदूरो की बेरोजगारी की समस्या का भी सरलतापूर्वक समाधान हो जायेगा।

भूदान आन्दोलन की प्रगति

भूदान आन्दोलन जो एक छोटे पैमाने पर १८ अप्रैल १९५१ को प्रारम्भ हुआ था आज समस्त देश मे फैल चुका है। इसका उद्देश्य ५०० लाख एकड भूमि दान के रूप मे प्राप्त करना है ताकि गाव मे रहने वाले प्रत्यक परिवार के पास अपनी कुछ भूमि अवश्य हो। भूदान से आगे ग्राम दान आन्दोलन भी इसमे सम्मिलित हो गया है। भूदान के महत्व को स्वीकार करते हुये द्वितीय पचवर्षीय योजना ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि भूमि हीन किसानो को फिर से बसाने की जो योजनाए अपनाई जाए उनमे भूदान द्वारा प्राप्त भूमि भी शामिल हो। सामुदायिक विकास योजना के कार्य क्रम मे उन ग्रामो को विशेष रूप से चुना जायगा जो ग्रामदान के रूप मे प्राप्त हुये है। अखिल भारतीय सर्व सेवा सघ का जो अधिवेशन सितम्बर १९५७ मे हुआ उसमे इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्राम दान आन्दोलन मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होना चाहिये।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के काल म उडीसा प्रान्त के कोरापठ, गजम तथा बालासोर नामक जिलो मे जो ग्राम ग्रामदान के रूप मे प्राप्त हुये है उनके विकास के लिये अखिल भारतीय सर्व सेवा सघ द्वारा बनाई गयी एक योजना पर कार्य किया जायगा। इसके लिए भारत सरकार न १९५६—५७ मे ११ ९२ लाख तथा ५७—५८ मे १० लाख रुपए स्वीकृत किये इसी प्रकार बिहार राज्य मे भूदान द्वारा प्राप्त भूमि पर १० हजार भूमिहीन किसानो को बसाने के लिये १९५७—५८ के बजट मे ३० लाख रुपए की स्वीकृति दी गई है।

भूदान आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिए तथा दान से प्राप्त भूमि के पुनः वितरण मे सुविधा देन के लिये बम्बई, बिहार, मध्य प्रदेश, उडीसा, पजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश आदि राज्यो ने आवश्यक कानून पास कर दिये हैं।

३१ दिसम्बर १९५७ तक ४३ १२ लाख एकड भूमि भूदान के रूप मे

प्राप्त हुई और ६ ५४ लाख एकड भूमि का पुन वितरण किया गया । विभिन्न राज्यो मे भूदान आदोलन की प्रगति का अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जाता है :—

राज्य	भूदान से प्राप्त भूमि (एकड)	पुन वितरित भूमि (एकड)
आसाम	२३१६६	२२५
आन्ध्रप्रदेश	२४१६८०	८२३१७
उत्तरप्रदेश	५८७६१५	७७६७४
केरल	२६०२१	३१२६
मद्रास	७०८२३	५३४६
पजाब	१६६२६	२६५३
बिहार	२१६८८५७	२१३१५०
मध्यप्रदेश	१७८८१६	४६८८१
राजस्थान	४२००६८	३५८४६
पश्चिम बगाल	१२६८१	३४,३
मैसूर	१४१६४	११५२

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है जनवरी सन् ९५७ से भूदान के स्थान पर ग्रामदान आन्दोलन पर अधिक बल दिया जा रहा है। ३१ दिसम्बर १६५७ तक ग्राम दान आन्दोलन की प्रगति इस प्रकार है —

राज्य	ग्राम दान मे प्राप्त ग्रामो की सख्या	राज्य	ग्राम दान मे प्राप्त ग्रामो की सख्या
आसाम	७७	मध्यप्रदेश	६४
आन्ध्र	२७०	मैसूर	१५
बिहार	६७	उडीसा	१६३३
बम्बई	३४०	राजस्थान	१४
केरल	४५१	उत्तरप्रदेश	१६
मद्रास	२५८	पश्चिमी बगाल	८
		योग	३५५२

अध्याय ११

कृषि पदार्थों के मूल्य

प्रश्न ४०—भारतीय कृषि मूल्यो मे स्थिरता रखने की आवश्यकता तथा उपायों पर प्रकाश डालिये।

Discuss the desirability and methods of stabilizing Agricultural price

कृषि मूल्यो मे स्थिरता की आवश्यकता

(NEED FOR STABILIZATION OF AGRICULTURAL PRICES)

किसानो की आर्थिक दशा को सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि कृषि उत्पादन बढाया जाय। उत्पादन अत्यधिक बढ जाने से मूल्यो का गिर जाने का भय रहता है। १६२६ की विश्व मन्दी का प्रभाव भारतीय किसानो पर भी बहुत बुरा पडा था। भारतीय किसान कर्जे के बोझ से बुरी तरह दब गया था। मूल्य स्तर का गिर जाना उत्पादक के लिए एक भारी अभिशाप है क्योकि इससे उत्पादन बढाने की प्रेरणा ही नष्ट हो जाती है और समस्त अर्थ व्यवस्था का सतुलन बिगड जाता है। इसके विपरीत यदि कृषि पदार्थों के मूल्य बहुत अधिक ऊचे स्तर पर पहुच जाते है तो उपभोक्ताओ को कठिनाई अनुभव होने लगती है और देश मे वेतन वृद्धि की माँग होने लगती है। दूसरी ओर कृषि पदार्थों के मूल्यो का प्रभाव बडे उद्योग-धन्धो पर भी पडता है। यदि कपास का भाव बढ जाये तो कपडे के मूल्य पर भी इसका प्रभाव पडेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि देश के सामान्य मूल्य स्तर पर कृषि पदार्थों के मूल्यो का गहरा प्रभाव होता है। समाज के विभिन्न वर्गों के हितो मे सामजस्य बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि पदार्थों के मूल्यो मे स्थिरता रहे। दूसरे शब्दो मे कृषि पदार्थों के मूल्य मे कमी होना उत्पादको के लिए तथा वृद्धि होना उपभोक्ताओ के हित के विरुद्ध है और सरकार को इस प्रकार की मूल्य नीति अपनाने की आवश्यकता पडती है जिससे प्रत्येक के हितो की रक्षा हो सके और देश का न्त्याद्न. अधिकतम. सीमा. तक. पहुँच. सके. । . आय. दी. देश. की. प्रति. व्यक्ति. ग्राय तक. सामान्य रहन सहन का स्तर ऊंचा हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कृषि पदार्थों के मूल्य मे स्थिरता रखना परम आवश्यक है।

भारत मे कृषि एक व्यापारिक व्यवसाय न होकर जीवन यापन का एक साधन है। भारतीय किसानो मे व्यापारिक चेतना का अभाव है और वे केवल जीवित रहने के लिए खेती करते हैं। इसलिये कृषि पदार्थों के मूल्यो तथा उनके

उत्पादन व्यय मे कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नही रखता। मूल्य निर्धारण की माग और पूर्ति का सिद्धान्त कृषि पदार्थों पर अच्छी तरह लागू नही होता। यह उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर है कि वह मूल्य नीति का सचालन इस प्रकार करे कि कृषि तथा उद्योगो का समुचित विकास हो सके और कृषि मूल्यो मे स्थिरता बनी रहे। मूल्यों की स्थिरता का अर्थ केवल इतना है कि कृषि पदार्थों के मूल्यो मे अत्यधिक उतार चढाव न होने पावे। हमे ज्ञात है कि १६२६ की विश्व मन्दी के कारण भारतीय किसानों की कैसी दुर्दशा हो गई थी। दूसरी ओर दूसरे महायुद्ध के दिनो मे और उसके बाद मूल्यो मे जो वृद्धि हुई उसका देश की अर्थ व्यवस्था पर कितना बुरा प्रभाव पडा है यद्यपि किसान को समुचि ला हुआ किन्तु देश के नियमित विकास के लिये यह दोनो दशायें बाधा उत्पन्न करने वाली सिद्ध हुई हैं

कृषि मूल्यो मे स्थिरता रखने के उपाय (Ways & Means establishing price stability) भारत मे कृषि मूल्यो की स्थिरता का प्रश्न पिछले कुछ वर्षों मे मुख्य रूप से सरकार के सामने उपस्थित हुआ। जून १६५४ तथा उसके बाद के काल मे कृषि मूल्यों मे निरन्तर कमी होती गई और समस्त देश का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उत्तर प्रदेश तथा पजाब के बाजारो मे गेहूँ का भाव १०) प्रति मन तक पहुच गया जबकि औद्योगिक मूल्यो मे कोई परिवर्तन नही हुआ सरकार को इस बात की खोज करनी पडी कि कृषि मूल्यो मे एक साथ परिवर्तन के क्या कारण है। काफी विचार विमर्श के बाद सर र को मूल्यो को और अधिक गिरने से रोकने के लिये आवश्यक कदम उठाने पडे। छोट उत्पादको के हितो की रक्षा के लिये तथा उपभोक्ताओ को इस बात का विश्वास दिलाना आवश्यक हो गया कि कृषि मूल्य एक निश्चित सीमा से अधिक तथा एक यूनतम सीमा से कम नही होने दिए जायेगे।

मूल्य सहायता की नीति जो अन्य देशो मे भी अपनाई जा चुकी है भारत के लिए भी उपयुक्त समझी गई। कुछ वर्ष पूर्व कृष्णामेचारी कमेटी ने जो इसी उद्देश्य के लिये नियुक्त की गई थी मूल्य सहायता नीति के विषय मे आवश्यक सुझाव दिए। मूल्य सहायता नीति का अर्थ यह है कि यदि किसी वस्तु का मूल्य एक न्यूनतम सीमा से नीचे गिरने लगे तो सरकार स्वय उस मूल्य पर उस वस्तु को खरीदना शुरू करदे और उस समय तक खरीदती रहे जब तक कि मूल्यो के गिरने की प्रवृत्ति को रोक न लिया जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादको को एक न्यूनतम मूल्य की गारन्टी दे दी जाय क्योकि ऐसा करना कृषि की उत्पादनशीलता को बढाने के लिये परम आवश्यक है। इस नीति से उत्पादको के हितों की रक्षा हो जाती है। मूल्य सहायता नीति के सम्बन्ध मे भारत सरकार का मत यह है कि स्वय न्यूनतम मूल्य पर खरीदारी करने की अपेक्षा बाजार को स्थिति म सुधार किया जाये। मूल्य सहायता नीति जो १६५४ मे ज्वार, बाजरा तथा मक्का के लिये लागू की गई वह १६५५ मे गेहूँ, चने चावल पर भी लागू कर दी गई। यह निश्चय किया गया कि सरकार १०) प्रति मन गेहू तथा ६) प्रति मन चना के भाव पर किसानो से खरीदारी करे।

उपरोक्त उपाय तथा साख और गोदामो की सुविधायें तथा यातायात के साधनो मे सुधार के कारण परिस्थितियो पर काबू पा लिया गया और जून सन् १९५५ के बाद कृषि मूल्य पुन ऊपर की ओर चढने लगे। इस समय समस्या यह है कि कृषि पदार्थों के मूल्य उच्चतम सीमा को भी पार करने लगे है। बढते हुये मूल्यो को रोकने के लिये सरकार को दूसरी प्रकार की नीति अपनानी पडी। सरकार ने सस्ते अनाज की दुकानें खोलकर अपने सुरक्षित भण्डार मे से अनाज बेचना शुरू कर दिया। सरकार का अनुमान है कि अनाज के व्यापारियो ने अनाज को दाबकर रखा हुआ है जिसके फलस्वरूप मूल्यो मे यह वृद्धि हुई है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए रिजर्व बैंक ने अन्य सहायक बैंको को आदेश दिया कि कुछ विशेष वस्तुओ के बदले साख पर पाबन्दी लगाई जाये जिसमे चावल आदि वस्तुयें विशेष रूप से शामिल है। हीनार्थ वित्त प्रबन्ध (Deficit Financing) के कारण भी कृषि मूल्यो मे वृद्धि हुई। अतः मुद्रा स्फीति विरोधी कार्यवाही भी सरकार द्वारा की जा रही है।

कृषि मूल्य मे स्थिरता के लिये अन्य सुझाव (Suggestions)—कृषि पदार्थों के मूल्यो मे स्थिरता रखने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:—

(१) वैसे तो सरकार की मौद्रिक तथा आयात निर्यात सम्बन्धी नीति मूल्य स्थिरता मे सहायक हो सकती है किन्तु भारत मे साख तथा बैंकिंग व्यवस्था सुसगठित तथा पूर्ण रूप से विकसित न होने के कारण यह नीतिया पूरी तरह सफल नही होती। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण कमेटी ने सहकारी बिक्री समितियो की स्थापना और सुधार के सुझाव दिए है। इसके अतिरिक्त किसानो की कृषि सम्बन्धी समस्याओ का समाधान और अधिकतम उत्पादन के लिये उन्हे प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

(२) सरकार को चाहिये कि कृषि पदार्थों के अधिकतम तथा न्यूनतम मूल्य निश्चित करदे। पिछले दो तीन वर्षो मे सरकार को यह कार्य करना पडा है।

(३) समस्त देश के लिये एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की जाये जो कृषि पदार्थो के उत्पादन तथा वितरण पर नियन्त्रण रखे और देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार उनके मूल्य स्थिर करदे। इस सुझाव से मन्दी के दिनो मे किसान को न्यूनतम मूल्य से कम मूल्य मिलने का भय रहता है और ऊंचे भाव हो जाने पर उन्हे एक प्रकार का कर देना होता है।

कृषि मूल्यो से सम्बन्धित सरकार की नीति की सफलता के लिये सरकार को निम्नलिखित व्यवस्था करनी चाहिए —

(१) कृषि साख की बिक्री का नियन्त्रित, प्रमाप, तथा सुसगठित व्यापार की व्यवस्था।

(२) कृषि साख पर नियन्त्रण ताकि महाजन न्यूनतम मूल्य से कम भाव पर किसानो से वस्तुयें न खरीद सकें।

(३) कृषि की सामान्य समस्याओ का समाधान तथा प्रगतिशील अर्थ व्यवस्था के अनुकूल कृषि का सगठन।

(४) कृषि मजदूरों के लिये न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण।

५) सहकारी खेती को प्रोत्साहन।

(६) ग्राम शिक्षा की व्यवस्था तथा रेडियो, सिनेमा आदि के साधनों से इस प्रकार का प्रचार करना जिससे किसान आत्म-विश्वासी बने और उपज बढ़ाने का प्रयत्न करे।

(७) उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान मे रखते हुये सरकारी सहायता से सस्ते भाव पर अनाज के वितरण का प्रबन्ध।

उपरोक्त सभी उपाय यदि उचित ढग से प्रयोग में लाये गये तो कृषि पदार्थों के मूल्यो मे स्थिरता स्थापित होने मे कोई सशय नही रहेगा और देश की अर्थ व्यवस्था का सतुलित रूप से विकास हो सकेगा।

———

अध्याय १३

सहकारी खेती

प्रश्न ४१—सहकारी खेती से आप क्या समझते हैं। भारत मे सहकारी खेती की मन्द गति के क्या कारण हैं ? भारत में सहकारी खेती की सम्भावना पर प्रकाश डालिए।

(इलाहाबाद १९५२, पटना १९५१, दिल्ली १९५२, पंजाब १९५१, राजपूताना १९५५)

What do you understand by co-operative farming ? What are the causes of its slow progress in India ? Discuss its future possibilities in India

(Allahabad 52, Patna 51, Delhi 52, Punjab 51, Rajputana 55)

सहकारी खेती का अर्थ (Meaning of Co-operative farming)- सहकारी खेती का मतलब किसानो के उस सगठन से है जो परस्पर लाभ के उद्देश्य से स्वेच्छापूर्वक खेती करने के लिये एक सहकारी समिति का निर्माण करते हैं और उसके अन्तर्गत कार्य करते हैं। व्यक्तिगत भू-स्वामी अपनी अपनी भूमि को एकत्र करके एक सहकारी फार्म का रूप दे देते हैं जो खेती की दृष्टि से एक इकाई के रूप मे होती है–यद्यपि व्यक्तिगत भू-स्वामी अपनी भूमि का स्वामित्व बनाये रखता है और किसी भी समय अपनी इच्छानुसार सहकारी समिति से सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है।

सहकारी खेती प्रजातन्त्र के सिद्धान्तो पर आधारित है और किसानो को खेती सम्बन्धी वे सभी सुविधायें प्रदान कराती है जो व्यक्तिगत खेती मे उसके लिये सम्भव नही हैं छोटे २ किसान जिनकी भूमि अलाभकर जोत के रूप मे इधर-उधर बिखरी हुई है और जिस पर खेती करने के लिये उत्तम बीज, उत्तम खाद तथा अन्य सुविधायें, उपलब्ध नहीं हो सकती ऐसे किसान सहकारी खेती का सहारा लेकर लाभ उठा सकते है। सहकारी कृषि समिति खेती की योजनायें तैयार करती हैं तथा खेती सम्बन्धी सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध कराती हैं। प्रत्येक सदस्य को प्राप्त सुविधाओं का व्यय देना पड़ता है और अपनी योग्यता अनुसार कार्य भी करना पड़ता है। तदापि उन्हे अपने कार्य के अनुसार उचित मजदूरी अलग से मिलती है। वर्ष के अन्त मे कुल लाभ सदस्यो को उनकी भूमि की मात्रा के अनुसार बाट दिया जाता है।

सहकारी खेती मे खेती के अतिरिक्त फसल की बिक्री की व्यवस्था, गोदामो का निर्माण, यातायात की सुविधायें तथा कुल भूमि की जमानत पर साख प्राप्त कराने का भी कार्य किया जाता है। सामूहिक प्रयत्नों से कार्य सचालन सुगमतापूर्वक होता

है और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार अपना योग प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता है और किसान शोषण से बच जाता है।

भारत मे सहकारी खेती

[CO-OPERATIVE FARMING IN INDIA]

भारत में सहकारी खेती की दिशा में अनेक प्रयत्न किये हैं यद्यपि उन्हे पूरी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। सहकारी खेती प्रारम्भ मे ऐसी भूमि पर शुरु की गई जो अभी हाल मे खेती योग्य बनाई गई है और जिस पर शरणार्थियों तथा भूतपूर्व सैनिकों को बसाने का कार्य किया गया है। ऐसी भूमि को सहकारी फार्मों का रूप दिया गया है और उसपर बसने वाले लोग सहकारिता के आधार पर खेती का कार्य करते हैं।

उत्तर प्रदेश मे हिमालय की तराई मे ४७ हजार एकड भूमि का एक चक तैयार किया गया है। सहकारी समितियों की सहायता से भूमि की जुताई बीज की व्यवस्था, औजारों तथा पशुओ का खरीदना, उपज की बिक्री, प्रबन्ध फसलो की देख रेख तथा पशु पालन आदि का सगठन होता है। सारा व्यय दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन ऋण लेकर चलाया जाता है। सहकारी समिति की ओर से चिकित्सालय स्कूल, पचायतो तथा सार्वजनिक सस्थाओं का सचालन भी होता है। गृह निर्माण तथा पशु खरीदने के लिए सरकार पेशगी रुपया देती है। गगा खादर क्षेत्र में हस्तिनापुर नामक स्थान पर भी सहकारी खेती की दिशा मे प्रयत्न किये गये है।

मद्रास प्रात मे भी सहकारी कृषि की एक प्रयोगात्मक योजना चालू की गई है। प्रबध समिति मे सरकार, जमीदार तथा किसानो के प्रतिनिधि है। प्रत्येक किसान को २०५ रुपये बैल खाद एव बीज खरीदने के लिए सहायता के रूप मे दिया गया है।

दिल्ली तथा मध्य प्रदेश राज्यो मे भी सहकारी कृषि की प्रयोगात्मक योजनाओं पर काय हो रहा है और सरकार आवश्यक सहायता प्रदान कर रही है।

इन सब सुविधाओ के होते हुए भी अभी तक सहकारी खेती की प्रगति बहुत मन्द रही है। जिसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) भारतीय किसान विशेष रूप से अशिक्षित तथा अज्ञान है। उनके मन मे अपनी आर्थिक दशा को सुधारने की भावना ही उत्पन्न नही होती। किसी भी नई योजना को चाहे वह उनके लिए कितनी ही हितकर क्यों न हो आसानी से अपनाने के लिये तैयार नही होते।

(२) भारतीय किसानो के मन मे अपनी भूमि तथा निजी सम्पत्ति के लिए अगाध प्रेम है और वह किसी भी सूरत से अपनी स्वतन्त्रता खोने को तैयार नही हैं। इन्हे इस बात का डर रहता है कि सहकारी कृषि समिति के निर्माण से उन्हे अपनी भूमि से हाथ न धोना पड जाय इसलिए वे इसमे कोई दिलचस्पी नही लेते।

(३) पचायतो तथा सयुक्त परिवार जैसी सस्थाओ के पतन से हमारे किसानो की मनोवृत्ति व्यक्तिवादी हो गई है। उन्हें सहकारिता के लाभ समझाकर सहकारी

खेती के लिए प्रोत्साहित करना उस समय तक असंभव है जब तक कि देश में काफी शिक्षा का प्रसार न हो जाए।

(४) सहकारी कृषि समितियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए सुयोग्य तथा प्रशिक्षितों को प्राप्त करना भी एक बड़ी समस्या है। अनपढ़ तथा अज्ञान किसानों में से इस प्रकार की योग्यता रखने वाले व्यक्तियों का मिलना असंभव है।

यही कारण है कि भारत में सहकारी कृषि को उत्साहवर्धक सफलता प्राप्त नहीं हुई और इसकी प्रगति बहुत मन्द रही है।

सहकारी खेती का भविष्य
[FUTURE OF CO OPERATIVE FARMING]

सहकारी खेती की मन्दगति के जिन कारणों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं वे सुगमतापूर्वक दूर किया जा सकता है। इस कार्य के लिए शिक्षा, प्रचार तथा प्रदर्शन आदि की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त मालगुजारी में छूट कम ब्याज की दर पर कम ऋण, कम मूल्य पर कृषि यन्त्रों खाद्य तथा बीज की सुविधाएं प्रदान करके किसानों को सहकारी खेती के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस बात को स्वीकार किया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सहकारी खेती की प्रगति बहुत कम रही है यद्यपि इस समय भारत में एक हजार से अधिक सहकारी खेती समितियाँ कार्य कर रही हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना सहकारी खेती पर बहुत अधिक महत्व देती है और इस बात की सिफारिश करती है कि प्रारम्भ में केवल बंजर तथा ग्राम भूमि को सहकारी खेती के अन्तर्गत लिया जाय। इसके पश्चात् निर्धारित न्यूनतम सीमा से छोटे आकार के खेत इस में शामिल किये जाएं। बाद में धीरे धीरे समस्त ग्राम इसके अन्तर्गत ले लिए जाएं। योजना आयोग ने सहकारी ग्राम प्रबंध को सहकारी खेती के लिए सबसे उपयुक्त माना है और ग्राम की भूमि को एकत्र करने के लिए निम्नलिखित तरीके बनाये हैं —

(१) भूमि का स्वामित्व व्यक्तियों के पास बना रहे किन्तु समस्त भूमि का प्रबंध एक इकाई के रूप में किया जाये और भूमि के स्वामियों को स्वामित्व लाभांश के रूप में कुछ न कुछ भुगतान किया जाये।

(२) भूमि के स्वामी एक निर्धारित लगान पर एक निश्चित समय के लिये अपनी भूमि को सहकारी समिति को पट्टे पर उठा दें।

(३) भूमि का स्वामित्व सहकारी समिति को दे दिया जाये परन्तु भूमि के मूल्य के रूप में सोसाइटी समिति के शेयर भूमि के स्वामियों के पास रहे।

इन सब तरीकों में से प्रथम सबसे उपयुक्त एवं सुगम है और इस प्रकार प्रयोगात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है। योजना कमीशन के विचार में इस समय जब कि भूमि की चकबन्दी का कार्य चल रहा है सहकारी खेती का प्रचार अति आवश्यक है। सरकार अनेक प्रकार की सुविधाएं तथा रियायतें देकर किसानों को इस ओर आकर्षित कर सकती है।

इस बात पर अधिक जोर देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि सहकारी खेती भारत के लिये उपयुक्त ही नहीं वरन् आवश्यक भी है। इसके बिना

कृषि उत्पादन में वृद्धि करना असम्भव है। डा० आटो शिलर, जो जर्मनी के सहकारी खेती के विशेषज्ञ तथा कृषि अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हैं, ने इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक सुझाव दिये हैं। डा० आटो शिलर संयुक्त राष्ट्र के खाद्य तथा कृषि संगठन की ओर से भारतीय कृषि की समस्याओं का अध्ययन करने भारत पधारे। आपके मतानुसार सहकारिता के आधार पर व्यक्तिगत खेती भारत के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। आपकी योजना इस प्रकार है।

वे सभी कार्य जो किसी छोटे फार्म के अन्दर नहीं किये जा सकते और जो किसी छोटे किसान की क्षमता के बाहर हैं वे सब सहकारी समिति द्वारा व्यक्तिगत खेती की उन्नति के लिए किए जाने चाहिए। उदाहरण के लिए फसलों का नियोजन, बीज का चुनाव, साख की प्राप्ति, भारी यन्त्रों की प्राप्ति तथा फसल की बिक्री आदि के कार्य सहकारी समिति द्वारा किये जाएं। अन्य सब कार्य व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से स्वयं करें। जर्मन विशेषज्ञ का मत है कि विकास की योजनायें जो जटिल प्रकार की हों और जिनमें अधिक टैक्नीकल ज्ञान की आवश्यकता हो वे जिला स्तर पर बनाई जाय और तब सहकारी समितियों को दी जाए। उनके मतानुसार सहकारी कृषि समितियों को बिना ब्याज के अथवा बहुत कम ब्याज की दर पर ऋण प्रदान किये जाएं जिससे कि वे कृषि के विकास के लिये विनियोग कर सकें। इन ऋणों का प्रयोग केवल खेती के कार्यों के लिये ही होना चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय कृषि की भावी रूप रेखा सहकारी खेती पर आधारित होगी और यही देश की कृषि सम्बन्धी तथा भूमि सम्बन्धी समस्याओं का एक मात्र उपाय है।

प्र० ४२—योजना आयोग द्वारा प्रस्तावित 'सहकारी ग्राम प्रबन्ध' की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (गोहाटी १९५३)

Discuss the idea of, Co-operative Village Management' as pointed out by the Planning Commission *(Gauhati 1953)*

सहकारी ग्राम प्रबन्ध का अर्थ—सहकारी ग्राम प्रबन्ध उन उत्तम व्यवस्था को कहते हैं जो रूसी ढंग की सामूहिक खेती तथा शिथिल सहकारी खेती के बीच का रास्ता है। त्रिलोक सिंह ने अपनी पुस्तक 'निर्धनता और सामाजिक परिवर्तन" में सबसे पहिले इसका उल्लेख किया। योजना कमीशन ने इसे भारत के लिए सबसे उपयुक्त माना है और अपनी भूमि सम्बन्धी नीति का मुख्य उद्देश्य घोषित किया है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत गाव की सारी भूमि एक साथ एकत्र करली जाए और उसका प्रबन्ध एक संस्था के सुपुर्द हो। वह संस्था चाहे ग्राम पंचायत हो अथवा अथवा अन्य कोई संस्था। यह संस्था वे सभी निर्णय करेगी जिनका सम्बन्ध फसलों की अदल-बदल, साख की व्यवस्था, खेती के तरीकों बीज के प्रयोग, खाद का निर्णय, सिंचाई का तरीका फसल की बिक्री तथा सहायक उद्योगों के विकास आदि से है। यह आवश्यक नहीं है कि गाव की सारी भूमि एक चक के रूप में हो। उसे कई खण्डों में बांटा जा सकता है। यह कार्य स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में

रखकर किया जाना चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि प्रजातन्त्र की मर्यादा की अवहेलना न होने पाये वरना सहकारी ग्राम प्रबन्ध का वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो जावेगा। इस प्रकार कृषि तथा अन्य कार्यों से जो आय प्राप्त होगी वह भी उसी संस्था के आधीन होगी।

सहकारी ग्राम प्रबन्ध तथा सहकारी खेती मे अन्तर केवल इतना है कि सहकारी खेती मे कोई भी सदस्य अपनी इच्छानुसार समिति से अलग हो सकता है किन्तु सहकारी ग्राम प्रबन्ध मे भूमि का विलय सदैव के लिये हो जाता है। व्यक्ति की इच्छा का इससे कोई सबन्ध नही है। यह नही भूलना चाहिये कि व्यक्ति हर सूरत से अपनी भूमि का स्वामी रहता है किन्तु भूमि का प्रबंध उसके हाथ मे नही रहता उसे अपने हिस्से का लाभ प्राप्त होता रहता है।

लाभ का वितरण—इस व्यवस्था मे सबसे बडी समस्या सामूहिक लाभ के वितरण की है। यह किस प्रकार तय किया जाये कि इस वितरण का आधार क्या होना चाहिये। साधारण रूप से इसके दो आधार हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि जो व्यक्ति जितनी भूमि का स्वामी है उसके आधार पर उसका भाग निश्चित कर दिया जाये। दूसरे यह कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी सेवाओं के बदले उचित मजदूरी दी जाये। भूमि के स्वामित्व के अनुसार तथा सेवाओं के अनुसार वितरण का भाग तय करना एक जटिल प्रश्न है। इसका कारण यह है कि सब लोग एक सी भूमि के स्वामी नही होते तथा जिस प्रकार की सेवाए वे प्रदान करते है उनमे काफी भिन्नता होती है। इस समस्या के समाधान के लिये काफी विचार करने की आवश्यकता है ताकि किसी प्रकार के असन्तोष की सम्भावना न रहे।

सहकारी ग्राम प्रबन्ध के लाभ—यह मानना पडेगा कि भारत के लिये यह आदर्श व्यवस्था साबित होगी। उसके परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन मे वृद्धि होगी और किसान की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति मे सुधार होगा। योजना आयोग का मत है कि यह व्यवस्था प्रजातन्त्र के अनुकूल है और इससे आपस का भेद कम होगा तथा सबको अपनी उन्नति के समान अवसर प्राप्त होंगे। इसके मुख्य लाभ इस प्रकार हैं :—

(१) उत्पादन मे वृद्धि—इस व्यवस्था मे काम करने की इच्छा मे वृद्धि होगी तथा श्रम की कार्य कुशलता बढेगी। अच्छे बीज, खाद तथा सिंचाई की सुविधाओं का प्रयोग हो सकेगा। चकबन्दी के जो भी लाभ हो सकते हैं वे सारे के सारे उपलब्ध हो जावेंगे। वैज्ञानिक ढग की खेती काल तथा आधुनिक यन्त्रों के प्रयोग से प्रति एकड पैदावार मे वृद्धि होना स्वाभाविक तथा अनिवार्य है।

(२) सामाजिक न्याय—ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे परिवर्तन होने से सामाजिक समानता की भावना को प्रोत्साहन मिलेगा। आजकल नीच ऊच तथा जाति भेद-भाव हमारी ग्राम व्यवस्था की मुख्य विशेषता है। जब सभी वर्गों के लोग समान रूप से मिलकर कार्य करेंगे और मजदूरी प्राप्त करेंगे तो भेदभाव अपने आप समाप्त हो जावेंगे। प्रजातन्त्र मे सामाजिक समानता स्थापित करने की यह एक अच्छी योजना है।

(३) स्थिरता—सहकारी ग्राम प्रबंध सहकारी खेती की अपेक्षा अधिक स्थायी और स्थिर होगा क्योंकि एक बार भूमि का विलय हो जाने के बाद कोई भी सदस्य इससे अलग नहीं हो सकेगा। ग्राम प्रबंध संस्था के निर्णय समस्त ग्रामवासियों को अनिवार्य रूप से मानने होते हैं। इससे यह प्रणाली अधिक स्थिर तथा स्थाई बन जाती है।

(४) आर्थिक समानता—सहकारी ग्राम प्रबंध प्रणाली का लाभ यह होगा कि अधिक भूमि के स्वामी, कम भूमि वाले किसान तथा भूमिहीन किसानों के बीच असमानता की खाई कम हो जायेगी और आपसी संघर्ष की कोई संभावना नहीं रहेगी। इससे भूमि संबन्धी अनेक समस्याएं सदैव के लिये समाप्त हो सकती हैं।

(५) व्यवहारिक महत्व—इस व्यवस्था का अन्तिम तथा सबसे बड़ा गुण यह है कि अन्य सभी प्रणालियों की अपेक्षा अधिक व्यवहारिक है। हमारा वास्तविक उद्देश्य यह है कि भूमि के जोतने वाले को भूमि का स्वामी होना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह सब से सुगम उपाय है। शेष कोई भी व्यवस्था इतनी सुगमता पूर्वक इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती।

योजना कमीशन ने अपने शब्दों में सहकारी ग्राम प्रबन्ध के लाभ का उल्लेख इस प्रकार किया है—

'एक बार सहकारी ग्राम प्रबन्ध की स्थिति आ जाने पर और ग्राम अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत पर्याप्त मात्रा में कार्य के अवसर उत्पन्न हो जाने पर भूमि के स्वामी तथा भूमि हीनों के बीच के अन्तर का महत्व कम हो जावेगा तब वास्तविक अन्तर विभिन्न कार्यकुशलता वाले मजदूरों का होगा जो विभिन्न कार्यों, कृषक तथा गैर कृषक में लगे हुये हैं। ग्राम समाज के साधन जो कृषि, व्यापार तथा ग्राम उद्योगों से प्राप्त होंगे वे अधिकतम उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि करने के हेतु प्रयोग हो सकेंगे जो ग्राम के अन्दर तथा परस्पर सहयोग से ग्राम के बाहर की क्रियाओं से हो सकेगा। इस प्रकार के ग्राम समाज का एक संगठित, सामाजिक तथा आर्थिक ढांचा होगा जो एक उत्पादन तथा व्यापारिक इकाई के रूप में तहसील तथा जिले के आर्थिक जीवन से जुड़ा हुआ रहेगा। इस प्रकार एक ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की कल्पना की गई है जिसमें कृषि उत्पादन ग्राम उद्योग कृषि बिक्री और ग्रामीण व्यापार आदि का संगठन सहकारी समिति के रूप में होगा।"

सहकारी ग्राम प्रबन्ध की हानियाँ

हमने अभी तक सहकारी ग्राम प्रबन्ध व्यवस्था के लाभों का उल्लेख किया है किन्तु इसकी कुछ हानियां भी हो सकती हैं जिन्हें दूर करने के लिये काफी सावधानी और सोच विचार की आवश्यकता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि भारत जैसे देश में इस प्रकार की क्रांतिकारी योजना का लागू करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसमें जनता का पूरा सहयोग मिलना भी कठिन है यद्यपि शिक्षा के प्रसार में इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है।

दूसरा तर्क यह है कि जो लोग स्वयं खेती नही करते वे भी सामूहिक परिश्रम के द्वारा प्राप्त हुये लाभ के भागीदार होंगे क्योकि भूमि पर उनका स्वामित्व बना रहेगा केवल उन्हे मजदूरी के रूप मे कुछ भी प्राप्त नही होगा। शेष बात वही रहेगी जो आज है अर्थात् शहरो मे रहने वाले तथा स्वयं खेती न करने वाले भी भूमि के स्वामी बने रहेगे और भूमिहीन लोग केवल मजदूर मात्र ही रहेगे जैसे कि वे आज कल भी हैं।

तीसरा तर्क यह है कि इस व्यवस्था के अपनाये जाने से भारी सख्या मे ग्रामीण जनसख्या का भूमि के लिये कोई उपयोग नही रहेगा और ऐसे लोगो की समस्या हमारे सामने उत्पन्न हो जावेगी।

इन सभी कठिनाइयो को ध्यान मे रखते हुये योजना आयोग ने सिफारिश की है कि इस व्यवस्था को धीरे २ लागू करना चाहिये। इस व्यवस्था के लागू होने से जो समस्याए उत्पन्न होगी उन्हे काफी सोच विचार के पश्चात् दूर किया जा सकता है। ग्रामीण उद्योगो के विकास से बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है।

अन्त मे यह कहना अनुचित न होगा कि सहकारी ग्राम प्रबन्ध भारत के लिये सबसे उपयुक्त व्यवस्था है और इसे लागू करना परम आवश्यक तथा हितकर है।



अध्याय १४

सरकार की कृषि नीति

प्रश्न ४३—भारत सरकार की वर्तमान कृषि-सम्बन्धी नीति पर प्रकाश डालिए।

Discuss the present Agricultural policy of the Indian Government.

कृषि नीति का विकास

भारत जैसे देश मे जहा किसान प्रशिक्षित एव निर्धन हैं कृषि के विकास के लिये राज का उत्तरदायित्व बढ जाता है। आर्थिक विकास और औद्योगिक विकास के लिए तो राज्य प्रयत्नशील रहता हो है तो फिर कृषि उद्योग को भी सफल बनाने का उसका कर्तव्य हो जाता है। दुर्भाग्य की बात है कि १९१९ तक सरकार की नीति इस ओर बहुत उदासीनता की रही। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने तो कृषि उन्नति की ओर कुछ भी ध्यान दिया ही नहीं किन्तु जब शासन अंग्रेजी सरकार के आधीन आया तब वह भी तुरन्त इस ओर ध्यान न दे सकी क्योंकि उसके सामने शासन को सुचारु रूप देने की समस्या काफी जटिल थी। १९ वीं शताब्दी के अन्तिम एव २० वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दिनो मे भारत म बडे अकाल पड जिनकी जाच करने के लिये १८८०, ९७, १९०१ मे अकाल कमीशन की नियुक्ति की गई परन्तु सरकार ने उनके सुझावो को मानने से इन्कार कर दिया। १९०३ मे सिचाई कमीशन का भी कोई लाभ नही हुआ। १९०५ मे एक अखिल भारतीय कृषि समिति की नियुक्ति की गई जिससे कुछ लाभ अवश्य हुआ।

१९१९ के सविधान के अनुसार कृषि का समस्त कार्य प्रान्तीय सरकार के अन्तर्गत आ गया। प्रत्येक प्रान्त मे एक कृषि मन्त्री की नियुक्ति की गई। इसके बाद १९२६ मे कृषि कमीशन, १९२९ मे कृषि खोज की राजकीय समिति एव १९३४ मे कृषि विपणन सलाहकार की नियुक्ति की गई। १९३७ के बाद प्रान्तो मे जनता की सरकार बनी जिसने अनेक ऋण सम्बन्धी कानून पास किए और सूद एव ब्याज की अधिकतम मात्रा कानून द्वारा निश्चित की गई।

द्वितीय महायुद्ध ने कृषि की समस्या को सब के सामने रखा। भारत की विदेशी खाद्यान्नो पर दयनीय निर्भरता ने हम री सरकार मे अभूतपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न की और मुसीबत का सामना करने के लिये निश्चित प्रयत्न किया गया। दो वर्ष तक केन्द्रीय एव राज्य सरकार ने ग्रामीण विकास और उत्पादन वृद्धि की अनेक योजनाओ का आरम्भ कर दिया। उन प्रयत्नो मे अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन एव सभी

राज्यो मे विशाल सिचाई योजना है। इसमे अधिक सफलता प्राप्त करने के हेतु १६५० मे प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे भारत मे उपलब्ध प्राकृतिक साधनो व आर्थिक विकास के लिए एक योजना बनाने और योजना को कार्यान्वित करने की विधि बनाने के लिए एक योजना आयोग की नियुक्ति की गई जिसने २०६६ करोड़ रुपये की प्रथम पञ्चवर्षीय योजना बनाई जिसमे कृषि विकास तथा ग्रामोत्थान की योजनाओ को विशेष महत्व दिया गया था।

वर्तमान नीति—खेती की उन्नति करना मुख्य रूप से राज्य सरकारो क कार्य है। केन्द्रीय सरकार का काम तो केवल परस्पर सहयोग तथा समन्वय स्थापित करना है। नीचे प्रदेशीय कृषि विभाग के क्षेत्र मे और कार्यों का वर्णन किया जाता है।

(१) **कृषि शिक्षा**—कृषि की उन्नति के लिए कृषि शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। हमारे देश के किसान अनपढ है। निर्धनता, निरक्षरता, अन्ध विश्वास, धर्मान्धता, रूढिवादिता आदि बुरी आदतो ने यहा के किसान को अदूरदर्शी अज्ञानी, काहिल एव कमजोर बना दिया है। कृषि सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए देश मे कुछ विद्यालयो तथा अनुसन्धान केन्द्रो की व्यवस्था की गई है। कृषि की उच्च शिक्षा व अनुसन्धान की सुविधायें पूना कोयम्बतूर, नागपुर, कानपुर, इलाहाबाद, लुधियाना के कृषि महाविद्यालयो तथा भारतीय कृषि अनुसन्धान सस्था नई दिल्ली, पूना कृषि सस्था आदि मे पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था की गई है।

परन्तु इस प्रकार की शिक्षा मे कृषको को कोई लाभ नही पहुँचा है। इसका मुख्य कारण यह है कि कृषि सम्बन्धी शिक्षा पाकर वह खेती नही करना चाहते वरन् शहर मे रहकर नौकरी करना चाहते है। दूसरे कृषि सुधार के साधन जो बताये जाते है वह बहुत महगे होते हैं। धन के अभाव से किसान पूर्ण लाभ नही उठा पाता। इसलिए यह आवश्यक है कि गाव के प्राइमरी स्कूलो मे कृषि को अनिवार्य कर देना चाहिए और वहा सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ साथ प्रैक्टीकल शिक्षा भी दी जानी चाहिए।

उत्तर प्रदेश सरकार ने ग्रामीण विश्व विद्यालय स्थापित करने के लिए एक समिति की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त सरकार ने एक नई ग्रामीण शिक्षा योजना चालू की है। इससे कृषि सम्बन्धी सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने प्रत्येक राज्य म एक जनता महाविद्यालय स्थापित करने की भी स्वीकृति दी है जिन्होने देश की कृषि शिक्षा को एक नया मोड व बल व प्रेरणा प्रदान की है।

(२) **कृषि अनुसन्धान**—१६२६ मे इम्पीरियल कौंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च की स्थापना की गई परन्तु अब इसका नाम इम्पीरियल की जगह भारतीय हो गया है। अलग अलग राज्यो मे कृषि विश्व विद्यालयो मे अनुसन्धान कार्य होता है जिसके लिए सरकार आर्थिक सहायता प्रदान करती है। कृषि विभाग का कार्य है

वैज्ञानिक सुधारों और अनुसंधान द्वारा किसानों को लाभ पहुचाना। इस दिशा में आशातीत प्रगति एवं कार्य हो रहा है और भविष्य में सरकारी सहयोग के फलस्वरूप इस क्षेत्र में और भी अधिक प्रगति हो सकेगी।

(३) प्रदर्शन और प्रचार—भारत मे अधिकतर किसान अनपढ है। अत वह किसी बात को समझने मे असमर्थ हैं। इसलिये उनको प्रदर्शन द्वारा शिक्षित किया जा सकता है और वह इस प्रणाली से सुगमता से समझ भी सकते हैं। इसीलिये सरकार अपने कर्मचारियो द्वारा फार्मों पर खेती करने की विधि और उसके परिणामों को बताती हैं। परन्तु इससे किसानों को विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि किसान फार्मों पर जाकर मशीनों आदि को देखना उचित नहीं समझते हैं क्योंकि वह समझते हैं कि हम इनका प्रयोग करने मे असमर्थ है। आवश्यकता इस बात की है कि किसानो के छोटे छोटे खेतो पर ही बीज छोटे छोटे औजारों अच्छी खाद आदि मे परिवर्तन करके प्रदर्शन किये जाए। हमारी सरकार इसी तथ्य पर अधिक जोर दे रही है। कृषि के सुधारो की खोज को किसान तक पहुँचाने का तरीका भी बडा गलत है क्योंकि यह अखबारो आदि मे छपता है जो किसान के लिये बेकार है। अत सब सूचनाओ को किसान तक पहुचाने के लिये फिल्म सिनेमा ड्रामा गीत इत्यादि आदि बहुत उचित हैं और राज्य सरकारें अनुकूल कृषि सबन्धी सूचनाओं को किसान के पास तक उपरोक्त प्रणाली से पहुँचाने मे प्रयत्नशील हैं।

(४) फसल प्रतियोगिता—सरकार ने फसल को बढाने के ध्येय से फसल प्रतियोगिता प्रणाली अपनाई है। इससे किसानों एवं सरकार दोनों पक्षों को बहुत लाभ पहुचा है। देश व्यापी प्रतियोगिता मे सबसे ज्यादा उत्पादन करने वाले को सरकार की ओर से कृषि पंडित एवं ५०००) का नकद इनाम देने की भी व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त भी गाव तहसील, जिले आदि मे भी इनाम का वितरण किया जाता है। भारत की गेहूँ की पैदावार ५५४ पौंड प्रति एकड़ है। प्रतियोगिता द्वारा यह उत्पादन ५८६ पौंड तक बढाया जा सकता है। इसी से हम अनुमान लगा सकते हैं कि अन्य वस्तुओं मे भी इससे कितना लाभ हुआ है।

इसके अतिरिक्त सरकार ने जगह २ पर बीज भण्डार भी खोले है जहाँ से किसानो को उत्तम बीज मिलते हैं। कृषि सम्बन्धी यन्त्रों के वितरण का भी समुचित प्रबन्ध किया गया है। सरकार कुछ किसानो को विदेश भेजती है एवं ग्राम सुधार योजना को प्रारम्भ किया है। इससे किसानो को बहुत लाभ पहुँचता है।

पचवर्षीय योजनाओं में सरकार द्वारा कृषि को प्रोत्साहन—भारत को राजनैतिक स्वतन्त्रता तो प्राप्त हो गई है। उसके बाद सरकार ने आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के भी सफल प्रयास किये हैं। अत स्वतन्त्रता के बाद योजनाए बनाई गई। इन योजनाओं का यह ध्येय है कि सभी चीजों मे शीघ्रता से परिवर्तन इस प्रकार हो जिसमे अर्थ व्यवस्था सन्तुलित और अविच्छिन्न रूप से अग्रसर हो ताकि सामुदायिक विकास उत्पादन मे वृद्धि और उचित वितरण का उद्देश्य पूरा हो सके।

पचवर्षीय योजनाओ मे किसान की स्थिति को मजबूत करके कृषि उत्पादन को बढाने का प्रयत्न किया गया है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि के लिए १८४ करोड रुपये की योजना बनाई गई जिसकी सहायता से सन् १९५५-५६ तक देश मे ७६ १ लाख टन अन्न २० ६ लाख गाठे जूट, १२ ५ लाख गाठे कपास, ४ ० लाख टन तिलहन तथा ७ ० लाख टन गुड के लिए गन्ने के उत्पादन बढाने का लक्ष्य रखा था। द्वितीय योजना मे इसके लिये ५३८ करोड रुपये का आयोजना किया है। इन योजनाओ द्वारा कृषि की समस्याओ को सुगमता से हल किया जा रहा है।

पचवर्षीय योजना मे कृषि समस्या को हल करने के लिये बहुमुखी विकास का प्रबन्ध किया गया है जिसमे अन्न उत्पादन के साथ २ पशु सुधार सहकारी आन्दोलन का विकास डेरी फार्मिङ्ग, भूमि सरक्षण, वनो का विकास, ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यों की भी प्रगति होगी। लेकिन इस प्रगति मे जो कठिनाई है वह है कृषक सहयोग, कुशल कर्मचारियो की कमी, आदि जो प्रगति मे बाधा बनी हैं। किसान की समृद्धि एव ग्रामीण विकास के लिये इन कठिनाइयो को दूर करने से ही कृषि नियोजन मे उल्लेखनीय सफलता मिलकर कृषि का जीवन उन्नत हो सकता है। परन्तु सरकार इन समस्याओ को सुलझाने मे सफल हो रही है। नि सदेह भारत सरकार पचवर्षीय योजनाओ द्वारा प्रत्येक दृष्टि कोण से नवीन जीवन प्रदान कर रही है। योजनाओ एव सरकार के कार्यों को सफल बनाने के लिये जनता के सहयोग की पूर्ण आवश्यकता है।



अध्याय १५

सहकारी आन्दोलन

प्रश्न ४४ — १९०४ से आज तक के सहकारी आन्दोलन के संक्षिप्त इतिहास पर प्रकाश डालिये। (कलकत्ता ५६, पंजाब ४०, ४८, इलाहाबाद ४२)

Trace a brief history of the Cooperative Movement in India from 1904 upto date (*Calcutta 56, Punjab 40 48 Allahabad 42*)

उत्तर—सहकारिता एक प्रकार का आर्थिक संगठन है जिसमे एकाकी तथा शक्तिहीन व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिलकर उन लाभो को प्राप्त करते है जो धनी एवं शक्ति वालो को प्राप्त होते हैं। सहकारिता का प्रभाव सामाजिक राजनीतिक औद्योगिक एवं शिक्षा आदि जीवन के सभी पक्षो पर पड़ता है। आधुनिक युग मे अधिक मध्यस्थो के प्रकोप से एवं पूंजीपतियों की नीतियो से निर्धन व्यक्तियो की स्थिति अधिक खराब हो गई है। आर्थिक क्षेत्र से मध्यस्थो को दूर करना सहकारिता का उद्देश्य है एवं सहकारिता से निर्धन लोग अपनी उन्नति सुगमता से कर सकते हैं। यदि मनुष्य के जीवन से सहकारिता की भावना को हटा दिया जाये तो संसार मे सभ्यता का विनाश होकर आतंक अर्थात प्रकृति की सत्ता स्थापित हो जायेगी जिसमे शक्तिशाली मनुष्य ही जी सकेगा। सहकारिता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मैक्लेगन कमेटी ने कहा था कि "सहकारिता का सिद्धान्त यह है कि कोई निर्बल और शक्तिहीन व्यक्ति दूसरे के योग एवं नैतिक विकास तथा पारस्परिक सहयोग से अपनी सामर्थ्य के अनुसार ऐसे भौतिक लाभ अथवा सुख प्राप्त कर सके जो धनाढ्यो या सशक्त लोगो को उपलब्ध है और अपने सहज गुणो का पूर्ण रूप से विस्तार कर सकें। शक्तियो के सहयोग से भौतिक उन्नति होती है सम्मिलित कार्य से आत्म विश्वास बढता है, एवं इन शक्तियो की एक दूसरो पर प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जीवन के उच्च और समुन्नत स्तर की वास्तविक सिद्धि की आशा की जाती है जिसमे अधिक अच्छा व्यापार होगा, सुव्यवस्थित कृषि होगी तथा समृद्ध जीवन होगा।

भारत मे कृषको की शोचनीय दशा एवं ऋण ग्रस्तता के कारण सहकारिता का जन्म हुआ और इसका भारत के लिये बहुत अधिक महत्व है।

१९०४ का सहकारी साख समिति अधिनियम— भारतीय सहकारिता मे इसका बहुत महत्व है। इस कानून का मुख्य ध्येय मितव्ययता, स्वय सेवा और किसानो, कारीगरो तथा सीमित साधन प्राप्त व्यक्तियो मे सहयोग की भावना को जागृत करना था। इस कानून मे केवल उधार समितियों का दायित्व

असीमित था तथा ये ग्रामीण एव नागरिक क्षेत्रो मे होनी थी। शहरी उधार समितियो की अपेक्षा ग्रामीण उधार समितियो को अधिक महत्व प्रदान किया गया क्योकि यह अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक थी । स्थानीय सरकार ने समितियो का निरीक्षण करने व नियन्त्रण रखने के लिए एक रजिस्ट्रार नियुक्त किया था जो इन समितियो की पूर्णरूप से देख भाल करता था।

१९०४ के अधिनियम की विशेषतायें — इस *अधिनियम का मुख्य उद्देश्य* सहकारी समितियो के माध्यम से कृषक शिल्पकार एवं सीमित साधनो के व्यक्तियो म परस्पर सहायता तथा बचत की भावना को जागृत करना। इसकी अन्य विशेषतायें *निम्नलिखित थी* —

( ) एक ही गाँव या कस्बे के १० आदमी मिलकर सहकारी समिति की स्थापना कर सकते थे। (२) सदस्यता के आधार पर समितियो का विभाजन दो वर्गो मे किया गया। यदि किसी समिति के ⅘ सदस्य कृषक हैं तो ग्रामीण साख समिति (Raiffesien Type) कहलायेगी और यदि इतने ही सदस्य नगर निवासी है तो वह नगर साख समिति (Delitjch Type) कहलायेगी। (३) प्रात के रजिस्टार द्वारा समितियो का रजिस्ट्रेशन किया जायेगा । और यह रजिस्ट्रार सहकारी समितियो के सगठन एव निरीक्षण के लिए जिम्मेदार था। (४) ग्राम समिति के सदस्यो की देनदारी असीमित और नगर समिति के सदस्यो की देनदारी सीमित होगी परन्तु इनकी इच्छानुसार असीमित भी हो सकती है। (५) ग्रामीण साख समितियो के लाभ का वितरण सदस्यो मे न होकर सचित कोष मे जमा कर दिया जायेगा। यदि कोष की रकम वैधानिक राशि से अधिक हो जाये तो वह सदस्यो म बोनस के रूप मे बाँट दी जायेगी। परन्तु शहरी समितियो के वार्षिक लाभ का ¼ भाग कोष मे रखकर शेष राशि को सदस्यो म बाटने की व्यवस्था थी। (६) दो सदस्यो की जमानत प्राप्त हो जाने पर यह समिति किसी सदस्य का रुपया उधार दे सकेगी। (७) सहकारी साख समितियो का निरीक्षण उसके हिसाब को जाच सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियो द्वारा नि शुल्क होगी। (८) सहकारी समितियो को आयकर रजिस्ट्री शुल्क और स्टाम्प कर से मुक्त रखने की सुविधाय दी गई । (९) कोई भी सदस्य समिति के १०००) रुपए से अधिक के हिस्से नही खरीद सकता और न उसे एक से अधिक वोट देने का ही अधिकार प्राप्त होगा। (१०) एक समिति दूसरी समिति को बिना रजिस्ट्रार को सूचित किये या बिना आज्ञा प्राप्त किये रुपया उधार नही दे सकती थी।

इस कानून के पास होते ही सहकारी ऋण समितियो की सख्या बढने लगी क्योकि इनको वैधानिकता प्राप्त हुई और साथ ही साथ सरकारी बल भी जिससे सहकारिता का विकास भली भाति हुआ। १९०६—०७ म समितियो की सख्या ८४३ थी जब कि प्रगति के पथ पर बढते २ इनकी सख्या १९११—१२ म ८,९७७ हो गई थी। परन्तु इस कानून से सहकारी साख समितियो को प्रधानता दी गई था जिसने

अन्य क्षेत्रों में सहकारी समितियों का अभाव रहा। किसानों की भलाई के लिये यह आवश्यक समझा जाने लगा कि उनको सभी तरह की सहकारी समितियाँ खोलने की आज्ञा हो। इन सहकारी समितियों की क्रियाओं में अनेक दोष भी विद्यमान थे। दूसरी ओर कानून का क्षेत्र सकुचित होने के कारण इनकी अधिक उन्नति न हो पाई। इन समस्त दोषों को दूर करने के लिये एवं इसकी प्रगति के लिए सामयिक रजिस्ट्रार सम्मेलन (Periodical Cooperative Registrar's Conference) बुलाया गया और इस सम्मेलन ने सरकार का ध्यान इन दोषों को दूर करने के लिए आकर्षित किया। अतः दोषों के निवारण के लिये १९१२ में दूसरा विधान स्वीकृत किया गया।

सन् १९१२ का कानून — इस कानून को पास करने का प्रमुख उद्देश्य यह था कि १९०४ के कानून में जो कमियाँ एवं त्रुटियाँ रह गई थीं उन्हें दूर किया जाय। इस कानून से सहकारिता को अधिक बल प्राप्त हुआ। इस नियम की मुख्य विशेषताएं यह थी—(१) साख समितियों के अतिरिक्त गैर साख समितियों की स्थापना की भी व्यवस्था की गई जैसे बीमा समिति, गृह निर्माण समिति आदि (२) निरीक्षण, अन्वेषण व पूंजी की पूर्ति के लिए सहकारी समिति सघानों (Federation of Co operative Societies) की रजिस्ट्री का आयोजन किया गया जैसे (अ) प्राथमिक समितियों को सम्मिलित करने वाले सघ जिनका मुख्य कार्य समितियों पर नियन्त्रण रखना हो। (ब) केन्द्रीय बैंक। (स) प्रान्तीय बैंक। (३) किसानों की अधिकता वाली समितियों में असीमित दायित्व कायम रखकर शेष समितियों के लिये गांव व नगर का अन्तर मिटा दिया गया। (४) समस्त समितियों को आदेश दिया गया कि वे अपने लाभ का चतुर्थांश सुरक्षित कोष में जमा करने के बाद शेष लाभ का कुछ भाग जो लाभ के १० प्रतिशत से अधिक न हो शिक्षा अथवा दान सम्बन्धी कार्यों पर व्यय कर सकती हैं। (५) किसान की कुर्की के समय उसके सहकारी समितियों के हिस्से कुर्क नहीं किए जा सकते। यदि एक किसान पर समिति का पैसा चाहिये तथा अन्य किसी व्यक्ति का भी तो पहले समिति का रुपया अदा होगा और बाद में किसी दूसरे का। (६) अन्य समितियों के दायित्व के सम्बन्ध में समितियों के सदस्यों को स्वतन्त्रता है। असीमित दायित्व वाली समिति अपने लाभ का ¼ भाग संचित कोष में रखने के बाद प्रान्तीय सरकार की अनुमति से लाभ दे सकती है।

१९१२ के अधिनियम से इस आन्दोलन के विकास को पर्याप्त बल मिला। इस विषय में की हुई उन्नति के परीक्षण के लिये मैकलेगन कमेटी बनाई गई।

मैकलेगन समिति १९१४—सहकारी आन्दोलन उन्नति की ओर तो बढ ही रहा था परन्तु इस समिति की स्थापना का मुख्य ध्येय था सहकारी आन्दोलन की प्रगति तथा आर्थिक स्थिति सुदृढ है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में जाच कर उन्नति के लिये सिफारिशें पेश करना। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट १९१५ में दी। इसने अपनी रिपोर्ट में आन्दोलन को और अधिक सफलता प्रदान करने के लिये मूलभूत एवं महत्वपूर्ण सिफारिशें प्रदान कीं। इस रिपोर्ट का आज भी भारतीय सहकारिता के

इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु दुर्भाग्य से इसकी पेश की गई सिफारिशो को ठीक रीति से नही अपनाया गया।

समिति ने सहकारी आन्दोलन के निम्नलिखित दोषो पर प्रकाश डाला —

(१) सहकारी साख समितियाँ ऋण देते समय कृषको की आवश्यकता का ध्यान नही रखती वरन् अपने सगे सम्बन्धियो को ही लाभ पहुचाने का प्रयत्न करती है। (२) इस आन्दोलन की प्रगति न होने का एक मुख्य कारण यह भी है कि जनता इन्हे सरकारी बैंक ही समझती है एव सरकारी कार्य का एक भाग। (३) समिति के अधिकांश सदस्य अनपढ होने के कारण सहकारी समिति के सिद्धान्तो से पूर्णतया अनभिज्ञ रहते हैं जिससे समितियो का कार्य समुचित रूप से प्रगति नही कर पाता। (४) ऋण को वापिस लेने के लिये समिति सदस्य यथा सभव प्रभावपूर्ण कार्यवाही नही करते। (५) समिति के सदस्य अधिकतर अपने स्वार्थ का कार्य ही करते है और बेनामी रुक्को पर बहुत सा धन स्वय ही ले लेते है। उपरोक्त कमियो के कारण समिति का कार्य भली प्रकार नही हो पाता है। इस समिति ने सहकारिता के विकास के लिये निम्नलिखित सुझाव पेश किये हैं —

(१) सहकारिता की उन्नति के लिये जनता को सहकारिता के सिद्धान्तो एव उनके बारे मे जानना अति आवश्यक है। सदस्यो का समुचित चुनाव होना चाहिये तथा इनका प्रचार कार्य भी होना चाहिए। (२) साख देने से पहिले जमानत लेना अति आवश्यक है। (३) रुपया केवल सदस्यो को ही उधार दिया जाये (४) ऋण उत्पादन कार्यों के लिये ही दिया जाय। (५) पर्याप्त राशि मे सचित कोष रखने की व्यवस्था एव मितव्ययता को प्रोत्साहन देना चाहिए। (६) ऋण दिया हुआ धन अवधि के अन्दर ही वापिस लेने पर अधिक जोर दिया जाय। (७) प्रान्तीय सहकारी बैंको की स्थापना इनके ऊपर नियन्त्रण के लिये की जाये। (८) ऋण देने सम्बन्धी अन्तिम अधिकार पदाधिकारियो के अतिरिक्त सदस्यो को होना चाहिये। (९) लेखा पुस्तको की पूरी जाच होनी चाहिये। (१०) ईमानदारी ही साख का मूल आधार माना जाये

१९१९ के सुधार कानून द्वारा उक्त सुझावो के आधार पर सहकारिता को प्रान्तीय विषय बना दिया गया। प्रान्तीय सरकारो ने इसको काफी सफल बनाने के प्रयास किये और कुछ सरकारो ने तो कानूनो का भी निर्माण किया। १९१९–२० तक हमारे देश मे २८ हजार सहकारी समितिया थी। १९२४–२ मे इनकी सख्या बढकर ५८ हजार और १९२९–३० मे ९४ हजार हो गई। निःसदेह सहकारिता के प्रांतीय विषय होने से दस वर्ष के अन्दर ही यह प्रगति सराहनीय थी।

१९२९–५ की भारी आर्थिक मन्दी के कारण सहकारी आन्दोलन को भारी हानि पहुची क्योकि किसानो की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड गई जिससे समितियो को रुपया वसूल करना कठिन हो गया। परन्तु युद्ध के समय तथा युद्ध के बाद इस आदोलन की सभी दिशाओ मे तीव्र उन्नति हुई। समितियो की सख्या, सदस्य सख्या तथा उनमे जमा किये जाने वाले धन मे भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सहकारी आन्दोलन —भारत को स्वतन्त्रता मिलने

के बाद के काल में सहकारी आन्दोलन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कदम १९५१ में उठाया गया जब रिजर्व बैंक ने एक निर्देशक समिति (Committee of Direction) की नियुक्ति की। भारत में ग्रामीण साख के ढांचे की विस्तारपूर्वक जाच की और उसमे सुधार के सुझाव पेश किये। इस समिति की रिपोर्ट १९५४ में प्रकाशित हुई। रिपोर्ट में बताया गया है कि वैसे तो सहकारी आन्दोलन को प्रारम्भ हुए ५० वर्ष हो चुके हैं किन्तु फिर ग्रामीण साख के क्षेत्र में महाजन तथा साहूकार आदि का ही बोलबाला है। सहकारी संस्थाओं ने केवल ३% मात्र किसानों को प्रदान किये जो केवल नाम मात्र के बराबर ही हैं फिर भी समिति ने विचार प्रकट किया कि भारत में सहकारी आन्दोलन के विकास की सम्भावनाये बहुत अधिक हैं इसलिये इसकी सफलता के हेतु अनुकूल वातावरण उत्पन्न होना चाहिये। इसके लिये समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं —

(१) प्रत्येक स्तर पर सरकार सहकारी संस्थाओं से साझेदारी (State Partnership at all levels) करे।

(२) साख को अन्य कार्यों विशेषकर फसल की बिक्री तथा गोदाम में रखने आदि से सम्बन्धित कर दिया जावे।

(३) आधार जिला के रूप में प्रारम्भिक कृषि साख समितियों का विकास जिससे वे आत्म-निर्भर इकाइयां बन सकें।

(४ समस्त देश में अनाज गोदामों की स्थापना जिससे किसान अपनी फसल की बिक्री उचित ढंग से कर सके।

(५) सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था।

(६) इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण ताकि यह सहकारी साख संस्थाओं को सहायता प्रदान कर सके और उनके विकास में योग दे।

सरकार ने उपरोक्त सुझावों को स्वीकार करते हुये निम्नलिखित कदम उठाए:-

(१) १ जुलाई १९५५ को स्टेट बैंक आफ इंडिया की स्थापना अर्थात् इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण। १९५७ के अन्त तक बैंक ने १५७ नई शाखाओं की स्थापना की जबकि इसका लक्ष्य ५ साल के भीतर ४०० नई शाखाएं स्थापित करने का है।

(२) मई १९५५ में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम में संशोधन किया गया है जिसके अनुसार बैंक ने दो प्रमुख कोषों की स्थापना की जिनमें से प्रथम राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) कोष [National Agricultural credit (Long Term operations)] तथा दूसरा राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) कोष [National Agricultural (stabilization) Fund] प्रथम कोष फरवरी १९५६ में १० करोड़ रुपये से स्थापित किया गया और प्रतिवर्ष उसमें ५ करोड़ रुपये और जमा करने की व्यवस्था है इस कोष के निम्नलिखित उद्देश्य है—

(अ) राज्य सरकारों को दीर्घकालीन कर्ज देना ताकि वे सहकारी संस्थाओं की पूंजी में साझेदारी कर सकें।

(ब) मध्यम कालीन (Medium Term) कृषि साख की व्यवस्था करना।

(स) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको को दीर्घकालीन साख प्रदान करना।

(द) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको के डिबेन्चर (Debentures) खरीदना।

दूसरा कोष १९५५-५६ वर्ष के अन्त मे १ करोड रुपए से स्थापित किया गया और १९५६-५७ मे उसमे १ करोड रुपया और जमा किया गया। इस कोष का उद्देश्य प्रान्तीय सहकारी बैंको को मध्यम कालीन साख प्रदान करना है ताकि सूखा तथा अकाल की हालत मे वे अल्पकालीन साख को मध्यम कालीन साख मे बदल सकें।

(३) भारत सरकार ने १ अगस्त १९५६ को राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड (National co-operative Development and Ware housing Board) की स्थापना की और इसी के साथ २ मार्च १९५७ को केन्द्रीय गोदाम निगम (Central Ware housing corporation) की स्थापना की।

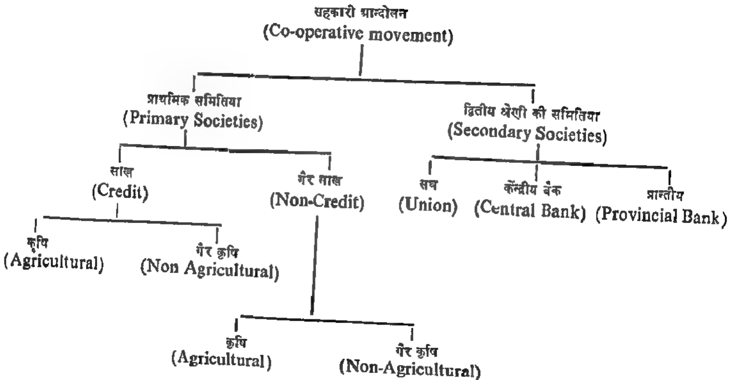
(४) सहकारी कर्मचारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था करने के लिये एक सहकारी प्रशिक्षण की केन्द्रीय समिति (Central Committee for Co-operative Training) बनाई गई है। इस कमेटी की योजना के अनुसार उच्च अधिकारियो के प्रशिक्षण का केन्द्र पूना मे स्थापित किया गया है। मध्यम श्रेणी के कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिये ५ क्षेत्रीय केन्द्र तथा ८ केन्द्र सामुदायिक विकास खण्डो के अधिकारियो के प्रशिक्षण के लिये स्थापित किये गये है।

इस प्रकार भारत मे सहकारी आन्दोलन के विकास मे रिजर्व बैंक एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। अनुमान लगाया गया है कि देश मे ८.८१ करोड व्यक्ति अर्थात् २२.८% जनसख्या सहकारी आदोलन मे सम्मिलित करली गई है।

प्रश्न ४५—भारत मे सहकारी आन्दोलन की रूप-रेखा तथा सगठन की विवेचना कीजिये। (राजपूताना ५३, ५६)

Explain the organization and structure of the Co-operative Movement in India *(Rajputana 53, 56)*

उत्तर भारत मे पाई जाने वाली सहकारी समितियो को मुख्य रूप से दो भागो मे बाटा जा सकता है अर्थात् प्राथमिक समितिया तथा द्वितीय श्रेणी की समितिया। प्राथमिक समितिया प्रत्यक्ष रूप से अपने सदस्यो से व्यवहार करती हैं जबकि द्वितीय श्रेणी की समितिया जिसमे सहकारी सघ केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्रान्तीय तथा सहकारी बैंक शामिल हैं, प्राथमिक समितियो से व्यवहार करते है और उन्हे सहायता देते हैं। प्राथमिक समितियो को भी दो श्रेणियो मे बाटा गया है अर्थात् साख समितिया तथा गैर-साख समितियाँ। साख समितिया भी दो प्रकार की होती हैं—अर्थात् कृषक साख समितिया और गैर कृषक साख समितियाँ। इसी प्रकार गैर साख समितिया भी कृषक और गैर कृषक दो श्रेणियो मे बाँटी गई है। निम्नलिखित रेखाचित्र से सहकारी आदोलन के सगठन तथा सही रूप रेखा का ज्ञान हो सकता है—


सहकारी आन्दोलन
(Co-operative movement)
प्राथमिक समितियां
(Primary Societies)
द्वितीय श्रेणी की समितियां
(Secondary Societies)
साख
(Credit)
गैर साख
(Non-Credit)
संघ
(Union)
केन्द्रीय बैंक
(Central Bank)
प्रान्तीय
(Provincial Bank)
कृषि
(Agricultural)
गैर कृषि
(Non Agricultural)
कृषि
(Agricultural)
गैर कृषि
(Non-Agricultural)

प्रारम्भिक कृषि साख समितियां — हम जानते है कि भारत मे सहकारी आन्दोलन का श्रीगणेश किसानो की साख सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए किया गया था। आज भी कृषि साख समिति भारतीय सहकारी आन्दोलन की आधार शिला है हाल्लाकि गैर साख समितियो के क्षेत्र मे भी काफी प्रगति हुई है। १६५५ के अन्त में कुल साख समितियो की ७८ ८ प्रतिशत सख्या कृषि साख समितियो की थी। कृषि साख समितिया केवल एक उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। अर्थात अपने किसान सदस्यो को कम ब्याज की दर पर ऋण प्रदान करती हैं। यद्यपि शाही कृषि कमीशन ने इसी प्रकार की समितियो को भारत के लिए उचित समझा था किन्तु सहकारी नियोजन कमेटी (Co-operative Planning) ने प्राथमिक कृषि साख समितियो के स्थान पर बहुउद्देशीय सहकारी समितियों की सिफारिश की है जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे।

कृषि गैर साख समितियां—यद्यपि भारत मे सहकारी आन्दोलन साख आन्दोलन के रूप मैं प्रारम्भ हुआ किंतु दूसरे महायुद्ध तथा उसके बाद के वर्षों मे कृषि गैर साख समितियो की सख्या मे भी समुचित वृद्धि हुई है। १६५४–५५ मे भारत मे कृषि-गैर साख समितियों की सख्या ३०१६७ थी। कृषि गैर साख समितियो मे निम्न लिखित प्रकार की समितिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(१) देहात सुधार समिति (Better living Societies)
(२) उत्तम कृषि समिति (Better Farming Societies)
(३) चकबन्दी समिति (Consolidation of holdings Societies)
(४) सिचाई समिति (Irrigation Societies)
(५) पशु पालन समिति (Cattle Breeding Societies)
(६) दुग्धशाला समिति (Dairy Societies)
(७) सहकारी कृषि समिति (Co-operative Farming Societies)
(८) सहकारी बिक्री समिति (Co-operative Marketing Societies)
(६) सहकारी बीमा समिति (Co-operative Insurance Societies)

उपरोक्त सभी प्रकार की समितिया ग्रामीण क्षेत्रों मे साख को छोड कर किसानों की अन्य प्रकार की आवश्यकताओ को सहकारिता के आधार पर पूरा करती हैं। इनमे से सहकारी बिक्री समितियो को विशेष सफलता मिली है।

गैर कृषि साख समितिया — गैर कृषि साख समितिया नगर समितियो (Urban Societies) का दूसरा नाम है। इन समितियो की स्थापना से क ग आम–दनी वाले लोगो तथा मजदूरो इत्यादि की सहायता होती है। जरूरतमन्द लोग इस प्रकार की समितिया बना सकते हैं जिनसे उन्हे व्यक्तिगत जमानत तथा निजी सपत्ति की जमानत पर ऋण प्राप्त होते हैं। द्वितीय महायुद्ध तथा उससे उत्पन होने वाले

नगर साख आन्दोलन को विशेष प्रोत्साहन दिया है। १९५४—५५ मे भारत मे इस प्रकार की ६३४३ समितिया थी जिनकी सदस्य सख्या २८ लाख से ऊपर थी तथा जिनकी क्रियाशील पूजी ८ करोड से भी अधिक थी।

गैर कृषि गैर साख समितिया—गैर कृषि गैर साख समितियाँ हमारे नगर जीवन की उन सभी स स्याओ का समाधान कर सकती हैं जो वस्तुओ के उत्पादन वितरण मकानो के निर्माण आदि से सम्बन्ध रखती हैं। गैर कृषि गैर साख समितियो मे निम्नलिखित प्रकार की समितिया विशेष महत्व रखती है।

(१) सहकारी उपभोक्ता भण्डार (Co-operative Consumer Societies)

(२) औद्योगिक सहकारी समितिया (Industrial Co operative

(३) सहकारी गृह निर्माण समितियो (Co operative Housing Societies)

सहकारी उपभोक्ता आन्दोलन को दूसरे महायुद्ध के दिनो मे विशेष प्रोत्साहन मिला क्योकि आवश्यक वस्तुओ के वितरण पर सरकार को नियन्त्रण करना पडा और जनता को चोर बाजारी तथा असुविधा से बचाने के लिए प्रत्येक नगर तथा मोहल्ले म सहकारी उपभोक्ता भण्डार स्थापित किये गये। औद्योगिक सहकारी समितियो का विकास मुख्य रूप से हैण्डलूम मे हुआ है। १९५४ के अन्त तक भा त मे ६४२०० जुलाहे इस प्रकार का समितियो के सदस्य बन चुके थे। पाकिस्तान स आये हुए शरणार्थियो को बसाने के लिए बहुत से औद्योगिक सहकारी समितियाँ की स्थापना की गई है। दूसरी पचवर्षीय योजना म कई चीनी की मिलें सहकारी आधार पर स्थापित की जाये गी। जहा तक सहकारी गृह निर्माण समितिया का प्रश्न है पिछले तीन चार वर्षों मे इन्होने उल्लेखनीय प्रगति की है। जिसका मुख्य कारण यह है कि सरकार कम आमदनी वाल लोगो को मकान बनाने क लिए सहकारी गृह निर्माण समितियो के माध्यम से ऋण देती है। ऐसी आशा की जाती है कि भविष्य मे इस प्रकार की समितिया और प्रगति करेगी।

द्वितीय श्रेणी की साख समितियाँ

[SECONDARY SOCIETIES]

द्वितीय श्रेणी की सहकारी समितिया वह होती है जो प्राथमिक समितियो के सगठन के रूप मे स्थापित की जाती है और उनका निरीक्षण करती हैं तथा उन्हे आर्थिक सहायता देती हैं। यह तीन प्रकार की होती हैं —

(१) सहकारी सघ (Co operative Union) —यूनियन एक प्रकार से समितियो के सघ या फडरेशन होते है जो एक निश्चित सीमा के अन्दर ही काय करते हैं। इनका प्रबन्ध सदस्य समितियों के प्रतिनिधित्व की एक कमेटी द्वारा होता है। ये यूनियन केन्द्रीय वित्तीय सस्थाओ तथा प्रारम्भिक सस्थाओ के बीच मे एक शृङ्खला का काय करते हैं। इनका मुख्य काय प्रारम्भिक सस्थाओ की देखभाल करना रहता है। सघ प्राय तीन प्रकार के होते हैं—

(१) संरक्षित संघ (Guaranteeing Unions)—ये संघ सदस्य समितियो को केन्द्रीय बैंक से ऋण दिलाते हैं और उनके लिए वचन बद्ध होते हैं।

(२) निरीक्षक संघ (Supervising Unions)—इन सघो का कार्य है सदस्य समितियो का निरीक्षण करना एवं पथ प्रदर्शन करना। इसके अतिरिक्त यह और भी अनेक कार्य करते हैं जैसे सहकारिता के निरीक्षण व सदस्यो की शिक्षा और विक्रय तथा पूर्ति के कार्यों मे सहयोग देना। आर्थिक आवश्यकताओं तथा साख वा सम्पत्ति के विवरण के आधार पर अनुमान लगाना। प्राथमिक समितियो तथा उच्च समितियो मे सम्बन्ध स्थापित करना इत्यादि। परन्तु आधुनिक समय मे यह सघ भी भली प्रकार कार्य नहीं कर पा रहे हैं।

(३) साहूकारी संघ (Banking Union)—ये सघ दोनो प्रकार का कार्य अर्थात् ऋण का संरक्षण व सदस्य समितियो का निरीक्षण आदि का कार्य करते है। भारत मे इस प्रकार के सघो की बहुत कमी है।

(४) केन्द्रीय बैंक (Central Bank)—१९१२ के पूर्व के अधिनियम मे यह आशा की जाती थी कि समितियो के सदस्यो द्वारा काफी धन एकत्र हो जाएगा और इस प्रकार हमारी पूंजी की समस्या पूर्णतया हल हो जाएगी परन्तु यह आशा पूरी न हो सकी। १९१२ के सहकारी समिति अधिनियम द्वारा केन्द्रीय बैंको का सगठन प्रारम्भ हुआ। यह बैंक प्राथमिक समितियो को आर्थिक सहायता के साथ २ समिति की कार्यशील पूजी को सतुलित करने का भी कार्य करते हैं। यह बैंक बिलो को उगाहते हैं, चैक भुनाने का कार्य करते हैं अमानत स्वीकार करते हैं और कुछ राज्यो मे अचल पूजी के विरुद्ध व्यक्तियो को ऋण भी देते हैं। केन्द्रीय बैंक भी दो प्रकार के होते हैं—

(१) शुद्ध बैंक (Pure Central Bank)—ऐसे सेन्ट्रल बैंक जिनकी सदस्य केवल समिति ही हो सकती है जिन्हे बैंकिंग यूनियन भी कहा जा सकता है। इनकी नीति का निर्धारण व प्रबंध सब कुछ सहकारी समितियो द्वारा ही होता है।

(२) मिश्रित बैंक (Mixed Central Bank)—इस प्रकार के बैंको के सदस्य समितियो एव व्यक्ति दोनो ही हो सकते है। इस प्रकार के बैंको को अधिक धन भी प्राप्त हो जाता है और अनुभवी व्यापारियो मे व मध्यम वर्ग के सदस्यो की सलाह भी आसानी से प्राप्त हो जाती है।

केन्द्रीय बैंक के सभी सदस्यों की साधारण सभा होती है जो सचालक मडल के सदस्यो को चुनती है। प्रत्येक मनुष्य को एक वोट का अधिकार मिलता है। सचालक एव कार्यकारिणी को चुनता है। बैंक की आय की जाच सरकारी एडीटर्स द्वारा की जाती है तथा निरीक्षण रजिस्टार और सहकारी कर्मचारियो द्वारा किया जाता है।

गत वर्षों मे केन्द्रीय बैंको की आर्थिक स्थिति मे काफी उन्नति हुई है। बैंको की डिपोजिट तथा कार्यशील पूजी मे काफी वृद्धि हुई है। इस बात को काफी प्रोत्साहन

दिया गया है कि वैयक्तिक सदस्यता का अन्त कर समिति के सदस्यों को बढ़ाया जाए। केन्द्रीय बैंक ने कुछ गैर साख सम्बन्धी कार्य को भी प्रोत्साहन दिया।

प्रान्तीय बैंक (Provincial Banks)—इस बैंक को सहकारी संगठन मे सबसे उच्चतम स्थान प्राप्त है। यह केन्द्रीय बैंको के लिए वही कार्य करता है जो केन्द्रीय बैंक प्राथमिक समितियो के लिए करता है। इसकी सदस्यता (पंजाब एव बङ्गाल को छोड़कर) सहकारी समितियां व व्यक्ति दोनो ही प्राप्त कर सकते हैं। प्रान्तीय बैंक केन्द्रीय बैंको की आर्थिक व्यवस्था व कार्य संचालन दोनों की व्यवस्था करता है। प्राथमिक समितियों से इन बैंको का सीधा सम्बन्ध नही होता वरन् केन्द्रीय बैंको से सम्बन्ध होता है लेकिन केन्द्रीय बैंको के अभाव पर इनका सीधा सम्बन्ध होता है। यह बैंक रिजर्व बैंक से ऋण लेकर केन्द्रीय बैंको व प्राथमिक साख समितियों को ऋण देते हैं फिर व्यक्तिगत ऋण प्राप्त होता है। केन्द्रीय बैंको पर इनका कोई नियन्त्रण नहीं होता।

इस सर्वोपरि बैंक के संचालन मे सहकारी संस्थाओ का ही प्रमुख भाग होता है। वरन् व्यक्तिगत हिस्सेदार भी सचालक मण्डल मे होते हैं। इन बैंको की कार्यशील पूंजी का निर्माण हिस्से की पूंजी, सदस्य बैंको से शुल्क, शहरी व ग्रामीण समितियो से प्राप्त जमा के रूप मे धन तथा और दूसरे के अग्रिम ऋण से होता है।

गत वर्षों मे भारत मे प्रान्तीय बैंको ने विशेष प्रगति की है। इनकी कार्यशील पूंजी मे काफी वृद्धि हुई। इस वृद्धि के होने का मुख्य कारण डिपोजिट्स की अधिकता है। बैंकिंग कार्यों के अतिरिक्त उन्होने सहकारिता के अन्य कार्यों में भी काफी सहयोग प्रदान किया है जैसे उन्होने कतिपय सहकारी संघो को मिलाकर उन्हे पूंजी की सहायता देकर, कन्ट्रोल की वस्तुए बेचने मे जिससे चोर बाजारी को प्रोत्साहन न मिले सहायता प्रदान की है। कुछ लोगों का यह भी सुझाव है कि प्रान्तीय बैंको को महाजनी बैंकिंग में अपनी अधिक शक्ति लगाने की अपेक्षा उन्हे सहकारिता की दिशा मे ही अधिक कार्य करना चाहिए।

प्रश्न ४६—भारत मे सहकारी आन्दोलन की सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए। (कलकत्ता २८; ३५; ३९; पंजाब ३३, ४८)

अथवा

भारत मे सहकारी आन्दोलन किसानों के लिए कहा तक सहायक सिद्ध हुआ है? (आगरा १९५७)

Make an estimate of the achievements of the Co-operative Movement in India (*Calcutta 28, 35, 39, Punjab 33,48*)

Or

How far have the Co-operative Movement proved helpful to the agriculturist in India? (*Agra 1957*)

उत्तर—भारतीय सहकारी आन्दोलन प्रारम्भ से ही विवाद का विषय रहा है सहकारिता के विशेषज्ञों ने तथा सरकार द्वारा नियुक्त कमेटियो तथा कमीशनों

ने सहकारी आदोलन के अनेक दोषो का उल्लेख किया तथा इसकी उन्नति के सुझाव दिये हैं। यद्यपि सहकारी आदोलन मे अनेक दोष पाये जाते हैं और इनकी प्रगति भी मद रही है किन्तु सहकारी आदोलन से भारत को विशेष लाभ भी प्राप्त हुये जो निम्नलिखित हैं :—

(१) सहकारी साख समितियो की स्थापना से पूर्व किसानो को महाजन से प्राप्त होने वाले कर्जो पर बहुत अधिक ब्याज देना पड़ता था। सहकारी आन्दोलन से ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रचलित ब्याज की दर मे सामान्य रूप से कमी हो गई है।

(२) सहकारी आदोलन से हमारे ग्रामीण जनो में धन बचाने की भावना को प्रोत्साहन मिला है। उनमे पूजी की भावना उदय होने लगी है।

(३) भारत जैसे निर्धन तथा कृषि प्रधान देश के लिये सहकारी आदोलन एक वरदान सिद्ध हो रहा है। इससे लोगों के नैतिक दृष्टिकोण मे व्यापक परिवर्तन हुआ है।

भारत मे सहकारी आन्दोलन की सफलता— स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के काल मे देश मे सहकारी आन्दोलन का प्रत्येक दिशा मे विस्तार हुआ है। हमारी राष्ट्रीय सरकार की नीति यह है कि भारत की समस्त आर्थिक समस्याओ को यथा सभव सहकारिता के आधार पर ही सुलझाया जाये तो अधिक हितकर होगा। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रख कर प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है सहकारी आन्दोलन की सफलता का कुछ अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है —

	१९५१—५२	१९५५—५६
समितियो की सख्या	१८५६५०	२४०३६५
सदस्यो की सख्या	१३७६१६८७	१७६२१८८७
क्रियाशील पूजी (Working Capital)	(हजार रुपयो मे)	
	३०६३३७७	४६८८१६६
(अ) हिस्से वाली पूजी	४६०८१५	७११५६३
(ब) सुरक्षित तथा अन्य कोष	४३५१४६	६२२७९१
(स) लिये गए कर्जे —		
(i) सहकारी सस्थाओ से	४६७७३५	८०४६२४
(ii) रिजर्व बैंक से	६८५२६	१४०७४२
(iii) सरकार से	१४१२०६	२४३२६४
(iv) अन्य साधनो से	६७३२४	६५ ३४
(द) जमा पूजी (Deposits) —		
(i) सहकारी सस्थाओं से	४७६०१	११६७४०
(ii) प्रारम्भिक समितियो से	१५८६२१	२५४२१३

(iii) निजी व्यक्तियों से	१६४४१८	१२८०३७८
(ङ) भूमि बंधक बैंकों तथा समितियों से कर्ज :—		
(i) डिबेन्चर	७६१३४	१५०२००
(ii) अन्य साधन	८२८४३	१२३७६४

सहकारी आंदोलन के विस्तार से केवल समितियों की संख्या तथा सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि नहीं हुई है वरन् इससे देश वासियों को अनेक प्रकार के लाभ भी प्राप्त हुए हैं। यह लाभ ही सहकारी आंदोलन की वास्तविक सफलता है। इन्हें हम चार श्रेणियों में बांट सकते हैं :—

(१) आर्थिक लाभ—जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं सहकारी साख समितियों की स्थापना से किसानों को कम ब्याज की दर पर उत्पादन कार्यों के लिए ऋण प्राप्त होने लगा है। यह एक महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ है जिसका किसानों की आर्थिक दशा पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इससे महाजनों को अब मनमानी करने का अवसर नहीं मिलता। उनके आचरण में नर्मी आ गई है और इस प्रकार अब भारतीय किसान को प्रति वर्ष करोड़ों रुपये की बचत होती है। सहकारी आंदोलन से किसानों को केवल साख के क्षेत्र में ही लाभ नहीं हुआ है वरन् कृषि पदार्थों की बिक्री, बीज तथा खाद को प्राप्त करने में तथा अन्य क्षेत्रों में भी आर्थिक लाभ प्राप्त हुये हैं। सहकारी आंदोलन से अब सहकारी खेती तथा सहकारी ग्राम प्रबन्ध के साकार होने की आशा बनने लगी है। केवल किसानों को ही नहीं वरन् छोटे कारीगरों, श्रमिकों तथा उपभोक्ताओं को भी सहकारी आंदोलन से विशेष आर्थिक लाभ प्राप्त हुए हैं। कम आमदनी वाले व्यक्तियों को अपने निजी भवन निर्माण के कार्य में सहकारी आंदोलन से विशेष सहायता मिली है।

कुछ क्षेत्रों में सहकारी आंदोलन ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। देश के विभाजन के पश्चात् लाखों लोग बेघर होकर भारत आये थे। उनको बसाने का भार हमारी सरकार को उठाना पड़ा। सरकार ने बंजर भूमि को खेती योग्य बनाकर इन लोगों को बसाया और सहकारिता के आधार पर उन्हें कार्य करने की प्रेरणा दी। यही बात छोटे तथा कुटीर उद्योगों के संबंध में हुई। सरकार ने शरणार्थी भाइयों को सहकारी समितियों के रूप में धन तथा कच्चा माल देकर उद्योग धन्धे स्थापित करने में सहायता दी है। आज देश में इस प्रकार की अनेक समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

(२) नैतिक लाभ—सहकारी आंदोलन केवल एक आर्थिक आंदोलन ही नहीं है यह नैतिक आंदोलन भी है और इससे देशवासियों को नैतिक लाभ भी प्राप्त होते हैं। भारतीय सहकारी आंदोलन ने ग्रामीण जनता में आत्म विश्वास तथा भाई-चारे की भावना को प्रोत्साहन दिया है। व्यक्तिगत स्वार्थ से हम अपनी समस्याओं को हल नहीं कर सकते। हमें दूसरों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। सबका

भला हमारा भला है और हमारे भले मे सबका भला है। यह सिद्धान्त सहकारिता का आधार है। हमारी ग्रामीण जनता मे मुकदमेबाजी, शराब की लत, फिजूल खर्ची तथा जुए आदि की बुरी आदतें पाई जाती थीं जिससे उनकी आर्थिक दशा तो खराब थी ही साथ ही उनका नैतिक पतन भी हो गया था। एक अच्छी सहकारी समिति की स्थापना से यह बातें दूर हो जाती है। मुकदमेबाजी के स्थान पर पंच फैसले से आपसी झगडो का निपटारा होने लगता है और लोग एक शुद्ध सादा तथा सहयोग का जीवन व्यतीत करने लगते हैं। सर मैलकम डार्लिङ्ग ने कहा है कि "एक अच्छी समिति मे मुकदमेबाजी फिजूल खर्ची, नशे की आदत तथा जुए की लत अब कमी पर है और इसके स्थान पर उद्योग, आत्म विश्वास, ईमानदारी, शिक्षा तथा पंच निर्णय समितिया, बचत, आत्म सहायता तथा परस्पर सहायता की भावना पाई जाती है।"

(३) सामाजिक लाभ—सहकारी आदोलन से प्राप्त होने वाले सामाजिक लाभ भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि आर्थिक तथा नैतिक लाभ। कृषि साख समितियो मे असीमित उत्तरदायित्व (Unlimited Liability) की व्यवस्था के कारण सदस्य अपने उत्तरदायित्व को समझने का प्रयत्न करते हैं और समिति की कार्य विधि पर पूरा ध्यान रखते हैं। इससे एक प्रकार की सामाजिक चेतना उत्पन्न होती है और बहुत सी सामाजिक कुप्रथाए कम हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त सहकारी समितिया ग्राम जीवन के विकास तथा सुधार के लिये भी महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। उनके वार्षिक लाभ का कुछ अ श प्रतिवर्ष सामाजिक हित की योजनाओ पर व्यय किया जाता है जैसे सार्वजनिक कुओ का निर्माण, गाव की नालियो की व्यवस्था सार्वजनिक मनोरजन का प्रबन्ध तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाए प्रदान करना इत्यादि। वास्तविकता तो यह है कि हमारी सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओ का वास्तविक हल केवल सहकारी आदोलन के द्वारा ही हो सकता है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमे अब तक की सफलताओ से मिल सकता है।

(४) शिक्षा सम्बन्धी लाभ—सहकारी समिति की सदस्यता से सदस्यो को शिक्षा सबन्धी लाभ भी होते है। वे बहुत सी नई बातें सीख जाते हैं। एक विद्वान का मत है कि एक अच्छी सहकारी समिति की सदस्यता शिक्षा का एक अच्छा साधन है। सहकारी समिति प्रजातन्त्रीय कार्य प्रणाली की प्रारम्भिक पाठशाला है। यहा सदस्यो को व्यापारिक पद्धति का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है और उनमें उत्तरदायित्व को सभालने तथा सगठन करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। सहकारी आन्दोलन का जितना आर्थिक तथा सामाजिक महत्व है उससे कही ज्यादा शिक्षा सबन्धी महत्व है। विशेषकर भारत जैसे देश मे जहा की अधिकांश जनता ग्रामो मे रहती है तथा अशिक्षा तथा अज्ञानता से पीडित है।

निष्कर्ष—उपरोक्त विवेचन मे सहकारी आन्दोलन की जिन सफलताओ का उल्लेख किया गया है। उनमे से आर्थिक लाभ इतने अधिक नही हैं जितने अनार्थिक लाभ हैं। इन सफलताओ का सही अनुमान लगाना कठिन है। इनका एक प्रमुख

कारण यह है कि यह लाभ केवल उन सहकारी समितियो के सदस्यो को प्राप्त होते हैं जो आदर्श समितियां हैं और इस प्रकार की समितियो की सख्या बहुत कम है। अधिकतर समितियो में आपसी झगडे, पक्षपात, तथा जाति भेदभाव ही देखने को मिलता है। अधिकाश लोग सहकारिता के सही अर्थ को भी नही समझते।

भारत मे सहकारी आन्दोलन की सफलता का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि यह आन्दोलन मुख्य रूप से किसानो की साख सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए चालू किया गया था किन्तु अभी तक इसका विस्तार सम्पूर्ण ग्रामीण जनता मे नही हो सका है। अभी तक ग्रामीण जनता का २ प्रतिशत भाग ही सहकारी समितियो की सदस्यता ग्रहण कर सका है और यह सहकारी साख समितियाँ किसानो की केवल ३ प्रतिशत साख की आवश्यकताओ को पूरा कर सकी है। इससे यह स्पष्ट है कि सहकारी आन्दोलन को अभी बडी मजिल पूरी करना बाकी है। सर विश्वेसरय्या के शब्दो मे 'अब तक जो कुछ भी किया गया है वह केवल ऊपरी सतह को खुरचने के समान है।'

हम इन सब बातो से यह अर्थ कदापि नही लगाना चाहिये कि भारत म सहकारी आन्दोलन की सफलता केवल दिखावटी है। यह सच है कि यह आन्दोलन आवश्यकतानुसार प्रगति नही कर सका जिसके अनेक कारण है। किन्तु इसने जो प्रगति की है वह कम महत्वपूर्ण नही है। विशेषकर उन परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुये जिनमे इस आन्दोलन का विकास हुआ है। हमे इस का प्रगति तथा सफलताओ की सराहना पडेगा।

प्रश्न ४७—भारत मे सहकारी आन्दोलन की मन्द प्रगति के कारणो पर प्रकाश डालिए। भारतीय ग्रामों मे इसके सुधार की योजना बताइये।

(पजाब ५२, आगरा ५२)

Account for the slow progress of the Co-operative Movement in India. Prescribe a plan for its improvement in Indian Villages

(Punjab 52 Agra 52)

उत्तर—इस बात मे किसी को कोई सन्देह नही हो सकता कि अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे सहकारी आन्दोलन की प्रगति बहुत मद रही है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद के काल मे अवश्य कुछ तीव्र गति से सहकारी आन्दोलन का विस्तार हुआ है किन्तु इस प्रगति की गति अभी भी अपेक्षाकृत कम है। डेनमार्क उन देशो में से है जिन्होने अपेक्षाकृत कम समय मे आश्चर्यजनक प्रगति की है। भारत मे सहकारी आन्दोलन की मन्द प्रगति के प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

(१) **सहकारिता के सिद्धान्तों से अनभिज्ञता**—भारत मे सहकारिता का विस्तार मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों मे हुआ है। हमारी ग्रामीण जनता भली प्रकार सहकारिता शब्द का अर्थ भी नही जानती। सहकारिता का क्या उद्देश्य है तथा सहकारिता का आधार क्या है इस बात का न तो उन्हे कोई ज्ञान है और न वह ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न ही करते हैं। इसका परिणाम यह है कि वे सहकारी समि-

तियों की कार्य विधि मे कोई रुचि नही रखते। जब तक देश मे सहकारिता की भावना का वास्तविक अर्थों मे उदय नहीं होगा हमे इस आन्दोलन की विशेष प्रगति की आशा नही करना चाहिये। सहकारी समितियो की सख्या तथा सदस्यो की सख्या से हम आन्दोलन की सफलता का सही अनुमान नही लगा सकते।

(२) **पक्षपात तथा भ्रष्टाचार**—भारतीय सहकारी आन्दोलन मे एक भारी दोष यह है यहा की ग्रामीण जनता अशिक्षा के कारण जातिवाद तथा पक्षपात आदि की बुराइयो मे फसी हुई है। कर्ज के प्रार्थना पत्रो पर विचार करते समय जाति के विचार मे अथवा नातेदारी के आधार पर पक्षपात की नीति अपनाना एक साधारण बात है। बेईमानी भ्रष्टाचार, कर्ज का समय पर भुगतान न करना तथा इसी प्रकार के अन्य दोष साधारण रूप से सभी समितियो मे देखने को मिलते है। इसका सबसे बडा कारण यह है कि अधिकतर समितियो का प्रबन्ध अकुशल तथा अशिक्षित लोगो के हाथ मे है।

(३) **अपेक्षाकृत ऊची ब्याज की दर**—वैसे तो सहकारी समितियाँ महाजनो की अपेक्षा कम ब्याज की दर वसूल करती हैं किन्तु फिर भी इनकी ब्याज की दर काफी ऊची है। साधारण तौर पर यह दर ६ प्रतिशत से १२ प्रतिशत तक रहती है। उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बगाल मे यह १२.५ तथा १५ प्रतिशत तक भी पाई गई है। वैसे तो सरकार तथा रिजर्व बैंक द्वारा आन्दोलन को सहायता प्राप्त होती है किन्तु ब्याज की इस ऊँची दर का एक मात्र कारण यह है कि समितियो को बाहरी साधनो पर निर्भर रहना पडता है। इनके पास निजी साधनो का सदा अभाव रहता है। इसका एक प्रभाव यह भी होता है कि बहुत से किसान सहकारी समिति के सदस्य बनने की आवश्यकता ही नही समझते और इस ओर से उदासीन रहते हैं।

(४) **सदस्यों मे बचत की आदत का अभाव**—सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि सदस्यो मे बचत की आदतो का विकास हो। बचत की आदत तथा सहकारिता एक दूसरे पर निर्भर है। भारतीय किसान फिजूल खर्ची के आदी हैं जिससे सहकारिता के बहुत से लाभो से वचित रह जाते है।

(५) **समिति के हिसाब किताब मे गोल माल**—सहकारी समितियो के हिसाब किताब की जाच (Audit) मे पूरी सावधानी नही बर्ती जाती जिसका परिणाम यह होता है कि प्रबन्धको को हिसाब किताब मे गोल माल करने का अवसर मिल जाता है। सहकारी समितियो मे गबन आदि की घटनाए प्राय होती रहती हैं।

(६) **धन का अभाव**—अधिकाश समितियो के पास धन का अभाव रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि किसानो को कर्ज प्राप्त करने म अनावश्यक देरी हो जाती है जबकि कृषि व्यवसाय म समय विशेष पर ही धन की आवश्यकता होती है और समय निकल जाने पर उस सहायता का कोई महत्व नही रहता। मजबूर होकर किसान को महाजन का दर्वाजा खटखटाना पडता है। उसके पास इसके सिवा अन्य कोई चारा ही नही रहता। यह प्रवृति सहकारी आन्दोलन के लिए बहुत हानिकारक है।

(७) **अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप**—भारत मे सरकारी आन्दोलन का विकास

सरकारी कर्मचारियों की छत्र छाया मे हुआ है और प्रारम्भ से ही उनका सहकारी समितियों के कार्य सचालन मे बडा हाथ रहा है। वास्तव मे सहकारिता की प्रेरणा लोगो के मन मे स्वय उत्पन्न होनी चाहिये थी किन्तु इसके विपरीत यह सरकार द्वारा लोगो पर लादी जाती है। फल यह होता है कि लोग इस को एक सरकारी विभाग ही मानते हैं। सहकारी आन्दोलन जनता का आन्दोलन है सरकार का हस्तक्षेप इसमे न्यूनतम होना चाहिए।

(८) सहकारी साख पर अत्याधिक जोर दिया गया है— सहकारी आन्दोलन की मन्द प्रगति का एक कारण यह भी है कि भारत मे साख समितियों के विकास पर ही विशेष रूप से जोर दिया गया है। सहकारिता का अन्य क्षेत्रो म बहुत कम विकास हुआ है। केवल सस्ते साख की व्यवस्था स किसानो की आर्थिक दशा मे सुधार नही किया जा सकता। १९४६ म सहकारी नियोजन कमेटी (Co opera. tive Planning Committee) ने इस कमी का अनुभव करते हुए भारत मे बहुमुखी सहकारी समितियो की स्थापना का सुझाव दिया था।

सहकारी आन्दोलन मे सुधार के सुझाव —भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के पुर्ननिर्माण के लिये तथा भारतीय लोगो के भावी आर्थिक जीवन मे सहकारिता का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए यह आवश्यक है कि इस आन्दोलन मे एक नवीन जीवन का सचार किया जाये और इसके दोषो को शीघ्र से शीघ्र दूर किया जाये। इस विषय मे हम अन्य देशो के अनुभवो से भी लाभ उठा सकते हैं। डेनमार्क छोटी श्रेणी वाले किसानो का देश है और वहा सहकारी आन्दोलन को सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है वहा के किसानों का रहन सहन का स्तर इतना ऊचा उठ चुका है कि ससार के किसी भी देश को ईर्ष्या पैदा हो सकती है। सर जान रसल (Sir John Russell) ने अपनी रिपोर्ट में डेनमार्क की सफलता के चार कारण बताये हैं। यदि भारत मे भी यह परिस्थिति उत्पन्न हो जायें तो आन्दोलन की सफलता मे कोई सशय नही रहेगा। यह कारण निम्न-लिखित हैं।

(१) वहा की ग्रामीण जनसख्या एकरूप है अर्थात जाति प्रथा जैसी कोई चीज वहा नही है।

(२) वहा के सब किसान शिक्षित हैं।

(३) वहा प्रारम्भ से हाई स्कूलों की स्थापना करदी गई थी जिसमे ग्राम तथा राष्ट्र के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाता है और उत्तम जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी जाती है।

(४) सहकारी समितियां विशेष रूप से व्यापारिक समितिया हैं जो फसल को किसान से प्राप्त कर लेती हैं और उन्ह बिक्री योग्य पदार्थो का रूप देकर बेचती हैं। उसका लाभ सदस्यो को मिल जाता है। इसके अतिरिक्त यह समितिया अपने सदस्यो को उपभोग की वस्तुएं तथा बीज खाद आदि का प्रबन्ध भी करती हैं। इन समितियो को साख स्थानीय बैंको से प्राप्त होती है। जिसके लिए सब सदस्य व्यक्तिगत

तथा सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते है। सदस्य अपना धन समिति के पास जमा कराते हैं और वह धन उन्हे कर्ज के रूप मे प्राप्त होता है इसलिए कर्ज वापसी को हर सदस्य अपना कर्तव्य मानता है।

उपरोक्त परिस्थितियो को उत्पन्न करना भारतीय सहकारी आन्दोलन को सफलता मे सहायक हो सकता है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य सुझाव भी महत्वपूर्ण है—

(१) प्रारम्भिक समितियों का पुनर्गठन—अधिकांश प्रारम्भिक समितिया केवल साख का कार्य करती हैं। इन्हे बहुउद्देशीय समितियो मे बदल देना चाहिये। इस प्रकार सहकारी आन्दोलन ग्रामीण जनता के सर्वमुखी विकास का केन्द्र बन जायेगा। हमारी सरकार ने इस बात के महत्व को भली प्रकार समझ लिया है।

(२) सहकारी समितियों की कार्य विधि मे सुधार—वर्तमान समितियो की कार्यविधि मे सुधार की आवश्यकता है। जिन पुराने कर्जो का भुगतान सदस्यों पर बाकी है उन्हे कम कर दिया जावे और भविष्य मे इस बात का ध्यान रखा जाय कि कर्ज केवल उत्पादक कार्यो के लिए दिये जावें और ऐसे लोगो को दिये जावे जो वास्तव मे इसके पात्र हैं तथा जिनसे धन की वापसी की पूरी सम्भावना हो। समितियो के पास अधिक से अधिक धन सुरक्षित कोष (Reserve Fund) मे होना चाहिए तथा सदस्यो को अधिक बचत करने तथा उस धन को समिति के पास जमा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। इसका प्रभाव यह होगा कि समितियो को बाहरी सहायता पर निर्भर रहने की आवश्यकता नही होगी और वे अपने निजी साधनो मे से कम ब्याज की दर पर सदस्यो को कर्ज दे सकेंगी।

(३) सहकारी हस्तक्षेप मे कमी—सरकारी कर्मचारियो द्वारा सहकारी समितियो के कार्य मे कोई हस्तक्षेप नही होना चाहिये। सरकार को केवल आवश्यक देखभाल (Supervision) तथा परामर्श (Guidance) तक अपने को सीमित रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुछ सीमा तक नियन्त्रण भी किया जा सकता है किन्तु सरकार का पूर्ण नियन्त्रण आन्दोलन की वास्तविक सफलता मे अहितकर है।

(४) सरकारी साझेदारी (State Partnership)—अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (All India Rural Credit Survey) ने अपनी रिपोर्ट मे यह सुझाव दिया है कि सभी स्तरों पर सरकार को सहकारी समितियो के साथ साझेदारी मे शामिल होना चाहिय। इससे सहकारी आन्दोलन की आर्थिक हालत मजबूत हो जावेगी जिसकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है। यह एक महत्वपूर्ण सुझाव है और इस पर अमल होना चाहिये।

(५) सहकारिता की शिक्षा तथा प्रशिक्षण (Education & Training)-हमारी ग्रामीण शिक्षा प्रणाली मे सहकारिता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए। सहकारी कर्मचारियो को विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।

(६) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सहकारी बैंको का पुनर्गठन— केन्द्रीय तथा प्रांतीय सहकारी बैंको का कार्यक्षेत्र सीमित कर दिया जाए जिससे वे अपनी सम्बन्धित समि-

तियों का भली प्रकार निरीक्षण कर सकें। उनके पास काफी धन होना चाहिये और उन्हें व्यापारि वें ो मे घनिष्ठ सम्पर्क रखना चाहिये ताकि वे प्रारम्भिक समितियों की ओर अधिक सहायता कर सकें।

(७) सहकारी बिक्री प्रथा का विकास—रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग ने (Agricultural Credit Department) सहकारी बिक्री के विकास को सबसे अधिक महत्त्व दिया है और से सहकारी आँदोलन की उन्नति के लिये परम आवश्यक माना है।

(८) सहकारी अनुसन्धान (Co-operative Research)—भारत एक विशाल देश है तथा विविध प्रकार की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक समस्याओं का सहकारिता के आधार पर सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि सहकारिता के क्षेत्र म व्यापक छान बीन तथा अनुसंधान किये जावें।

प्रश्न ४८—भारत मे सहकारी आन्दोलन की नवीन प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालिये। पचवर्षीय योजनाओं मे इनका क्या महत्व है ? (पटना १६५४)

Examine the recent trends in the Co operative Movement in India Discuss its importance under the Five Year Plans

(Patna 54,

दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ से सहकारी आंदोलन को नया जीवन हुआ और इसने तीव्र गति से प्रगति करना प्रारम्भ कर दिया। उसी समय से भारतीय सहकारी आन्दोलन में नई प्रवृत्तियां उत्पन्न होने लगी जिनका महत्व देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् विशेष रूप से हमारे सामने उपस्थित होने लगा है। यह नवीन प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं —

(१) समितियों की संख्या में तीव्र वृद्धि—पिछले १५ वर्षों में सहकारी समितियों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है जितनी पिछले ३५ वर्षों में भी नहीं हुई थी। १६३६-४० में भारत में कुल १२२००० समितियां थीं। १६५४-५५ के अन्त तक कुल समितियों की संख्या २११२८८ हो गई। सदस्यों की संख्या में भी भारी वृद्धि हुई है।

(२) सरकार की उदारतापूर्ण नीति—युद्ध के काल में आवश्यक वस्तुओं के वितरण के हेतु तथा अधिक अन्न उपजाओ आंदोलन को सफल बनाने के लिये सरकार ने सहकारिता के विकास पर अत्यधिक ध्यान देना शुरू किया। स्वतन्त्रता मिलने के बाद तथा पचवर्षीय योजनाओं में सरकार की नीति सहकारिता के प्रति विशेष रूप से उदार हो गई है।

(३) कृषि साख के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में विकास—सहकारी आन्दोलन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति यह है कि अब केवल सहकारी साख पर ही जोर नहीं दिया जाता वरन् अन्य प्रकार की सहकारी समितियों का तीव्रता के साथ विकास हो रहा है। सहकारी उपभोक्ता भण्डार, सहकारी बिक्री समितियाँ, सहकारी गृह निर्माण समितियाँ, सहकारी कर्घा समितियां तथा इसी प्रकार से विविध कार्यों के लिये

सहकारिता का सहारा लिया जा रहा है। १९५४–५५ मे भारत म प्रारम्भिक कृषि गैर साख समितियो की संख्या ३०१९७ तथा गैर कृषि गैर साख समितियो की संख्या ७४२६६ थी।

(४) बहुउद्देशीय समितियों का महत्व एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति यह है कि अब भारत म एकाकी उद्देश्य वाली समितियो के स्थान पर बहुउद्देश्य वाली समितिया को अधिक उपयुक्त माना गया है और धीरे-धीरे ऐसी समितियो को बहुउद्देशीय समितियो मे बदला जा रहा है।

(५) असीमित दायित्व के स्थान पर सीमित दायित्व — १९३८–३९ से पूर्व असीमित दायित्व (Unlimited Liability) वाली समितियो पर अधिक जोर दिया जाता था। १९३८–३९ मे कुल समितियो की केवल ८ प्रतिशत सीमित दायित्व वाली समितिया थी। शेष असीमित दायित्व वाली थीं अब सीमित दायित्व पर अधिक जोर दिया जाता है। १९४८–४९ तक सीमित दायित्व वाली समितियो की संख्या ४५% हो गई थी। इसके बाद हुई वृद्धि के आकड़े सुगमता से उपलब्ध नही हैं

(६ सहकारी आन्दोलन मे रिजर्व बैंक की अधिक रुचि —वैसे तो रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद म सहकारी आन्दोलन के सुप्रबन्ध सुव्यवस्था तथा विकास का निरीक्षण तथा आवश्यक सहायता आदि देने का कार्य रिजर्व बैंक क कन्धो पर है और बैंक का कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department) इस दिशा मे महत्वपूर्ण काय कर रहा है। १९४६–४७ मे रिजर्व बैंक ने केवल १ ५ लाख रुपए की आर्थिक सहायता सहकारी आन्दोलन को प्रदान की जो १९५४–५५ म २१ ०१ करोड रुपये तक पहुच गई। इससे यह विदित होता है कि रिजर्व बैंक सहकारी आन्दोलन की प्रगति मे क्रियाशील भाग ले रहा है। रिजर्व बैंक ने सहकारी आन्दोलन की प्रगति की छानबीन के हेतु समय समय पर विभिन्न कमेटियो आदि की नियुक्ति की है और सर्वेक्षण (Survey) करए हैं तथा सुधार के सुझाव सरकार के सामने रखता रहा है। इस विषय म अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (All India Rural Credit Survey) की सिफारिशो का उल्लेख करना आवश्यक है।

(७) अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण तथा सरकार की नीति — अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण रिपोर्ट १९५४ मे प्रकाशित की गई। इस रिपोर्ट मे अन्य बातो के अतिरिक्त सहकारी आंदोलन के सम्बन्ध मे भी कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये है जिनका सहकारी आन्दोलन की भावी सफलता से गहरा सम्बन्ध है। भारत सरकार ने इन सुझावो को मानते हुये जो कदम उठाये हैं उनका यहा उल्लेख कर देना उचित होगा। ये सुझाव इस प्रकार हैं :—

(१) सरकार नीचे से ऊपर तक सब प्रकार की सहकारी संस्थाओ के साथ साझदारी स्थापित करे।

(२) साख के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो म विशेषकर फसल की बिक्री तथा उसकी किस्म निर्धारित करने के कार्यों मे पूर्ण सामन्जस्य स्थापित किया जाय।

(३) कृषि स स की रूपरेखा की नीव ऐसी प्रारम्भिक समितियो पर आधारित हो जो बडे आकार की हो तथा उनके सदस्यो का दायित्व सीमित हो।

(४) देश म अनाज के गोदामो का एक जाल स्थापित किया जाये जो राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय सस्थाओ की सहायता से स्थापित किये जायें ताकि किसानो को अपनी फसल की बिक्री मे सहायता हो सके।

(५) सहकारी कर्मचारियो को उचित परीक्षण (Training) देने के हेतु स्कूल खोले जाए।

(६) इम्पीरियल बैंक को स्टेट बैंक आफ इण्डिया (State Bank of India) का रूप देकर उसका राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये ताकि यह बैंक सहकारी सस्थाओ की और अधिक सहायता कर सके।

(७) रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ऐक्ट (Reserve Bank of India Act) मे आवश्यक सशोधन किये जाये ताकि ग्रामीण ऋण की सहायता के लिये अधिक धन उपलब्ध किया जा सके।

८) अखिल भारतीय स्तर पर एक राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड (National Co operative Warehousing and Development Board) की स्थापना की जाय। इस बोर्ड के आधीन दो पृथक कोष होने चाहियें अर्थात् (१) विकास कोष (Development Fund) (२) गोदामो से सम्बन्धित कोष (Warehousing Fund)।

इन सुझावो के अन्तर्गत भारत सरकार ने मई १६५५ मे रिजर्व बैंक अधिनियम मे सशोधन किया जिसके अनुसार रिजर्व बैंक दो कोषो की स्थापना करेग। (१) राष्ट्रीय कृषि साख कोष (दीर्घकालीन साख के लिए) [National Agricultural Credit (Long Term Operation) Fund] (२) राष्ट्रीय कृषि साख कोष (स्थिरीकरण) [National Agricultural Credit (Stablisation) Fund] इसमे से प्रथम कोष फरवरी सन् ५६ मे स्थापित किया गया जिसमे प्रारम्भ मे १० करोड रुपये जमा किये गये और प्रतिवर्ष ५ करोड रुपए की वृद्धि की जायेगी। इस कोष का उपयोग निम्नलिखित कार्यों के लिये किया जायेगा।

(अ) राज्य सरकारो को सहकारी सस्थाओ की पूजी खरीदने के लिये दीर्घकालीन ऋण देने के हेतु।

(ब) मध्यम कालीन ऋण देने के लिये।

(स) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों को दीर्घकालीन ऋण देने के लिये।

(द) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको के डिबेन्चर (Debentures) खरीदने के लिये।

दूसरे कोष की स्थापना एक करोड रुपये से १६५५–६ मे की गई। इस कोष का प्रयोग प्रान्तीय सहकारी बैंको को मध्यम कालीन ऋण देने के लिये किया जायेगा।

राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड (National Co-opera-

tive Warehousing and Development Board) की स्थापना १ सितम्बर सन् १९५६ को की गई।

१ जौलाई सन् १९५५ को इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण करके उसे स्टेट बैंक आफ इण्डिया का रूप दे दिया गया, जो ५ वर्ष के अन्दर अपनी ४०० नई शाखायें स्थापित करेगा।

सहकारी कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार के सयुक्त प्रयत्न से एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की गई है। इस योजना के आधीन पूना मे एक अखिल भारतीय सहकारी प्रशिक्षण केन्द्र तथा ५ क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त ८ अन्य प्रशिक्षण सस्थायें स्थापित की गई हैं जिनमे सामुदायिक विकास योजनाओ तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डो मे कार्य करने वाले सहकारी अधिकारियो को प्रशिक्षण दिया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन नये परिवर्तनो से सहकारी आंदोलन को एक नया जीवन प्राप्त हो रहा है और इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता—भारत की आर्थिक दशा को देखते हुये यह अति आवश्यक हो जाता है कि आर्थिक दशा मे सुधार किया जाये और कृषि साख का सुगम प्रबन्ध किया जाये। प्रथम पचवर्षीय योजना मे तीन प्रकार के साख का आयोजन किया गया था। (१) अल्पक लीन ऋण (Short Terms Loan) जो केवल आवश्यक वस्तुयें जैसे खाद एव बीज के खरीदने क लिए दिए जाते थे। इनकी अवधि ९ माह रहती थी। (२) मध्यम कालीन ऋण (Medium Terms Loan) जो कुयें खुदवाने एव बैल कृषि औजार आदि के खरीदने के लिए ५ वर्ष की अवधि पर दिये जाते थे। (३) दीर्घ कालीन ऋण (Long Terms Loan) जो पुराना ऋण अदा करने, बडी मशीनो के खरीदने तथा कृषि सुधार के लिये दिए जाते है जो ५ वर्ष म भी अधिक अवधि के होते हैं। केन्द्रीय सरकार ने सहकारी बैंको की सहायता के लिये ५ करोड का आयोजन और इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक ने मध्य-कालीन ऋण के लिय ५ करोड रुपये का प्रबन्ध किया था। प्रथम योजना मे सह-कारिता विकास के लिये कुल ६६१ २ लाख रुपये का आयोजन किया गया था। इसके अतिरिक्त क्रय विक्रय समितियो के सगठन पर भी अधिक जोर दिया गया। बहुउद्देशीय समितियो पर विशेष ध्यान दिया गया जिससे गाँव की सभी समस्याए हल हो सकें। सहकारिता का प्रोत्साहन देने के लिये नियोजन ने सिफारिश की है कि सरकार को ऐस कानून पास करने चाहिए जिससे प्रत्येक गाव मे सहकारी कृषि समिति स्थापित हो सके और साथ ही साथ सरकार को सहकारी फार्म स्थापित करना चाहिय। सन् १९५१—५२ म समस्त भारत मे कुल १५२००० साख सस्थायें थी। जिन्होने लगभग ३७ ५८ करोड रुपया किसानो को अल्पकाल के लिये उधार दिया था। योजना क अनुसार सहकारिता ने काफी उन्नति की। जून १९५४ मे २९ प्रान्तीय सहकारी बैंक ४९९ केन्द्रीय सहकारी बैंक और २६ ६५४ कृषि साख समितिया थी जिनकी सदस्य सख्या ५८ लाख थी। इनके कोष म ३६ करोड

रुपये जमा थे जमा पूंजी ७७ करोड और कार्यशील पूंजी लगभग १६१ करोड रुपये थी। नगरो मे उस वर्ष ७१९ सहकारी बैंक, ८३८६ साख समितिया और ३६५१ श्रमिकों की समितिया थी।

प्रथम योजना मे सहकारी प्रशिक्षण के लिये १० लाख रुपये की व्यवस्था की थी। इस कार्य के लिए पूना महाविद्यालय की स्थापना की गई। इसके बाद मद्रास महाविद्यालय की स्थापना की गई। मध्य श्रेणी के अधिकारियो के प्रशिक्षण के लिये ५ क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र पूना, रांची, मेरठ, मद्रास और इन्दौर में स्थापित किए गये।

दूसरी पचवर्षीय योजना का उद्देश्य यह है कि गाव की खेती की सारी पैदावार का प्रबन्ध ग्रामोद्योग और गाव का व्यापार, सब सहकारी संस्थाओ के द्वारा हो। किसानो को ऋण देने और खेती की पैदावार की बिक्री व्यवस्था का भी पुनर्गठन करने का विचार है। उद्योगो, मकानो और मजदूरो आदि के लिये भी सहकारी सस्थायें बनाने की सिफारिश की है।

• द्वितीय योजना के लक्ष्य (Targets of the Second Plan)।

बडे पैमाने की सहकारी समितिया	१०४०० ‌।
अल्प कालीन ऋण	१५० करोड
मध्य कालीन ऋण	५० करोड
दीर्घकालीन ऋण	२५ करोड
प्राथमिक विपरण समितिया	१८००
सहकारी चीनी मिल	३८
सहकारी रूई धुनने के कारखाने	४८
अन्य सहकारी समितिया	११८
केन्द्रीय और प्रदेशीय गोदाम	३५०
विपरण समितियो के गोदाम	१५००
बडी समितियों के गोदाम	४०००

उपरोक्त आकडो स स्पष्ट है कि १९५५—५६ और १९६०—६१ के बीच सहकारी सस्थायें २.५ करोड रुपया उधार देंगी। द्वितीय योजना म सहकारिता विकास के लिये ४७ करोड रुपये का आयोजन किया गया है।

प्र० ४६—भारतीय कृषकों को ऋण देने मे केन्द्रीय बैंक तथा प्रान्तीय सहकारी बैंकों का महत्व बताइये। (आगरा १९५८)

Discuss the importance of central Banks and provincial Co operative Banks in providing credit to Indian Agriculturists

(Agra Supplementary 1958)

उत्तर—केन्द्रीय सहकारी बंक तथा प्रान्तीय सहकारी बैंक भारतीय कृषिको को साख प्रदान करने मे महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वैसे तो भारतीय किसान का

न सहकारी संस्थाओं से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि उनका सम्पर्क प्रारम्भिक साख समिति से ही रहता है किन्तु प्रारम्भिक समितियों का साख प्रदान करने का कार्य केन्द्रीय सहकारी बैंक करते है। केन्द्रीय बैंक प्रारम्भिक समितियों के सुचारु रूप से संगठन करने, उनकी देख रेख करना तथा उनके अर्थ की पूर्ति के लिए बनाये जाते है। केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्रान्तीय सहकारी बैंक के महत्व को हम निम्नलिखित स्पष्टीकरण से ज्ञात कर सकते हैं —

केन्द्रीय सहकारी बैंक—केन्द्रीय सहकारी बैंक की स्थापना १६१२ के सहकारी अधिनियम (Co-operative Societies Act of 1912) के बाद से हुआ यह बैंक प्रारम्भिक समितियों को ऋण प्रदान करते है और उनके रोकड़-शेष केन्द्रों का कार्य करते हैं इस प्रकार अन्य बड़े क्षेत्रों से पूंजी जुटाकर प्रारम्भिक समितियों के लिये उसे प्रदान करते है इस प्रकार अपने क्षेत्र में स्थिति प्रारम्भिक समितियों की कार्यशील पूंजी की बचत तथा कमी को संतुलित करने मे सहायता देते हैं इसके अतिरिक्त यह बैंक अमानतें स्वीकार करते हैं, बिलों (Bill of Exchange) की उगाही तथा चैकों को भुनाने आदि जैसे बैंकिंग के कार्य भी करते हैं। इनकी सदस्यता केवल प्रारम्भिक समितियों के लिए ही खुली रहती है यद्यपि भारत की परिस्थितियों को देखते हुए निजी व्यक्ति भी इनके सदस्य हो सकते है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि अधिकांश प्रारम्भिक समितियों के पास धन का अभाव रहता है जिसे वे अपने निजी साधनों से पूरा नहीं कर सकती और उन्हे केन्द्रीय सहकारी बैंकों से ऋण के रूप मे सहायता लेनी पड़ती है। ऐसी बहुत कम समितियां होती है जिनके पास बची हुई पूंजी हो जिसे वह केन्द्रीय बैंक के पास अमानत के रूप मे अथवा ऋण के रूप मे दे सकें। इसका परिणाम यह होता है कि केन्द्रीय सहकारी बैंकों के पास इतने साधन नहीं हो पाते कि वे अपने उत्तरदायित्व का निभा सकें और सभी प्रारम्भिक समितियों को अपने निजी साधनों में से सहायता प्रदान कर सकें इसलिये केन्द्रीय सहकारी बैंकों की सदस्यता निजी व्यक्तियों के लिये भी खोल दी जाती है। वैसे कुछ प्रांतों मे शुद्ध सहकारी केन्द्रीय बैंक भी पाये जाते है जिनके सदस्य निजी व्यक्ति नहीं हो सकते। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण कमेटी (All India Rural Credit Survey) ने सुझाव दिया है कि सरकार सभी स्तरों पर सहकारी संस्थाओं के साथ साझेदारी (State Partnership) करे और उनकी पूंजी के हिस्से खरीदे। ऐसा करने से संस्थाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत हो जायगी और यह किसान को अधिक सीमा तक ऋण प्रदान करने मे सहायक हो सकेगी।

द्वितीय महायुद्ध के बाद के काल मे केन्द्रीय सहकारी बैंकों की संख्या तथा उनकी आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है किसानों से ऋणों की वसूली की स्थिति सुधरी है और अमानतें तथा कार्यशील पूंजी की मात्रा में भी वृद्धि हुई। पेशगी ऋणों के लिये प्रारम्भिक समितियों की इतनी मांग नहीं थी जिससे केन्द्रीय बैंकों के कोषों की खपत हो जाती इसलिए इन बैंकों ने अन्य साधारण बैंकिंग के

कार्य को बढा दिया है वैसे सामान्य स्थिति यह है कि अधिकाश राज्यो मे केन्द्रीय सहकारी बैंक छोटे, अनार्थिक, निर्बल तथा अस्थिर होते है। उनकी अपनी अमानत अपर्याप्त होती है उन्हे ऊची ब्याज की दर पर ऋण लेना पडता और वे उचित दर पर प्रारम्भिक समितियो को पर्याप्त मात्रा मे धन नही दे पाते। रिजर्व बैंक ने इन कमियो को दूर करने के लिए अनेक उपाय किये हैं और कर रहे हैं। निम्नलिखित तालिका से केन्द्रीय सहकारी बैंकों की वास्तविक स्थिति का पता चलता है:–

केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा बैंकिग सघ

	१९५१—५२	१९५५—५६
बैंको की सख्या	५०६	४७८
सदस्यो की सख्या	२३१३१८	२९९५५५
ऋण जो दिये गये (हजार रुपयो मे)	१०५६३८५	७९८८४३
कार्यशील पूजी (हजार रुपयो मे)	६०११४०	९२६६६५

इन बैंको की हिस्सेवाली पूजी (Paid up share capital) तथा कोषो (Reserves) की मात्रा १९५१—५२ मे क्रमश ४ ६२ तथा १८ करोड रुपये थी जो बढकर १९५५—५६ मे क्रमश ८ ५० तथा ६ ६८ करोड रुपये हो गई। जून १९५६ तक जो बकाया ऋण निजी व्यक्तियो तथा समितियो पर शेष थे वे क्रमशः ३ ४८ तथा ५० ८९ करोड रुपए के थे। इसी समय तक इन बैंको के कुल विनियोगो Total Investments) की मात्रा २३ २८ करोड रुपये थी जिसमे से १३'०६ करोड रुपया सरकारी प्रतिभूतियो के रूप मे था।

प्रान्तीय सहकारी बैंक—प्रान्तीय स्तर पर भारत मे इन बैंको की स्थापना की गई है। १९५५—५६ मे इनकी कुल सख्या २४ थी। यह बैंक एक ओर तो रिजर्व बैंक आफ इण्डिया से सम्बन्ध रखते हैं और वहा से धन प्राप्त करते हैं और दूसरी ओर केन्द्रीय सहकारी बैंको की सहायता प्रदान करते है। इस प्रकार यह एक ओर तो सरकार तथा रिजर्व बैंक और दूसरी ओर केन्द्रीय सहकारी बैंको के बीच एक महत्व पूर्ण कडी के रूप मे भी कार्य करते है इसके अतिरिक्त राज्य के विभिन्न केन्द्रीय बैंको को शृखला बद्ध करके उनकी कार्य प्रणाली पर नियन्त्रण रखते हैं यह बैंक केन्द्रीय बैंको की कार्य शील पूजी की वृद्धि और कमी के भुगतान घर (Clearing House) के रूप मे भी कार्य करते है। इसके अतिरिक्त यह बैंक सामान्य द्रव्य बाजार (General Money Market) तथा प्रारम्भिक समितियो के बीच परोक्ष रूप से सबध बनाये रहते है और एक प्रकार से माध्यम के

रूप से काय करते हैं साधारण तौर पर प्रान्तीय सहकारी बैंक प्रारम्भिक समितियो से सीधा व्यवहार नही रखने वरन् केन्द्रीय बैंको के माध्यम से करते हैं किन्तु जिन क्षेत्रो म केन्द्रीय बैंको का विकास नही हुआ है वहाँ इन्हे प्रारम्भिक समितियो से ना सबध स्थापित करना पडता है। केन्द्रीय बैको की अपेक्षा प्रान्तीय सहकारी बैंको की आर्थिक स्थिति काफी मजबूत होती है।

गत वर्षों मे प्रान्तीय सहकारी बैंकों की अमानतो (Deposits) म भारी वृद्धि हुई जिसके फल स्वरूप इनकी कार्य शील पूजी बढ गई सहकारी ऋण के अतिरिक्त सहकारिता के अन्य क्षेत्रो मे भी इन्होने काय करना प्रारम्भ कर दिया है। विशेषज्ञो का मत है कि प्रातीय सहकारी बैंको को सामान्य व्यापारिक क्षेत्र मे कार्य करन की अपेक्षा सहकारिता के क्षेत्र मे ही अधिक ध्यान देना चाहिये तभी वे अपने लक्ष्यो की पूर्ति उचित ढग से कर सकेंगे। निम्नलिखित तालिका से प्रातीय सहकारी बैंका की वास्तविक स्थिति का पता चलता है —

	१९५१—५२	१९५५—५६
प्रान्तीय बैंको की सख्या	१६	२४
सदस्या की सख्या	२३२७९	३६३६९
	(हजार रुपयो म)	
हिस्से वाली पूँजी	१८९९३	४,६६१
स्वरक्षित तथा अन्य कोप	१८१७१	,२७६१
अमानत	१९ ८३५	३६६६८४
अन्य ऋण	११२७२५	१६०२ ८
कायशील पूजी	३९ १७०	६३३३६०
दिये गये ऋण	५९,७४१	६७८६,८
बकाया ऋण	२००११०	३४८७१६
विनियोग —		
(१) सरकारी प्रतिभूतियो मे	१०५,८९	१५९७५१
(२) भूमि तथा इमारतो म	१२९२	१९५४
(३) अन्य कार्यों मे	६५१३	२२२२१
नकद धन	२८१११	७७६९१

उपरोक्त आकडो से यह स्पष्ट है कि प्रान्तीय सहकारी बैंको को आर्थिक स्थिति पहले से काफी दृढ हो गई जिसका एक स्वाभाविक परिणाम यह है कि यह बैंक अधिक मात्रा म केन्द्रीय सहकारी बैंको का सहायता प्रदान कर सकते हैं और केन्द्रीय सहकारी बैंक अपने क्षेत्र की प्रारम्भिक समितियो को अधिक सहायता प्रदान कर सकते हैं। यह सच है कि भारतीय किसान को जो ऋण प्रारम्भिक समितियो स प्राप्त होते हैं वे केन्द्रीय बैंको से समितियों के पास तथा प्रातीय बैंकों से केन्द्रीय बैंको क पास आते हैं। यदि सरकार अथवा रिजर्व बैंक इतनी बडी मात्रा मे आर्थिक सहायता प्रदान न

करें तो सम्भवतः सहकारी आंदोलन का समस्त ढांचा ही छिन्न विच्छिन्न हो जाये। होना यह चाहिये कि प्रारम्भिक समितियों की स्थिति ही पूर्ण रूप से दृढ़ हो। वे अधिक से अधिक स्वावलम्बी बनें और यथा सम्भव बाहरी सहायता न लें दूसरे वे अपने अतिरिक्त साधनों का विनियोग केन्द्रीय बैंकों में करें ताकि केन्द्रीय बैंक अधिक उत्तम धन से उनकी सहायता कर सके। दूसरे शब्दों में केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्रांतीय बैंक एक विशाल सहकारी आंदोलन की दो महत्वपूर्ण कड़ियां हैं जिनपर सहकारिता की समस्त इमारत आधारित है।

प्र० ५०—बहु उद्देशीय सहकारी समिति की कार्य प्रणाली का विवेचना कीजिये। यह प्रारम्भिक साख समिति से किस प्रकार भिन्न है? इसकी सफलता किन बातों पर निर्भर है? (आगरा ५३, ५५, ५७)

Discuss the Working of the Multi purpose Co-operative Society. In what ways does it differ from a primary Credit Society? What are the conditions of its success? *(Agra 53, 55, 57)*

उत्तर—बहुउद्देशीय सहकारी समिति का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह किसानों को केवल साख ही प्रदान करने का कार्य न करके उनको हर प्रकार की सुविधा पहुँचाने का प्रयत्न भी करती हैं। जैसे अच्छे बीज, उत्तम खाद, कृषि औजार, विपणन तथा वैज्ञानिक कृषि आदि की सुविधाएं कृषक को देती हैं। जब सहकारिता का प्रारम्भ भारत में हुआ ही था तब प्रत्येक कार्य के लिये अलग अलग समितियों का निर्माण किया जाता था। परन्तु इनसे किसान को कोई विशेष लाभ नहीं पहुंचता था क्योंकि वह अज्ञानता में बुरी तरह जकड़े हुए थे। परन्तु वर्तमान समय में किसानों की सुविधा एवं उनको अधिक से अधिक लाभ एवं उनकी उन्नति के ध्येय से कई उद्देश्य के लिए एक ही समिति का निर्माण किया जाता है और उन्हीं को हम बहुउद्देशीय सहकारी समिति कहते हैं। ऐसी समितियां ग्रामीण जीवन में सब प्रकार से सुधार कर सकती हैं और किसान इनकी सहायता से एवं सहयोग से अपनी उन्नति सुगमता से कर सकता है। सितम्बर १९३७ में सरकारी आज्ञानुसार एक जाँच के फलस्वरूप श्री वी० एल० मेहता ने बम्बई सरकार को दी गई एक रिपोर्ट में बहु-ध्येयी समितियों के स्थापित करने की नीति का समर्थन किया था। रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग ने इसी उद्देश्य से तमाम साख समितियों के पुनर्संगठन पर जोर दिया था। १९३७ रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित 'ग्रामीण बैंकों के बुलेटिन' ने सारे किसानों के जीवन को सहकारिता की परिधि में लाने के हेतु प्राथमिक सहकारी उधार समितियों के सहकारी सिद्धांतों के अनुसार, पुनर्निर्माण का समर्थन किया जो कि सारे सहकारी आन्दोलन की धुरी है। बहुउद्देशीय सहकारी समितियों के निर्माण पर १९०४ में मद्रास सहकारी कान्फ्रेंस ने बहुत अधिक बल दिया था। १९४५ की सहकारी नियोजन समिति तथा १९४७ में अखिल भारतीय सहकारी सम्मेलन ने भी इसी बात को मान्यता प्रदान की थी कि भारत में बहुउद्देशीय सहकारी समितियों का निर्माण होना चाहिए। रजिस्ट्रार कान्फ्रेंस ने, जो नई योजना के बारे में सदिग्ध थी, सिफारिश की कि राज्य में बहुउद्देशीय समितियों की स्थापना

करें तथा उनके परिणामो को देखें । इस प्रकार बहुध्येयी समिति का विचार दिन प्रतिदिन मान्य होता जा रहा है ।

बहुउद्देशीय समितियों का सगठन तथा कार्य प्रणाली—बहुउद्देशीय सहकारी समितिया ग्राम बैंकों के नाम से प्रचलित हैं । मद्रास राज्य मे प्रारम्भिक साख समितिया ही बहुउद्देशीय समितियों का कार्य करने लगी हैं । जब किसी ग्राम के ७०-८० प्रतिशत निवासी चाहते हैं तब एक बहुउद्देशीय समिति की स्थापना हो सकती है । उत्तर प्रदेश मे इन समितियो को विशेष सफलता मिली है । इसलिये उत्तर प्रदेश मे ही इसकी कार्य प्रणाली की विवेचना करना यहाँ उचित होगा । उत्तर प्रदेश मे इन समितियो के सदस्यों का दायित्व सीमित (Limited Liability) होता है और इनके कर्मचारी वैतनिक होते हैं एक समिति का कार्य क्षेत्र अपने केन्द्र से पाच मील आस पास तक होता है ।

इन समितियो का मुख्य कार्य अनाज, कपड़ा दूध घी आदि वस्तुओं के उत्पादन मे वृद्धि करना है । ये किसानो को खाद, बीज, तथा अन्य खेती की आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करती हैं । ग्रामों मे खादी का प्रचार तथा चर्खे आदि का प्रबन्ध करती हैं । सहकारी बीज गोदाम को केन्द्र मान उसके आस पास के ग्रामों मे एक बहुउद्देशीय समिति की स्थापना की गई है । फसल जोनने से लेकर काटने के समय तक यह समितिया सदस्यो को हर उत्पादन कार्य के लिये सहायता देती हैं । किसान अपनी फसल की बिक्री भी इन्ही के द्वारा कराता है । इसके अतिरिक्त यह भूमि बन्धक बैंक की सहायता से सदस्यो के पुराने कर्जों को चुकाने मे सहायता देती है । पचनिर्णय की प्रणाली से आपसी झगड़ों का निपटारा कराती है । सदस्यों को चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएं भी प्रदान करना इनका कार्य है । यह सदस्यों को अच्छा जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है तथा सहायक उद्योगो का विकास करके उन्हे काम दिलाने का प्रयत्न करती है । १६५०–५१ के अन्त तक भारत में कुल मिलाकर ३६६३० ऐसी समितिया थीं जिनके सदस्यो की सख्या २१.६२ लाख थी तथा चालू पूंजी १२ ३३ करोड़ रुपये थी ।

प्रारम्भिक समितियां—भारतवर्ष म प्रारम्भिक समितियो का अब भी बाहुल्य है । १६४५-४६ मे इनकी सख्या १२४ २ हजार थी । विभाजन के बाद इनकी सख्या घटकर ८५ ३ हजार रह गई परन्तु इनके प्रतिशत पर कोई प्रभाव नहीं पडा । अब भी इनकी सख्या ७०-८० प्रतिशत से कम नहीं है ।

इस समिति के निर्माण के लिये कोई भी दस व्यक्ति मिल कर प्रमाण पत्र दे सकते हैं परन्तु इस समिति के सदस्यो की सख्या १०० से अधिक नही हो सकती । कार्य क्षेत्र के सम्बन्ध में एक गाव के लिए एक ही समिति होनी चाहिए । ३ से ५ मील तक के घेरे में आने वाले क्षेत्र इसकी हद मे आ जाते हैं । यह योजना समितियो को आर्थिक इकाइयों म परिणित करेगी तथा यह सहकारी आन्दोलन का उचित समय मे विशाल ग्रामीण क्षत्रो मे फैलने योग्य बनायेगी

दायित्व के क्षेत्र मे जब तक सरकार द्वारा छूट नही मिल जायेगी तब तक दायित्व असीमित रहेगा । मैकलेगन कमेटी ने कहा है—असीमित दायित्व का अर्थ

अंशदायी असीमित दायित्व है अर्थात् दोषी होने पर जब समिति ऋण दाताओं के प्रति अपना दायदा पूरा नहीं कर पाती है तो हिस्सों की पूर्ण अदायगी के बाद प्रत्येक सदस्य मे व्यक्तिश देयअंश निश्चित कर उसे वसूल किया जाता है। ऋणदाता किसी एक सदस्य पर अलग से प्रत्यक्ष कार्यवाही नहीं कर सकता।

समितियों का प्रबन्ध प्रजातन्त्रीय ढग पर किया जाता है। प्रत्येक सदस्य हिस्से तो अनेक खरीद सकता है परन्तु मत एक ही दे सकता है। प्रबन्ध दो मण्डलों को सौंपा जाता है। (१) समस्त सदस्यों की एक साधारण सभा (२ साधारण सभा द्वारा ५ से ६ व्यक्तियों को चुनकर एक प्रबन्ध समिति। साधारण सभा प्रबन्ध समिति के सदस्यों का चुनाव वैतनिक मन्त्री की नियुक्ति, प्रबन्ध समिति द्वारा वार्षिक चिट्ठे की स्वीकृति सदस्यों का बहिष्कार, समिति तथा व्यक्तिगत सदस्यों के उधार की सीमा का निर्धारण आदि कार्य करती हैं। यह समिति के लिए पूंजी एकत्र करती है और मन्त्री के हिसाब किताब की जाच का भी कार्य करती है। प्रबन्ध समिति ही दिन प्रतिदिन का कार्य देखती है।

इन समितियों को पूंजी निम्न साधनों से प्राप्त होती है—

(१ सदस्यों द्वारा खरीदे गए हिस्सों की पूँजी से। (२) सरकार से लिए गए कर्जे से। (३) सदस्यों की प्रवेश फीस से। ४) सदस्यों द्वारा जमा रुपये से। (५) अन्य समितियों द्वारा जमा रुपये से। (६) केन्द्रीय सहकारी बैंकों के जमा रुपये से। (७) असदस्यों द्वारा जमा रुपए से। (८) रक्षित कोष के रुपये से। उपरोक्त विवरण मे ज्ञात होता है कि पूंजी दो प्रकार से प्राप्त होती है आन्तरिक एवं बाहरी बाहरी पूंजी का अर्थ है केन्द्रीय या प्रान्तीय बैंक तथा सहकारी ऋण से ही पूंजी का सचय होता है।

समितियां केवल उत्पादन कार्य के लिए ही ऋण देती हैं। ऋण केवल तीन उद्देश्य से दिये जाते हैं (१) चालू कृषि कार्यों के लिये (२) अल्पकालीन ऋण सरकारी करो को चुकाने के लिए (३) दीर्घकालीन ऋण भूमि की स्थाई उन्नति के लिए। किसानों को महाजनो के चगुल से बचने के लिये इन्हें अप्रतिफलात्मक कार्यों के लिए भी ऋण देना पड़ता है। ऋण चुकता करने के समय के सम्बन्ध मे साधारण नियम यह है कि कृषि वित्त को खेती के फसल चक्र का अनुसरण करना चाहिए जो अच्छे बुरे एवं सामान्य फसलों की औसत हो। दूसरे शब्दों मे ऋण की अदायगी प्रतिफलात्मक कार्यों से प्राप्त धन द्वारा की जानी चाहिए। अउत्पादन कार्यों के लिये दिये हुए ऋण को ऋण कर्ता की स्थिति के अनुसार व्यवस्थित करना चाहिए जिससे वह सुगमता से ऋण का भुगतान कर सके। यह समितियां समयानुसार अदायगी को निश्चित करने मे हर प्रकार की सावधानी रखती है जैसे प्रार्थियों मे से ऋणकर्ताओं का सावधानी से चुनाव करती हैं सदस्यों के लिए उधार की सीमा निश्चित करती हैं तथा ऋणकर्ताओं की अदायगी की सामर्थ की उचित जाच करके ही रुपया उधार देती हैं। ऋण साधारणतया वैयक्तिक जमानत तथा कभी २ सम्पत्तिक जमानत पर भी दिया जाता है। ऋण का भुगतान साधारणतया किश्तों द्वारा किया जाता है।

समस्त लाभ को सुरक्षित कोष मे जमा किया जाता है। लाभ का कुछ भाग १९१२ के कानून के अनुसार दान एवं शिक्षा पर भी व्यय किया जा सकता है। जहा पर हिस्सा पूंजी है वहां समिति लाभांश का वितरण किया जाता है। रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किये गये अधिकारियो द्वारा समिति के हिसाब किताब का निरीक्षण होता है। इन समितियो को कुछ विशेष सुविधायें मिलती हैं जैसे स्टाम्प शुल्क रजिस्ट्रेशन शुल्क तथा आय कर से इनको मुक्त रखा जाता है।

यह समितिया सदस्यो के झगडे को निपटाने, समय को बचाने समिति के कोष और शक्ति को बचाने तथा सदस्यो को साधारण दीवानी कचहरी के विधानो से मुक्त करने और मुकदमेबाजी से बचाने के लिये विवाचन की व्यवस्था करती हैं। अर्थात् झगडे को मध्यस्थो द्वारा ही तय करा देती हैं।

बहुउद्देशीय तथा प्रारम्भिक साख समिति का भेद.— (१) इन दोनो प्रकार की समितियो मे प्रमुख भिन्नता इस बात की है कि प्रारम्भिक समिति केवल साख के क्षेत्र मे कार्य करती है। उसे किसान के जीवन की अन्य समस्याओ से कोई सम्बन्ध नही होता। इसके विपरीत बहुउद्देशीय समिति साख के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के कार्य भी करती है जैसा कि ऊपर के विवेचन से विदित होता है।

(२) प्रारम्भिक साख समितियो मे सदस्यो का दायित्व सीमित होता है किन्तु बहुउद्देशीय समिति मे सदस्यो का दायित्व सीमित रहता है। सीमित दायित्व ही इनके लिए उचित समझा गया है।

(३) प्रारम्भिक समिति के कार्यकर्ता Management) बिना किसी वेतन के कार्य करते हैं परन्तु बहुउद्देशीय समिति के कार्यकर्ताओ को वेतन दिया जाता है।

(४) प्रारम्भिक समितियो का कार्य क्षेत्र प्रायः एक ग्राम तक ही सीमित रहता है किन्तु एक बहुउद्देशीय समिति कई ग्रामो को मिलाकर बनाई जाती है और इसका कार्य क्षेत्र अपने केन्द्र के पाच मील के आस पास रहता है।

बहुउद्देशीय समितियो की सफलता के लिए आवश्यक बातें

यह बात हमे भली प्रकार से विदित हो चुकी है कि भारत मे एकाकी उद्देश्य (Single Purpose) वाली सहकारी समितियां वह कार्य नहीं कर सकती जो बहुउद्देशीय समितिया कर सकती हैं इसलिये बहुउद्देशीय समितियो के विकास के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने की आवश्यकता है। इन समितियो की सफलता निम्नलिखित बातो पर निर्भर है :—

(१) सर्व प्रथम बहुउद्देशीय समितियो को अपने कार्य की सीमायें बढानी चाहिएं। अभी तक यह केवल बीज खाद तथा इसी प्रकार की वस्तुओ का वितरण आदि ही करती हैं। इन्हे चाहिए कि यह किसान के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के हर पहलू को छूने का प्रयत्न करें।

(२) बहुउद्देशीय समिति का संचालन एकाकी उद्देश्य वाली समिति के

सचालन से कठिन है। इन्हे चलाने के लिये शिक्षित तथा सुयोग्य कर्मचारी नियुक्त किये जाने चाहियें। किसी एक क्षेत्र मे समिति की असफलता का प्रभाव समस्त कार्य क्षेत्रो पर पड़ता है इसलिये कर्मचारीगण मे विशेष अनुभव और योग्यता का होना जरूरी है।

(३) बहुउद्देशीय समिति की सदस्यता मे किसानो का दायित्व (Responsibility) बढ जाता है। इसलिये उन्हे आवश्यक शिक्षा मिलनी चाहिये और सहकारिता की प्रेरणा उनके मन मे उत्पन्न होनी चाहिये।

(४) बहुउद्देशीय समिति की कार्य प्रणाली इतनी सरल होनी चाहिये कि साधारण स्वभाव वाली ग्रामीण जनता उसे आसानी से समझ सके।

प्रश्न ५१—हमारी आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का बहुउद्देशीय सहकारी समितियां कहा तक समाधान कर सकती हैं।

(आगरा ४४, पजाब ४४, ४७, ५१)

How far can the Multi Purpose Co operative Societies solve our economic and social problems? (*Agra 44 Punjab 44 47, 51*)

उत्तर—वर्तमान समय मे किसानो की दशा बहुत खराब हो गई है इसलिए एक ही क्षेत्र मे सुधार करने से किसानो को कोई लाभ नही पहुँचेगा। आवश्यकता इस बात की है कि उत्पादन बढाया जाये जिसके लिये अच्छे बीज खाद एव सिंचाई के साधनो की पूरी सुविधाए प्रदान की जायें। किसानो की आमदनी बढाई जाये। उनके लिए अच्छे औजारो एव स्वस्थ बैलो का प्रबन्ध किया जाये। साथ ही साथ उनके ऊपर से ऋण का बोझा भी हल्का किया जाये। इस प्रकार कोई भी एक समस्या के हल से किसानो की स्थिति मे सुधार लाना असम्भव है। अभी तक देश मे मुख्य रूप से एक ही उद्देश्य वाली समितियां रही हैं जो कि किसानो की केवल एक समस्या का चाहे वह साख की हो या वस्तुओ की बिक्री आदि की हल करती हैं।

भारतीय सहकारी आदोलन मे यह प्रश्न ही विवाद पूर्ण विषय रहा है कि किसानो की प्रत्येक समस्या जैसे साख क्रय विक्रय वैज्ञानिक कृषि औजार उत्तम बीज आदि के लिये अलग-अलग सहकारी समितियां हो जो केवल एक ही समस्या को हल कर सकें अथवा एक ही गाव मे या कुछ गावो को मिलाकर उक्त सभी समस्याओ को हल करने के लिये केवल एक ही समिति स्थापित की जानी चाहिये। ऐसी समितियाँ ग्रामीण जीवन में सब प्रकार से सुधार करके गावो की उन्नति कर सकती हैं। रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग ने इसी उद्देश्य से तमाम साख समितियो के पुनर्संगठन पर अधिक बल दिया था। १९४० के मद्रास सहकारिता सम्मेलन ने सिफारिश की थी कि यदि साख समितिया अपने नियमो के अनुसार अपने कार्य-क्षेत्र को निर्धारित सीमा तक बढा लेती हैं तो इसके बाद उन्हे बहुउद्देशीय समितिया मे परिवर्तित हो जाना चाहिये। १९४५ की सहकारी नियोजन समिति और १९४७ मे अखिल भारतीय सम्मेलन ने भी इस पर बहुत जोर दिया था।

इससे पूर्व डेनमार्क की भाति प्रत्येक कार्य के लिये अलग २ समिति पर जोर

दिया जाता रहा परन्तु इस नीति के आलोचकों ने दो तर्क उपस्थित किये। एक तो यह कि यहा पर गांवों मे प्रत्येक कार्य के लिए अलग २ समितियों के संचालन के लिए योग्य आदमियों का मिलना सम्भव नही होगा। दूसरे कृषक अलग २ स्थानो मे अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये अभ्यस्त नही है। वह साहूकार के यहा जाकर अपनी सब प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा कर लेता है। अतः विभिन्न वस्तुओं के लिये किसान की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये *अलग अलग समितिया खोलना* उसके लिये सुविधाजनक नही होगा। अत वर्तमान समय मे कुछ विशेषज्ञो का मत है कि भारत मे बहुउद्देशीय समितियों की स्थापना ही हितकर है।

बहुउद्देशीय समितियों का श्रीगणेश बम्बई, मद्रास और उत्तर प्रदेश मे किया गया और इनको इस क्षेत्र म काफी सफलता प्राप्त हुई। बम्बई मे इस प्रकार की समितियों ने विशेष प्रगति की। इनकी सख्या १९४६–४७ मे ४१४ से बढकर १९४७–४८ मे ९५५ हो गई। मद्रास राज्य मे बहुउद्देशीय सहकारी समितियो के स्थान पर यह ठीक समझा गया कि प्रारम्भिक साख समितियाँ ही बहुउद्देशीय सहकारी समितियो के सब कार्य करें इसलिये प्रान्तीय सरकार ने १९४७ मे यह आदेश दिया कि सभी प्रारम्भिक साख समितिया दो वर्ष के भीतर बहुउद्देशीय सहकारी समितियो मे बदल जायें। इस परिवर्तन के लिए सरकार ने कुछ निरीक्षकों को भी नियुक्त किया जिससे यह कार्य सुचारु रूप से हो जाये। उत्तर-प्रदेश सरकार ने परिमित दायित्व के आधार पर बहुउद्देशीय सहकारी समितियो के निर्माण की ओर क्रियात्मक कदम उठाया। सरकार ने १९०७ मे एक विशेष योजना चलाई जिससे ग्रामीण जनता को बहुत लाभ हुआ। इस योजना का उद्देश्य प्रान्त भर मे अन्न, दूध, घी, कपड़ा आदि का उत्पादन बढाना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सरकार ने अपने विभिन्न विभाग जैसे कृषि सहकारिता, पशु उद्योग तथा ग्राम सुधार को मिलाकर एक सूत्र मे बाध दिया जिससे इस योजना मे सबका सहयोग प्राप्त हो सके। अब उन्नति के कार्यों का भार सहकारी विभाग पर है। १९४७–४८ मे उत्तर-प्रदेश मे ऐसी समितियो की सख्या ८००० थी। इसके अतिरिक्त अन्य प्रान्तो मे भी बहुउद्देशीय सहकारी समितियो के आंदोलन ने जोर पकड़ा और प्रगति की ओर कदम उठाया। १९४७–४८ मे मध्य-प्रदेश म १७२ बगाल मे ११६२ तथा बिहार म ८५० के लगभग इनकी सख्या थी।

इन समितियों का काम अन्न, कपडा, दूध, घी आदि की पैदावार बढाना है। ग्रामीण जनता एव खेती की उन्नति के लिये यह किसान को अच्छे बीज, खाद हल तथा अन्य आवश्यक औजारो का भी प्रबन्ध करती है। दूध की मात्रा बढाने के लिए यह गायो की नस्ल मे भी सुधार करती है अर्थात् दूध देने वाली गायो की सख्या बढा कर उनके चारे एव खली का प्रबन्ध भी करती है। किसानो की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये कुटीर उद्योग धन्धो को प्रोत्साहित करती है। सूत कातने के उद्योग के लिये यह किसानो को सस्ते चर्खे का भी प्रबन्ध करती है। इस योजना के अनुसार सहकारी बीज गोदाम को केन्द्र मानकर चला जाता है और उसके आस-पास के गावों

मे एक बहुउद्देशीय सहकारी समिति खोली जाती है। गाव के प्रत्येक परिवार का एक कर्ता इसका सदस्य होता है। फसल जोतने से लेकर काटने के समय तक ये समितिया सदस्यो को प्रत्येक उत्पादन कार्य के लिये सहायता देती हैं। यह नकद रुपये के स्थान पर वस्तु के रूप मे उधार देती हैं। फसल को काटकर किसान इस समिति के पास अनाज लाते हैं। समिति अनाज बेचकर हिसाब किताब ठीक कर शेष रुपया किसान को लौटा देती है।

इस प्रकार की समिति अपने केन्द्र से ५ मील चारो ओर कार्य करती है और विभिन्न कार्यों के सचालन के लिये सार्वजनिक कर्मचारियो की नियुक्ति की जाती है। समिति का दायित्व सीमित होता है और यह उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्य भी करती हैं।

(१) वर्तमान आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये ऋण प्रदान करके समिति भूमि बन्धक बैंको की सहायता से अपने सदस्यों का पुराना ऋण चुकाती है। (२) कृषि उपज को सहकारिता के आधार पर बेचने की प्रेरणा देकर उनकी आय बढाने की व्यवस्था करती है। (३) पच निर्णय को लागू करके मुकदमेबाजी का व्यय कम कराती है। (४) कृषि उपज की वृद्धि के लिये चकबन्दी को प्रोत्साहन देती है (५) चिकित्सा सम्बन्धी सहायता देने की भी व्यवस्था करती है। स्वतन्त्रता के बाद बहुउद्देशीय समितियो ने बहुत अधिक प्रगति की। प्रथम योजना म इनकी सख्या मे वृद्धि करने के प्रयत्न किये गए और द्वितीय योजना काल मे भी ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (Rural Credit Survey Committee) के सुझावो के आधार पर भारी सख्या मे इन समितियो की स्थापना का कार्य-क्रम है।

बहुउद्देशीय समितियो से कृषको को अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं।

(१) यह समितिया कृषक जीवन से सम्बन्धित सभी समस्याओं को हल कर देती है और उनके जीवन का पुनर्संगठन का कार्य भी करती हैं।

(२) इनसे किसानो का बहुत अधिक हित होता है।

(३) इन समितियो की सहायता से ग्रामीण जीवन मे साहूकारो का प्रकोप समाप्त हो जाता है क्योंकि किसान की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति यह समिति कर देता हैं।

(४) बहुउद्देशीय समितियो मे सीमित दायित्व होने से सभी श्रेणियो के व्यक्ति, अमीर, गरीब, मध्य वर्ग आदि सभी इस समिति के सदस्य बन जाते हैं जिससे समिति की पूंजी बढ जाती है और कार्य आसानी से हो जाता है।

(५) इन समितियों के अनेक प्रकार के कार्यों का केन्द्रीय सचालन होने से कुशल कर्मचारियो को कम आवश्यकता होती है और प्रबन्ध बहुत सरल हो जाता है।

(६) अशिक्षित किसान के आर्थिक हितो की सुरक्षा के हेतु इन समितियों द्वारा साख व विपणन मे सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है

(७) विस्तृत कार्यक्रम होने के कारण इन समितियों मे हानि सहन करने की क्षमता अधिक होती है। सामाजिक बुराइयो को दूरकर गांवो का पुनर्निर्माण करने मे

इस प्रकार की बहुउद्देशीय समितियो से जो सहायता प्राप्त हो सकती है वह अन्य किसी प्रकार मे नही।

प्रश्न ५२—भारत मे सहकारी उपभोक्ता भण्डार आन्दोलन की वर्तमान स्थिति क्या है ? इसे और अधिक लोक प्रिय बनाने के लिए आपके क्या सुझाव हैं ? (आगरा ५०)

What is the present position of the Co-operative store Movement in India ? What measures would you suggest to make it more popular ? *Agra 50*)

उत्तर—उपभोक्ता भण्डार का जन्म सब प्रथम इगलैंड मे हुआ। इनका मुख्य कार्य जनता को उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कराना होता है। स्टोर्स सब सदस्यो का सामान एक साथ खरीदते हैं। इस कारण इसको थोक के दामो पर सामान मिल जाता है। वस्तुओ की कीमत भी कम होती है और माल भी अच्छा होता है। अतएव सदस्यो को सभी प्रकार से उपभोक्ता भण्डारो से लाभ प्राप्त होता है।

उपभोक्ता भण्डार को चलाने का श्रेय राडकेल नामक स्थान के अट्ठाइस जुलाहो को है इन्होने मिलकर १८४४ मे सर्व प्रथम ऐसे भण्डार खोले और शीघ्र ही उनको बडी सफलता प्राप्त हुई और उन्होने बडी प्रगति की। इसी के आधार पर इगलैंड मे इन स्टारो को चालू किया गया। फुटकर दुकानदारों के अनुरोध पर व्यापारियो ने इन स्टोरो को थोक के दामो पर सामान देना बन्द कर दिया। ऐसी स्थिति का मुकाबला करने के हेतु उन्होने मिलकर थोक सहकारी स्टोर्स खोल दिये। समस्त उपभोक्ता भण्डार इसके सदस्य थे और खरीदे हुए माल के अनुपात मे समस्त लाभ इन स्टोरो मे बांट दिया जाता था। इस प्रकार व्यापारियो को काफी हानि उठानी पडी और उन्होने धीरे २ कारखाने खोलकर उसमे सामान बनाना भी आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार के उपभोक्ता भण्डारो के कुछ सिद्धान्त होते हैं जिनका जानना अति आवश्यक है। प्रथम सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुएं थोक दामो पर खरीद कर बाजार भावों पर बेची जाती हैं। दूसरा सिद्धान्त है वस्तुओ को नकद बेचा जाता है उधार नही। तीसरा सिद्धान्त है स्टोर को वर्ष भर मे जो लाभ प्राप्त होता है वह सभी सदस्यो मे उपभोग की हुई वस्तुओ के अनुपात मे बाट दिया जाता है अर्थात् जो अधिक वस्तुओ को इन स्टोरो से खरीदते हैं उन्हे अधिक लाभ प्रदान किया जाता है। इस प्रकार सदस्यो को एक अच्छी रकम वर्ष के अन्त मे प्राप्त होती है।

प्रत्येक सदस्य को उपभोक्ता भण्डार का सदस्य बनना पडता है। सदस्यता प्राप्त करने के लिये इनको स्टोर के हिस्से खरीदने पडते हैं। समस्त सदस्यो की एक साधारण सभा बनाई जाती है। यह सभा प्रबन्ध कारिणी समिति (Executive Committee) का निर्माण करती है। यह समिति कई उपसमितियो को बनाती है जैसे क्रय समिति निरीक्षण समिति, आदि। प्रत्येक सदस्य का सीमित दायित्व (Limited Liability) होता है।

भारत में १६१२ म सहकारी समिति कानून के पास हो जाने के बाद इस प्रकार के भण्डारो की स्थापना प्रारम्भ हुई परन्तु मैकलेगन समिति की रिपोर्ट से विदित हुआ कि इनका विकास १६१४ तक नहीं हुआ। प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ होने से खाद्य पदार्थों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के मूल्य बहुत अधिक बढ़ गए थे और वस्तुओं के मिलने म बहुत कठिनाइ होने लगी थी जिसके परिणाम स्वरूप उपभोक्ता भण्डार का विन्यास प्रारम्भ हुआ। परन्तु युद्ध समाप्त होते ही इनकी सख्या भी समाप्त होने लगी। इसका मुख्य कारण था धनवान लोगो ने इसको कोई प्रोत्साहन नहीं दिया क्योंकि उनको कोई विशेष लाभ नहीं था। इसलिये इन्होंने अपना ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं किया। शिक्षित तथा मध्य वर्ग के लोग आकर्षित होते परन्तु शहर मे उनको इतनी दुकानें मिल जाता थी और उन पर इतनी तरह की वस्तुएं मिल जाती थी कि उन्होंने भी इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार के स्टोर मजदूरो तथा किसानो मे अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इङ्गलैंड मे भी इनका प्रयोग मजदूरो एव किसानो ने किया था परन्तु भारत की अधिक जनता अनपढ होने के कारण इनका महत्व समझने मे पूर्णतया असमर्थ थी और गरीबी के कारण यह अपना कार्य बनिये से उधार सामान लेकर चला लेते थे क्योंकि स्टोर तो उधार देते नही क्योंकि उनके सिद्धान्त का उलघन होता था। दूसरे गरीबी के कारण वह इन स्टोर के हिस्से खरीदने म भी सदैव असमर्थ रहे। ये स्टोर उचित प्रबन्ध के अभाव के कारण भी अपनी उन्नति नहीं कर सके और बहुत से स्टोर बन्द हो गये। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने से इनके जीवन मे नई स्फूर्ति आई अर्थात् दूसरे महायुद्ध न इनको नवीन जीवन प्रदान किया। युद्धकाल म वस्तुओं की बहुत अधिक कीमतें बढ़ गई और चोर बाजारी तथा अनुचित लाभ का प्रकोप फैलने लगा जिसके कारण उपभोक्ताओं ने सहकारिता का सहारा लिया और उन्होंने मिलकर बहुत अधिक सख्या मे उपभोक्ता भण्डारो की स्थापना की। सरकार ने इन स्टोरो को भी बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया। इनकी उन्नति के हेतु इन्होंने स्टोरों को लाइसेन्स तथा कन्ट्रोल की वस्तुओं का कोटा प्रदान किया। उत्तरप्रदेश के सभी जिलो म सहकारी बिक्री सघ Co operative Marketing Federation) स्थापित किये गये जो बहुत सी वस्तुओं को बेचने का कार्य करते थे।

वर्ष	सख्या	सदस्य (लाख म)	पूंजी (करोड)	बिक्री (लाख)
१६४६—४७	१६८८	४ ७	२ ३३	१८१४ ६३
१६४६—५०	८६४६	२१ ६	४ ४६	७०४५ ००

उपभोक्ता भण्डारो का प्रगतिशील विकास इस बात से सिद्ध होता है कि सन् १६३८—३६ से १६४७—४८ तक इन भण्डारो की सख्या आसाम मे १३ से १०१३,

बम्बई मे २५ से ६१२, मद्रास मे ८५ से १७४० तथा उडीसा मे ९ से ३७१ हो गई थी। पीछे दिए आकडो से इनकी प्रगति स्पष्ट होती है।

इन दो वर्षो के आकडो से पता चलता है कि इनकी सख्या ३ वर्ष में ४ गुनी से भी अधिक हो गई। इन स्टोरो को सामान देने के लिए थोक भडार (Whole Sale Consumer s Stores) स्थापित किये गये जिनकी सख्या १९४९—५० मे ८५ थी। इनकी विशेष प्रगति आसाम मद्रास मे बडी तेजी से हुई। मद्रास राज्य मे ट्रिप्लीकेन सहकारी समिति (Triplicane Urban Co-operative Society) विशेष उल्लेखनीय है जिसकी स्थापना १९०४ मे हुई थी। आरम्भ मे यह बडे छोटे पैमाने पर चलाई गई और इसमे दो कर्मचारी काम करते थे। परन्तु आजकल इसकी २२ शाखाये हैं और इसकी पूजी लगभग २ लाख है।

१९५१—५२ मे राज्यो ने कन्ट्रोल समाप्त कर दिया जिससे इन स्टोरों को काफी हानि हुई और उनकी आय एव व्यापार मे बहुत कमी हो गई थी जिसके कारण बहुत सी समितिया बद हो गई। उत्तर प्रदेश सहकारी विकास का विपणन सघ जो इन भण्डारो की सर्वोच्च सस्था है, द्वारा सब नियत्रित वस्तुए जैसे कपडा, चीनी मिट्टी का तेल आदि जिला सघो को दी जाती थी। ये सघ प्रारभिक उपभोक्ता भडारो को वे वस्तुए दे देते थे। सन् १९५०—५२ मे इन स्टोरो की स्थिति इस प्रकार थी :—

	१९५०—५१	५१—५२
भण्डार सख्या	५०८	५०६
सदस्य सख्या	३० ५३०	३२३२११
वार्षिक खरीद (करोड रु० मे)	१० ८२	२० ०६
वार्षिक बिक्री (करोड रु० मे)	१८ ३८	२० ५७

१९५० मे उत्तर प्रदेश म ८ केन्द्रीय थोक भडार थे जिनमे १६५ प्रारम्भिक भण्डार, १३२८ व्यक्तिगत सदस्य थ। कट्रोल के टूट जाने से इन पर बुरा प्रभाव पडा। इनका भविष्य सरकार के हाथ में है।

प्रथम योजना मे इन भण्डारो की प्रगति के लिए इनको विशेष स्थान प्रदान किया गया था परन्तु इनकी उल्लेखनीय उन्नति न हो सकी। योजना ने राय दी थी कि इनका क्षेत्र बढाने की आवश्यकता है परन्तु द्वितीय योजना मे राज्यो के सहकारी विभाग ने इस ओर अपना ध्यान विशेष तौर से आकर्षित नही किया। शहरो मे यदि इस प्रकार के भण्डारों को प्रोत्साहन दिया जाये तो गावो मे भी इसका विकास होगा। द्वितीय योजना मे इसको विशेष महत्व नही दिया है परन्तु इस बात की सिफारिश की है कि इसकी समस्याओ का विशेष अध्ययन करके इसके लिए विकास प्रोग्राम तैयार अवश्य किया जाए।

उपभोक्ता भण्डारो के विकास के सुझाव

भारत जैसे निर्धन देश मे उपभोक्ता भण्डारो के विकास की बहुत अधिक आवश्यकता है। तभी आर्थिक स्थिति सुधर सकती है। इनकी उन्नति के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं :—

(१) लगभग ५००० व्यक्तियों के लिए एक उपभोक्ता भण्डार होना चाहिए।

(२) व्यापार सचालन के लिए आवश्यक पूंजी की पूर्ति हिस्सों की पूंजी से तथा केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर करनी चाहिए।

(३) सुगम व्यवस्था के लिए ५० शहरी और ग्रामीण भण्डारों को एक केन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार के आधीन कर देना चाहिए।

(४) सहकारी विभाग उपभोक्ता भण्डारो की अधिकतम पूंजी व उनके द्वारा लिए जाने वाले ऋण की सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए।

(५) हर प्रान्त मे एक प्रातीय उपभोक्ता समिति स्थापित की जाए जिसका ५०% व्यय पहले ५ वर्षों तक सरकार दे। यह प्रातीय समिति समन्वय कार्य करेगी।

(६) प्रातीय सहकारी विभाग को उपभोक्ता समितियो के सगठन के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

इन सुझावो के अतिरिक्त स्टोर का प्रबंध योग्य व्यक्तियो द्वारा चलाया जाए। स्टोर अपने सदस्यो के अतिरिक्त गैर सदस्यो को भी माल बेचे जिसमे गैर सदस्य भी उसकी उपयोगिता को समझकर उसके सदस्य बन जाए। प्रबधको का व्यवहार बहुत अच्छा होना चाहिए। सदस्यों की सदस्यता शुल्क बहुत कम रखनी चाहिए। उपरोक्त कारणो के अपनाने से इनकी प्रगति होना स्वाभाविक ही है।

———

अध्याय १६

बड़े पैमाने के उद्योग

प्रश्न ५३—स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद से अब तक भारत के औद्योगिक विकास पर एक नोट लिखिये। (पंजाब ५३, बिहार ५३)

Write a lucid not on industrial development in India since Independence (*Punjab* 1953, *Bihar* 1953)

देश के स्वतन्त्र होने के बाद से अब तक औद्योगिक क्षेत्र मे कुछ विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिन पर भविष्य के औद्योगीकरण की इमारत खडी होने वाली है। इस दृष्टि से गत दस वर्ष भारत के इतिहास मे विशेष महत्व रखते हैं। जैसा कि हमें विदित है भारत के औद्योगिक नीति की घोषणा १६४८ मे की गई थी जिसे १६५६ मे संशोधित किया गया। इस काल मे भारत ने एक पचवर्षीय योजना पूर्ण करली है और दूसरी पर कार्य हो रहा है। इस योजना के अन्तर्गत भारत मे तीव्र गति से उद्योगो की स्थापना हो रही है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के प्रारम्भिक दो तीन वर्षों मे स्थिति मे कोई विशेष सुधार नही हुआ। औद्योगिक उत्पादन लगभग स्थिर रहा क्योकि पुरानी मशीनो के स्थान पर नई मशीनें लगाने म कुछ बाधाएं थी। दूसरी ओर, औद्योगिक झगडे, यातायात की कठिनाइयाँ, सरकारी नियन्त्रण तथा अन्य कई कारणो से कोई विशेष प्रगति नही हो सकी। १६५० तथा उसके बाद के काल मे उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि होती रही है। १६५० तक औद्योगिक उत्पादन का वार्षिक सूचक अक (Index-Number) लगभग १०५ था १६५३ मे यह १३५.३, १६५४ मे १४६.५ तथा १६५५ मे १६२.६ हो गया। कपडा, सीमेंट, न क तथा अन्य कई वस्तुओ का उत्पादन प्रथम पचवर्षीय योजना के लक्ष्य से भी अधिक रहा। इस काल मे भारत मे ऐसी बहुत सी वस्तुओ का उत्पादन भी होने लगा है जो पहिले विदेशों से आयात की जाती थी।

दस वर्ष के इस काल मे हमारे औद्योगिक विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) मे अनेक कारखानो का निर्माण हुआ और केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो द्वारा पचवर्षीय योजना मे इस प्रकार के उद्योगो पर ६४ करोड रुपया व्यय करने की व्यवस्था की गई। चितरजन के कारखाने मे शीघ्र ही २०० रेल के इंजन प्रतिवर्ष बनने लगेंगे। सिंदरी के कारखाने मे १६५५ मे ३२१००० टन रसायनिक खाद का उत्पादन हुआ। योजना के निर्धारित लक्ष्य से भी अधिक था। इसी प्रकार पानी के जहाज, टेलीफ़ोन तथा अन्य वस्तुएं भी अब भारत मे बनने लगी है। दूसरी पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) के और अधिक विस्तार पर जोर दिया गया है।

निजी क्षेत्र (Private Sector) के उद्योगो ने भी आश्चर्यजनक प्रगति की

है। प्रथम योजना मे निजी क्षेत्र के कुल विनियोग (Investment) का ८० प्रतिशत पूंजी उद्योगो के विकास के लिए निर्धारित किया था, जिसमे लोहा तथा इस्पात पेंट्रोल सीमेंट, एलमोनियम (Aluminium) रसायनिक खाद, भारी रसायनिक पदार्थ आदि वस्तुए प्रमुख स्थान रखती हैं। उपभोग की वस्तुए बनाने वाले उद्योगो मे किसी नये कारखाने की स्थापना नही की गई किन्तु पहिले से लगे हुए कारखानो की उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग करके उत्पादन ■ वृद्धि की गई। सरकार ने उद्योगो के विकास मे सुगमता प्रदान करने के उद्देश्य से समस्त देश म शोध कार्य (Research work) के लिए वैज्ञानिक प्रयोग शालाओ का निर्माण किया है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे देश के औद्योगिक विकास पर उतना अधिक जोर नही दिया गया था जितना दूसरी योजना मे दिया गया है। देश के भावी औद्योगिक विकास को ध्यान मे रखते हुए आधार भूत उद्योगो (Basic Industries) के विकास को विशेष महत्व दिया जा रहा है। लोहा तथा इस्पात का उत्पादन बढाने के लिए तीन बडे कारखाने लगाये जा रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल व्यय का ६८ प्रतिशत तथा निजी क्षेत्र मे कुल व्यय का ७० प्रतिशत इसी प्रकार के उद्योगो पर व्यय होगा जिसम लोहा तथा इस्पात के अतिरिक्त सीमेन्ट रसायनिक खाद, भारी रसायनिक पदार्थ, खनिज, तेल कोयला, बिजली का सामान तथा मशीनो आदि के निर्माण से सम्बन्ध रखने वाले उद्योगो के विकास पर व्यय होगा।

१९५६ मे औद्योगिक क्षेत्र मे जो प्रगति हुई वह अन्य किसी एक वर्ष मे नही हुई। लगभग १५ करोड रुपए प्रतिमाह के हिसाब से मशीनो का विदेशो से आयात किया गया है जो इन कारखानो की स्थापना के लिए मगाई जा रही हैं। देश मे लोहे तथा इस्पात की खपत एक साल के अन्दर २० लाख टन से बढ कर ३० लाख टन हो गई है। आशा की जाती है कि १९५६ का औद्योगिक उत्पादन पिछले वर्ष की अपेक्षा ६ प्रतिशत अधिक होगा।

देश के बडे उद्योगो मे बढते हुए उत्पादन की प्रवृति बराबर बढती जा रही है। कपडा, जूट का सामान, नकली रेशम सोडा कागज कास्टिक सीमेट साइकिलें, सिलाई की मशीने, बिजली के पखे, मोटरकार आदि वस्तुओ के उत्पादन मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसी वर्ष देश म इन्जीनियरिंग (Engineerin) से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी आवश्यक वस्तुओ का निर्माण भारत मे शुरू हो गया है।

१९५६ मे भारत मे भारी मशीनरी (Heavy Machinery) के निर्माण के सबध मे आवश्यक कदम उठाये गये हैं। इसी वर्ष सीमेंट के १८, लोहे तथा इस्पात की वस्तुओ के निर्माण (Fabrication of Iron & steel) के ३४, ओटोमोबाइल तथा उसके पुर्जे बनाने के Automobiles & parts) के २१ साइकिल बनाने के, १० औजार बनाने के ६ मशीनो आदि के २५ नए कारखानो की स्थापना के लिए सरकार द्वारा लाइसेन्स (Licence) दिये गए हैं।

इनके अलावा रूस, जर्मनी तथा अन्य देशो के विशेषज्ञ भारत मे बुलाए गए हैं जो दवाइयो फोटोग्राफी का कागज तथा कच्ची फिल्मो तथा अन्य मामलो मे भारत सरकार को परामर्श देगे।

१९५६ मे जो औद्योगिक उत्पादन भारत मे हुआ उसका कुछ अनुमान निम्न-लिखित तालिका से लगाया जा सकता है :—

	१९५५	१९५६
सूती वस्त्र उद्योग	५०३४० लाख गज	५३४०० लाख गज
मिल का सूत	१६३०० लाख पौंड	१६४५० लाख पौंड
ऊनी कपड़ा	१३६ ९ लाख गज	१६३ ९ लाख गज
जूट का सामान	१०२ ७ लाख टन	१०९·२ लाख टन
कोयला	३८२ लाख टन	३९० लाख टन
सीमेंट	४५ लाख टन	४९ ५ लाख टन
लोहा तथा इस्पात	१२ ६ लाख टन	१३·३ लाख टन
ओटोमोबाइल	२३०८८	३१०००
साइकिलें	४९१११७	६११५१००

उपरोक्त तालिका से दूसरी पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष मे हुई उत्पादन वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। यह वृद्धि दूसरी योजना के निर्धारित अनुमान के अनुकूल है और यह आशा की जाती है कि १९५७ मे भी इस वृद्धि की दर को कायम रखा गया है।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास के जो लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं उनसे पता चलता है कि सरकार लोहा तथा इस्पात उद्योग भारी मशीनें बनाने का उद्योग तथा इस प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण उद्योगो पर अधिक ध्यान दे रही है। कारण यह है कि इन्ही उद्योगो के विकास पर भारत की भावी औद्योगिक उन्नति निर्भर है दूसरी योजना मे विभिन्न महत्वपूर्ण उद्योगो पर जो रकम व्यय करने का अनुमान है वह निम्नलिखित तालिका मे विदित है —

	अनुमानित व्यय (करोड रुपये)	प्रतिशत
भूतभ सम्बन्धी उद्योग (Metallurgical)	५०२ ५	४५·२
इंजीनियरिंग उद्योग	१५० ०	१३·७
रसायनिक उद्योग	१३२ ०	१२ ०
सीमेंट तथा बिजली सम्बन्धी उद्योग	९१ ०	८·६
पैट्रोल साफ करने के कारखाने	१० ०	० ९
कागज उद्योग (अखबारी कागज सहित)	५४ ०	५·०
चीनी उद्योग	४९ ०	४ ७
सूती, ऊनी, जूट, रेशमी कपडा एव सूत	३५·३	३·३
नकली रेशम	४ ०	२·२
अन्य उद्योग	४१·५	३ ८

उपरोक्त तालिका मे विदित है कि दूसरी योजना मे औद्योगिक विकास पर १०९४ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है जिसमे से २४ करोड रुपये सार्वजनिक क्षेत्र म और ५३५ करोड रुपया निजी क्षेत्र पर व्यय होगा। निजी क्षेत्र मे ३५०

करोड लोहा तथा इस्पात उद्योग पर ३७ करोड रसायनिक खाद उद्योग पर तथा २८ करोड भारी बिजली का सामान बनाने वाले कारखानो के विकास पर व्यय होगा। दूसरी पचवर्षीय योजना मे निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति मे विदेशी मुद्रा की कमी के कारण कुछ बाधा उत्पन्न हो गई है क्योंकि नए कारखानो को स्थापित करने के लिए मशीनें आदि विदेशो से ही आयात करनी पडती है यदि पर्याप्त मात्रा मे विदेशो से आर्थिक सहायता तथा ऋण प्राप्त न हुए तो इन योजनाओ मे कुछ काट-छाट करनी पडेगी। स्वतन्त्रता प्राप्त होने से पूर्व देश के औद्योगिक विकास मे जो अड़चने थी वे अब धीरे-धीरे दूर हो रही हैं और विश्वास के साथ हम यह कह सकते है कि निकट भविष्य मे भारत की गिनती प्रमुख औद्योगिक देशो म होने लगेगी।

प्रश्न ५४—भारत मे उद्योगों का विकास मन्द गति से क्यो हुआ ? भविष्य मे देश के औद्योगिक विकास की सम्भावना पर प्रकाश डालिये।

(बनारस ५४, पजाब ३८, कलकत्ता ४१, आगरा ३७)

Why is the development of industries so slow in India ? Discuss the possibility of future industrial development in the country
Benaras 54, Punjab 38, Calcutta 41 Agra 37)

उत्तर— भारत औद्योगिक विकास की दृष्टि से अन्य पश्चिमी देशो की अपेक्षा बहुत पीछे है। भारत की जनसख्या, प्राकृतिक साधन तथा क्षेत्र को देखते हुए हमारे देश का औद्योगिक विकास बहुत मन्द गति से हुआ है। देश की कुल जनसख्या का केवल २% भाग बडे पैमाने के उद्योगो मे काम करता है शेष ७० प्रतिशत के लगभग आज भी किसान लोग हैं इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि देश की राष्ट्रीय आय (National Income) मे केवल ६·६ प्रतिशत भाग उद्योग द्वारा प्राप्त होता है। कोई भी व्यक्ति यह नतीजा निकाल सकता है कि भारत मे १०० वर्ष के औद्योगिक विकास के बाद भी बहुत मामूली प्रगति हुई है जबकि इसी काल मे अन्य देश कहीं से कही पहुच गये हैं। इस मन्द प्रगति के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :—

(१) आधार भूत उद्योगो का अभाव (Absence of Basic Industries)—भारत मे आधार भूत उद्योगो का अभाव है। लोहा तथा इस्पात उद्योग तथा सीमेंट उद्योग को छोडकर अन्य आधार भूत उद्योगो का भारत मे कोई विकास नही हुआ। लोहा तथा इस्पात और सीमेंट भी देश की आवश्यकताओ को देखते हुय अपर्याप्त हैं। मशीनें बनाने का उद्योग भारी रसायनिक (Heavy Chemical) उद्योग तथा पू जीगत वस्तुओ (Capital Goods) के निर्माण का भारत म पूरी तरह अभाव रहा है। इस ओर कोई ध्यान ही नही दिया गया। जो भी कारखाने भारत मे लगाए गए उनमे उपभोक्त वस्तुये (Consumer Goods) ही निर्माण होती हैं जैसे सूती वस्त्र जूट कागज चीनी इत्यादि। आधार भूत उद्योगो के अभाव के कारण अन्य उद्योगो का समुचित विकास भी नही हो सका।

(२) भारतीय पू जी का अभाव (Shyness of Indian Capital)—

भारत मे पूंजी का सदैव से अभाव रहा है। जो भी पूंजी भारत मे थी उसे लोग उद्योगो में लगाना नही चाहते थे। उन्हे ऐसा करने मे कुछ भय तथा सकोच रहता था। दूसरे देश मे पूंजी का संचय बहुत कम होता है। देश मे शुरु के काल मे जो भी उद्योग स्थापित हुये उनमे से अधिकाश विदेशी पूजी से लगाये गये। भारत म लोग अपना रुपया उद्योगो मे लगाने की अपेक्षा भूमि तथा जायदाद खरीदना अच्छा समझते हैं या उसे छुपा रखते हैं। पूजी का विनियोग उद्योगो मे बहुत कम होता रहा है।

(३) सस्ती शक्ति के साधनों की कमी—भारत मे उद्योगों को चलाने के लिये अभी तक मुख्य रूप से कोयले की शक्ति का प्रयोग होता है जो देश के कुछ सीमित क्षेत्रो म ही पाया जाता है और जिसे देश के सभी भागों को यातायात करने मे बहुत अधिक व्यय होता है। यही कारण है कि देश के बहुत से क्षेत्रो मे उद्योगो का बिल्कुल विकास नही हो सका और जो उद्योग स्थापित भी हुये वे केवल बम्बई, बगाल तथा अन्य दो एक क्षेत्रो मे हुये।

(४) कुशल श्रमिको का अभाव—भारत मे कुशल श्रमिको की सदैव से कमी रही है। यहा की अधिकाश जनता खेतीहर है और देहातो मे रहती है। यह लोग साल के कुछ महीनो मे अपने गाव छोड़कर कारखानो मे काम करने चले आते हैं और फसल के समय फिर गाव को वापिस लौट जाते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय श्रमिक अशिक्षित हैं और उनके प्रशिक्षण आदि की कोई उचित व्यवस्था देश मे नहीं है। इसका परिणाम यह है कि भारतीय उद्योगो द्वारा उत्पादित वस्तुए घटिया और महँगी होती हैं और विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला नहीं कर पाती।

(५) औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था का अभाव—बड़े उद्योगों के विकास के लिये यह परम आवश्यक है कि देश मे इस प्रकार की संस्थायें हो जो उद्योगों को कर्ज आदि प्रदान कर सकें। भारत मे औद्योगिक बैंकों का पूरी तरह अभाव रहा है। देश मे जो व्यापारिक बैंक हैं वे एक ओर तो अपने को इस कार्य मे असमर्थ पाते हैं दूसरे उनका व्यवहार उद्योगो के प्रति उदासीनता का रहा है। इस कमी के कारण भारत मे उद्योगो का समुचित विकास नही हो सका।

(६) औद्योगिक सगठनकर्ताओं का अभाव—भारत में ऐसे व्यक्तियो का अभाव रहा है जो उद्योगो के सगठन की योग्यता तथा क्षमता रखते हो। देश का सामाजिक वातावरण, लोगो की विचार धारा तथा शिक्षा की कमी के कारण भारत सदैव से कृषि प्रधान देश रहा है और अब भी है।

(७) सरकारी उदासीनतापूर्ण नीति—भारत लगभग १०० वर्ष तक अंग्रेजो का गुलाम रहा है। अंग्रेजो की नीति का आधार ही यह था कि भारत मे उद्योगो का पूर्ण विकास न हो और भारत एक कृषि प्रधान देश बना रहे ताकि यहाँ से कच्चा माल इगलैंड को निर्यात होता रहे तथा वहा का बना हुआ पक्का सामान भारतीय बाजारों मे बिके। भारतीय उद्योगों के विकास का अर्थ यह होता है कि इगलैंड के व्यापार तथा उद्योगो को हानि पहुचती जिसके लिये भारत सरकार तैयार न थी। इस

प्रकार ब्रिटिश सरकार की पूर्व निश्चित नीति के अनुसार भारतीय प्राचीन उद्योगों का विनाश हुआ और उनके स्थान पर नये उद्योगो की स्थापना नही हो सकी।

(८) **उद्योगों का योजना रहित विकास**—भारत म जो भी उद्योग स्थापित हुये वे किसी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार नहीं हुये जिनका परिणाम यह हुआ *कि देश के कुछ भाग जैसे बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर कलकत्ता इत्यादि विशेष रूप* से विकसित हो गये और शेष भागो का कोई विकास नही हो सका। इस प्रकार समस्त देश की एक समान औद्योगिक उन्नति नहीं हुई।

(९) **रेल के भाड़े से सम्बन्धित नीति** भारतीय रेलो के भाड़े (Railway Rates) *निर्धारित करने की नीति उद्योगो के विकास मे बाधक सिद्ध हुई है।* रेल के भाडो का निर्धारण इस उद्देश्य से किया गया है कि भारत मे विदेशी आयात को प्रोत्साहन मिले और देश से कच्चे माल का निर्यात अधिक हो। इस प्रकार से देश में उद्योगो के विकास मे बाधा पहुची तथा उनका विकास मन्द गति से हुआ।

उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य कारण भी इस मन्दगति में सहायक हुए —

(अ) संगठित बाजारो का अभाव।

(ब) यातायात के साधनो का अपूर्ण विकास।

(स) प्रचार (Advertisement) के दोषपूर्ण तरीके।

(द) पुरानी तथा घिसी हुई मशीनें।

(य) अकुशल प्रबन्ध।

भविष्य मे उद्योगो की उन्नति की सम्भावना

विदेशी शासन के समाप्त होने से अब भारत के औद्योगिक विकास मे बहुत सी बाधायें समाप्त हो गई हैं और अब हमारी राष्ट्रीय सरकार इस दिशा मे विशेष रूप मे प्रयत्नशील है। श्रीमती विरा एन्सटी (Mrs Vera Anstey) के अनुसार किसी भी देश का औद्योगिक विकास पाच बातो पर निर्भर है। उसी के आधार पर हम भारत के औद्योगिक भविष्य का निर्णय कर सकते हैं :—

(१) **मानव**—इसके अन्तर्गत कुशल श्रमिक तथा योग्य व्यवस्थापक आते है। भारत में श्रम की कोई कमी नही है। देश की जनसख्या ५५ करोड़ है। उनकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण की ओर सरकार विशेष रूप से प्रयत्नशील है। टेक्नीकल कर्मचारियो के अभाव को पूरा करने के लिये भारतीय विद्यार्थी प्रशिक्षण के लिये विदेशो को भेजे जा रहे हैं। आशा की जाती है कि अगले कुछ वर्षों मे यह कमी बहुत हद तक दूर हो जावेगी।

(२) **धन**—औद्योगीकरण के लिये अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है जिसका देश में अभाव है भारत सरकार ने दूसरी पचवर्षीय योजना मे अधिक टैक्स *लगाकर तथा राष्ट्रीय बचत* को प्रोत्साहन देकर इस अभाव का पूरा करने का प्रयत्न किया है। फिर भी भारत को दूसरी योजना के काल मे ७०० करोड रुपये की विदेशी

मुद्रा की कमी अनुभव हो रही है जिसे विदेशों से उधार के रूप में प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। भारत के कुछ मित्र तथा शुभचिन्तक देश भारत की भरसक सहायता करने को राजी हैं। आशा है कि धन के इस अभाव को किसी न किसी तरह पूरा कर लिया जावेगा।

(३) सामान — कच्चे सामान की दृष्टि से भारत काफी भाग्यशाली है। भारत में इतनी अधिक मात्रा में खनिज पदार्थ जैसे लोहा, मैंगनीज इत्यादि पाये जाते हैं जो देश के सम्पूर्ण औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त जो कच्चा माल कृषि पदार्थों द्वारा प्राप्त होता है उसके क्षेत्र में भी भारत की स्थिति काफी अच्छी है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामान की दृष्टि से भारत का औद्योगिक भविष्य बहुत अच्छा है

(४) मशीन—औद्योगिक विकास के लिए एक अन्य समस्या मशीनों की है जिनका निर्माण अभी तक भारत में नहीं होता। उन्हें विदेशों से मगाने में बहुत अधिक विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है जो भारत के पास नहीं है। इस कमी को ध्यान में रखते हुये दूसरी पंचवर्षीय योजना में तीन बड़े स्पात के कारखाने तथा भारी मशीने बनाने वाले एक कारखाने के निर्माण की व्यवस्था की गई है। इस योजना के पूरे हो जाने से स्वयं भारत में मशीनों आदि का निर्माण होने लगेगा और देश के औद्योगीकरण में सहायता मिलेगी।

(५) बाजार उद्योगों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उन वस्तुओं के लिये पर्याप्त बाजार भी होना चाहिये। भारत एक विशाल देश है जिसमें लगभग सभी का उत्पादन अभी तक देश की आवश्यकताओं से कम है। यदि उद्योगों का और अधिक विकास हो तो देश की बनी वस्तुओं की खपत देश के अन्दर ही हो जावेगी। इसके अतिरिक्त भारत के पड़ोसी देशों में भी भारत की बनी वस्तुओं की काफी माग है। इसलिये यहां उद्योगों के विकास के लिये अनुकूल वातावरण पाया जाता है।

प्रश्न ५५— भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

Give a brief account of development and working of public enterprises in India

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद देश की राष्ट्रीय सरकार ने १९४८ में जिस औद्योगिक नीति की घोषणा की उसके अन्तर्गत सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के उद्योगों का कार्य क्षेत्र अलग अलग निर्धारित कर दिया गया। कुछ ऐसे उद्योग थे जिनकी स्थापना, सचालन तथा स्वामित्व का पूर्ण दायित्व सरकार के एकाधिकार में रखा गया। इस श्रेणी के उद्योगों की स्थापना तथा सचालन के लिए सरकार ने कानून द्वारा कार्पोरेशन (Corporation) बनाए जो केन्द्रीय सरकार के आधीन कार्य कर रहे हैं। देश की सरकार ने जिन औद्योगिक कारखानों की स्थापना सार्वजनिक

क्षेत्र (Public Sector) में की है उनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

१) सिंदरी रसायनिक खाद का कारखाना — बिहार राज्य में स्थित यह एशिया का सबसे बड़ा कारखाना है । इसमें प्रतिदिन एक हजार टन एमोनियम सल्फेट (Ammonium Sulphate) बन सकता है । २३ करोड़ रुपए की लागत से यह कारखाना १९५१ में बनकर तैयार हुआ । पहिले साल इसमें केवल ७४४५ टन खाद का उत्पादन हुआ । १९५५ में निर्धारित से भी अधिक अर्थात् ३२७०० टन खाद का उत्पादन किया गया । एमोनियम नाईट्रेट (Ammonium Nitrate) तथा अन्य रसायनिक पदार्थों के उत्पादन की भी इस कारखाने में व्यवस्था की जा रही है। आशा की जाती है कि यह कारखाना भविष्य में भारत में रसायनिक उद्योग का मुख्य केन्द्र होगा जिसकी देश को सबसे अधिक आवश्यकता है ।

(२) चितरंजन रेल के इंजन बनाने का कारखाना— यह कारखाना पश्चिम बंगाल में स्थित है और भारतीय रेलों के लिए भाप से चलने वाले रेल के इंजिनों का निर्माण कर रहा है । वैसे तो रेल के इंजिन में काम में आने वाले बहुत से पुर्जे आज भी विदेशों से आयात करने पड़ते हैं किंतु धीरे इस बात का प्रयत्न भी किया जा रहा है कि उनका निर्माण भी भारत में ही होने लगे । इस दशा में अब तक की जो प्रगति है वह काफी संतोषजनक रही है । प्रारम्भ में यह कारखाना प्रतिवर्ष केवल १२० इंजिन तथा ५० Boilers बनाने की क्षमता रखता था किंतु अब कारखाने का विस्तार कर दिया गया है और अब इसकी क्षमता २०० इंजन प्रति वर्ष बनाने की हो गई है । यह भारत का एक प्रमुख तथा महत्वपूर्ण कारखाना है ।

(३) हिन्दुस्तान पानी के जहाज बनाने का कारखाना (Hindustan Shipyard) —विशाखापटनम नामक स्थान पर इस कारखाने की स्थापना हुई है । इसकी कुल पूंजी का $\frac{2}{3}$ भाग भारत सरकार द्वारा लगाया गया है । शेष सिंधिया (Scindias) कम्पनी द्वारा प्रदान किया गया है । इस कारखाने का उद्देश्य भारत में पानी में चलने वाले समुद्री जहाज बनाना है जिससे भारत के समुद्री जल यातायात का समुचित विकास हो सके और भारत को विदेशों पर निर्भर न रहना पड़े । अब तक इस कारखाने में १५ समुद्री जहाजों का निर्माण हो चुका है । कारखाने ने टेक्नीकल (Technical) सहायता तथा परामर्श के लिए एक फ्रांस की कम्पनी से एक समझौता कर लिया है

(४) हिन्दुस्तान भवन निर्माण कारखाना (Hindustan Housing Factory) यह कारखाना १९५३ में चालू हुआ । इससे पूर्व भारत सरकार द्वारा स्थापित भवन निर्माण कारखाने की असफलता के कारण उसे यह नया रूप दिया गया है । अब इस कारखाने को नये सिरे से सुधार दिया गया है और विविध प्रकार के भवन निर्माण सामग्री के उत्पादन की भी व्यवस्था करदी गई है ।

(५) राष्ट्रीय कारखाना (National Instrument Factory)—यह

कारखाना कलकत्ता में स्थापित किया गया है और अब इसका विस्तार किया जा रहा है। इसमें वैज्ञानिक यन्त्रों (Scientific Instruments) आदि का निर्माण होता है। १९५४—५५ में इस कारखाने में २१.५६ लाख रुपए के मूल्य का सामान नाया गया।

(६) पेनसीलीन बनाने का कारखाना (Penicillin Factory)—यह कारखाना पूना के निकट पिम्पिरी स्थान पर बनाया गया है। इस कारखाने में पेनसीलीन नाम की दवा बनाई जाती है। इस कारखाने में दवाई के निर्माण का कार्य १ अगस्त १ ५ से शुरू हो गया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में पेनसीलीन के अतिरिक्त इसी प्रकार की अन्य दवाओं का उत्पादन भी होने लगेगा।

(७) डी० डी० टी० बनाने का कारखाना (D. D T. Factory)—दिल्ली में डी० डी० टी० बनाने का एक कारखाना भी स्थापित हो चुका है। इस कारखाने में डी०डी० टी० का उत्पादन २५ मार्च १९०५ को शुरू हो गया और दिसम्बर १९५५ में इसकी उत्पादन क्षमता १ टन प्रतिदिन तक हो गई थी। वर्तमान उत्पादन की दर ७२० टन प्रतिवर्ष है। इस कारखा के और अधिक विस्तार की आशा है।

(८ मशीन औजार बनाने का कारखाना— यह कारखाना बंगलौर के पास स्थापित किया गया है। १९५४ में इसने मशीनों तथा औजारों के उत्पादन का कार्य शुरू कर दिया। इसकी उत्पादन क्षमता में धीरे धीरे वृद्धि का जा रही है। इस कारखाने से भारतीय रेलों तथा अन्य इस्पात कारखानों आदि को सहायता मिलेगी। एक (Swiss Company) के सहयोग से इस कारखाने की स्थापना तथा विस्तार का कार्य किया जा रहा है।

(९) हिन्दुस्तान केबिल्स कारखाना (Hindustan Cables Factory)—यह कारखाना पश्चिम बंगाल में रूपनरायणपुर नामक स्थान पर स्थापित किया गया है। डाक तथा तार विभाग द्वारा प्रयोग होने वाले विविध प्रकार के केबिल्स तथा तार अब तक विदेशों से आयात किये जाते रहे हैं। इस कारखाने में उत्पादन का कार्य ९५४ में शुरू हो गया है। शुरू के ९ महीनों में केवल ११२ मील लम्बे केबिल्स का उत्पादन हुआ। १९५६ के अन्त तक यह उत्पादन निर्धारित लक्ष्य से भी अधिक अर्थात् ५१० मील लम्बाई के केबिल्स का हो गया।

(१०) हिन्दुस्तान इस्पात का कारखाना (Hindustan Steels Ltd) उड़ीसा राज्य में रूरकेला नामक स्थान पर जर्मनी के एक औद्योगिक संगठन की साझेदारी में इस्पात का यह नया कारखाना लगाया जा रहा है। १९६१ तक यह कारखाना १२८ करोड़ रुपये की लागत से बनकर तैयार हो जावेगा और इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता १६ लाख टन तक होगी। यह उन तीन नये इस्पात कारखानों में से एक है जो दूसरी पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में लगाये जा रहे हैं। इन कारखानों के बनने से इस्पात का वर्तमान कमी कुछ हद तक पूरी हो जावेगी।

उपरोक्त इस्पात कारखाने के अतिरिक्त मध्य प्रदेश राज्य में भिलाई नामक स्थान पर रूस सरकार की सहायता से एक अन्य इस्पात कारखाना बन रहा है

जिसकी लागत ११५ करोड रुपया होगी और उत्पादन क्षमता १० लाख टन प्रतिवर्ष होगी। दुर्गापुर नामक स्थान पर पश्चिम बंगाल राज्य ने एक ब्रिटिश कम्पनी की सहायता से एक तीसरा इस्पात कारखाना बनाया जा रहा है जिस पर कुल लागत १३८ करोड रुपये होगी। भारत सरकार की औद्योगिक नीति के अनुसार लोहा तथा इस्पात उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) मे रखा गया है।

१९५६ मे राष्ट्रीय औद्योगिक विकास नियम (National Industrial Development Corporation) ने कुछ अन्य योजनाओं को निश्चित रूप प्रदान किया है। देश मे भारी मशीनरी (Heavy Machinery) के निर्माण का कार्य शीघ्र ही शुरू होने वाला है।

(११) हिन्दुस्तान हवाई जहाज कारखाना (Hindustan Aircrafts Ltd.)—यह कारखाना बंगलोर मे स्थित है। भारत सरकार का प्रतिरक्षा मन्त्रालय (Defence Ministry) इसका संचालन कर रहा है। इस कारखाने मे हवाई जहाज के पुर्जो का निर्माण तथा उन्हे जोडकर हवाई जहाज बनाने का कार्य तीव्र गति से चल रहा है। इसके अतिरिक्त रेल के डिब्बे तथा मोटर बसो के ढाचे बनाने का कार्य भी इस कारखाने मे होता है।

(१२) अखबारी कागज बनाने का कारखाना—भारत सरकार ने मध्य प्रदेश राज्य की सरकार के साझे मे ६ करोड रुपये की लागत से अखबारी कागज बनाने के इस कारखाने की स्थापना की है।

हैदराबाद राज्य मे एक अन्य अखबारी कागज बनाने वाले कारखाने की स्थापना पर विचार किया जा रहा है। रूरकेला तथा नागल मे रसायनिक खाद के बडे कारखाने लगाये जायेंगे।

१९५६ की औद्योगिक नीति से सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार तथा विकास का मार्ग और अधिक सुगम हो गया है। छोटी बडी ऐसी बहुत सी योजनाए हैं जिन्हे सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत पूरा किया जावेगा। यह भी आशा की जाती है कि सरकार कुछ वर्तमान कारखानो का जो इस समय निजी क्षेत्र मे हैं राष्ट्रीयकरण करदे। दूसरी पंचवर्षीय योजना मे विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के विकास तथा विस्तार की व्याख्या की गई है।

प्रश्न ५६—भारतीय लोहा तथा इस्पात उद्योग की स्थापना, विकास तथा वर्तमान स्थिति की व्याख्या कीजिए। (पटना ५७, ५१, राजपूताना ५२)

Trace the growth, development and present position of the Iron and Steel Industry in India (*Patna 57, 51, Rajputana 52*)

उत्तर—यह भारत के सबसे महत्वपूर्ण और आधार भूत उद्योगो मे से एक है इसकी प्रगति के बिना कृषि अथवा अन्य किसी उद्योग का विकास असम्भव है। आर्थिक प्रगति एव विकास तथा राजनैतिक सुरक्षा के लिये भी इसका बहुत अधिक महत्व है। इसलिए यदि वर्तमान युग को लौह एव इस्पात युग कहा जाये तो अनुचित न होगा।

हमारा देश लोहे और इस्पात के उद्योग के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। दिल्ली का लौह स्तम्भ ससार के वैज्ञानिको और इञ्जीनियरो के लिये सदैव आश्चर्य की वस्तु रही है। मध्य युग मे भी हमारा देश इस उद्योग मे पूर्ण निपुण था। अग्रेजो के भारत आने से इस उद्योग को बहुत धक्का लगा। इस उद्योग की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए प्रोफेसर विल्सन ने लिखा है कि— 'लोहे की ढलाई तो इगलैंड मे थोडे ही वर्षो से आरम्भ की गई है परन्तु हिन्दू लोग लोहा गलाने, ढालने और इस्पात बनाने की कला का ज्ञान प्राचीन काल से रखते हैं।"

उद्योग का आरम्भ और विकास

भारत मे योरुपवासियो का ध्यान इस उद्योग की ओर १६ वी शताब्दी तक नही गया। सन् १७७७ मे झरिया की कोयले की खान के पास यह कारखाना खोला गया परन्तु प्रगति के पथ पर अग्रसर न होकर २ वर्ष ही बाद बन्द होगया। १८०८ मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने श्री डकन की अध्यक्षता मे मद्रास राज्य मे एक छोटा सा कारखाना खोला परन्तु यह भी कुछ समय बाद बन्द हो गया। १८२५ मे हीथ नामक व्यक्ति को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आर्थिक सहायता देकर एक कारखाने का निर्माण किया जो १८४७ तक चलाया गया। १८५७ म उत्तर प्रदेश के कुमायूं जिले मे कुछ भट्टिया लगाई थी परन्तु कोयले के अभाव के कारण ८७४ मे यह प्रयास असफल रहा। १८५५ मे रानी गज और १८७५ मे कलकत्ता मे इस उद्योग को आरम्भ किया गया। १८७५ मे वराकुर लोहा और इस्पात कम्पनी ने जो बगाल की कम्पनी द्वारा खरीद ली गई थी पत्थर के कोयले का प्रयोग कर इस उद्योग की उन्नति करने का प्रयास किया।

1908

इस उद्योग को सर जे० एन० टाटा ने काफी परिश्रम के बाद |६०८ मे साकची (जमशेद नगर) मे अपना कारखाना खोलकर इस द्योग की विशेष प्रगति की। इस कारखाने पर भारत को गर्व है क्योकि यह एशिया का सबसे बडा कारखाना है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् १६१८ मे हीरापुर नामक स्थान पर इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की, और १६२१ मे युनाइटेड स्टील कार्पोरेशन आफ एशिया' मनोहरपुर मे तथा मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स की स्थापना सन् १६२५ मे की गई। यह सभी प्रयास टाटा की सफलता के बाद ही किये गये थे।

१६१४ से १६१६ तक—प्रथम महायुद्ध भारतीय लोहे एव इस्पात के उद्योग के लिये एक स्वर्ण अवसर के रूप म आया। युद्ध काल मे भारतीय माग के अतिरिक्त युद्ध क्षेत्रो से लौह पदार्थो की माग बढ गई। इस मांग के बढने से उद्योग का काफी विकास हुआ और इसने बहुत लाभ कमाया। टैरिफ बोर्ड के अनुसार १६१६—१७ मे कम्पनी का उत्पादन क्रमश १४७४४७ टन कच्चा लोहा, १३६४२३ टन इस्पात और ८८०२६ टन पक्का इस्पात हुआ था।

परन्तु इसके उपरान्त देश मे आर्थिक मदी के कारण इन उद्योगो को काफी हानि उठानी पडी। माग और मूल्यो के गिर जाने से और मजदूरी ऊंची होने से

एवं कोयले की महगाई के कारण उत्पादन व्यय ऊंचा हो गया। इस कारण युद्ध के बाद भारत के लिये दूसरे देशो मे स्पर्द्धा लेना एक दुष्कर कार्य हो गया। परन्तु टाटा के प्रयत्नो से कई भट्टियो का निर्माण तुरन्त ही किया गया और आयात कर मे वृद्धि कर देने से इस उद्योग को एक प्रकार का सरक्षण मिल गया परन्तु १९२१ में विदेशी इस्पात अधिक सस्ता हो जाने से भारत को उसका सामना करना कठिन हो गया।

१९२२ मे प्रशुल्क सभा ने अपने वृत्त लेख मे लिखा "सरक्षण के अभाव मे यह उद्योग भविष्य के अनेक वर्षों मे भी विकास नहीं कर सकता है और सम्भव है कि फौजी एव सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण इस उद्योग का कहीं अत न हो जाये। इसलिए इस उद्योग का सरक्षण लेने का पहिला अधिकार है" इसके फलस्वरूप १९२४ मे इस उद्योग के लिए ३ वर्ष का सरक्षण प्राप्त हुआ। आयात मूल्य पर ४० प्रतिशत कर लगाकर इस उद्योग की आर्थिक सहायता की गई। इस सहायता से उद्योग द्रुतगति से विकास करने लगा।

टाटा की कम्पनियों मे १९२४ और १९२७ के बीच सस्ते कोयले का प्रयोग करके उत्पादन व्यय मे काफी कमी की गई और १९१६–१७ के उत्पादन मे बढ़कर १९२७—२८ मे ५९९५३५ टन हो गया। इस प्रकार १० वर्ष से ही इस्पात का उत्पादन ४,गुने से भी अधिक हो गया था। परन्तु १९२९ के बाद विश्व व्यापारिक मदी का बुरा प्रभाव इस उद्योग पर पड़ा। इधर भारतीय रेलो के विकास न होने से इस उद्योग को बहुत धक्का लगा और इस उद्योग की दशा १९३९ तक बहुत खराब रही।

१९२५–२७ मे प्रशुल्क सभा ने उद्योग की जाचकर इस बात की सिफारिश की कि इसका सरक्षण काल ७ वर्ष और बढा दिया जाय। अत सरक्षण कानून म सशोधन करके ७ वर्ष का सरक्षण इस उद्योग को फिर प्राप्त हुआ। इसके बाद १९३३ मे इस मे सशोधन करके सरक्षण अवधि और बढाई गई। परन्तु इन सब प्रयत्नो से ही इस उद्योग को बनाये रखने का प्रयत्न किया गया था।

१९३९ से १९५० तक—दूसरे महायुद्ध के आरम्भ होने से उद्योग का समृद्धि मे एक नये युग का आरम्भ हुआ। विदेशी यातायात के बद हो जाने से, फौजी आवश्यकताओ के बढने से इस उद्योग को फिर से पनपने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस्पात का उत्पादन २ वर्ष मे ही ५ प्रतिशत बढ गया। माग के अधिक बढ जाने से सरकार को विवश होकर नागरिक उपभोग पर कट्रोल भी करना पडा। १९४३ मे रेल के पहिए बनाने के लिए जमशेदपुर मे एक कारखाना (Engineering of Machine Manufacturing Co) की स्थापना की गई। १ जून १९४५ को सिंहभूमि रेलवे वर्कशाप टाटा के आधीन हो गया। १९४६ मे उद्योग और पूर्ति मत्रालय ने एक पैनल नियुक्त किया जिसने सिफारिश की थी कि इस्पात का प्रतिवर्ष उत्पादन २५ लाख टन होना चाहिये मूल्य पर नियत्रण रखा जाये और सरकार इसको आर्थिक सहायता प्रदान करे। सरकार ने उत्पादन के बढाने के लिए इस उद्योग

को आर्थिक सहायता प्रदान की। इन सब प्रयत्नो के बाद भी १६४८ मे आकर इस उद्योग की स्थिति बदलने लगी। दूसरी ओर सरकार ने आर्थिक सहायता भी दी जो इस प्रकार थी। टाटा को १० करोड, बगाल स्टील कार्पोरेशन को ३ करोड और इ डियन आयरन एड स्टील कम्पनी को १ करोड रुपए का ऋण दिया इसके अतिरिक्त विश्व बैंक से भी इसके उत्पादन के बढाने के लिये सहायता प्राप्त हुई। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की स्थिति सन् १९४८ के बाद इस प्रकार हो गई।

वर्ष	कच्चा लोहा (बिक्री के लिए)	पक्का इस्पात
१९४८	३५६,३६८	८५३,७१५
१९४९	४२७,५७५	९२६,८६१
१९५०	२९०,४५७	९७६,१००

उपरोक्त आकडों के अनुसार उत्पादन क्षमता काफी बढ गई थी परन्तु कच्चा लोहा बिक्री के लिए कम उपलब्ध हुआ, इसका प्रमुख कारण था कि उसकी खपत इस्पात बनाने के लिए होती रही जिसके परिणामस्वरूप इस्पात के उत्पादन मे हम क्रमशः प्रतिवर्ष वृद्धि पाते हैं।

लोहा तथा इस्पात उद्योग प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत—हमारी राष्ट्रीय सरकार ने इस उद्योग की उन्नति का भार अपने ऊपर ले लिया। प्रथम पचवर्षीय योजना में सरकार ने उद्योगो के लिए विशेष सहायता देने का प्रयत्न किया जिसके अन्तर्गत लोहा एव इस्पात उद्योग की उत्पत्ति निम्नलिखित ढग से बढने की आशा की जाती थी :→

	१९५०–५१ मे उत्पत्ति	१९५५–५६ मे उत्पत्ति
गला हुआ लोहा	१७ ०८ लाख टन	२९ ५ लाख टन
तैयार फौलाद	१० ७५ लाख टन	१२ ८ लाख टन

समस्त बडे उद्योगो के सामने वित्त की समस्या एक गम्भीर समस्या थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत सरकार ने बगाल स्टील कार्पोरेशन तथा इण्डियन स्टील कम्पनी को काफी अधिक धन देकर उनकी उन्नति के लिये प्रयास किया था। १९५३ मे भारत सरकार ने जर्मनी की क्रुप्स व डेमग कम्बाइन (कम्पनी) के साथ करार करके एक नवीन कारखाने का श्रीगणेश किया था जिसका नाम हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड है जिस पर हमारी सरकार ने १८ करोड रुपया व्यय करने का निश्चय किया था। प्रथम पचवर्षीय योजना मे इसके उत्पादन को बढाने के लिये ३० करोड रुपया व्यय का आयोजन किया गया था जिसमे १५ करोड विदेशी सहायता एवं ऋण से प्राप्त किया गया था।

लोहा तथा इस्पात उद्योग द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत—भारत की विकास योजनाओं के साथ ही साथ लोहे और स्पात की माँग भी बढने लगी और भारत

सरकार ने अनुभव किया कि यह उद्योग इतना महत्वपूर्ण है जितनी मनुष्य की—रीढ़ की हड्डी। अतः दूसरी पचवर्षीय योजना मे इस उद्योग को विशेष महत्व दिया गया और ४३१ करोड रुपया इस उद्योग पर व्यय करन का सरकार का अनुमान है। इस योजना के अन्तर्गत उद्योगो की उत्पादन क्षमता बढने एव नए कारखानो के खोलने का निश्चय किया है। सरकार ने निश्चय किया है कि १९६०-६१ तक इस की उत्पादन शक्ति ३० लाख टन ले जानी चाहिये। इस लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु सरकार ने स्वय तीन नए कारखाने खोले हैं। प्रथम रूरकेला (उडीसा) दूसरा दुर्गापुर (प० बगाल) और तीसरा भिलाई (मध्य प्रदेश) मे। अन्तिम कारखाना रूस सरकार की सहायता से लग रहा है जो १९५८-१९५९ तक बन जायेगा। इन तीनो कारखानो पर ३५० करोड रुपया व्यय किया जायेगा। इसके अतिरिक्त ७५ करोड रुपया विदेशी सहायता पूजी मशीनरी आदि के रूप मे योजना के अन्त तक मिलने की आशा है।

वर्तमान स्थिति—१९५३ की औद्योगिक गणना के अनुसार इस वर्ष भारत मे इस्पात के छोटे बडे १३२ कारखाने थे जो मुख्यत बम्बई, पश्चिम बगाल, उत्तर-प्रदेश बिहार, उडीसा, पजाब दिल्ली, राजस्थान, मद्रास तथा आसाम राज्यो मे स्थित हैं। इन कारखानो मे लगभग ६० हजार श्रमिक कार्य करते है। निम्नलिखित तालिका से भारत मे लोहे तथा इस्पात के उत्पादन की प्रगति का पता चलता है—

लोहे की किस्म	६१६	१६३६	६४७	१६५१	१६ ५	१६५६	१६५७
कच्चा लोहा		१८३५	?३२०	३०८ ८	७५६ ८	१८०७ २	१७८६ ९
सीधी ढलाई	—	—	—	८२ ४	१२६ ०	१२२ ४	११२ ८
लोह मिश्रित धातु	—	—	—	२४ ०	११ ०	२८·८	६ ६
इस्पात के पिंड व ढलाई	—		—	१२००·०	१५०४ ०	१७३७ ६	१७१४ ८
अधूरा तैयार इस्पात	—	—	—	१२४६ २	१४५६ ८	१४८४ ४	·४४० ०
तैयार पात	६६ ०	८०२ ६	८६३ ३	१०७६ ४	१२६० ०	१३१६ ०	१०४६ ४

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि भारत मे लोहे तथा इस्पात के उत्पादन मे जो वृद्धि होती रही है वह देश की बढती हुई आवश्यकताओ को देखते हुये पर्याप्त नही है। इसीलिए सरकार ने दूसरी पचवर्षीय योजना मे इस्पात के उत्पादन को बढाने के लिए द्वि-रूपी नीति अपनाई। प्रथम तो वर्तमान कारखानो की उत्पादन क्षमता को बढाना और दूसरे नये सरकारी कारखानो की स्थापना। योजना के अन्त तक टाटा इस्पात के कारखाने का उत्पादन ८ लाख टन प्रति वर्ष से बढकर १५ लाख टन प्रति वर्ष हो जायगा और इस पर ८४ ६ करोड रुपया व्यय होगा। इसी प्रकार भारतीय लोहा तथा इस्पात कम्पनी (Indian Iron and Steel Company) की उत्पादन क्षमता तीन लाख टन से बढकर ८ लाख टन हो जायगी और इस पर ४२ ८ करोड रुपया व्यय होगा। रूरकेला भिलाई तथा दुर्गापुर के नये इस्पात कारखानों में १९६०-६१ तक २० लाख टन तैयार इस्पात तथा ४५ लाख टन कच्चा लोहा उत्पन्न होने लगेगा।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण मे भारतीय लोहा व इस्पात उद्योग का भविष्य बहुत प्रकाशमय है और सरकार व निजी क्षेत्र के उद्योगपतियो की सहायता से यह उद्योग निरन्तर उन्नति करता जायेगा।

प्रश्न ५७—भारत मे सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना, विकास तथा वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिये ?

(आगरा ५६, ५५, ५३ लखनऊ ४८, ४५, बिहार ५३ राजपूताना ५२)

Trace the growth, development and present position of the Cotton Textile Industry in India ?

(Agra 56, 55, 53, Lucknow 48, 45 Bihar 53, Rajputana 52)

उत्तर—सूती वस्त्र उद्योग भारत मे प्राचीन काल से एक महत्वपूर्ण स्थान रखता रहा है। यह उद्योग भारत का सबसे बडा एव प्रथम उद्योग है। भारत भी वस्त्र के निर्यात मे उन देशो के स्तर तक पहुँच चुका है जैसे अमेरिका आदि। भारत मे पहला कारखाना १८१८ मे कलकत्ता मे स्थापित हुआ। इसके पश्चात् बम्बई मे कोवसजी नाना भाई दावर ने एक मिल की स्थापना की। इस मिल मे १८५४ मे उत्पादन कार्य प्रारम्भ किया गया। इसके पश्चात् एक अग्रेजी उद्योगपति ने बडौच मे दूसरा मिल स्थापित किया। इन दोनों कारखानो ने विशेष सफलता प्राप्त की जिसके परिणाम स्वरूप १८७५ तक समस्त भारत मे ४८ कारखानो की स्थापना और हुई। इस सफलता को देखने हुए अहमदाबाद, शोलापुर मद्रास तथा कानपुर आदि शहरो मे सूती कपडे के कारखाने खोले गये। १९१४ मे इन मिलो की सख्या २६४ हो गई थी और इनमे ९६०८६७ मिक काम करते थे।

प्रथम महायुद्ध और उसके बाद उद्योग की स्थिति—प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व इस सूती वस्त्र उद्योग को अनेक प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडा था जिससे इस उद्योग की प्रगति मे काफी बाधा पडी थी। परन्तु १९१७–१८ मे जब महायुद्ध प्रारम्भ हुआ इस उद्योग को अपनी उन्नति करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सैनिक आवश्यकताओ, आयात की वस्तु की कीमत मे वृद्धि, जहाजो की कमी के कारण आयात मे बाधाए आदि कारणो से इस उद्योग को सरकार ने काफी सहायता पहुचाई जिसके फलस्वरूप इस उद्योग का उत्पादन बढ गया। परन्तु युद्ध के पश्चात् माग का कम होना, मजदूरो की व्यापक हडताले, जापान की प्रतिस्पर्द्धा, विद्युत्‌शक्ति और कोयले की महगाई, भारतीय मिलो मे आपसी प्रतिस्पर्द्धा बढी हुई मजदूरी, ऊचे कर, दोषपूर्ण सगठन आदि कारणो से इसकी प्रगति अकस्मात् समाप्त होती गई। इस उद्योग की स्थिति अत्यन्त होने से संरक्षण की माग की गई और १९२७ मे टैरिफ बोर्ड की सिफारिश पर सरकार ने भारत मे आने वाली मशीनो के आयात कर को घटाने के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का सरक्षण नही दिया। परन्तु इससे कोई लाभ नही हुआ और श्री जी० एस० हार्डी को नियुक्त किया गया जिन्होंने जापानी प्रतियोगिता से वस्त्र उद्योग की सुरक्षा के लिये सिफारिश की। दूसरी ओर १९३० मे स्वदेशी आन्दोलन ने जोर पकडा। इसके बाद ही १९३० मे वस्त्र उद्योग सरक्षण

एक्ट बना जिसके अनुसार ब्रिटिश आयात पर १५% व अन्य देशों के आयातों पर २० प्रतिशत कर लगाया गया। १६३१ में इस कर मे ५ प्रतिशत की और वृद्धि की गई। १६५४ मे एक एक्ट और पास हुआ जिसमे सरक्षण के काल की अवधि १६४७ तक बढ़ा दी गई थी।

इस उद्योग के संगठन मे अनेक त्रुटियाँ होने के कारण १६३४ तक की मन्दी मे इसकी स्थिति चिन्ताजनक रही थी। यदि इस उद्योग को सरकारी सरक्षण प्राप्त न हुआ होता तो भारत मे यह उद्योग इस अवस्था मे न होता।

द्वितीय महायुद्ध काल मे उद्योग की स्थिति—द्वितीय महासमर की शख ध्वनि होते ही इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला। विदेशी मांग बढ़ गई और जापान से आयात के बन्द हो जाने से तथा मूल्य में वृद्धि के कारण इस उद्योग को अपनी उन्नति करने का एक अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। अन्त म सरकार को विवश होकर कपडे पर कन्ट्रोल लगाना पड़ा और साथ ही साथ उत्पादन एव बिक्री पर भी सरकार को अपना नियन्त्रण रखना पडा। सरकार ने इस नियन्त्रण के लिये समय-समय पर आदेश जारी किए जो निम्नलिखित थे —

(अ) *काटन क्लाथ एण्ड यार्न कन्ट्रोल आर्डर जून १६४३ मे, इस आदेश मे* १६४५ मे सशोधन भी किया गया।

(ब) काटन टैक्सटाइल इंडस्ट्री (कन्ट्रोल आफ प्रोडक्शन) आर्डर १६४५।

(स) काटन टैक्सटाइल (कन्ट्रोल मूवमैंट) आर्डर १६४६।

(द) काटन टैक्सटाइल (रॉ मैटेरियल एण्ड स्टोर्स) आर्डर १६४६।

प्रथम आदेश के अनुसार कपडे के उत्पादन वितरण एव कीमत पर सरकार ने नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया। दूसरे आदेश के अनुसार कपडे का स्थानीय उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न तथा तीसरे आदेश से कपडे के यातायात पर नियन्त्रण और चौथे से कपडे के उत्पादन के लिये आवश्यक कच्चे माल एव अन्य साधनों की कीमतों पर नियन्त्रण रखना था। उपरोक्त आदेशों द्वारा १६४६ मे इस उद्योग की स्थिति मे सुधार हुआ और १६४७ में वस्त्र उद्योग पर से मूल्य नियन्त्रण हटा लिया गया।

विभाजन का वस्त्र उद्योग पर परिणाम—भारत के विभाजन से इस उद्योग की स्थिति पर धक्का आया। पाकिस्तान को ७३% अच्छी रुई पैदा करने वाली भूमि और १४ वस्त्र निर्मारियां प्राप्त हुई जिससे पाकिस्तान से रुई का आयात दुर्बल हो गया और जिसका परिणाम भारतीय मिलों के उत्पादन पर पडा। भारत को अच्छी रुई नही मिल सकी वरन् भारत ने पाकिस्तान के साथ कई समझौते भी किए परन्तु कोई विशेष लाभ नही हुआ अत भारत मे कपास की खेती के बढाने के लिये प्रयत्न किए गए। विवश होकर सरकार ने इजिप्ट, अफ्रीका से समझौता करके वहा और रुई का आयात किया इससे वस्त्र उद्योग का उत्पादन फिर से बढने लगा।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सूती उद्योग—प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सूती मिल उद्योग के विकास के लिये एक निश्चित कार्य-क्रम रखा गया था। यह कार्यक्रम दो आधारों पर निर्धारित था। (१) भारत पर्याप्त मात्रा मे वस्त्र का निर्यात

करता रहे और (२) देश के आंतरिक उपभोग के लिए पर्याप्त मात्रा में कपड़ा मिलता रहे। प्रथम योजना के अनुसार १९५२–५३ तक ४६०० मिलि० गज वस्त्र तथा १९५५–५६ तक ४७०० मिलि० गज वस्त्र प्रतिवर्ष होना अवश्य चाहिये और हर्ष का विषय है कि भारत अपने इस लक्ष्य पर पहुचने मे सफल हुआ है।

योजना मे नये कारखानों की स्थापना के स्थान पर करघा उद्योग को प्रोत्साहन देने की सिफारिश की गई थी। इसके अतिरिक्त प्रतिस्पर्द्धा को ध्यान मे रखते हुए कपड़े की उत्तमता मे सुधार के लिये भी सिफारिश की थी। उपरोक्त सभी सिफारिशें कर्वे कानूनगो समिति ने की थी। समिति ने इस बात पर जोर दिया था कि हस्त-चलित और शक्ति चालित कर्घा द्वारा अधिक कपड़ा तैयार किया जाना चाहिये ताकि बेकार बैठे हुए लोगो को काम मिल जाये। प्रथम पचवर्षीय योजना मे सरकार ने कपड़े का निर्यात बढाने के लिए एक सूती वस्त्र निर्यात प्रवर्तक परिषद (Cotton Textile Export Promotion Council) नियुक्त की जो कि वस्त्र निर्यात को हर प्रकार से प्रोत्साहित करती है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे वस्त्र उद्योग–दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत वस्त्र उत्पादन मे १९६०–६१ तक २४% वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। ३५०० मिलि० गज कपडे का उत्पादन हस्त कर्घा उद्योग के लक्ष्य की सीमा है। इसके अलावा उद्योग को अपने वर्तमान निर्यात को कायम रखते हुमे ३५० मि० गज अतिरिक्त कपड़े का उत्पादन केवल निर्यात के लिये करना होगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु १४६०० चालित कर्वे नए लगाने की व्यवस्था है। इस प्रकार द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नवीन कपड़ा नीति का स्वागत उद्योगपतियों ने किया है। आवश्यकता इस बात की है कि मिल उद्योग और कर्घा उद्योग मे समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये जिससे विशाल उद्योगो के साथ २ छोटे पैमाने के कर्घा उद्योग भी उन्नति कर सकें और दूसरी पचवर्षीय योजना म इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया है।

निम्नलिखित तालिका से पिछले कुछ वर्षो मे होने वाले सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन क पता चलता है —

वर्ष	सूत (लाख पौंड)	सूती कपडा लाख गज)
१९५०	११७४८	३६६४८
१९५१	१३०४४	४०७६४
१९५२	१४४९६	४५९८८
१९५३	१५०६०	४८५८०
१९५४	१५६१२	४९९८०
,९५५	१६३०८	५०९४०
१९५६	१६७१६	५३०७६
१९५७	१७८०१	५३१७४

भारत की नई सूती वस्त्र नीति—हाल ही मे भारतीय सूती वस्त्र सम्बन्धी नीति की घोषणा भारत सरकार द्वारा की गई है। नीति के अन्तर्गत इस बात का प्रयत्न किया गया है कि मिलों द्वारा ३१·३ करोड गज, विद्युत द्वारा चलने वाले कर्घों द्वारा २०·० करोड गज तथा हाथ कर्घों द्वारा १८० करोड गज अतिरिक्त कपडा बुना जाना चाहिये इस नीति की प्रमुख बातें यह हैं (अ) नवीन तकलियों के चलाने के लाइसेन्स केवल उन्हे ही दिये जायें जो उन्हे शीघ्र ही चालू कर सकें जिससे बढती हुई माग की पूर्ति आसानी से हो जाये। (ब) सूती वस्त्र मिलों को ४६०० कर्घों के लगाने की अनुमति केवल इसलिए दी गई है कि उसका समस्त उत्पादन जो ३५ करोड गज के लगभग होगा प्रतिवर्ष निर्यात कर दिया जायेगा। (स) ३५००० विद्युत कर्घे सहकारी समितियों द्वारा लगाये जायेंगे। (द) नीति मे अम्बर चर्खे को विशेष महत्व दिया गया है।

आलोचकों का कथन है कि यह नीति वर्तमान स्थिति मे अनुपयुक्त होने के अतिरिक्त वस्त्र के वितरण से भी गलत मालूम होती है। दूसरे राष्ट्रीयता का विकास और प्रतियोगिता की तीव्रता से यह मान लेना कि ५ वर्ष मे भारतीय निर्यात ३५ करोड गज बढ जाएगा इसमे बहुत सन्देह है। इस नीति का हाथ-कर्घे उद्योग पर बुरा प्रभाव पडेगा क्योंकि सरकार ३५ हजार विद्युत कर्घों की स्थापना का विचार रखती है। इससे हाथ-कर्घे के नष्ट हो जाने की पूरी सम्भावना है।

परन्तु आलोचना के अतिरिक्त इस नीति मे कुछ लाभ भी दृष्टिगोचर होते हैं जैसे ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योगो के क्षेत्र मे प्रबन्ध तथा मजदूरी के सम्बन्ध में पर्याप्त सुधार होने की सम्भावना है। अम्बर चर्खा व नई सूती मिलो के बीच के राजनैतिक मतभेद समाप्त हो जाने की आशा है इस नीति के अपनाने से भारतीय सूती वस्त्र के निर्यात व्यापार पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पडेगा। इस नीति से इस उद्योग की उन्नति ही होगी इसमे कोई सन्देह नहीं परन्तु वर्तमान समय मे इस उद्योग के सामने कुछ महत्वपूर्ण कठिनाइयां है जिनके दूर किये बिना यह उद्योग भली प्रकार पनप नहीं सकता। यह समस्याएं निम्नलिखित हैं।

(१) **यन्त्र सामग्री का आधुनिकीकरण**—युद्ध के समय इस उद्योग की विशेष उन्नति हुई थी। अधिक उत्पादन के कारण इसकी मशीनें घिस गईं जिनके कारण उत्पादन की कीमत अधिक रहती है और भारतीय वस्त्र विदेशी प्रतियोगिता भी नहीं कर पाता। अतः सरकार को नई मशीनो के लगाने के लिए आर्थिक सहायता देकर सस्ता एव उत्तम कपडा उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये।

(२) **वस्त्र उद्योग के लिए आवश्यक यन्त्रों का निर्माण**—इस उद्योग के यन्त्रो के लिए हमको विदेशो पर आश्रित होना पडता है क्योंकि हम अभी साइन्स के क्षेत्र मे आगे नहीं हैं अतः हमको इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि हम दूसरे देशो पर आश्रित न रह सकें। दूसरी योजना मे सरकार ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है और इस समस्या को सुलझाने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

(३) **हाथ कर्घा एवं मिलों से सामञ्जस्य**—यह सामञ्जस्य भी एक समस्या बन

गई है। हाथ कर्घे को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार ने अपनी नीति मे इसको विशेष स्थान दिया है और आगे हाथ कर्घा उद्योग इतना शक्तिशाली हो जायेगा कि वह मिल उद्योग से प्रतिस्पर्द्धा कर सके। इस सामजस्य को दूर करने के लिए सरकार की नीति का स्वागत सभी क्षेत्रो ने किया है।

(४) **पर्याप्त कच्चे माल का अभाव**—विभाजन से भारत की कच्चे माल की समस्या एक बडी समस्या का रूप धारण कर रही है। हमारे देश को बाहर से काफी कीमत पर रुई का आयात करना पडता है। इस समस्या का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि अच्छे किस्म एव लम्बे रेशे वाली रुई का उत्पादन बढाने के लिए अनुसधान होना चाहिये जिसमे हम स्वय निर्भर हो सकें।

(५) **विदेशी प्रतियोगिता**—सभी देशो ने अपना औद्योगिक पुनर्गठन एव पुनर्निर्माण कर लिया है। विदेशी प्रतियोगिता से हमारे हाथ से निर्यात बाजार निकलते जा रहे हैं। इन बाजारो को प्राप्त करने के लिए हमको उत्पादन बढाना चाहिये, अच्छा सामान बनाना चाहिए, उत्पादन यन्त्र मे सुधार श्रमिको की कार्यक्षमता बढाने का प्रयत्न करना चाहिए। इन सभी लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिये हमको करो मे भी कमी करनी पडेगी।

इन समस्याओ के हल हो जाने से उद्योग का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल हो जाएगा। इसमे तो कोई सन्देह नही कि सूती उद्योग भारत मे प्राचीन काल से विख्यात रहा है। समय ने पलटा खाया और इसका गौरव घुंधला सा पड गया किन्तु समस्याओं के समाधान से यह उद्योग पुन: अपने खोए हुए अतीत के गौरव को प्राप्त करेगा

प्रश्न ५८—भारतीय जूट उद्योग की स्थापना, विकास तथा वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिए ? (आगरा ५३, ५०, बिहार ५३)

Trace the growth, development and present position of Jute Industry in India *(Agra 53, 50, Bihar 53)*

उत्तर—विश्व के आर्थिक इतिहास मे भारतीय जूट उद्योग को बहुत महत्वपूर्ण और प्रथम स्थान प्राप्त है। भारत मे समस्त ११३ जूट मिलें है जो केवल भारतीय जूट को ही पक्के जूट मे परिणित नही करते वरन् पाकिस्तान से पटसन आयात करके उसे भी उपयोगी बनाते हैं। भारत मे बुनाई उद्योगो मे जूट उद्योग का सूती कपडे के उद्योग के बाद द्वितीय स्थान है। यह एक सुसगठित व केन्द्रित उद्योग है जिसमे ७० करोड़ रुपए की पूंजी लगी हुई है और २५२३५२ श्रमिक कार्य करते हैं। वर्तमान उद्योग एव प्राचीन कुटीर उद्योगो मे केवल एक विशेषता यह है कि प्राचीन उद्योग जहा देश की आन्तरिक माँग पर ही निर्भर था वहा वर्तमान उद्योग विदेशी माग पर ही अधिक निर्भर है। यह इस ओर सकेत है कि यदि उद्योग को वर्तमान समस्याए समुचित रीति मे हल नही हुईं तो उद्योग का अस्तित्व खतरे मे पड जायेगा।

प्रारम्भिक प्रगति—प्राचीन काल में भारत में जूट का उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में प्रचलित था। १७६५ से १८३० तक टाट के टुकड़ों का भारी मात्रा में विदेशों को निर्यात होता था किन्तु १८३५ में डन्डी में शक्ति सचालित कर्घों का आविष्कार हो जाने से भारत में कुटीर उद्योग नष्ट होने लगा और यहाँ के कच्चे जूट की माग बढ़ने लगी जिससे जूट उत्पादन को और अधिक प्रोत्साहन मिला। यातायात के साधनों के विकास होने से तथा मशीनों और सगठन में सुधार होने से जूट उद्योग स्काटलैंड से १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में आ गया। प्रारम्भ में इसकी प्रगति इतनी धीमी रही कि लोगों को यह भय था कि भारत में जूट उद्योग असफल रहेगा किन्तु इसके प्रतिकूल इस उद्योग ने उत्तरोत्तर वृद्धि प्रारम्भ करदी और शताब्दी के अन्त तक यह भारत का एक प्रमुख उद्योग हो गया।

भारत में सबसे पहला जूट मिल मिस्टर जार्ज ऑकलैंड ने रिशारा (श्रीरामपुर) में १८५४ में स्थापित किया। दो वर्ष तक इस मिल में ८ टन प्रतिदिन के हिसाब से सुतली तैयार की जाती थी। लोगों को आश्चर्य होता था कि क्या यह मिल कभी उन्नति कर सकेगी। १८५७ में हाथ के कर्घों द्वारा बोरे की बुनाई आरम्भ हुई। १८५९ में शक्ति चलित कर्घे बनाए गये परन्तु दुर्भाग्य वश कुछ समय बाद आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह मिल बन्द हो गई। सन् १८५९ में बोर्नियो कम्पनी ने भारत में दूसरे मिल की स्थापना की। इस मिल ने कताई बुनाई दोनों कार्यों को प्रारम्भ में ही अपनाया। इस मिल की प्रगति इतनी शीघ्रता से हुई कि ५ साल के अन्दर मशीनों की सख्या और १३ साल के अन्दर पूंजी दोगुनी हो गई। १८६० में ७, १८६६ में १, १८७० में ५ और १८७५ में ८ नये जूट मिल स्थापित किये गये। उस समय कर्घों की कुल सख्या ३५०० थी। पहिले डण्डी से ही जूट और निर्मित माल अन्य देशों को जाया करता था परन्तु भारतीय उद्योग की प्रगति से डण्डी के जूट मिलों को काफी हानि हुई है। भारत ने अमेरिका और आस्ट्रेलिया को बड़ी मात्रा में जूट और निर्मित माल भेजना आरम्भ किया।

१८७५ तक भारतीय मिल अधिकाश में बोरे बनाते थे जो भारत और बर्मा में ही खप जाते थे किन्तु उत्पादन में वृद्धि होने लगी। १८७५ और १८८२ के बीच मन्दी के कारण केवल एक जूट मिल स्थापित की जा सकी। इसके बाद विदेशी माग के बढ़ने से १८८२—८५ में ५ नये मिलों का निर्माण हुआ। १८८२ में जूट मिलों की सख्या २२ थी, श्रमिकों की संख्या २७४६४, कर्घों की सख्या ५४६ और तकुओं की सख्या ७७८७० थी। इन २२ में से १७ मिल कलकत्ता के पास ही थे क्योंकि यहां कच्चे माल, श्रम और यातायात की सुविधाएं खूब उपलब्ध थी। इस उद्योग को अमरीका, आस्ट्रेलिया, बर्मा न्यूजीलैंड आदि देशों की माग के बढ़ने से बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। उत्पादन में आशातीत वृद्धि के कारण यह आवश्यक था कि सभी समस्याओं का समन्वय किया जाये जिसके लिए एक सस्था की आवश्यकता थी। फलतः १८८४ में जूट निर्माण सघ (Indian Jute Manufacturers Association) की स्थापना की गई। इसका मुख्य ध्येय था

उद्योगो का समुचित विकास करना प्रतिस्पर्द्धा समाप्त करना, माल की खपत के लिये नये बाजारो की खोज करना, श्रमिको की रक्षा एव देख भाल करना, उद्योग-पतियो म सहयोग बढ़ाना। १६०२ मे इस का नाम बदल कर भारतीय जूट मिल सघ (Indian Jute Mills Association) रख दिया गया।

१८६५ मे जूट मिलो की सख्या २६ हो गई थी जिनमे २६ कलकत्ते मे थी कर्घों की सख्या १०००० थी। १८६६—१६०० मे १० नई मिलो का और निर्माण किया गया जिनमे ५००० कर्घे थे। इस प्रकार जूट उद्योग निरन्तर विकास करता रहा और १६११—१४ तक भारत मे ६४ मिलें स्थापित हो चुकी थीं। इस समय तक भारतीय जूट मिलो के प्रबन्ध में भी बहुत कुछ सुधार हो चुका था। इसके अतिरिक्त मशीनो मे सुधार निर्यात मे वृद्धि, मिलो के आकार का विस्तार तथा कच्चे पाट की पूर्ति मे उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई थी।

प्रथम महायुद्ध तथा उसके उपरात—प्रथम विश्व युद्ध भारत के जूट उद्योग के लिये एक वरदान सिद्ध हुआ। इस काल मे उद्योगो का अभूतपूर्व विकास हुआ। युद्ध के कारण यन्त्र सामग्री का आयात बन्द हो जाने मे नई मिलो की स्थापना नहीं हो सकी और दूसरी ओर यद्ध की अन्य बढती हुई माँग की पूर्ति की जिम्मेवारी उद्योग पर ही थी, इसलिए सरकार ने फैक्टरी एक्ट की कुछ धाराओ मे इस उद्योग को छूट दी जिससे वर्तमान मिलों की उत्पादनशीलता बहुत अधिक बढ़ गई। इस अवधि मे उद्योग ने अधिकतर सरकारी आदेशो के अनुसार माल की पूर्ति की। युद्ध के अन्तिम वर्षों में सरकार द्वारा कच्चे जूट का निर्यात बन्द कर दिया गया। युद्ध के पूर्व ४४ लाख गाठ की माल ना खपत होती थी। युद्ध के अन्तिम ४ वर्षों मे ५५ लाख गाठ सालाना की खपत हो गई थी किन्तु युद्ध समाप्त होते ही जूट के सामान की माग बहुत कम हो गई। आर्थिक मन्दी के कारण उद्योगो को काफी कठिनाइयो का सामना करना पडा। उद्योगो की आर्थिक दशा खराब होने लगी। उत्पादन कम करना पडा जिसके कारण कार्यशील घन्टो मे सप्ताह के केवल ४ दिन ही काम होने लगा। इन सब कठिनाइयो का सामना करते हुये जूट उद्योग उन्नति की ओर अग्रसर रहा और १६२६–३० मे इन मिलो की सख्या ६८ हो गई थी जिनमे कर्घों की संख्या ५३६०० और तकुओ की संख्या ११४०४३५ थी।

१६१३ की विश्व मन्दी के कारण जूट उद्योग मे भी भीषण सकट उत्पन्न हो गया। फसल अच्छी होने से कच्चे जूट की पूर्ति बढ गई, जिससे मूल्य मे कमी हो गई। मिलों के पास जूट का स्टाक बहुत था उसको समाप्त करने के लिये कार्य अवधि ५६ घन्टे से ६० घन्टे प्रति सप्ताह कर दी गई। निर्मित माल अधिक हो जाने से मूल्य और भी अधिक गिर गये। अतः जूट मिल सघ को निर्णय करना पडा कि काम करने के घन्टे घटा दिये जाएं। इस निर्णय के फलस्वरूप सन् १६३१ मे घन्टो की सख्या ४० कर दी गई और १५ प्रतिशत कर्घे बन्द कर दिये गये। यह निर्णय अधिकाश मे १६३८ तक चलता रहा यद्यपि जूट मिल उद्योग मे सुप्रबन्ध तथा उद्योगपतियो की दूरदर्शिता के कारण इस उद्योग को कम हानि उठानी पडी तथापि द्वितीय महायुद्ध

के छिड़ने तक इस उद्योग की स्थिति खराब रही। श्रमिकों की हालत खराब थी मूल्यों में आवश्यकता से अधिक गिरावट और गिरती हुई माँग के कारण उद्योग की दशा असन्तोषजनक रही।

द्वितीय विश्व युद्ध तथा उसके उपरान्त—द्वितीय युद्ध छिड़ने से एवं विदेशी माँग के बढ़ने से, बोरे तथा अन्य जूट के सामानों के लिये सरकार की भारी माँग तथा मूल्यों में वृद्धि के कारण, मूल्यों और उत्पादन में भारी सट्टे-बाजी से तेजी हुई जिसके परिणामस्वरूप कार्य अवधि पर से रोक थाम हटाकर सब मिलें पूरी तरह से ६० घन्टे प्रति सप्ताह कार्य करने लगी। किन्तु युद्ध की अवस्थाएँ बदलते रहने से कभी विदेशों से अधिक माँग और कभी कम माँग होती थी। १९४० तक माँग अच्छी रही। इस काल के बाद माँग कम होती गई और उद्योग पर सङ्कट के बादल मंडराने लगे। जिसके परिणामस्वरूप काम करने के घण्टों में कमी करके सप्ताह में ४५ घन्टे की कार्य अवधि कर दी गई। बाद में १९४२ में इस अवधि को बढ़ाकर ५४ घन्टे कर दिया गया परन्तु १७७ करघों को बन्द कर दिया। इस प्रकार समय समय पर युद्ध जनित माँगों में उतार चढ़ाव के साथ ही साथ भारतीय जूट उद्योग में भी उन्नति और अवनति के गोते लगते रहे। १९४२ में भारत सरकार ने कोयले की कमी, यातायात की कमी, शक्ति की कमी और विदेशी माँग में कमी के कारण कोयले और यातायात के संरक्षण के लिये जूट मिल संघ का उद्योग के अभिनवीकरण (Rationalisation) का सुझाव दिया किन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सका। १९४३ में कोयले की भारी कमी के कारण कुछ मिलों ने स्वतः कार्य बन्द कर दिया और जुलाई के अन्तिम सप्ताह में सभी मिल बन्द रहीं। इस अवधि में इस उद्योग की उत्पादनशीलता को प्रभावित करने वाली दो घटनाएं हुई। (१) कोयले एवं विद्युत शक्ति की कमी, यातायात की असुविधाएं (२) १९४३ का बंगाल अकाल। इन आपत्तियों एवं ऊंच नीच से उद्योग केवल अपने मजबूत संगठन के आधार पर ही बच सका, इसलिये भविष्य के लिये जूट उद्योग जाँच समितियों ने इस उद्योग के आधुनिकीकरण तथा वैज्ञानिकता की सिफारिश की। जूट मिलों ने अभिनवीकरण की एक नई योजना लागू की जिसके अन्तर्गत कोयले के केन्द्रीय भण्डार स्थापित किए गए और कोयले की उपलब्ध मात्रा की पूर्ति को नियन्त्रित किया गया। बाद में एक संग्रह योजना भी लागू की गई जो जुलाई १९४४ से मार्च १९४६ तक लागू रही। देश के विभाजन से जूट उद्योग पर एक अत्यन्त ही प्राणघातक आक्रमण हुआ। इसने उद्योग की स्थिति को और भी अधिक असन्तोषजनक बना डाला।

जूट उद्योग विभाजन के बाद—देश के विभाजन का सबसे अधिक कुप्रभाव जूट उद्योग पर पड़ा। इससे पहले भारत समस्त संसार का ९८ प्रतिशत जूट उत्पन्न करता था। विभाजन से जूट उत्पन्न करने वाली ७२ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान में चली गई। लगभग सभी जूट मिल भारत में स्थित थे परन्तु कच्चे माल की कमी के कारण कई मास तक भारतीय जूट मिल बन्द रहीं। ऐसी स्थिति में भारत सरकार ने पाकिस्तान से पुनः एक समझौता करने का प्रयास किया लेकिन असफल रहा और

भारत में ही जूट का उत्पादन बढ़ाने के प्रयास किये गये। देश के विभाजन के उपरान्त भारत में ११३ जूट मिलें थी जिनमे ६८५४७ कर्घे लगे थे और ३००००० मजदूर काम किया करते थे। भारत पाकिस्तान के बीच १९४८ में एक समझौता हुआ जिनके अन्तर्गत पाकिस्तान ५० लाख गाठ भारत को देता था परन्तु यह समझौता १९ ९ में समाप्त हो गया अत भारत को अपना उत्पादन बढाने के लिए विवश होना पडा। सितम्बर १९४९ मे भारतीय रुपये का अवमूल्यन हो जाने से जूट उद्योग को काफी हानि उठानी पड़ी। अब इस उद्योग के विकास के लिए पर्याप्त कोशिश हो रही है। भारत जूट के क्षेत्र में *आत्म निर्भर होने का प्रयास कर रहा है।*

वर्तमान अवस्था—भारतीय पटसन उद्योग आज भी अधिकतर योरुपीय प्रबन्ध मे है। आज भारत मे जूट के कारखानो की कुल सख्या ११९ है, जिसमे १०९ बगाल मे, ३ उत्तर प्रदेश मे, ३ बिहार मे तथा एक मध्य प्रदेश मे है। इस उद्योग की स्थाई पूंजी २२९४ लाख और कार्यशील पूंजी ४३ ६ लाख रुपये है जिसमे विदेशी पूंजी १ ०७ ाख रुपये के लगभग है। पटसन के निर्यात करो से भारत को सन् १९४८-४९ से १ ५१-५२ तक के चार वर्षों मे क्रमश ६ ३, ८ ८, २३ ९ तथा ५९ ३ करोड रुपये की आय हुई। भारत के कच्चे माल के सम्बन्ध मे पाकिस्तान पर निर्भरता होने के कारण इस उद्योग की प्रगति स्थिर रूप से नही हो पाई परन्तु भारत आत्म-निर्भर होने का प्रयत्न कर रहा है। पटसन के नवीन उपयोगो के सम्बन्ध मे १९४८ से जूट टैक्नालोजी आवश्यक अनुसन्धान कर रही है। इसमे उद्योग का भविष्य उज्ज्वल एव प्रगतिशील बन सकेगा।

पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जूट उद्योग—पचवर्षीय योजनाओ म जूट उद्योग के विकास के लिए कोई विशेष योजना नहीं बनाई गई है वरन् मौजूदा मिलो की स्थिति को ठोस और मजबूत बनाने का निश्चय किया गया है। योजना कमीशन ने नवीन मिलो की स्थापना पर प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव दिया। अत योजना काल का उद्देश्य यही रखा गया कि पूर्व स्थित मिलो को इतना कच्चा माल मिलने लगे जिसमे वे पूर्णतः चालू रह सके। इस उद्योग के विकास के लिए यह अति आवश्यक है कि भारत ऐसे क्षेत्र मे आत्मनिर्भर रहे। अत योजना कमीशन ने जूट की कृषि पर अधिक बल दिया है। साथ ही जूट की किस्म मे भी सुधार की व्यवस्था पर बल दिया है। इसके अतिरिक्त मशीनो के पुर्जों के निर्माण को भी देश मे प्रोत्साहन देना अनिवार्य है। कमीशन के अनुरोध पर १९५२ मे निर्यात कर मे काफी कमी कर दी गई। प्रथम पचवर्षीय योजना मे उद्योग को अपनी पूरी उत्पादनशीलता का उपयोग करना होगा अर्थात् इसका वार्षिक उत्पादन १९५५—५६ म उद्योग की उत्पादन क्षमता के बराबर अर्थात् १२ लाख टन करना होगा। यह लक्ष्य पूरा हो जायेगा क्योकि सन् १९५१ का उत्पादन ही ११ लाख टन था। द्वितीय योजना मे आसाम मे एक नई जूट मिल की स्थापना का लक्ष्य है। जूट का उत्पादन २८ प्रतिशत बढाया जायेगा। उत्पादन शक्ति और उत्पादन ११ लाख टन कायम रखने का प्रयत्न किया जायेगा। जूट का उत्पादन लक्ष्य ५० लाख गाठ निर्धारित किया गया है।

इस उद्योग की सफलता की कुंजी इसकी वर्तमान समस्याओं के हल मे है। इन समस्याओ का विवेचन श्री के० डी० जालान (अध्यक्ष इण्डियन जूट मिल्स ऐसोसिएशन) ने फरवरी सन् १९५१ मे किया था जिससे पता चलता है कि इस उद्योग की निम्नलिखित समस्यायें हैं : (अ) अच्छे किस्म के जूट की कमी (ब) जूट की प्रतिवस्तु (Substitutes) का भय (स) जूट के मूल्यो मे कमी (द) पाकिस्तान मे प्रतियोगिता का भय।

प्रथम योजना मे इस उद्योग ने काफी उन्नति की है आशा है कि सरकारी सहायता के फलस्वरूप द्वितीय योजना मे उद्योग की सभी समस्यायें हल हो जायेंगी अमेरिका और इगलैंड मे भारतीय जूट मिल सघ स्थापित किये गये हैं। अभिनवीकरण की योजना भी लागू की जा चुकी है।

निम्नलिखित तालिका मे पिछले ८ वर्षो के जूट के सामान के उत्पादन का उल्लेख किया गया है जो जूट उद्योग की प्रगति का सूचक है—

वर्ष	जूट का उत्पादन (हजार टन)
१९५०	८३२ २
१९५१	८७४'८
१९५२	९९१ ६
१९५३	८९८ ८
१९५४	९२७ ६
१९५५	१०२७ २
१९५६	१०९३ २
१९५७	१०२९.६

अभिनवीकरण की योजना १९६० तक समाप्त हो जायगी। इस कार्य के लिये सरकार काफी सहायता दे रही है। इससे उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो सकेगी और भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे अपना गौरव पूर्ण स्थान बनाये रख सकेगा।

प्रश्न ५६—भारतीय चीनी उद्योग की स्थापना, विकास तथा वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिये। (आगरा ५७, लखनऊ ४६, ४५, राजपूताना ५२)

Trace the growth, development and present position of the Sugar Industry in India *Agra 57, Lucknow 49 45, Rajputana 52)*

अन्य उद्योगो की भांति शक्कर उद्योग भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत शक्कर का आदि काल कहलाता है। भारतीय शक्कर उद्योग का इतिहास बडा रोचक है। ऐसा कथन है कि जब ससार के अन्य देश इस वस्तु के नाम से अनभिज्ञ थे उस समय भारत इससे परिचित था और यहा काफी शक्कर पैदा कर बाहर के देशो मे भेजी जाती थी। परन्तु जावा आदि देशो मे इसके उद्योग के स्थापित हो जाने से भारत के शक्कर के उद्योग को काफी धक्का पहुचा। सरकार ने इन सब उद्योगों

पर संरक्षण लगाकर इसकी दशा सुधारने का प्रयत्न किया संरक्षण मिलते ही यह उद्योग आत्म निर्भर हो गया।

उद्योग का विकास—यह उद्योग भारत मे बहुत पुराना है। ईसा के चार शताब्दी पूर्व कौटिल्य ने अपनी अमर रचना "अर्थशास्त्र" मे गन्ने के द्वारा चीनी बनाने तथा शीरे से मद्यसार निकालने की विधियो का उल्लेख किया है। इससे हमको इसकी प्राचीनता का पता चलता है। इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि १७ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे सूरत व कालीकट से भी बहुत सी श्वेत चीनी और खाड का निर्यात किया जाता था। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि अग्रेजो के यहा आने के बाद इगलैड अपनी चीनी की आवश्यकताओ के ¾ की पूर्ति भारत से करता था। बनारस मे निर्मित चीनी का भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे बहुत महत्व था। साथ ही देश की आन्तरिक आवश्यकताओ की पूर्ति भी इसमे होती थी। सन् १८६६ मे मद्रास तथा बगाल के काशीपुर मे गुड बनाने और साफ करने के लिये एक कारखाना खोला गया। भारत मे आधुनिक चीनी उद्योग की नीव १८६६ मे पडी जबकि भारत सरकार ने चीनी के आयात पर कर लगा दिया। इस प्रतिबन्ध के कारण सन् १६०३ मे चीनी के आधुनिक कारखाने उत्तरी भारत मे खोले गये।

भारत मे सगठित रूप से शक्कर का उत्पादन सर्व प्रथम १६०३ मे आरम्भ हुआ परन्तु शताब्दी के आरम्भ म प्राय यह कुटीर उद्योग अवनति की ओर बढ रहा था। भारत मे यह उद्योग अवैज्ञानिक ढग से चल रहा था। पुराने ढग से उत्पादन करने से लागत बहुत आती थी जिससे कीमत अधिक होती थी और भारत अन्य देशो से स्पर्द्धा नही कर पा रहा था। परन्तु प्रथम युद्ध तक आते आते भारत अपने उपभोग के लिये आयात पर निर्भर रहने लगा था। १६०१–२० के बीच मे भारतीय गन्ने की नस्ल सुधारने तथा गन्ने के उत्पादन मे वृद्धि करने के विशेष प्रयत्न किए गए। १६०१ मे गन्ने मे सुधार के हेतु एक गवेषणा केन्द्र खोला गया जिसकी सहायता से भारतीय गन्ने की नस्ल म आश्चर्यजनक सुधार हुआ। १६१६–२० म एक चीनी समिति की स्थापना की गई। इन सभी के फलस्वरूप गन्ने का उत्पादन एव नस्ल दोनो मे सुधार हुआ। इस सुधार से सरकार का ध्यान इस उद्योग की उन्नति के लिये अग्रसर हुआ। १६२६ मे नियुक्त एक चीनी समिति की जाच से मालूम हुआ कि देश मे गन्ने की पैदावार बढ रही थी जिसके कारण गन्ने और गुड की कीमतो मे भारी मन्दी आ जाने की सम्भावना थी। समिति ने सिफारिश की कि आधुनिक ढग के चीनी के कारखाने खोलने पर विचार किया जाये और प्रतिवर्ष विदेशो से चीनी मगाने मे होने वाली करोडो रुपए की हानि को रोका जाये। भारत सरकार ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये टरिफ बोर्ड की नियुक्ति की। इस बोर्ड की सिफारिश के अनुसार १ अप्रेल १६३१ से १५ वर्ष के लिए उद्योग को सरक्षण देना स्वीकार किया। यह पहला उदाहरण था जब किसी सरकार ने उद्योग को एक दम इतनी लम्बी अवधि के लिये सरक्षण दिया था। इस सुझाव के अतिरिक्त बोर्ड ने अन्य सुझाव भी दिए जो इस प्रकार थ—गन्ना विकास योजना के लिए कृषि परिषद को १० लाख रुपये

सालाना अनुदान दिया जाए सफेद चीनी उद्योग को विकसित किया जाये और गन्ने की खेती किसी भी दशा मे कम न की जाये।

सरक्षण के लिये सरकार ने चीनी के आयातो पर पहले ७ वर्षो के लिये रु० ४ आने प्रति हडरवेट के हिसाब से सरक्षण कर लगाया। आयात कम हो जाने के कारण होने वाली हानि को पूरा करन के लिये १६३४ मे आबकारी कानून (Sugar Excise Duties Act) पास किया गया। यह कर २।) प्रति हडरवेट की दर से लगाया गया। १६३१ मे चीनी का आयात १० लाख टन हुआ था। १६३६–३७ तक घटकर केवल १६ हजार टन रह गया। फलस्वरूप गन्ने का क्षेत्रफल बढ़ाया गया। १६३ तक ४५ लाख एकड हो गया। १६३१–३२ मे भारत मे कुल ३२ चीनी मिलें थी। १६३२–३३ मे १३३ हो गई। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सरक्षण मिल जाने मे ५ वर्ष के अन्दर ही चीनी मिलो की सख्या ३२ से बढकर १३७ हो गई परन्तु उत्पादन बढते ही चीनी का मूल्य बहुत गिर गया और आपसी प्रतिस्पर्द्धा के कारण मिलो की आर्थिक दशा असन्तोषजनक हो गई। १६३७ मे पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा दूर करने, चीनी की बिक्री का नियमन करने, उद्योगो को सगठित करन के विचार से भारतीय चीनी सघ की स्थापना की गई। इसके प्रयत्नो से चीनी बाजार की दशा मे कुछ सुधार हुआ और चीनी के मूल्यो म ६३६–३७ के अन्त तक १) प्रति मन की वृद्धि हुई। इस सघ की सदस्यता सब मिलो ने नही ली थी। अत सरकार से अनुरोध किया गया कि सब मिलो को अनिवार्य रूप से इसका सदस्य बनना चाहिए। सरकार ने इस बात को ठीक समझते हुये कुछ कानून बनाये जिससे सब मिलें इस सघ के सदस्य बन जायें। सरकार ऐसा करने मे हित समझती थी परन्तु जब उसने देखा कि मूल्य अनुचित रूप से बढ रहे हैं तो सरकार ने इस सघ की मान्यता हटा ली जिससे अधिकाँश मिलें इस सघ से अलग हो गये और फिर प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हो गई जिससे उद्योगो की आर्थिक दशा फिर खराब होन लगी। यह देखकर सरकार ने उद्योगपतियो की प्रार्थना पर ३ अगस्त १६४० से निम्न शर्तों पर सघ को फिर मान्यता प्रदान कर दी। (अ) सघ केवल एक बिक्री एजेन्ट का काय करेगा। (ब) सघ हर मिल के लिये उत्पादन कोटा निश्चित कर देगा। (स) चीनी का मूल्य निश्चित कर दिया जायेगा। (द) सघ शुगर कमीशन के आधीन कार्य करेगा। तुरत बाद ही इस कमीशन की नियुक्ति की गई। सरकार ने सघ पर पूरा नियन्त्रण रखने के लिये एक सरकारी अफसर को इसका कार्यवाहक नियुक्त किया।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होते ही चीनी का मूल्य बढने लगा। उधर १६४२ मे चीनी की भारी कमी के कारण काफी परेशानियो का सामना करना पड़ा। सरकार ने इस पर समस्या को समाप्त करने के लिये चीनी के वितरण व मूल्य पर नियन्त्रण किया और बाद मे उत्पादन पर भी नियन्त्रण लागू कर दिया गया। नगरो मे चीनी का राशनिंग चालू किया गया। चीनी नियन्त्रक (Sugar Controller) गन्ने और चीनी का मूल्य निश्चित करता था। एक राज्य से दूसरे राज्य मे चीनी के आयात निर्यात पर भी नियन्त्रण लगा दिया गया। गन्ने की स्थिति मे सुधार करने के लिये

सन् १९४४ मे एक भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति (Indian Central Sugar-cane Committee) की स्थापना की गई। Sugar Technological Institute कानपुर का तथा भद्रक (लखनऊ के पास) का Sugar Technological तथा Sugar-cane Research Institut जो एशिया मे स से बड़ा केन्द्र है चीनी मिलो को मशीनरी, निर्माण विधि यान्त्रिक नियन्त्रण मे सुधार आदि के विषय मे उचित सलाह देते हैं। इसके अतिरिक्त करनाल कागला उपकेन्द्र दिल्ली की भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद तथा कोयम्बटूर कागन्ना केन्द्र आदि गन्ने तथा उसकी उत्पत्ति, बीमारी, विपणन, निर्माण आदि बातो पर अन्वेषण करते है।

१९४४–४५ मे तथा इसके बाद के सालो मे चीनी का उत्पादन कम होता चला गया औ आयात न होने के कारण देश मे चीनी की कमी हो गई। सरकार ने मिलो को काफी सहायता पहुचाने का प्रयत्न किया परन्तु चीनी के अभाव के कारण देश मे चोर बाजारी का प्रकोप हो गया और चीनी की कीमत ५ गुनी बढ गई।

विभाजन के उपरान्त—विभाजन से इस उद्योग पर कोई बुरा प्रभाव नही पडा। विभाजन के समय भारतीय गणतन्त्र मे कुल उत्पादन का ९७ ९ प्रतिशत तथा पाकिस्तान मे केवल २ १ प्रतिशत चीनी उत्पन्न होती थी। १९४८ मे निर्यात पर से रोक हटाली गई। निर्यात न होने पर देश मे आन्तरिक उपभोग के लिये चीनी उपलब्ध होने लगी। इस उद्योग पर सरकारी नियन्त्रण की निन्दा सभी से होने लगी। महात्मा गाधी इसके बहुत विरोधी थे अत १९४७ मे चीनी पर से नियन्त्रण हटा लिया गया। नियन्त्रण हट जाने से उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई किन्तु चीनी उद्योग पर इसका बुरा प्रभाव ही पडा अत सरकार को पुन नियन्त्रण की नीति का अनुसरण करना पडा। जिसके अनुसार उसने मूल्य, वितरण तथा उत्पादन के नियमन का उत्तरदायित्व अपने अन्तर्गत कर लिया। चीनी का उत्पादन बढाने के कारण सरकार ने चीनी सघ की सलाह से चीनी का मूल्य ३५।≈) मन निश्चित किया और गन्ने का मूल्य उत्तर प्रदेश मे १।) मन से बढकर २) मन कर दिया गया। अर्थात् नियन्त्रण को और भी अधिक व्यापक रूप दे दिया। १९५० मे १८ वर्ष पुराना सरक्षण भी समाप्त कर दिया गया।

१९५०–५१ मे भारत सरकार ने Free Sugar नामक एक योजना चलाई जिसके अनुसार चीनी मिलें अपना अधिकतम कोटा उत्पन्न करने के बाद अपनी फालतू चीनी को खुले बाजार मे स्वतन्त्रतापूर्वक बेच सकती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि चीनी का उत्पादन बढना प्रारम्भ हुआ। १९५०–५१ में १२ लाख टन उत्पादन हुआ। १९५१–५२ में यह उत्पादन १४ ९ लाख टन हो गया, जो प्रथम पचवर्षीय योजना के लक्ष्य से भी अधिक था।

उद्योग की वर्तमान स्थिति—वर्तमान काल में चीनी उद्योग भारत का एक प्रमुख उद्योग है। उद्योग के अतीत की ओर देखने से यह स्पष्ट होता है कि सरक्षण के बाद प्रारम्भिक विकास की अवस्था में जहा उत्पादनाधिक्य की समस्या थी वहा

गत ४–५ वर्षों मे उत्पादन बढाने की समस्या है। १९५१–५२ मे शक्कर की वार्षिक खपत १६ लाख टन हो गई। उत्पादन के बढने से निर्यात बढा जो १९५४–५५ मे ७६ के लगभग था। वर्तमान समय मे शक्कर की खपत १८ लाख टन है और देश की मिले इस खपत को अच्छी तरह खपा सकती हैं। इसी कारण सरकार ने विदेशी शक्कर का आयात बन्द कर दिया है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे चीनी उद्योग—अन्य उद्योगो की भाति योजना ने चीनी उद्योग के विकास के लिये लक्ष्य निर्धारित किए थे। पहली योजना मे शक्कर के कारखानो की सख्या १६० तथा १५४ लाख टन का उत्पादन लक्ष्य था परन्तु बढती हुई माग के कारण यह १८ लाख टन किया गया है। केन्द्रीय सरकार ने योजना के अन्तर्गत २० नई मिलो को विभिन्न प्रदेशो मे स्थापित करने की व्यवस्था की थी यद्यपि इनमे से कुछ मिलो का निर्माण हो चुका है किन्तु गन्ने के अभाव मशीनो के ऊंचे मूल्य तथा मिलने मे कठिनाई के कारण इस क्षेत्र मे सन्तोषजनक प्रगति न हो सकी। 'विकास परिषद' ने अपनी पहली बैठक मे (१९५४) शक्कर का उत्पादन बढाने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये हैं —

(क) शक्कर के कारखानो की उत्पादन क्षमता की वृद्धि एव विकास। (ख) नये कारखानो की स्थापना। (ग) वर्तमान उत्पादन क्षमता का पूर्णतया कार्य मे लगाना। (घ) वर्तमान बेकार कारखानो को उत्पादन मे लगाना। (ङ) कारखानो को अनुपयुक्त स्थानो से उपयुक्त स्थानो पर ले आना। (च) गन्ने की कीमतें किस्म के अनुसार निश्चित करना। (छ) शक्कर की विभिन्न किस्मो की दरो को दुहराना।

पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चीनी उद्योग के विकास की रूप-रेखा निम्न लिखित के अनुसार थी :—

	१९५०–५१	१९५५–५६
कारखानो की सख्या	१५८	१६०
वार्षिक उत्पादन शक्ति	१५.४ लाख टन	५.५ लाख टन
वास्तविक उत्पादन	१२.२ लाख टन	१५.० लाख टन

पचवर्षीय योजना की केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारो को इस उद्योग की उन्नति के लिए काफी सहायता प्रदान की। उत्तर प्रदेश सरकार को ५ लाख रुपया इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिला। भारत सरकार ने राष्ट्रीय उत्पादन केन्द्र खोला है जहां इस बात का परीक्षण व प्रदर्शन किया जाता है कि नवीन प्रकार के साधनो व विधियो से किस प्रकार पैदावार व आमदनी बढाई जा सकती है। १९५५ तक ३५ नये कारखानो की स्थापना तथा ३७ वर्तमान कारखानो के विस्तार के लिये लाइसेंस दिये गए हैं। इससे उत्पादन शक्ति बढेगी। उद्योग के विकास के लिए १० लाख रुपए की व्यवस्था की गई।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे चीनी उद्योग—योजना आयोग ने द्वितीय योजना मे इस उद्योग की विकास योजना का कार्य चीनी विकास परिषद (Sugar Industry Development Council) को सौंप दिया है। इस योजना

मे चीनी का लक्ष्य २२·५ लाख टन रखा गया और चीनी मिलो की उत्पादन शक्ति २० लाख टन से बढाकर २५ लाख टन कर दी गई है इस योजना मे चीनी मिलो के पुनर्संगठन व पुनर्वासित करने की भी योजना है। चीनी के उत्पादन को बढाने के लिए सरकार ५४ नई चीनी मिलें खोलने के लाइसेंस देगी तथा ३६ वर्तमान मिलो का विस्तार किया जायेगा और दो पुरानी मिलें फिर से चालू की जायेंगी। १९५६–५७ मे ४ नई मिलें खुली हैं और चालू मौसम मे १४ मिल और खुल जाने की आशा है। द्वितीय योजना काल मे नई चीनी मिलो को सहकारिता के आधार पर खोलने पर अधिक बल दिया गया है। उत्तर प्रदेश, पजाब, राजस्थान, बम्बई और मद्रास मे अनेक सहकारी चीनी मिलें स्थापित होने की आशा है। १९६०–६१ तक चीनी मिलो के विस्तार पर २३ करोड रु०, मशीनो के आधुनिकीकरण पर ५० करोड रु० और नई चीनी मिलो पर ३४ करोड रु० व्यय होने का अनुमान है। गन्ना उत्पादन बढाने और उनकी किस्म को सुधारने की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए केन्द्रीय सरकार प्रदेशीय सरकारो को ४० लाख रुपये का ऋण और ३० लाख रुपये का अनुदान देगी। भविष्य मे गन्ने का मूल्य बजाय गन्ने की तौल के उसकी मिठास के आधार पर निश्चित करने का प्रयत्न किया जायेगा जिससे कृषक उच्च कोटि का गन्ना उत्पन्न करने का प्रयत्न करे। मिठास के आधार पर ही गन्ने का श्रेणीकरण भी किया जायेगा ताकि किसान उच्च कोटि का गन्ना उत्पन्न करके अच्छा मूल्य प्राप्त कर सके। द्वितीय योजना काल म इस उद्योग के विस्तार के कारण २१००० अतिरिक्त व्यक्तियो को रोजगार मिल जायेगा। यह आशा की जाती है कि द्वितीय योजना की समाप्ति तक भारत चीनी के सम्बन्ध मे आत्मनिर्भर हो जायेगा।

निम्नलिखित तालिका मे १९५० से १९५७ तक भारत मे चीनी के उत्पादन के आकडे सग्रहित किये गये हैं जिनसे पता चलता है कि आठ वर्ष की इस अवधि मे भारत मे चीनी का उत्पादन लगभग दूना हो गया है।

वर्ष	चीनी का उत्पाद (हजार टन)
१९५०	९७६ ८
१९५१	११७४ ८
१९५२	१४९४ ०
१९५३	१२९१ ०
१९५४	१०८८ ०
१९५५	१५९४ ८
१९५६	१८५४.४
१९५७	२०३८·८

परन्तु यह हमे नही भूलना चाहिए कि इस उद्योग के सामने कई समस्याए हैं जिनके कारण प्रगति मे बाधा पडती है। ये समस्याए निम्नलिखित हैं—

(१) गन्ने का अभाव व निम्न कोटि—भारत मे एक तो गन्ने की उपज बहुत कम है और इस कमी के साथ एक और कमी है। वह यह है कि किस्म बहुत खराब है। उत्तरी भारत म आस पास मिलें होने के कारण उनमे खूब स्पर्द्धा होता है। ग्रामीण भाई देश के अधिकतर गन्ने का गुड वना लेते हैं इसस चीनी उद्योग को पर्याप्त क्षति पहुँचती है भारत मे गन्ने की फसल एक ही होती है अत चीनी की मिलें भी उसी मौसम मे चलती हैं जब गन्ना पककर तैयार होता है और अन्य समय वह बन्द रहती है। इसके अतिरिक्त गन्ने के मूल्यो के अधिक होने के कारण मिल मालिको का कथन है कि हमको कुछ भी बचत नही होती। इसके साथ ही साथ एक और समस्या है मूल्यो के सम्बन्ध मे। भारत म गन्ने का मूल्य केवल तौल के आधार पर तय किया जाता है। अर्थात् मूल्य और किस्म का कोई सम्बन्ध नही इससे मिल मालिको को काफी हानि होती है।

(२) उत्पादन क्षमता का नीचा होना—भारत मे उत्पादन क्षमता के कम होने के कारण चीनी का उत्पादन व्यय बहुत ऊचा रहता है। दूसरे देशो से भारत की चीनी की किस्म हेय रहती है अत भारत अन्य देशो से स्पर्द्धा लेने मे असमर्थ रहता है।

(३) स्थिति की समस्या—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, देश की अधिकाश चीनी मिलें उत्तरी भारत मे स्थित हैं। अत उनमे पारस्परिक स्पर्द्धा बढ जाती है। दूसरे यहाँ गन्ना भी बहुत कम होता है। मद्रास म जहा पर्याप्त गन्ना उत्पन्न होता है मिलो की कमी है। यह समस्या भी प्रगति मे बाधा डी है।

(४) ईंधन की कमी—ईंधन की कमी को दूर करने के लिये वाष्प के उपयोग मे मितव्ययता करने की आवश्यकता है क्योंकि यदि ईंधन एव वाष्प का समुचित उपयोग मितव्यता से हो सकता है तो शक्कर का उत्पादन व्यय कम होकर उसकी कीमतें भी गिरेंगी।

(५) उपरोक्त समस्याओ के अतिरिक्त और भी छोटी मोटी समस्याए हैं जैसे ऊचा कर गुड की स्पर्द्धा तथा शीरा के अपव्यय की समस्या इत्यादि। शीरे आदि को अपव्यय से बचाने के लिये कारखानो मे कोई एक ऐसा स्थान अवश्य होना चाहिये जहा इसका सचय किया जा सके।

उपरोक्त सभी समस्याओ म सुधार करना इस उद्योग के लिये अति आवश्यक है सुधार के सुझावो पर नीचे विचार किया गया है।

समस्या के उपचार के लिए यह अति आवश्यक है कि सरकार इस उद्योग की देखभाल समुचित रूप मे करे। जो भी अनुसन्धान कार्य हो उसका प्रचार राष्ट्र भाषा मे किया जाये। सरकार द्वारा अनुसन्धानो पर प्रकाश डालने के लिए चित्रपटो की सहायता भी ली जा सकती है। जहा गन्ने की खेती अधिक हो वहा किसान को इसके सम्बन्ध मे चित्र दिखाये जाए। शिक्षा के अभाव से वह केवल चित्रपट द्वारा ही किसी बात को समझ सकते हैं।

इस उद्योग की उन्नति के सम्बन्ध मे जो भी खोज हो उस पर राज्य सरकारो को विशेष ध्यान देना चाहिये। यदि शक्कर व्यवसाय को कामधेनु समझकर उसको जितना चाहे उतना दूध देने की आशा करें तो एक समय ऐसा अवश्य आयेगा जब इस उद्योग का महत्व बिल्कुल समाप्त हो जायेगा। इसलिए उद्योग की उन्नति के लिये पर्याप्त यातायात एव सिचाई सुविधाओ का आयोजन समुचित रूप से होना चाहिये तभी यह उद्योग विकसित हो सकते हैं।

शक्कर, गुड एव खडसारी शक्कर के मूल्यों का निर्धारण करते समय सरकार जिस प्रकार शक्कर के विभिन्न उत्पादन समस्याओ को विचारार्थ लेती है उसी आधार पर खडसारी एव गुड की कीमतो का भी निर्धारण किया जाये जिससे इन उद्योगो म अधिक सन्तुलन स्थापित हो सके।

इन समस्याओ का सुलझान के भरसक प्रयत्न किये जा रहे है। द्वितीय योजना काल मे आशा की जाती है कि निर्धारित लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा। यातायात, सिंचाई की सुविधाए और प्रति एकड उपज बढाकर, कृषि यन्त्रीकरण और वैज्ञानिक ढगो से उत्पादन व्यय घटाया जा सकता है। इससे भारतीय उपभोक्ता को सस्ती चीनी मिल सकेगी और निर्यात भी बढाया जा सकेगा।

प्रश्न ६०— भारत मे कोयला उद्योग के विकास तथा वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिए। (आगरा ५५)

Trace the growth, development and present position of the Coal Industry in India. *(Agra 55)*

कोयला उद्योग भारत का एक महत्वपूर्ण उद्योग है। कोयले का प्रयोग मुख्य रूप से रेलो को चलाने तथा अन्य उद्योगो मे ईधन के रूप मे होता है। किसी भी देश का औद्योगिक विकास बहुत कुछ कोयले के उपलब्ध भडार पर निर्भर होता है। अधिकतर कारखाने उन्ही क्षेत्रो मे लगाये जाते है जहा आस पास कोयले की खाने हो।

भारत ससार मे आठवे नम्बर का कोयले का उत्पादक है। वैसे इंगलैंड और अमेरिका की अपेक्षा भारत मे कोयले का उत्पादन बहुत कम है और भारतीय कोयला इन देशो के कोयले से घटिया किस्म का होता है।

भारत मे कोयले की प्रथम कम्पनी १९ वी शताब्दी के मध्य मे बगाल तथा बिहार मे स्थापित हुई। १६०७ के बाद कोयले के उत्पादन मे बहुत अधिक वृद्धि हुई है। दूसरे महायुद्ध के बाद विशेष रूप से कोयले के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला है। निम्नलिखित तालिका से कोयले के उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है:—

वर्ष	उत्पादन (लाख टनो मे)
१९४७	३००.०
१९५०	३१९.६
१९५१	३४२.१
१९५२	३६२.३

१९५३	३५८४
१९५४	३६७७
१९५५	३८२१
१९५६	३९४३
१९५७	४३५४

भारत मे मुख्य कोयला क्षेत्र रानीगज तथा झरिया हैं। कुल कोयले की ८३२ खानो में से रानीगज मे २९३ तथा झरिया मे ३९८ खानें पाई जाती हैं। इस प्रकार लगभग ७०% खानें इन्ही दो स्थानो पर हैं। इन खानो से कुल उत्पादन का लगभग ८०% कोयला प्राप्त होता है। शेष कोयला मध्य प्रदेश, हैदराबाद, उडीसा तथा आसाम राज्य में उत्पन्न होता है।

भारत मे कोयले का भण्डार—भारतीय भूगर्भ निर्वेक्षण (The Geolcgical survey of India) के अनुसार अनुमान लगाया गया है कि भारत के भूगर्भ में गैर कोकिंग कोयला (Non Coking Coal) का भण्डार लगभग ३९९५ करोड टन है जो कई सौ वर्ष तक देश के काम आ सकेगा। इसमे से ३७११ करोड टन केवल गोडवाना क्षेत्र की खानो मे है। भारतीय मैटालर्जिकल कोल कन्जर्वेशन कमेटी (Indian Metallurgical Coal Conservation Committe) के अनुमान के अनुसार भारत मे उच्च कोटि के कोयले का कुल भण्डार ३२९९ लाख टन है जो देश की आवश्यकताओं को देखते हुये कम है। इस प्रकार कोकिंग कोल (Coking Coal) अर्थात् कोक (Coke बनाने वाले कोयले की भारत मे कमी है। जबकि इसकी खपत देश मे अगले कुछ सालो मे बहुत अधिक बढ जाने की सम्भावना है। देश मे जो तीन इस्पात के नये कारखाने लगाये जा रहे हैं उनके चालू हो जाने से धातु शोधन कार्यों के लिये इस प्रकार के कोयले की आवश्यकता होगी। सरकार इस बात को ध्यान मे रखते हुय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग द्वारा कोयले के भण्डारो की नये सिरे से खोज करा रही है ताकि इस विषय में सही स्थिति का ज्ञान हो सके।

कोयला सम्बन्धी समस्याओं को ठीक प्रकार हल करने के लिये सरकार ने एक 'कोयला परिषद' (Coal Board) की स्थापना की है जो खान मालिको के कोकिंग कोल को खानो से निकालने, उसके मिश्रण तथा धुलाई आदि का नियन्त्रण करता है और कोयला उद्योग मे आधुनिक मशीनो के प्रयोग द्वारा अभिनवीकरण (Rationalization) भी कराता है।

कोयले का व्यवसाय—भारतीय कोयले का प्रयोग देश के विभिन्न भागो में स्थित कारखानो तथा भारतीय रेलो में होता है। अन्य कार्यों के लिये भारत में कोयले की अधिक खपत नही है। कोयले के व्यवसाय की भारी समस्या यातायात की है। कोयले की खानें एक सीमित क्षेत्र में केन्द्रित होने के कारण अन्य क्षेत्रो में इसे रेलो द्वारा भेजा जाता है जिसमें बहुत अधिक यातायात व्यय पडता है और बहुधा

समय पर कोयला पहुंच नहीं पाता जिससे उद्योगों को बड़ी असुविधा तथा हानि होती है।

१९२६ से पूर्व भारतीय कोयला भाप के आधार पर बेचा जाता था। अब कोयले को श्रेणियों में विभाजित करने के लिये एक भारतीय कोयला श्रेणीकरण मण्डल (Indian Coal Grading Board) की स्थापना करदी गई है। १९४४ में कोयले के उत्पादन तथा वितरण पर नियन्त्रण (Control) करने के उद्देश्य से एक खान नियन्त्रण आदेश (Colliery Control Order) जारी किया गया था। १९५२ तक स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया। एक ओर तो विदेशों में भारतीय कोयले की माँग बहुत कम हो गई और दूसरी ओर कोयले की खानों में बड़ी मात्रा में कोयले का भण्डार जमा होने लगा। अतः खानों के मालिकों ने मजबूर होकर सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य (Control Price) से कम पर कोयला बेचना शुरू कर दिया।

सरकारी नीति (Policy of the Government)—भारत में अब तक कोयले का व्यापार निजी लाभ के लिये किया जाता है। खानों के स्वामी पुरानी खानों को छोड़कर नई खानें खोदना शुरू कर देते हैं क्योंकि पुरानी खानों को गहराई तक खोदने में उत्पादन व्यय अधिक बैठता है। इस प्रकार खानों की गहरी खुदाई नहीं होती और बहुत सा कोयला बेकार पड़ा रहता है। खानों में काम करने वाले मजदूर की हालत भी बहुत खराब रहती है। भारत सरकार की नीति का मुख्य आधार खानों की उचित ढंग से खुदाई कराने तथा मजदूरों की हालत को सुधारना रहा है। इस उद्देश्य से सरकार ने १९०१, १९२३, १९४८, १९४९ तथा १९५२ में खानों से सम्बन्ध रखने वाले कानून पास किये हैं। १९४९ के कानून के अनुसार कोयले की खानें ३ साल के पट्टे पर दी जाती हैं और यदि सरकार चाहे तो यह पट्टा २० साल के लिये फिर से बढ़ाया जा सकता है। कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों से ४८ घण्टे प्रति सप्ताह से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकता। इसमें भूमि के ऊपर कार्य करने वालों के लिये ९ घण्टे प्रतिदिन तथा भूमि के नीचे काम करने वालों के लिये ८ घण्टे प्रतिदिन का कार्य निर्धारित किया गया है।

१९५२ में भारत सरकार ने कोयला खान (संरक्षण व सुरक्षा) कानून (Coal Mines Conservation Safety Act) पास किया जिसके द्वारा सरकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हो गये :—

(१) कोयले की खानों की सुरक्षा व संरक्षण के लिये कार्यक्रम बनाना और उसे कार्यान्वित करना।

(२) 'कोयला परिषद्' (Coal Board) को कोयला उद्योग की समस्याओं को सुलझाने का अधिकार देना।

(३) कोयला तथा कोक के उत्पादन पर कर लगाना।

१९५० में कोयला समिति ने सुझाव दिया था कि भारत में कोयले के उत्पादन में वृद्धि करने के लिये मशीनों का प्रयोग करना परम आवश्यक है। यह कार्य धीरे धीरे किया जा सकता है। वैसे मशीनों के प्रयोग से कुछ श्रमिक बेकार हो जाने का भय है किन्तु इस कारण अभिनवीकरण के कार्य को टाला नहीं जा सकता। बेकार होने वाले मजदूरों को अन्य कार्मों में लगाया जा सकता है।

पंचवर्षीय योजना तथा कोयला उद्योग—प्रथम पचवर्षीय योजना में भारत सरकार ने १९५३ में एक कोयला समिति नियुक्त की थी जिसका उद्देश्य कोयला धोने की मशीनें लगाने के विषय में सरकार को सलाह देना था। समिति की राय में कोयले की धुलाई की केन्द्रीय व्यवस्था अधिक लाभकारी सिद्ध होगी। योजना का लक्ष्य उत्पादन में वृद्धि करना है।

दूसरी पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत कोयले के उत्पादन में ५८ प्रतिशत वृद्धि करने का निश्चय किया गया है। १९५५—५६ में ३८० लाख टन कोयला उत्पन्न होने का अनुमान था। १९६०–६१ के अन्त तक यह उत्पादन ६०० टन बढ़ाने के प्रयत्न किये जाएगे।

(४) कोयला-उद्योग को कुशलता पूर्वक चलाने के लिए तथा उसे नियन्त्रित करने के लिये नियम बनाना।

इस प्रकार कोयले के उत्पादन वितरण मूल्य निर्धारण तथा श्रमिकों के वेतन आदि पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण है।

कोयला उद्योग का अभिनवीकरण (Rationalization)—भारतीय कोयला उद्योग के अभिनवीकरण की विशेष आवश्यकता है। अभिनवीकरण का अर्थ यह होगा कि कोयले की छोटी छोटी खानों को मिलाकर बड़ी इकाइयां बनाई जावें। उत्तम कोटि के कोयले का सरक्षण किया जावे तथा खानों के अन्दर कोयला काटने, उसे बाहर निकालने तथा नियत स्थान तक पहुंचाने के लिये आधुनिक मशीनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस दिशा में भारत में नाममात्र की प्रगति हुई है।

प्रश्न ६१—भारतीय सीमेंट उद्योग के विकास तथा वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिए।

Trace the growth & present position of the Cement Industry in India

उत्तर—सीमेंट का उपयोग प्राय सभी कार्यों में होता है चाहे वह कार्य किसी प्रकार के हो। प्रत्येक वस्तु के निर्माण में इसका बहुत अधिक महत्व है। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि भारत में सीमेंट की माग अधिक होते हुए और उत्पादन की अच्छी सुविधा होते हुये तथा राष्ट्र दृष्टिकोण से भी इसका अधिक महत्व होते हुए भी यह उद्योग कोई विशेष अच्छी स्थिति में नहीं है। प्रथम महायुद्ध से पूर्व इस उद्योग की स्थिति और भी खराब थी। भारत में उस काल में खपत तो अधिक थी और उस खपत को भारतीय कारखाने पूरा करने में असमर्थ थे इसलिये भारत को

काफी मात्रा मे सीमेंट बाहर से मगाना पड़ता था परन्तु इस उद्योग ने वर्तमान समय मे आशातीत उन्नति की है।

उद्योग का विकास

१६०४ मे सर्व प्रथम मद्रास प्रान्त मे पोर्टलैंड सीमेंट का निर्माण प्रारम्भ हुआ परन्तु यह प्रयत्न असफल रहा। इसका मुख्य कारण था कि इगलैंड मे भी १६ वीं शताब्दी मे ही इस उद्योग का विकास प्रारम्भ किया गया। प्रथम महायुद्ध से पूर्व भारत को प्रतिवर्ष १८०००० टन सीमेंट बाहर से मगाना पड़ता था। प्रथम महायुद्ध से पूर्व इस उद्योग को प्रोत्साहित करके कोई सराहनीय प्रयत्न नही किया गया। लेकिन इ० उद्योग की वास्तविक उन्नति का इतिहास १६१२—१३ से प्रारम्भ होता है जब तीन कारखानो का निर्माण भारत मे किया गया। यह तीन कारखाने प्रथम पोरबन्दर (काठियावाड) दूसरा कटनी (मध्यप्रदेश) और तीसरा बूंदी (राजस्थान) स्थानो पर स्थापित किए गए। ये तीनो कारखाने सीमेंट के उत्पादन मे पूर्ण सफल रहे। इन कम्पनियो के नाम क्रमश इण्डियन सीमेन्ट कम्पनी, कटनी सीमेन्ट एण्ड इण्डस्ट्रियल कम्पनी तथा बूंदी पोर्टलैंड कम्पनी है।

प्रथम युद्ध के छिड जाने से इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योकि जो आयात होते थे वह बन्द हो गए। प्रारम्भ से ही यह तीनो कारखाने ७६००० टन सीमेन्ट उत्पादन करने लगे थे। देश मे निर्माण कार्य के लिए तभी सीमेन्ट की अधिक आवश्यकता हुई और १६१६ मे सरकार ने युद्ध समाप्त होते ही अपनी आवश्यकता के हेतु इस उद्योग को अपने अधिकार मे ले लिया। इससे सीमेन्ट उद्योग की और भी उन्नति होने की आशा दृष्टिगोचर होने लगी और तुरन्त बाद ही सीमेन्ट के ७ नये कारखाने खाले गये। ३ कारखानो मे उत्पादन शीघ्र ही दोगुना हो गया। १६१४ में भारत मे सम्पूर्ण सीमेंट का उत्पादन ६५४ टन से बढकर ६२४ में २३६७४६ टन हो गया उत्पादन बढने से आयात का कम होना स्वाभाविक ही था। अतः आयात १६५७३३ टन से घटकर १२४१८६ टन रह गया। उपरोक्त ७ कारखानो का निर्माण उन्ही स्थानो पर किया गया जहाँ पहले तीन कारखाने स्थापित थे। अत दो कारखाने कटनी के निकट, एक छोटा नागपुर में एक पजाब में एक काठियावाड में, एक ग्वालियर राज्य तथा एक हैदराबाद राज्य में स्थापित किए गये। समस्त कारखानो की उत्पादन क्षमता प्रारम्भ में ३८६००० टन थे।

१६२५ तक उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि इस उद्योग ने काफी उन्नति की। इस उन्नति का परिणाम यह हुआ कि उत्पादन अधिक हो गया और दूसरी ओर सभी कारखानो ने स्पर्द्धा करना प्रारम्भ कर दिया जिसका परिणाम बहुत भयकर हुआ। उद्योगो को काफी क्षति पहुची। नये कारखानो में से तीन टूट गये। दूसरी ओर सीमेंट उद्योग मे कुछ मन्दी आ जाने के कारण उद्योग की स्थिति डाव डोल हो गई। टैरिफ बोर्ड की नियुक्ति इस उद्योग की जाच के लिये तुरन्त की गई। जिसने सिफारिश की कि उद्योगो में पारस्परिक सहयोग अति आवश्यक है। जिसके फलस्वरूप १६२५ में दी इण्डियन सीमेन्ट मन्युफेक्चरस एसोसिएशन की स्थापना की गई। इस

संघ का उद्देश्य बिक्री मूल्यों का निर्धारण व नियमन करना था। संघ को अपने कार्यों में काफी सफलता मिली। बिक्री के क्षेत्र में सभी इकाई पूर्ण स्वतन्त्र थी और सभी अधिक से अधिक बिक्री करने का प्रयास करने लगी। बिक्री की व्यवस्था करने के उद्देश्य से १९२७ में एक संस्था स्थापित की गई जिसका नाम कन्क्रीट एसोसिएशन ऑफ इण्डिया रखा गया। इसकी अर्थव्यवस्था के लिए प्रत्येक सदस्य अपनी कुल बिक्री पर ५ आने प्रति टन की दर से चन्दा देता था। इस संस्था का उद्देश्य था सीमेन्ट के उपभोक्ताओं में सीमेन्ट के प्रयोग का प्रचार करना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें निशुल्क टैक्नीकल सलाह देना।

इस एसोसियेशन से इस उद्योग को काफी लाभ हुआ जिसके परिणामस्वरूप १९३० में दी सीमेन्ट मार्केटिंग कम्पनी लि० की स्थापना की गई और मैन्यूफैक्चरर्स एसोसियेशन खत्म कर दिया गया। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य था विपणन को नियमित करना। इसके अनुसार प्रत्येक सदस्य को कम्पनी के अपने विपणन प्रबन्ध पर से अपना व्यक्तिगत नियन्त्रण उठाकर उसे उपरोक्त संस्था के आधीन कर देना था। परन्तु किसी भी सदस्य कम्पनी ने इसको मान्यता प्रदान नहीं की। काफी प्रयत्नशील रहने के बाद यह निर्णय किया गया कि प्रत्येक कारखाने के उत्पादन मात्रा को सीमित कर दिया जाये। इससे प्रतियोगिता का अन्त हो गया और वितरण व्यय में भी मितव्ययता हुई। यातायात आदि के खर्च कम होने से सीमेन्ट की बिक्री की कीमत भी निश्चित करदी गई, जिससे उपभोक्ताओं को बहुत अधिक लाभ हुआ। मार्केटिंग कम्पनी की सफलता एवं प्रभावी नियन्त्रण के कारण सन् १९३४ में चार और सीमेन्ट निर्माणियों ने इसकी सफलता प्राप्त की। इससे समस्त देश में सीमेन्ट के बिक्री मूल्यों में २५ प्रतिशत की कमी हो गई। इससे उद्योग को अपनी उन्नति करने का एक अच्छा अवसर मिला।

जब उद्योग अपने उन्नति के पथ पर तेजी से बढ़ने लगा तब इस उद्योग के निर्माताओं ने उद्योग को सुसगठित ढंग पर सचालन करने के हेतु तथा वैज्ञानिक साधनों का उपयोग कर सीमेन्ट का उत्पादन एवं वितरण मितव्ययी बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ किये। इसलिए १९३५ में यह अनुभव किया जाने लगा कि अभी इस उद्योग में भावी विकास की काफी गुंजायश है। अत श्री वीनाश ने १९३६ में सभी कम्पनियों का विलीनीकरण करके बम्बई में एक नवीन कम्पनी एसोसिएटेड सीमेन्ट कम्पनी (A. C. C.) के नाम से स्थापित की। सोन वैली क० के अतिरिक्त सभी कम्पनियां इस विलय में सम्मिलित हो गईं। वास्तव में यह सीमेन्ट उद्योग के भावी अभिनवीकरण की दिशा में पहिला कदम था। इसके निर्माण का मुख्य उद्देश्य था उत्पादन व्यय में कमी करना, उद्योग में विदेशों से स्पर्द्धा लेने की शक्ति को उत्पन्न करना, वितरण एवं विपणन व्यय में कमी करना तथा सीमेन्ट उपभोक्ताओं को सस्ते पैसे में दिलवाने का प्रयत्न करना। यदि वास्तविकता देखी जाये तो यही सिफारिश टैरिफ बोर्ड ने भी की थी कि सीमेन्ट उद्योग अपने पैरों पर खड़ा होकर उपयुक्त क्षमता का विकास करे। इस कम्पनी के निर्माण से भारत के एक राष्ट्रीय

महत्वपूर्ण उद्योग का संगठित ढंग पर विकास होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि कम्पनियों में सहयोग की भावना का प्रादुर्भाव हुआ जिसके परिणामस्वरूप १६२० से १६३६ तक सीमेन्ट की कीमतें ६०) प्रति टन से कम हो गई इससे दोनों पक्षों को लाभ हुआ। १६३८ में डालमिया समूह के सीमेंट निर्माणियों की स्थापना हुई जिसने उपरोक्त कम्पनी से प्रतिस्पर्द्धा करना प्रारम्भ कर दी डालमिया दल ने अपने मूल्यों में इतनी कमी कर दी कि यह कम्पनी इस दल से स्पर्द्धा लेने में पूर्ण असफल रही। परन्तु आगे चलकर १६४० में एक समझौता हुआ। इन दोनों समूहों के उत्पादन की केन्द्रीय बिक्री के लिये सीमेन्ट मार्केटिंग कम्पनी फिर कार्य करने लगी। इस प्रकार सीमेन्ट उद्योग ने अभिनवीकरण के लिये एक और सक्रिय कदम उठाया। ये सभी कारखाने मिल कर १६३६ में ६५ प्रतिशत सीमेंट निर्मित कर रहे थे।

द्वितीय विश्व युद्ध और उसके उपरान्त की प्रगति—द्वितीय महायुद्ध से इस उद्योग को हानि एवं लाभ दोनों ही हुये। देश में सीमेंट की मांग के कम हो जाने से इस उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ा परन्तु युद्ध के कारण आयात बन्द हो गये जिससे सीमेंट उद्योग को देश की आवश्यकताओं को पूरा करने का अच्छा अवसर मिला। दूसरे युद्ध काल में निर्यात को भी प्रोत्साहन मिला क्योंकि बहुत से देश ऐसे थे जो युद्ध के कारण इंगलैंड फ्रांस जापान आदि देशों से सीमेंट नहीं मंगवा सकते थे और उन्होंने भारत से मंगाया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उद्योग को प्रोत्साहन मिला और बढ़िया सीमेन्ट बनाने और उद्योग की उत्पादन सामर्थ्य बढ़ाने की योजना सोची गई। ऐसी स्थिति में इस उद्योग पर सरकारी नियन्त्रण भी स्वाभाविक ही था। १६४२ में भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत सीमेंट के उत्पादन वितरण और मूल्यों पर कंट्रोल लगा दिया गया और यह कन्ट्रोल अभी तक जारी है। इसका मुख्य कारण था फौजी आवश्यकताओं के लिए सीमेंट की उपलब्धि को सुगम बनाना दूसरे युद्ध के बाद नागरिक आवश्यकताओं के बढ़ जाने से वितरण की उचित व्यवस्था से उपभोक्ताओं के हित और मूल्यों के उचित नियमन के लिये कन्ट्रोल अति आवश्यक था और है भी।

युद्ध के प्रथम चरण में उत्पादन में वृद्धि हुई किन्तु बाद में उत्पादन गिरना प्रारम्भ हुआ। उस काल में कोयले का अभाव श्रमिकों के झगड़े यातायात की असुविधा यन्त्र का घिस जाना इत्यादि कारणों से उत्पादन गिरना प्रारम्भ हुआ था। १६३८ से विभाजन तक की उत्पादन क्षमता नीचे तालिका में स्पष्ट है—

१६३८=१४०४०००	टन	१६४३=११८३००	टन
१६४०=१७१२०००	टन	१६४४=२०४८०००	टन
१६४१=२०७३०००	टन	१६४५=००६०००	टन
१६४२=२१८८०००	टन	१६४६=१५३२०००	टन

इस तालिका से स्पष्ट है कि १६४२ तक उत्पादन बढ़ता गया परन्तु बाहरी एवं आन्तरिक कठिनाइयों के कारण उद्योग के उत्पादन को कुछ क्षति पहुंची। इस

क्षति को और अधिक हानि तब हुई जब देश का विभाजन हुआ। देश की २४ सीमेंट मिलों मे ५ मिलें पाकिस्तान मे चली गईं। इससे भी उत्पादन पर प्रभाव पड़ा। परन्तु हमारी राष्ट्र सरकार द्वारा नदी घाटी योजना एवं अन्य कार्यो के प्रारम्भ होने से सीमेंट के उद्योग को प्रोत्साहन दिया गया। १९४७—४८ से १९५०—५१ के बीच तीन वर्षो के भीतर सीमेन्ट की बिक्री १५ लाख टन से बढ कर २६ लाख टन हो गई थी। इस काल के बाद भी इस उद्योग को अधिक प्रोत्साहन मिला जिसका मुख्य कारण था सौराष्ट, मद्रास तथा ट्रावनकोर कोचीन मे तीन सीमेन्ट निर्माणियो की स्थापना।

पचवर्षीय योजना मे उद्योग—योजना के अन्तर्गत यह लक्ष्य निर्धारित किया गया था कि १९५० के ३३ लाख टन उत्पादन शक्ति वाले २१ कारखानो की सख्या १९५६ तक बढा कर २७ कर दी जाए और उनकी उत्पादन शक्ति ५० लाख टन कर दी जाये।

योजना के अन्तर्गत उत्पादन का लक्ष्य

इकाई		९५०—५१	१९५५—"६
कारखानो का सख्या		२१	२७
वास्तविक वार्षिक उत्पादन हजार टन		३२८०	५३०६
कुल उत्पादन	" "	२६९२	४८००
निर्यात	" "	२६	३००

प्रथम पचवर्षीय योजना के लिए सीमेन्ट के उत्पादन का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया था वह लगभग पूरा हो गया। १९५६ में भारत मे सीमेंट का उत्पादन ४९ २८ लाख टन हुआ। दूसरी पचवर्षीय योजना मे सीमेन्ट के उत्पादन का लक्ष्य १०० लाख टन रक्खा गया है जिसकी पूर्ति के लिये १२ नये कारखानो की स्थापना की जायगी। निम्नलिखित तालिका से भारत मे सीमेन्ट के उत्पादन की प्रगति का पता चलता है —

वर्ष	उत्पादन (हजार टनो मे)
१९५०	२६१२ ४
१९५१	३१९५ ६
१९५२	३५३६ ६
१९५३	३७८०'०
१९५४	४३९८ ०
९५५	४४८६ ■
१९५६	४९२८ ४
१९५७	५६०१ ६

हमें यह नही भूलना चाहिये कि भारत में कुछ सीमेन्ट के कारखाने अच्छे

स्थानो पर स्थित नही हैं। इन स्थानो पर कच्चा माल तो सुगमता से मिल जाता है परन्तु ये कारखाने कोयले की खानो से बहुत दूरी पर स्थित हैं। इस प्रकार के कुछ दोषो के कारण सीमेन्ट के उद्योग को काफी कठिनाइयो का सामना करना पडता है परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नही कि इसका विकास उज्जवल है। परन्तु विकास मार्ग में कुछ ऐसी समस्याएं हैं जिनका हल उद्योग के हित में शीघ्र ही होना चाहिए। इन समस्याओ में प्रमुख कुछ कारखानो की गिरी हुई आर्थिक अवस्था, कुछ कारखानो का अलाभकारी होना उत्पादन एवं वितरण की ऊंची लागत, आन्तरिक स्पर्द्धा तथा वितरण क्षेत्र में अभिनवीकरण का अभाव इत्यादि हैं। इन सभी समस्याओ को सुलझाने के हेतु योजना कमीशन ने कुछ सुझाव भी दिये हैं जैसे —

(१) वर्तमान कारखानो का प्रसार करके उनके उत्पादन मे वृद्धि करना।

(२) कार्य क्षमता मे वृद्धि करने तथा लागत व्यय के कम करने के उद्देश्य से उद्योग को अपनी मशीनो का नवीनीकरण करना चाहिए।

(३) राज्य सरकारो को चाहिए कि वे दीर्घकालीन पट्टे देकर इस उद्योग की उन्नति मे सहायता दें।

(४) देश मे फालतू सीमेन्ट की मात्रा को ध्यान मे रखकर विदेशो मे भारतीय सीमेन्ट के लिए बाजारो की खोज करना चाहिये।

(५) अलाभकारी कारखानो को कम से कम एक न्यूनतम लाभकारी आकार तक प्रसार करना चाहिये।

उपरोक्त सुझावो को मान्यता प्रदान कर इस बात का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है कि इस उद्योग की समस्त समस्याओ का समाधान हो जाये और यह उद्योग उन्नति के पथ पर भली प्रकार अग्रसर हो सके। हमारी राष्ट्रीय सरकार द्वारा योजनाओ के कार्यान्वित करने मे अधिक सीमेन्ट की आवश्यकता है ऐसी स्थिति मे हम इस उद्योग के भावी विकास की कल्पना सुगमता से कर सकते हैं।

Q 62—Trace the growth and present position of Paper Industry in India

उत्तर—भारत मे इस उद्योग की उपयोगिता कम होने का मुख्य कारण है यहां की अधिकतर जनता का अनपढ होना। लेकिन भारत मे इस उद्योग के लिये सभी आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हैं और इस धन्धे के अच्छे विकास की सम्भावना भी है। भारत मे कागज लकडी के गूदे चिथडे तथा घास से बनाया जाता है। वर्तमान समय में इस काम के लिए बांस का भी उपयोग किया जा रहा है।

क्रमिक विकास—यह उद्योग भारत मे प्राचीन काल से प्रचलित है। इस उद्योग का वास्तविक विकास मुसलमानो के शासको द्वारा हुआ परन्तु इस उद्योग का आधुनिक स्वरूप ब्रिटिश अधिकारियो के आने से हुआ। लगभग एक शताब्दी पूर्व ईसाई धर्म प्रचारक विलियम कैरे ने कलकत्ता के निकट सीरपुर में इस उद्योग का

सूत्रपात किया। इसके बाद १८६७ मे बैली रायल पेपर मिल की स्थापना हुई परन्तु प्रारम्भ मे इसे सफलता न मिली। इसके बाद अपर इण्डिया पेपर मिल की लखनऊ (१८७६), टीटागढ़ पेपर मिल (१८७२), दकन पेपर मिल कम्पनी (१८८५), बगाल पेपर मिल (१८८६), इम्पीरियल पेपर मिल्स (१८६२) इण्डियन पल्प कम्पनी (१६१८) कर्नाटक पेपर मिल राजमुन्द्री (१६२७) तथा जगाधरी मे श्री गोपाल पेपर मिल की स्थापना हुई।

प्रथम महायुद्ध के काल तक देश मे केवल ६ मिलें थी जिनकी उत्पादन क्षमता ३३०० टन थी। परन्तु १६२० मे यह मात्रा ४३००० टन हो गई। इस काल में भारत को इस क्षेत्र मे विदेशो के ऊपर निर्भर रहना पडता था। प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने ही कागज उद्योग को विदेशी कागज उद्योग से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पडा जिससे इस उद्योग के सामने काफी मुसीवतें उपस्थित हुई। १६२५ मे टैरिफ बोर्ड ने सरक्षण देने के अभिप्राय. से मिलो की जाच पडताल की जिसके सिफारिश के आधार पर सरकार ने बास कागज उद्योग विधान पास किया और इस उद्योग का सरक्षण काल ७ वर्ष रक्खा गया। इससे कागज उद्योग को अपनी स्थिति का पर्यवेक्षण करने उसके पुन निर्माण का सुअवसर मिला। इससे पूर्व भारतीय कागज के कारखाने सबाई नामक घास का प्रयोग करते थे जिससे कागज की किस्म उत्तम नही होती थी। अब बाँस की लुगदी बनाकर कागज बनने लगा। इस ढग से बना हुआ कागज हर क्षेत्र मे अच्छा था। इस काल मे भारत मे बाहर से बास की लुगदी केवल कागज बनाने के लिए आने लगी। १६३१ मे टैरिफ बोर्ड ने संरक्षण को पुनः दुहरा दिया। जिसकी सिफारिश के आधार पर १६३२ मे सरकार ने बास सरक्षण उद्योग विधान पास किया और लकडी का लुगदी पर भी प्रति टन ४५० रु० का सरक्षात्मक कर लगा दिया। इस सरक्षण स भारतीय कागज उद्योग को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। जिसका आभास हमको निम्न तालिका से होगा—

वर्ष	मिलो की सख्या	पूजी	उत्पादन टन	मूल्य (लाख रुपयो मे)
१६३२	८	८३	३१७८१	१५७
१६३२	६	११५	४३२०६	१७६
१६३६	१४	३७४	७०२७३	२६६

द्वितीय युद्ध और कागज उद्योग—युद्ध स पूर्ण अति उत्पादन एव आयात स्पर्द्धा के कारण कागज उद्योग की स्थिति अच्छी नही थी। द्वितीय विश्व युद्ध छिड जाने से उद्योग के विकास को अवसर मिला क्योंकि एक दम माग बढ गई जिससे अति उत्पादन का भय समाप्त हो गया। युद्ध काल म आयात बन्द होने एव सरकारी माग के बढने से इस उद्योग का बहुत अधिक लाभ हुआ। इससे प्रोत्साहित होकर नवीन पूंजी भी विस्तार के लिए लगाई जाने लगी। कुछ नये कारखानो का भी निर्माण हुआ जिनमे मुख्य 'आर्यन पेपर मिल्स लिमि०' तथा 'नेशनल पेपर बोर्ड लिमि०' का नाम उल्लेखनीय है। १६४४ मे इस उद्योग के कारखानो की सख्या १६ थी। परन्तु युद्ध के समाप्त होते ही इस उद्योग की स्थिति असंतोषजनक हो गई। यातायात भी असुविधा, कोयले का अभाव, तथा श्रमिको के झगडो एवं कच्चे माल के

अभाव का सीधा प्रभाव उत्पादन पर पडा। उत्पादन के कम हो जाने से मूल्यो मे वृद्धि हुई जिसके कारण सरकार को कागज के ऊपर नियंत्रण रखना पडा। सरकार ने अपनी एवं सार्वजनिक उपभोग की मात्रा को नियत कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश मे चोरी से कागज बिकने लगा और मूल्यो मे चौगुनी से अधिक वृद्धि हुई।

विभाजन से बंगाल को मिलो को काफी क्षति उठानी पडी क्योकि अब इन्हे कच्चा माल, बास, घास मिलने में कठिनाई हो गई। पाक सरकार ने इन पर निर्यात कर लगा दिया इससे स्थिति और खराब हो गई। बंगाल मिलें ही भारत के कुल उत्पादन का ५० प्रतिशत भाग तैयार करती थी लेकिन अब इन्हे कच्चा माल देश के अन्य भागो से मगाना पडा। पहली अप्रैल १९४७ से कागज व लुगदी आयात पर से संरक्षण हटा लिया गया।

वर्तमान प्रगति—युद्ध काल मे इस उद्योग ने प्रत्येक क्षेत्र मे असन्तोषजनक प्रगति की। १९५१–५२ तक भारत मे १७ कागज मिलें थी जिनकी उत्पादन क्षमता ११६००० टन थी। भारत मे कागज का अधिकतर प्रयोग लिखाई और छपाई मे किया जाता है। इसलिए भारत मे इस कार्य के लिए कागज तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त लपेटने का कागज और गत्ता भी तैयार किया जाता है। भारत मे जितने गत्ता बनाने के कारखाने हैं वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति का केवल ५० प्रतिशत गत्ता उत्पन्न कर पाते हैं। परन्तु वर्तमान समय मे भारत मे आज स्ट्राबोर्ड बनाने वाले १८ कारखाने हैं जिनका वार्षिक उत्पादन तीन लाख टन तथा उत्पादन क्षमता पाच लाख टन है, जबकि देशी माग केवल पच्चीस हजार टन ही है। इस कागज के लिए भारत को युद्ध से पूर्व विदेशो पर निर्भर रहना पडता था परन्तु युद्ध के कारण पेपर बोर्ड बनाने को भी प्रोत्साहन मिला और आज भारत मे पेपर बोर्ड बनाने वाला सबसे बडा कारखाना 'दी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमि०' है। इसका वार्षिक उत्पादन २४००० टन है जो देशी माग के लिए पर्याप्त है। युद्ध ने क्राफ्ट पेपर को भी प्रोत्साहन दिया। ओरियन्ट पेपर मिल ने इस किस्म का कागज बनाना आरम्भ किया। इसका वार्षिक उत्पादन १९५१ मे १५००० टन तथा उत्पादन क्षमता १०००० टन थी। इस प्रकार कागज की विभिन्न किस्मो का निर्माण भारत मे वर्तमान माग के अनुसार पर्याप्त है केवल न्यूजप्रिन्ट की कमी है। इस कमी को दूर करने के हेतु मध्य प्रदेश मे नेपा मिल्स खोली गई है। निःसन्देह भारत मे इस उद्योग की प्रगति धीरे २ हुई है परन्तु इस धीमी प्रगति ने भारत को इस क्षेत्र मे आत्म निर्भर बना दिया है।

प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत २०००००, टन कागज और दफ्ती और २७००० टन अखबारी कागज बनाने का लक्ष्य रखा गया था जो सन् १९५६ के अन्त तक प्राप्त हो गया। १९५६ मे २ लाख टन कागज बना था। १९५१ मे न्यूजप्रिन्ट कागज के कारखाने का निर्माण किया गया परन्तु अभी उसकी उत्पादन शक्ति २० हजार टन है जबकि भारत मे इसका वार्षिक आयात ५ करोड रुपया है। द्वितीय योजना के अन्त तक देश मे ३५०००० टन कागज और ६०००० अखबारी कागज

की आवश्यकता का अनुमान लगाया गया और इसी आधार पर कागज और अखबारी कागज का उत्पादन ३५०००० टन और ६० हजार टन क्रमश करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। योजना मे कागज उद्योग के विकास का विशेष ध्यान रखा गया है इसके अनुसार पूर्व स्थित कारखानो का विकास तथा नवीन कारखानो का निर्माण किया जायेगा। परन्तु आजकल देश मे कागज का बहुत अभाव है। उत्पादन और उपभोग की मात्रा मे लगभग १४८००० टन का अन्तर है जो प्रतिवर्ष विदेशो से आयात करना पडता है किन्तु हमारी राष्ट्रीय सरकार का औद्योगिक विकास नीति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि १९७५ तक कागज आयात की मात्रा मे भारी कमी हो जाएगी।

निम्नलिखित तालिका से सन् १९५० के बाद भारत मे कागज के उत्पादन मे हुई प्रगति का पता चलता है —

(उत्पादन टनो मे)

वर्ष	छपाई तथा लिखाई का कागज	पक करने का कागज	विशेष प्रकार का कटा हुआ कागज	गत्ता	योग
१९५०	७०१५२	१४६१६	५१९६	१८८४८	१,०८८१२
१९५१	७९२६०	२ ४८८	३१२०	२४०४८	१३ ९१९
१९५२	९१४२८	२१५४०	२८२०	२१७२०	१,३७५०८
१९५३	९५६२८	७११४४	३६ ०	१९५१२	१ ३९७०४
१९५४	१०२८७६	७४१५६	४०८८	२३५०८	१ ४५३२८
१९५५	११९४९६	२८३२०	५६०४	३१४६४	१,८४८८४
१९५६	१२२९८८	३०९२४	५७७	३३७२०	१ ९३४०४
१९५७	१२६११६	३८०१६	७२००	३८४००	२ १०१३२

उद्योग की समस्यायें

कमीशन ने कागज उद्योग समस्याओ का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं —

(१) यन्त्रों का आधुनिकीकरण—कागज के कारखानो मे अधिकाशत पुराने यन्त्रो का ही उपयोग हो रहा है जिससे उत्पादन कम होता है और व्यय अधिक होता है। आजकल कुछ कारखानो मे आधुनिकीकरण के लिए पर्याप्त पूजी लगाई गई है क्योंकि उत्पादको ने यह अनुभव किया है कि आधुनिक यन्त्रों से पूरा लाभ उठाने के लिए कारखानो की उत्पादन क्षमता मे न्यूनतम सीमा तक वृद्धि करनी होगी। दूसरे कागज कारखानो के अधिकाश यन्त्रो तथा कागज के निर्माण मे आने वाली कुछ चीजो का अब तक आयात करना पडता है। इसलिए हमारे इजीनियरिंग उद्योग को शीघ्रता से इन कारखानो मे प्रयोग होने वाले यन्त्रो का निर्माण करना चाहिये।

(२) कच्चे माल की समस्या—यह समस्या इस उद्योग के लिए एक गम्भीर समस्या है। बांस, सवाई घास, चिथडे, रद्दी, कागज, चीनी की सीठी व अनेक रसाय-

निको का प्रयोग कच्चे माल के रूप मे किया जाता है परन्तु इनसे जो कागज उत्पन्न होता है वह उत्तम नही होता। भारत मे चीड, देवदार व अन्य कोमल लकडी के वृक्षो की बहुतायत है जिसको अखवारी कागज एव केमीकल पल्प बनाने के काम मे लाया जा सकता है। अत इस सम्बन्ध मे वन अनुसन्धान शालाओ मे अन्वेपण कार्य शीघ्रता से आरम्भ कर देना चाहिये। कच्चे माल की पूर्ति के सम्बन्ध म योजना आयोग ने निम्नलिखित सुभाव दिए हैं —

(१) वनो मे ऐसे वृक्षो की जो कागज उद्योग मे प्रयोग किए जाते है सुरक्षा की जानी चाहिये और इसके उद्योग के लिये उद्योग को दीर्घकालीन पट्टे दे दिए जाने चाहिए।

(२) यातायात की सुविधा के लिए वनो मे सडको का निर्माण करना चाहिए।

(३) कपडो की कतरन, पटसन, जूट तथा रद्दी कागज का निर्यात बन्द कर देना चाहिए।

(४) सवाई घास से केमिकल और मिकेनीकल पल्प बनाना चाहिये और बगासी घास (Bagasse) को अखबारी कागज बनाने मे प्रयोग करने का प्रयत्न करना चाहिये।

उपरोक्त सुझावो को ध्यान मे रखकर देहरादून का 'फौरेस्ट रिसर्च इन्सटीट्यूट' इस दिशा मे सराहनीय कार्य कर रहा है। इस प्रकार कागज उद्योग विकास पथ पर अग्रसर है। भारत विदेशो की दासता से इस क्षेत्र मे आत्म निर्भर होने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। इसमे सन्देह नही कि भारत को इसमे सफलता मिल रही है और अब अन्य देशो की तुलना मे यहा श्रेष्ठ कागज उत्पन्न होने लगा है। शिक्षा के विकास स इस उद्योग को अपनी उन्नति करने का और भी अवसर मिल रहा है। भारत मे इस उद्योग का महत्व आर्थिक एव सास्कृतिक दोनो दृष्टियो से अधिक है।

अध्याय १७

औद्योगिक वित्त व्यवस्था

प्रश्न ६३—भारत में औद्योगिक वित्त-व्यवस्था की समस्या क्या है ? इस समस्या के समाधान के लिये हाल मे सरकार ने जो कदम उठाये हैं उनके बारे मे आप क्या जानते हैं ? (पटना ५५; दिल्ली ५३; पजाब ४८, राजपूताना ५६)

Discuss the problem of Industrial finance in India What do you know of the recent steps taken by the Government to solve this problem ? *(Patna 55, Delhi 53, Punjab 48, Rajputana 56)*

भारतीय उद्योगो की वित्त-व्यवस्था की समस्याएक जटिल समस्या है। उद्योगो की स्थापना तथा विस्तार के लिये बडी मात्रा मे धन की आवश्यकता होती है। भारत मे सर्व प्रथम तो पूजी का अभाव है और जो पूजी है भी उसे उद्योगो के विकास मे लगाने के लिये कोई सगठित सस्थाए नही हैं। भारत मे औद्योगिक बैंको का विकास नही हुआ है और देश के व्यापारिक बैंक न तो इतने साधन रखते है कि उद्योगो की वित्त–सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा कर सके और न ही उन्हे इस कार्य मे कोई रुचि है। यह समस्या केवल बडे पैमाने के उद्योगो के सामने ही नही है वरन् मध्यम आकार के तथा छोटे पैमाने के उद्योग भी इससे पीडित हैं। यदि उद्योगो को कही से कर्ज मिलता भी है तो उन्हे उस पर बहुत ऊची दर से ब्याज देना पडता है। कभी कभी तो इस ब्याज की दर इतनी ऊची होती है कर्ज का उद्योग को कोई आर्थिक लाभ ही नही रहता। भारत की विदेशी सरकार ने कभी इस समस्या के महत्व को नही समझा और इसके समाधान के लिये कोई विशेष प्रयत्न नही किये गये।

ग्रामीण क्षेत्रो मे छोटे पैमाने के उत्पादको को कच्चा माल खरीदने के लिये, वस्तु के उत्पादन व्यय को पूरा करने के लिये तथा अपने जीवन निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता होती है। जब तक उसका माल बनकर बाजार मे बिक नही जाता उसे कर्ज पर निर्भर रहना पडता है।

इस कार्य के लिये उसे गाँव के महाजन का सहारा लेना पडता है जो उससे बहुत अधिक ब्याज वसूल करता है।

मध्यम आकार के उद्योगो को भी अपनी आवश्यकताओ के लिये साहूकारो अथवा व्यापारिक बैंको पर निर्भर रहना पडता है। इनकी हालत भी उतनी ही खराब है जितनी छोटे उत्पादको की है। देश मे ऐसी साख सस्थाओ की आवश्यकता

है जो केवल उद्योगों के विकास के लिए साख प्रदान कर सकें। इस प्रकार की संस्थाओं के अभाव में उद्योगों का विकास तथा प्रगति सम्भव नहीं।

बड़े पैमाने के उद्योगों की हालत सबसे खराब है। उन्हें बड़ी मात्रा में दीर्घ काल तक के लिये कर्जों की आवश्यकता होती है। इन उद्योगों में बहुत सी पूंजी स्थाई रूप से फंस जाती है जिसे फिर से प्राप्त करना कठिन है। बड़े उद्योगों के साधारण उत्पादन व्यय के लिए भी बड़ी मात्रा में धन चाहिये। इन उद्योगों को प्रायः निम्नलिखित साधनों से पूंजी प्राप्त होती है —

(अ) शेयर तथा डिबेन्चर (Shares and Debentures)
(ब) मैनेजिंग एजेन्टस (Managing Agents)
(स) व्यवहारिक बैंकों से उधार के रूप में।
(द) जनता से प्राप्त डिपाजिट्स द्वारा (Public deposits)

उपरोक्त सभी साधनों में से एक भी साधन उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरी तरह पूरा करने में समर्थ नहीं हो पाते। इनमें से प्रत्येक की सीमाएं हैं। शेयर पूंजी एक सीमा से अधिक बढ़ाई नहीं जा सकती दूसरे विनियोग कर्ताओं (Investors) में अभी तक पूरी तरह इस प्रकार के विनियोग की भावना उत्पन्न नहीं हुई है। डिबेन्चर एक प्रकार का कर्जा है जिसे न तो कम्पनी पसंद करती है और न विनियोगकर्ता अच्छा ही समझते हैं। व्यापारिक बैंक भी दीर्घकाल के लिए अपनी पूंजी फसाना नहीं चाहते और न उनके पास इतना धन होता ही है। बैंकों से तो नकद (Cash credit) के रूप में अल्प काल के लिए कर्ज प्राप्त हो सकता है और वह भी दिन प्रतिदिन के ध्येय को पूरा करने के लिये अथवा उस समय तक के लिये जब तक कि मिल का बना हुआ सामान बाजार में बिक नहीं जाता।

भारतीय उद्योगों के विकास में तथा उनको आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान करने में मैनेजिंग एजेण्टस का विशेष महत्व रहा है। मैनेजिंग एजेण्टस कम्पनियों के शेयर तथा डिबेन्चर खरीदते हैं, उन्हें चालू पूंजी (Working Capital) प्रदान करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनकी आर्थिक सहायता करते हैं। यह सच है कि मैनेजिंग एजेण्टस प्रणाली ने भारतीय उद्योगों के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है किंतु इस प्रणाली के गम्भीर दोष भी रहे हैं जिनके कारण इसकी आलोचना हुई है और यह एक बड़ा विवाद पूर्ण विषय रहा है कि इस प्रणाली को समाप्त कर देना चाहिये अथवा इसे बनाये रखना चाहिये। साधारण मत यह है कि भारत में इस प्रणाली की आवश्यकता नहीं है तथा इसे समाप्त कर देना चाहिये।

जहां तक जनता के डिपाजिट्स का प्रश्न है यह कोई साधन नहीं है। बम्बई तथा अहमदाबाद की कुछ सूती मिलों ने इस प्रकार की सहायता प्राप्त की है किंतु इसका दोष यह है कि रुपया जमा करने वाला जब चाहे वापिस निकाल सकता है। इस प्रकार धन को कम्पनी स्थाई विकास के कार्यों में प्रयोग नहीं कर सकती।

इस प्रकार अधिकांश औद्योगिक कम्पनियां धन के अभाव से पीड़ित हैं।

मुख्य समस्या दीर्घकालीन कर्जों की है। चालू पूजी (Working capital) की समस्या इतनी जटिल नही है।

सरकार द्वारा उठाए गए कदम—स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भारत सरकार ने औद्योगिक अर्थ-प्रबन्ध के महत्व को पूरी तरह समझा और दीर्घकालीन साख की व्यवस्था के लिए १९४८ म औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) की स्थापना हुई। इस निगम की स्थापना के बाद भी निजी क्षेत्र के उद्योगो को साख प्राप्त करने म कठिनाइयाँ अनुभव होती रही। इस समस्या की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए १९५३ म सरकार ने श्राफ कमेटी (Shroff Committee) के नाम से एक विशेषज्ञ कमेटी की नियुक्ति की। इस कमेटी ने पूरी तरह जांच करने के पश्चात् कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

कमेटी ने मत प्रकट किया कि क्षीण साधन होते हुए भी व्यापारिक बैंको को उद्योग के प्रति अधिक उदारता पूर्ण नीति अपनानी चाहिए और उन्हे प्रथम श्रेणी की कम्पनियो के शेयर तथा डिबेन्चर खरीदने चाहियें। साथ ही उन्हे उचित जमानत पर कर्ज भी प्रदान करने चाहिए। व्यापारिक बैंकों को औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) जैसी सस्थाओं के शेयर आदि खरीदने चाहियें और उनम अपनी पूजी का विनियोग करना चाहिए। इस कार्य मे सुविधा प्रदान करने के लिये रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India) को चाहिए कि वह व्यापारिक बैंको द्वारा इस प्रकार के विनियोग को सरकारी प्रतिभूतियो (Govt securities) के समान स्वीकार करे और व्यापारिक बैंको को आर्थिक सहायता दे। उपरोक्त समिति ने औद्योगिक वित्त निगम को और अधिक क्रियाशील बनाने के विषय म भी आवश्यक सुझाव दिये हैं।

औद्योगिक वित्त निगम—जैसा ऊपर कहा गया है कि इस निगम की स्थापना १९४८ मे हुई इसका उद्देश्य उद्योगो की मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन पूजी सम्बन्धी आवश्यकता पूरी करन की व्यवस्था करना है। निगम की अधिकृत पूंजी (Authorized Capital) १० करोड रुपया है जो ५ हजार रुपए के मूल्य के २० हजार शेयरो मे विभाजित है। यह शेयर सरकार रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, बीमा कम्पनी तथा अन्य वित्त सस्थाओ द्वारा खरीदे गये।

औद्योगिक वित्त निगम को स्थापित हुये ६ वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं। जून १९५६ तक निगम ने ४३ ७१ करोड रुपए के कर्जे देने स्वीकार किए। निगम की कार्य प्रणाली म अनेक दोष भी देखने को आये हैं जिनके सुधार के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं।

अन्य सस्थाएं—औद्योगिक वित्त निगम के अतिरिक्त भारत सरकार ने कुछ अन्य वित्त सस्थाओं की स्थापना भी की है। १९५४ में राष्ट्रीय वित्त निगम (National Finance Corporation) की स्थापना की गई जिसकी पूजी १ करोड रु० है। उद्योगों के नियोजित विकास के लिए यह निगम रुपया कर्ज देगा।

१९५५ म एक निजी कम्पनी (Private Limited Company) के रूप मे भारतीय औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम (Industrial Credit

and Investment Corporation of India) की स्थापना की गई। इस संस्था की पूंजी २५ करोड रुपया है। ३ ५ करोड रुपये की पूंजी भारतीय बैंको बीमा कम्पनियों तथा अन्य भारतीय विनियोग कर्ताओ के हाथ म है। १ करोड रुपया की पूंजी इंगलैंड के विनियोग कर्ताओ के हाथ म है और ५० लाख रुपया अमरीका के बैंको आदि ने लगाया है। भारत सरकार ने इस संस्था को ब्याज रहित ७ ५ करोड रुपये का कर्ज दिया है। विश्व बैंक ने भी १ करोड डालर का कर्ज विभिन्न विदेशी मुद्राओ के रूप मे कर्ज देने का वायदा किया है। यह संस्था निजी क्षेत्र के उद्योगो के विकास म सहायक होगी।

१९५६ मे छोटे पैमाने के उद्योगो को सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय छोटे उद्योग निगम (National Small Industries Corporation) की स्थापना की गई है जिसकी पूंजी १० लाख रुपया है।

इस प्रकार हमे विदित होता है कि भारत सरकार द्वारा पिछले कुछ सालो म उद्योगो की वित्त सम्बन्धी समस्याओ के लिये विशेष प्रयत्न किए जा रहे है।

प्रश्न ६४—भारत मे वित्त निगमो की प्रगति पर प्रकाश डालिये। विशेष रूप से औद्योगिक वित्त निगम के कार्यों की व्याख्या कीजिये।

Review the working of Finance Corporation in India with special reference to the Industrial finance Corporation

उत्तर—स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद से भारत म अनेक औद्योगिक वित्त निगमो की स्थापना की गई है। इन निगमो का उद्देश्य इस कमी को पूरा करना है जो बहुत समय से उद्योगों की वित्त सम्बन्धी समस्याओ के समाधान के लिए अनुभव की जा रही थी। इन वित्त निगमो द्वारा बडे तथा छोटे सभी प्रकार के उद्योगो के विस्तार तथा विकास मे सहायता प्रदान करना है।

१९४८ म औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) की स्थापना की गई थी जिसका उद्देश्य बडे पैमाने के उद्योगो को दीर्घकालीन साख प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त देश के १३ राज्यो मे राज्य वित्त निगमो (State Finance Corporations) की स्थापना हो चुकी है जो मध्यम तथा छोटे पैमाने के उद्योगों को दीर्घकालीन साख प्रदान करते हैं। उद्योगो के विकास के लिए कारखानो की स्थापना तथा उनके नियोजन आदि की आवश्यकता पडती है। इस कार्य के लिए राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) स्थापित किया गया है। इसी प्रकार छोटे उद्योगों के लिए राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (National Small Industrial Corporation) भी स्थापित किया गया है। निजी क्षेत्र के उद्योगो की वित्त सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम (Industrial Credit and Investment) की स्थापना की गई। अब हम इनमे से प्रत्येक पर अलग अलग विवेचना करेंगे।

औद्योगिक वित्त निगम— यह निगम १९४८ मे स्थापित हुआ। इसकी अधि-

कुल पूंजी १० करोड रुपए है। इसकी स्थापना तथा संचालन मे भारत सरकार का प्रमुख हाथ है। निगम के शेयर तथा २½% के लाभांश (Dividend) की भारत सरकार की गारंटी है। निगम धन प्राप्त करने के लिए बांड (Bonds) तथा डिबेन्चर (Debenture) चालू कर सकता है जिनकी भारत सरकार गारंटी देती है। यह निगम राष्ट्रीय तथा प्रतिरक्षा के महत्व के उद्योगो को विशेष रूप से साख प्रदान करता है।

इस निगम को पूंजी भारत सरकार, रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, बीमा कम्पनियो तथा सरकारी बैंको आदि के द्वारा प्रदान की गई है। कोई निजी व्यक्ति इसका शेयर नही खरीद सकता। निगम के निम्नलिखित कार्य है।

(अ) औद्योगिक संस्थाओं को ऋण देना तथा उनके डिबेन्चर खरीदना। इन कर्जो आदि का भुगतान २५ वर्ष के भीतर हो जाना चाहिये।

(ब) औद्योगिक संस्थाओ द्वारा अन्य साधनो से जो कर्ज लिया जाये और जो २५ वर्ष के भीतर चुका दिया जाये ऐसे कर्जो की गारंटी देना।

१९५२ तक निगम कर्जो पर ५½ प्रतिशत ब्याज लेता था अब यह दर ६½ प्रतिशत कर दी गई है। शीघ्र ही भुगतान करने वालो को ½ प्रतिशत की छूट दी जाती है। १९५३ मे औद्योगिक वित्त कानून मे संशोधन किया गया जिसके अनुसार जहाजी कम्पनिया भी निगम से कर्ज प्राप्त करने की अधिकारी हो गई और कर्ज की सीमा ५० हजार से बढाकर १ करोड कर दी गई। निगम रिजर्व बैंक से ३ करोड रुपए तक उधार ले सकता है। भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक निगम के मुनाफे मे से अपना हिस्सा नही लेगे। यह धन एक सुरक्षित कोष मे जमा कर दिया जाएगा। जब सुरक्षित कोष ५० हजार होगा तब यह अपने हिस्से का लाभांश ले सकते हैं। १९५५ मे इस कानून मे पुनः संशोधन किया गया जिसके अनुसार ऐसी औद्योगिक संस्थाओ को भी कर्ज दिया जा सकता है जिन्होने उत्पादन का कार्य प्रारम्भ नही किया है। निगम भारत सरकार से भी रुपया उधार ले सकता है।

१९५० से १९५६ तक निगम ने ४३ २१ करोड रुपये के कर्जो की अनुमति दी। किंतु वास्तव मे केवल १६ ७३ करोड रुपया कर्ज के रूप मे दिया गया। चीनी, सूती वस्त्र, रसायन, कागज, सीमेंट, बिजली तथा अन्य कई उद्योगो को १ करोड रुपये से अधिक कर्जो की अनुमति दी गई। चीनी उद्योग को ११ ५६ करोड रुपये के कर्ज की अनुमति दी गई है क्योकि भारत सरकार की नीति देश मे कई सहकारी मिलो की स्थापना करने की है।

औद्योगिक वित्त निगम को अपनी पूंजी पर गारन्टी किये हुये लाभांश को बांटने के लिए सरकारी सहायता की आवश्यकता पडती है। निगम एक मजबूत सुरक्षित कोष स्थापित करने जा रहा है ताकि यदि किसी कर्ज की वसूली न हो सके तो उस घाटे को पूरा किया जा सके।

२ **राज्य वित्त निगम (The State Finance Corporation)**—
इन निगमो की स्थापना से सम्बन्धित कानून १९५१ मे पास किया गया। अब तक

इस प्रकार के १३ निगम स्थापित हो चुके हैं। वैसे तो यह निगम मुख्यतया मध्यम तथा छोटे पैमानों की सहायतार्थ स्थापित किये गये हैं किंतु कुछ राज्यों से बड़े पैमाने के उद्योगों को इनसे सहायता प्रदान हुई है। छोटे तथा मध्यम पैमाने के उद्योगों को इन निगमों से कर्ज प्राप्त करने में कुछ कानूनी कठिनाइयां अनुभव होती हैं जिन्हें पूरा करने के लिये कानून में १९५५ तथा १९५६ में कुछ संशोधन किये गये हैं।

कुछ राज्यों के उद्योग विभाग प्रत्यक्ष रूप में छोटे उद्योगों के लिये एक लाख तक का कर्ज प्रदान करते हैं। इससे इन निगमों का कार्य क्षेत्र कुछ सीमित हो जाता है। इन निगमों के द्वारा उद्योगों की वास्तविक सेवा तभी सम्भव हो सकती है जब इनमें कुछ आवश्यक सुधार किये जायें और इनकी कार्य क्षमता को बढ़ाया जाये

६ राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation)—यह अखिल भारतीय स्तर का दूसरा वित्त निगम है जो १ करोड़ रुपये की अधिकृत पूंजी से १९५४ में स्थापित किया गया। इस निगम के कार्य चलाने के लिये दूसरी पंचवर्षीय योजना में ५५ करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई है। जिसमें से २०.२५ करोड़ रुपया सूती वस्त्र उद्योग तथा जूट उद्योग के आधुनिकीकरण पर व्यय किया जायेगा और शेष नये आधारभूत तथा उद्योगों की स्थापना के लिये व्यय किया जायेगा।

विकास निगम के पास ऐल्कोहल से नकली रबर बनाने की एक योजना है। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के मशीन उद्योगों के बारे में जांच की जा रही है। सरकार ने विकास निगम के आधीन दो महत्वपूर्ण कारखाने स्थापित करने का निश्चय किया है जिनमें से एक अखबारी कागज बनाने का कारखाना है जो हैदराबाद राज्य में स्थापित किया जायेगा और दूसरा एल्यूमीनियम का कारखाना है जिसकी स्थापना मद्रास राज्य में होगी। इस निगम के लिये सरकार अनुदान तथा कर्जे के रूप में आर्थिक सहायता देती है।

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम तीव्र गति से प्रगति कर रहा है इसका कार्य क्षेत्र भी अधिक विस्तृत है। यह सार्वजनिक क्षेत्र तथा मिश्रित क्षेत्र सभी प्रकार के उद्योगों की सहायता देता है। निगम स्वयं किसी योजना को चालू कर सकता है उसे अपने आधीन किसी कम्पनी द्वारा चालू कर सकता है अथवा निजी पूंजी की साझेदारी में मिश्रित पूंजी वाली कम्पनी स्थापित करके कार्य कर सकता है। नये कारखानों के लिये योजना तैयार करना इसका मुख्य कार्य है। इस कार्य के लिए निगम ने बहुत से विशेषज्ञों की नियुक्ति की हुई है। यह निगम उद्योगों की स्थापना, विकास नियोजन तथा वित्त व्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में कार्य करता है। इस प्रकार इसका कार्य क्षेत्र औद्योगिक वित्त निगम के कार्य क्षेत्र से अधिक विस्तृत है।

औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम (Industrial Credit and Investment Corporation)—यह अखिल भारतीय स्तर का तीसरा निगम है जिसकी स्थापना १९५५ में की गई। यह निजी पूंजी द्वारा संचालित एक मिश्रित

पूंजी वाली कम्पनी है। भारत इंगलैंड तथा अमेरिका के कुछ प्रमुख विनियोग कर्ताओ (Investors) द्वारा इसकी स्थापना की गई। इसका उद्देश्य निजी क्षेत्र के उद्योगो के लिए राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय साधनो मे वित्त की व्यवस्था करना है। इस निगम की अधिकृत पूंजी २५ करोड है। जिसमे से ५ करोड की पूंजी प्रदान की जा चुकी है। भारतीय बैंको, बीमा कम्पनियो तथा व्यक्तियो ने ३.५ करोड रुपये की पूंजी प्रदान किया है तथा १ करोड रुपये की पूंजी इगलैंड तथा ५० लाख रुपये की पूंजी अमेरिका के बैंको आदि से प्राप्त हुई है। भारत सरकार ने इस निगम को ७.५ करोड रुपए का ब्याज रहित कर्ज प्रदान किया है। विश्व बैंक ने विदेशी मुद्राओ के रूप मे निगम को १ करोड डालर का कर्ज प्रदान करने की अनुमति दी है।

इस निगम के निम्नलिखित कार्य हैं—

(अ) निजी क्षेत्र के उद्योगो की स्थापना, विकास तथा आधुनिकीकरण मे सहायता देना।

(ब) इन उद्योगो मे भारतीय तथा विदेशी पूंजी के विनियोग को प्रोत्साहन देना।

(स) देश के विनियोग बाजार (Investment Market) के विस्तार मे सहायता देना।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (National Small Industries Corporation)—इस निगम की स्थापना १९५५ मे हुई। जिन उद्योगो मे ५० से अधिक व्यक्ति काम नही करते और जिनकी पूंजी ५ लाख से कम है उन उद्योगो की स्थापना तथा विकास मे सहायता देना इसका मुख्य उद्देश्य है। यह निगम एक निजी लिमिटेड कम्पनी के रूप मे स्थापित हुआ है और इसकी सम्पूर्ण १० लाख रु० की पूंजी सरकार द्वारा प्रदान की गई है। निगम को सरकार से कर्ज के रूप मे सहायता मिलने की आशा है। छोटे उद्योगो के सम्बन्ध मे इस निगम के वे ही कार्य हैं जो बडे उद्योगो के सम्बन्ध मे विकास निगम के हैं। इस निगम के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं।

(अ) छोटे उद्योगो द्वारा बनी हुई वस्तुओ के लिए सरकार से आर्डर प्राप्त करना।

(ब) उन्हे कर्ज तथा टैक्नीकल सहायता प्रदान करना।

(स) छोटे बडे पैमाने के उद्योगो मे समन्वय स्थापित करना।

(द) छोटे उद्योगो को बैंको आदि से जो कर्ज प्राप्त हो उनकी गारन्टी देना।

इस निगम ने बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली तथा मद्रास केन्द्रो पर अपनी शाखाए स्थापित की हैं। इनकी स्थापना से निगम के कार्य क्षेत्र मे और अधिक विस्तार होने की सम्भावना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत मे बडे पैमाने के उद्योगो तथा मध्यम और छोटे पमाने के उद्योगो के समान विकास के उद्देश्य से इन वित्त निगमो की स्थापना की गई है। सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के उद्योगो की आवश्यकताओ का विशेष ध्यान रखा गया है।

प्रश्न ६५—भारत मे विदेशी पूंजी के प्रयोग के पक्ष तथा विपक्ष मे तर्क पेश करिए। इस सम्बन्ध मे भारत सरकार की क्या नीति है? अपने सुझाव दीजिए। (वाराणसी ५४, दिल्ली ५६ ५०, पजाब ५६, ४८)

Discuss the case for and against the employment of foreign Capital in India. What policy has been adopted by the Government of India in this respect? Give your own suggestions

(Varanasi 54, Delhi 56, 50, Punjab 56, 48)

भारत मे पूंजी की आवश्यकता

भारत एक निर्धन देश है। देश के आर्थिक विकास के लिए विशेष रूप से देश के औद्योगीकरण के लिए भारी मात्रा मे पूजी की आवश्यकता है जो देश के अन्दर उपलब्ध नही है। एक ओर तो देश मे पूजी का सचय बहुत ही कम होता है दूसरे विनियोग करने वाली वित्त सस्थाओ जैसे बैंक आदि का देश मे समुचित विकास नही हुआ है। इसके अतिरिक्त भारतीय पूजीपति सदैव से उद्योगो की स्थापना के लिये अपनी पूजी का विनियोग करने मे उदासीन रहे हैं। इसलिये भारत के औद्योगिक विकास मे विदेशी पूजी का महत्वपूर्ण योग रहा है और आगे भी रहेगा हालांकि परिस्थितियाँ पहले से बहुत कुछ बदल गई हैं और सरकार की नीति भी इस विषय मे कुछ कठोर हो गई है।

१९४८ मे रिजर्व बैंक द्वारा भारत मे लगी हुई विदेशी पूजी के बारे मे जाच की गई जिससे पता चला कि देश मे कुल मिलाकर ५९६ करोड रुपये की पूजी लगी हुई है। इसमे से ३७६ करोड रुपये इगलैंड से प्राप्त हुए। १९५४ मे रिजर्व बैंक द्वारा इस विषय में नये सिरे से जाच की गई जिसके अनुसार ३१ दिसम्बर १९५३ को भारत मे कुल ४२१ करोड रुपए की पूजी थी। इसम से २५० करोड इगलैंड से, तथा ३१ करोड अमरीका की वित्त सस्थाओ द्वारा विनियोग की गई थी। भारत मे विदेशी पूजी के पक्ष मे निम्नलिखित तर्क पेश किये जाते हैं—

विदेशी पूजी के लाभ

भारत मे विदेशी पूजी के जो समर्थक है वे इसके निम्नलिखित लाभ बताते हैं—

(१) भारत जैसे देश मे प्राकृतिक साधनो की कोई कमी नही है किन्तु उनका पूरी तरह विकास करने के लिये बडी मात्रा मे पूंजी की आवश्यकता है जो देश के अन्दर उपलब्ध नही है। इसलिये विदेशी पूजी की देश को विशेषरूप से आवश्यकता है। यदि विदेशी पूजी के विनियोग को प्रोत्साहन नही दिया गया तो देश का आर्थिक विकास कई साल पीछे हट जाएगा।

(२) विदेशी पूंजी से देश की स्थायी सम्पत्ति बढती है जैसे रेलें, सिचाई के साधन बिजली घर तथा डाम (Dams) इत्यादि। इनके निर्माण से स्थाई रूप से देश की राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होगी और देश के औद्योगीकरण मे सहायता मिलेगी।

(३) विदेशी पूंजी के साथ साथ उत्पादन के नये तरीके तथा नवीनतम टैक्नीकल जानकारी (Technical knowledge) भी देश को प्राप्त होती है। और देश इस क्षेत्र में अन्य प्रगतिशील देशों के साथ होड़ कर सकता है।

(४) नये उद्योगों की स्थापना के समय शुरू में जो जोखिम होते हैं उन्हें विदेशी पूंजी सहन कर लेती है। उद्योग की स्थापना तथा सफलता के बाद देश की पूंजी जोखिम के उन उद्योगों में लगाई जा सकती है और उनका लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

(५) भारत में दूसरी पचवर्षीय योजना की सफलता के लिये भारी संख्या में मशीनों आदि का आयात करना है। इस कार्य के लिए बहुत अधिक मात्रा में विदेशी मुद्रा चाहिए जो साधारण उपायों से प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये या तो भारत को विदेशों से कर्ज के रूप में पूंजी प्राप्त करना है या विदेशी पूंजी के विनियोग को प्रोत्साहन देने के लिए अपनी नीति में कुछ संशोधन करना है। यह प्रश्न भारत सरकार के विचाराधीन है। प्रत्येक दशा में भारत में विदेशी पूंजी का आना योजना की सफलता के लिये आवश्यक है।

विदेशी पूंजी के दोष

वैसे तो देश में विदेशी पूंजी के विनियोग से अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त हो सकते हैं किन्तु इसमें कुछ भय भी हैं इसलिये विदेशी पूंजी के पक्ष में निर्णय करने से पूर्व इसके दोषों पर विचार कर लेना भी परम आवश्यक है। यह दोष निम्न लिखित हैं —

(१) विदेशी पूंजी के कारण देश में बहुत सा धन लाभ तथा ब्याज के रूप में विदेशों को चला जाता है। इस प्रकार देश कमाया हुआ धन देश के काम नहीं आता।

(२) विदेशी पूंजी के कारण देश की स्वाधीनता खतरे में पड़ जाती है। आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में देश अन्य देशों के आधीन हो जाता है और अपनी स्वतन्त्र नीति पर चलने में उसे कठिनाई होती है।

(३) विदेशी लोग ऊंचे पदों पर अपने देशवासियों को नियुक्त करते हैं तथा उन्हें बहुत अधिक वेतन दिया जाता है। भारतीय कर्मचारियों को प्रगति करने का अवसर प्राप्त ही नहीं हो पाता। इस प्रकार देश के कर्मचारी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों को सीखने में असमर्थ रहते हैं।

(४) यदि देश के आधारभूत उद्योगों पर विदेशी पूंजी का एकाधिकार हो तो इससे देश की सुरक्षा तथा आर्थिक हितों को बड़ी हानि पहुंचती है।

हमारा गत सौ वर्ष का अनुभव यह बताता है कि भारत को विदेशी पूंजी के कारण कितनी हानि पहुंची है। किन्तु इसका एक कारण विदेशी सरकार भी थी जो देश के हित में विदेशी पूंजी का समुचित नियन्त्रण नहीं कर सकी। इस समय देश के सामने फिर यह प्रश्न है कि भारत के औद्योगिक विकास के लिये किस सीमा तक

तथा किन शर्तों के साथ विदेशी पूंजी का प्रयोग किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि विदेशी पूंजी के बिना कम समय मे देश का औद्योगीकरण सम्भव नही है। इस कर्ज के लिये विदेशी पूंजी को कर्ज के रूप म प्राप्त करना अधिक सुविधाजनक है क्योंकि उसका प्रयोग भारतीय प्रबन्ध मे देश की आवश्यकताओं के अनुसार किया जा सकता है तथा विदेशी लोगो के हस्तक्षेप को कम किया जा सकता है। इस विषय मे भारत सरकार की वर्तमान नीति इस प्रकार है।

सरकार की वर्तमान नीति विदेशी पूंजी के सम्बन्ध मे भारत सरकार ने १९४८ में अपनी स्पष्ट नीति की घोषणा की। सरकार ने देश के औद्योगीकरण के लिए विदेशी पूंजी के महत्व को स्वीकार किया किन्तु इस बात को स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया कि भारत सरकार की अनुमति तथा जाच पड़ताल के बिना विदेशी पूंजी देश मे नही आ सकती। इसी के साथ साथ जहां तक सम्भव होगा विशेष रूप से स्वामित्व तथा व्यवस्था का प्रभाव भारतीयो के हाथ मे रहेगा और इस बात पर जोर दिया जायेगा कि भारतीय कर्मचारियो को प्रशिक्षण की पूरी सुविधायें प्राप्त हो।

१९४९ मे प्रधान मन्त्री ने नीति की घोषणा करते समय इसमे कुछ संशोधन कर दिए। उन्होने विदेशी विनियोग कर्ताओ को निम्नलिखित आश्वासन दिये।

(१) विदेशी विनियोग कर्ता भारतीय विनियोग कर्ताओ के समान समझे जायेगे तथा उन्हें लाभ अथवा अपनी पूंजी को देश से बाहर भेजने के लिये उचित सुविधाए प्रदान की जाएगी। इसके लिये देश की विदेशी मुद्रा सम्बन्धी स्थिति यदि अनुकूल होगी तो कोई विशेष पाबन्दी नही लगाई जायगी।

(२) वर्तमान स्थिति मे सरकार का उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करने का कोई विचार नहीं है और यदि ऐसा किया गया तो उसके लिए उचित हर्जाना दिया जायेगा।

(३ जहा क देश की सामान्य औद्योगिक नीति का प्रश्न है देशी तथा विदेशी पूंजी म किसी प्रकार का भेद भाव नही बरता जायेगा

इस सम्बन्ध मे यह बात स्पष्ट रूप से बता दी गई है कि विदेशी पूंजी भारतीय पूंजी के साझे मे कार्य करेगी और इस प्रकार के उद्योगों क सचालन तथा व्यवस्था मे भारतीयो का प्रमुख हाथ रहेगा। जो विदेशी पूंजियां पहले से ही देश में कार्य कर रही हैं उन्हे पहली जैसी सुविधाए प्रदान की जाएगी किन्तु शर्त यह होगी कि भारतीय हितो के विरुद्ध किसी प्रकार का पक्षपात नही करेगी और प्रत्येक श्रेणी के भारतीय कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए हर प्रकार की सुविधाए प्राप्त करेंगी।

इस प्रकार हम देखते है कि भारत सरकार की वर्तमान नीति विदेशी पूंजी के विनियोग को प्रोत्साहन देने वाली है। इस नीति के फलस्वरूप देश मे इस प्रकार की कई कम्पनियो की स्थापना हुई है जिसमे भारतीय तथा विदेशी उद्योगपतियो की साझेदारी है। उदाहरण के लिये मोटरकार बनाने के लिए बिड़ला न्यूफील्ड तथा साईकिलें बनाने के लिये सेन रैले आदि की कई संस्थाए स्थापित हुई है।

इस नीति के होते हुये भी भारत मे विदेशी पूंजी का विनियोग उतना अधिक नही हुआ है जितनी आशा की जाती थी। इसका एक कारण यह भी है कि भारत सरकार ने देश मे समाजवादी अर्थ व्यवस्था स्थापित करने की घोषणा की है जिसका अर्थ यह है कि धीरे २ सभी प्रमुख उद्योग धन्धो का राष्ट्रीयकरण होगा। राष्ट्रीय-करण के भय से विदेशी विनियोग कर्ता अपनी पूंजी को भारत मे लगाने से डरते हैं। दूसरी ओर सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार से निजी उद्योगो का कार्य क्षेत्र तथा उनका भविष्य बहुत कुछ अन्धकार मे हो गया है।

हम आशा करते है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिये विदेशी पूंजी के सम्बन्ध मे अपनी नीति को कुछ और अधिक उदारपूर्ण बनाना चाहिये किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि देश मे बिना किसी प्रकार के नियन्त्रण के विदेशी पूंजी को आने दिया जाये। इस प्रश्न पर बहुत गम्भीरता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।



अध्याय १६

कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योग

प्रश्न ६७—भारत की अर्थ व्यवस्था की वर्तमान स्थिति मे बडे पैमाने अथवा छोटे पैमाने के उद्योगों का विकास अधिक उपयोगी होगा ?

(आगरा १९५४, पटना १९५२)

अथवा

विशाल, लघु तथा अन्य उद्योगों का वर्तमान परिस्थितियो मे एक साथ विकास होना चाहिये। (आगरा १९५६)

In the present condition of Indian Economy state whether the *development of large or small scale industries is more necessary ?*

(Agra 54, Patna 52)

Or

Heavy, small and other industries—all need to be developed at the same time in India in the present conditions. *(Agra 56)*

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहा की अधिकाश जनसख्या कृषि के सहारे ही अपने जीवन का निर्वाह करती है। यह सब जानते हैं कि भूमि इतनी बडी जनसख्या के भार को सहन नही कर सकती इसलिये उद्योग धन्धो का विकास देश के लिये जरूरी है ताकि अतिरिक्त जनसख्या को रोजगार मिल सके और भारतीय जनता का रहन सहन का स्तर ऊचा उठाया जा सके। यहा प्रश्न यह है कि देश की अर्थ व्यवस्था की वर्तमान स्थिति मे बडे पैमाने के उद्योगो का विकास अधिक हितकर रहेगा अथवा छोटे तथा कुटीर उद्योगो का। इस सम्बन्ध मे भारत सरकार की नीति हमे स्पष्ट रूप से विदित है और विकास की दो पचवर्षीय योजनाएं भी हमारे सामने आ चुकी हैं। फिर भी हम इस प्रश्न के दोनो पहलुओ पर अलग अलग विचार करेंगे।

भारत मे बडे पैमाने के उद्योगों का विकास—जहा तक बडे पैमाने के उद्योगो का प्रश्न है उनके विकास के बिना देश आर्थिक उन्नति नही कर सकता। आज के युग मे उन्नति और शक्ति की पहचान ही है कि देश औद्योगिक क्षेत्र मे अन्य देशो से आगे हो। इसलिये बडे पैमाने के उद्योगो का विकास तो आवश्यक है ही किन्तु देखना यह है कि वर्तमान स्थिति मे कौन २ से उद्योग लगाना उचित होगा। यह स्पष्ट है कि बडे पैमाने के उद्योगो को लगाने के लिये बडी मात्रा मे पूंजी की आवश्यकता होती है और हमारे देश मे पूंजी का अभाव है इसलिये बहुत सारे कारखानो को लगाने के लिए २० या २५ वर्ष का समय चाहिये। फिर इतने कारखाने किस चीज के लगाये

जावें जो इस बढ़ती हुई जनसंख्या को पूर्ण रोजगार प्रदान कर सकें। बड़े कारखानों को लगाने के लिए भारी मशीनें भी विदेशों से आयात करनी पड़ती हैं जिनके लिये विदेशी विनिमय की भी समस्या हमारे सामने है। अत हम पूरी तरह बड़े पैमाने के उद्योगों की बात तो सोच भी नहीं सकते। उनका हमारी अर्थ व्यवस्था में उतना ही महत्व है जितना कृषि और छोटे पैमाने के उद्योगों का है। इसलिये हम वर्तमान समय में उपभोग की वस्तुओं का निर्माण करने वाले बड़े पैमाने के उद्योगों पर अधिक धन व्यय नहीं करना चाहिये। उदाहरण के लिए कपड़े का उत्पादन बढ़ाने के लिए नई मिल लगाने की आवश्यकता नहीं है। इनके स्थान पर ऐसे उद्योगों को लगाने की आवश्यकता है जिनका देश की सुरक्षा के लिये महत्व है अथवा अब तक जिनका देश में पूरी तरह अभाव रहा अथवा जो भविष्य के औद्योगीकरण के लिए आवश्यक हैं। इन श्रेणियों में लोहा तथा इस्पात उद्योग, सीमेंट, भारी मशीनें भारी रसायनिक पदार्थ, बिजली का भारी सामान, कोयला, रेल के इंजन, मोटर तथा ट्रैक्टर, पानी के जहाज तथा हवाई जहाज आदि शामिल हैं। इन उद्योगों की उन्नति से भारत को विदेशों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी और देश स्वाभिमान पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकेगा।

भारत सरकार की औद्योगिक नीति भी कुछ कुछ इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बनाई गई है और इसी प्रकार के उद्योगों को दूसरी पंचवर्षीय योजना में प्राथमिकता दी गई है।

भारत में छोटे तथा मध्य पैमाने के उद्योगों का विकास—जैसा कि हमें विदित है छोटे और मध्यम पैमाने के उद्योगों का भी भारतीय अर्थ व्यवस्था में विशेष महत्व रहा है और अब भी है इसलिए इनके विकास की ओर पूरी तरह ध्यान दिया जा रहा है। यह सच है कि २० वीं शताब्दी में जब अणु शक्ति और राकेट की होड़ चल रही हैं कुटीर उद्योगों की बात करना हीनता तथा दुर्बलता की निशानी है किन्तु भारत के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। हमारे देश में जनसंख्या की अधिकता है और पूंजी का अभाव है अत हमें अपने विकास के लिये पूंजी की कमी को मानव शक्ति से पूरा कराना चाहिये जो कुटीर तथा लघु स्तरीय उद्योगों के विकास के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इतनी बड़ी जनसंख्या को पूरी तरह रोजगार दिलाने तथा कृषि से जनसंख्या के भार को कम करने का भी यही एक मात्र उपाय है।

प्रत्येक देश की अपनी समस्याएं हैं और उन्हीं के अनुसार उपाय सोचे जाते हैं। यूरोप तथा अमरीका आदि देशों में पूंजी की अधिकता है और मानव शक्ति की कमी को पूरा करने के लिए इस प्रकार की मशीनों का आविष्कार किया गया है जो मानव शक्ति के स्थान पर प्रतिस्थापित हो सकें। फिर भी वहां भी छोटे पैमाने के उद्योगों का महत्व रहा है। भारत की स्थिति उनसे बिल्कुल भिन्न है। हमारे देश में मानव शक्ति के पूरी तरह उपयोग करने का प्रश्न है ताकि हर व्यक्ति को रोजगार मिल सके और देश से गरीबी दूर हो। इस समस्या का एक ही उपाय है और वह यह कि पूंजी के स्थान पर यथासम्भव श्रम का प्रतिस्थापन किया जावे अर्थात्

कुटीर उद्योगो के समुचित विकास के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया जावें। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के स्वप्न भी इसी बात पर आधारित थे। वे बडे कारखानो के अधिक पक्ष मे नही थे।

भारत की अर्थ-व्यवस्था में दोनो प्रकार के उद्योगों का महत्व—उपरोक्त विवेचना के बाद हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि देश की अर्थ व्यवस्था का निर्माण इस प्रकार हो कि सब प्रकार के उद्योग एक दूसरे के पूरक के रूप मे कार्य करे। उनमे किसी प्रकार की स्पर्धा नही होनी चाहिए। प्रश्न बडे अथवा छोटे उद्योगो का नहीं है वरन् बडे और छोटे उद्योगो का है। बडे पैमाने के उद्योग देश की मजबूती के लिए आवश्यक हैं और छोटे उद्योग बेरोजगारी दूर करने तथा उपभोग की वस्तुओ की वर्तमान कमी को दूर करने के लिये आवश्यक है। दोनो का अपना अलग महत्व है और इनका कार्य क्षेत्र भी प्रथक होना चाहिए।

कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास मे अनेक बाधाएं है। इनके द्वारा बनी हुई वस्तुएं उतनी उत्तम श्रेणी की नही होती है जितनी मिलो मे बनी हुई वस्तुएं होती हैं। दूसरे इनकी उत्पादन लागत भी अपेक्षाकृत अधिक आती है इसलिये उपभोक्ता इन्हे पसन्द नही करते। इन वस्तुओ के विक्रय के लिये बाजारो की तलाश करना और उनका विस्तार करना एक भारी समस्या है। यह तभी हो सकता जब हम या तो उपभोक्ता की मनोभावनाओ मे परिवर्तन करदें जैसा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्वदेशी आन्दोलन द्वारा किया था या इन वस्तुओ का मिलो द्वारा निर्माण बिल्कुल बन्द करादे और अनुसधान द्वारा इनकी कार्यक्षमता तथा कार्य कुशलता को बढाने का प्रयत्न करें। सरकार इस समस्या को अनुभव करती है और इस के समाधान के लिए पूरी तरह प्रयत्नशील है। भारत सरकार की औद्योगिक नीति जिसकी घोषणा १९४८ तथा १९५६ मे की गई थी उसमे सभी प्रकार के उद्योगो के विकास पर जोर दिया गया है और उन्हे देश की अर्थ व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अग माना गया है।

वैसे तो यह बात बडी अजीव सी मालूम होती है कि बडे पैमाने के उद्योगो के साथ साथ छोटे पैमाने के उद्योग किस प्रकार पनप सकते हैं किन्तु भारत के लिये नितांत आवश्यक है और इसके बिना देश की आर्थिक समस्याओं का समाधान नही हो सकता।

प्रश्न ६८—भारत के प्रमुख कुटीर तथा लघु स्तरीय उद्योगों तथा उनकी वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिए। उनकी उन्नति के लिये सुझाव दीजिए।

Enumerate the important cottage and small scale Industries of India and discuss their present position ? Give suggestions for their improvement ?

भारत मे प्राचीन काल से कुटीर उद्योगो का महत्व रहा है और आज भी है। समय के साथ इनमे परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था। बहुत से उद्योगो का पतन हो गया और बहुत से नये उद्योगो का देश मे जन्म हुआ है। बहुत से ऐसे उद्योग

भी हैं जो प्राचीन काल से चले आ रहे हैं और आज तक जीवित हैं यद्यपि उनकी स्थिति मे काफी परिवर्तन हो गये हैं, देश की सरकार कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगो के पुन निर्माण का प्रयत्न कर रही है ताकि वे एक बार फिर भारत की अर्थव्यवस्था मे गौरवपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकें। भारत के प्रमुख कुटीर उद्योग निम्नलिखित हैं—

(१) हाथ कर्घा उद्योग—यह प्राचीन काल से भारत का सबसे महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग रहा है। एक समय था जब समस्त ससार मे भारत का बना कपडा प्रसिद्ध था। आज भी देश के लाखो आदमी इस उद्योग मे कार्य करते हैं। भारतीय ग्रामो की जनता आज भी हाथ का बना मोटा कपडा ही पहनती है। हाथ कर्घा उद्योग को सूती मिलो से बने हुये कपडे की प्रतियोगिता का सामना करना पडता है। महात्मा गाधी के स्वदेशी आन्दोलन से इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला। जबसे देश आजाद हुआ है तबसे काग्रेस सरकार इस उद्योग की उन्नति के लिये विशेष रूप से प्रयत्न कर रही है। अखिल भारतीय हाथ कर्घा बोर्ड (All India Handloom Board) की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई है। हाथ के बने कपडो पर ३ आने रुपए की छूट खरीदारो को दी जाती है। तथा मिलो के बने कपडो पर १ पैसा प्रतिगज की दर से कर (cess) वसूल किया जाता है। यह आय लगभग ६ करोड रुपया प्रतिवर्ष है जो हाथ कर्घा उद्योग के विकास पर व्यय की जावेगी।

भारत सरकार अम्बर चर्खे को विशेष रूप से लोक प्रिय बनाने का प्रयत्न कर रही है। अम्बर चर्खे के प्रयोग से उत्पादन व्यय कम हो जाता है और लाखो आदमियो को आर्थिक लाभ पहुच सकता है।

(२) ऊन उद्योग—यह भी एक प्राचीन उद्योग है। वैसे तो यह उद्योग समस्त देश मे पाया जाता है किन्तु भेडें पालने का काम पहाडी क्षेत्रो मे अधिक होता है इसलिए वही इसका अधिक महत्व है। पहाडी क्षेत्रो मे हजारो लोगो को इससे रोजगार मिलता है। ऊन के कम्बल, शाल, नम्दे, गुलमे तथा अन्य बहुत सी वस्तुए सारे देश मे प्रयोग मे लाई जाती हैं। काश्मीर राज्य, हिमाचल प्रदेश, कुमायू की पहाडिया इसके प्रमुख केन्द्र हैं। पजाब के कुछ जिले भी इसके लिये प्रसिद्ध है। सरकार खादी तथा हाथ कर्घा उद्योग की भाति इसके विकास के लिये भी विशेष रूप से प्रयत्न शील है।

(३) रेशम उद्योग—रेशम उद्योग के अन्तर्गत शहतूत के पेड लगाना, रेशम के कीडे पालना, रेशम को साफ करना तथा उससे कपडा बुनना आदि शामिल है। यह भारत का बहुत पुराना उद्योग है। बीच मे इसका पतन हो गया था। आजकल काश्मीर राज्य, बंगाल तथा मैसूर राज्य इसके मुख्य केन्द्र हैं। घटिया श्रेणी का रेशम आसाम तथा बिहार राज्यो मे भारी मात्रा मे तैयार होता है। भागलपुर तथा मुर्शिदाबाद इसके लिए प्रसिद्ध हैं। उत्तर प्रदेश मे बनारस की रेशम की साडिया देश भर मे प्रसिद्ध हैं। नकली रेशम के मुकाबले असली रेशम उद्योग को सरकार

द्वारा सरक्षण प्रदान किया गया है। सरकार इस विषय मे विशेष प्रयत्न कर रही है 'जिससे कि इस उद्योग का पूरी तरह विकास हो सके।

(४) शहद उद्योग-शहद बहुत उपयोग की वस्तु है। इसके लिये मधु-मक्खी को पालना पडता है। इस कला की अब बहुत उन्नति हो गई है। बहुत कम पू जी से और थोडे से प्रशिक्षण के बाद इस उद्योग को कोई भी व्यक्ति चालू कर सकता है। पहाडी क्षेत्रो मे इसका विशेष महत्व है। सरकार ने इसके अनुसधान तथा प्रशिक्षण के लिए अनेक केन्द्र खोल रखे हैं। काश्मीर, उत्तर प्रदेश मद्रास, बम्बई, पजाब तथा अन्य राज्यो मे इस उद्योग ने काफी प्रगति की है।

(५) गुड तथा खाडसारी उद्योग-- यह भी एक ग्राम उद्योग है। भारतीय किसान गन्ने से गुड तथा खाड तैयार करते है। जिन राज्यो मे ताड के पेड अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं वहा ताड से गुड बनाने के कार्य को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। गुड बनाने का तरीका बहुत पुराना और दोषपूर्ण है। इसमे सुधार की आवश्यकता है। उत्तम प्रकार के कोल्हू प्रयोग मे लाए जाव और नवीन विधि से गुड बनाया जावे। यह उद्योग चीनी उद्योग के पूरक के रूप म है। देश मे चीनी की कमी को गुड द्वारा पूरा किया जाता है। देहात के लोग आज भी गुड खाना ही पसन्द करते हैं। प्रथम तथा दूसरी पचवर्षीय योजनाओ मे इस उद्योग के विकास पर विशेष जोर दिया गया है।

(६) चमडा उद्योग—चमडे का पकाना, रगना तथा जूते आदि बनाना भारत का एक प्रमुख कुटीर उद्योग है। देहातो मे कुआ से पानी निकालने वाले चरस, पानी भरने की मशक, घोडे की जीन चमडे की अटैची आदि वस्तुऐं बनाई जाती है। चमडे के कारखानो की स्थापना से इस उद्योग का महत्व कोई कम नही हुआ है। उत्तर प्रदेश मे आगरा तथा कानपुर इसके प्रमुख केन्द्र हैं। वैसे तो हर नगर तथा ग्राम मे इस कार्य को करने वाले लोग मिलते हैं। भारत सरकार का रूस सरकार से जो व्यापार समझौता हुआ उसमे भारत से कई लाख जोडे जूतो का निर्यात भी शामिल था। सरकार इस उद्योग की ओर अधिक उन्नति के लिए हर प्रकार की सुविधाए प्रदान कर रही है।

(७) दियासलाई उद्योग—यह कार्य कुटीर उद्योग के रूप मे अभी हाल ही मे शुरू किया गया है। अखिल भारतीय खादी तथा ग्राम उद्योग बोर्ड के तत्वाधान मे यह उद्योग काफी प्रगति कर रहा है। १९५६ मे इस प्रकार के ३७ कारखाने चल रहे थे। यह उद्योग मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, बम्बई, हैदराबाद, पश्चिम बगाल तथा केरल राज्य मे स्थापित किए गए हैं। दूसरी योजना मे इनके और अधिक विस्तार पर जोर दिया जायेगा।

(८) खेल का सामान बनाने का उद्योग—यद्यपि यह उद्योग बहुत अधिक लोक प्रिय नही है किन्तु कुछ राज्यो मे इसका विशेष महत्व है। अखड भारत मे स्यालकोट का बना हुआ खेल का सामान भारत स बाहर भेजा जाता था और काफी प्रसिद्ध

था। पाकिस्तान बनने के बाद से यह उद्योग पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में स्थित हो गया है सरकार के सहयोग से काफी उन्नति कर रहा है।

(९) बांस का सामान बनाने का उद्योग.—भारत में भारी संख्या में बांस के जंगल पाए जाते हैं। बांस एक उपयोगी पेड़ है जिससे अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में बांस का बहुत प्रकार से प्रयोग होता है। शहरी जनता की उपयोग की अनेक सुन्दर वस्तुएं जैसे टोकरी, मेज, कुर्सी, हाथ के पंखे इत्यादि बांस में बनाये जाते हैं। जापान जैसे देश में बांस से अत्यन्त कलायुक्त वस्तुयें बन ई जाती हैं। भारत में अभी यह उद्योग इतनी उन्नति नहीं कर सका है। भारत जापान से इस विषय में बहुत कुछ सीख सकता है। बांस से कागज बनान की सभावना पर सरकार द्वारा विचार किया जा रहा है और अनुसन्धान का कार्य चल रहा है। आशा है यह भविष्य में एक महत्वपूर्ण भारतीय उद्योग बन जावेगा।

(१०) तेल पेलने का उद्योग—यह भी एक अति प्राचीन उद्योग है जो प्राय सभी ग्रामों और शहरों में प्रचलित है। पुराने ढंग के कोल्हू लगाकर सरसों आदि का तेल पेला जाता है जो खाने के तथा और कामों के लिये प्रयोग में आता है। इस बात का प्रयत्न किया गया है कि नये ढंग के कोल्हू लगाये जावें ताकि उद्योग की उत्पादन शीलता में वृद्धि हो और उत्पादन लागत कम आवे।

(११) मिट्टी के बर्तन बनाना—यह भी भारत का प्राचीनतम उद्योग है। लगभग प्रत्येक घर में मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग होता है। गर्मी के मौसम में सुराही तथा घड़े का पानी कौन नहीं पीता। गरीब लोगों को तो धातु के बर्तन नसीब ही नहीं होते।

पुराने ढंग के मिट्टी के बर्तनों के अतिरिक्त चीनी-मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग भी देश में बढता जा रहा है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में चुनार नामक स्थान पर चीनी मिट्टी का उद्योग विशेष प्रगति कर रहा है।

(१२) नीम का साबुन बनाने का उद्योग—अखिल भारतीय खादी तथा ग्राम उद्योग बोर्ड (All India Khadi and Village Industries Board) ने जिन दस उद्योगों को अपने आधीन लिया है उनमें से एक यह भी है। प्रथम पंच-वर्षीय योजना के काल में १२६० मन नीम का तेल और ७२ टन साबुन बनाने की योजना थी।

नीम के साबुन के अतिरिक्त कपड़े धोने का साबुन भी भारत में कुटीर उद्योग के रूप में काफी लोकप्रिय है। जितना साबुन बड़े कारखानों से बनकर आता है उससे ज्यादा खपत हाथ में बने हुये साबुन की है। राज्य सरकारें इस उद्योग की उन्नति के लिये हर प्रकार की सहायता प्रदान कर रही हैं।

(१३) मछली पकड़ने का उद्योग—यह उद्योग विशेष रूप से उन राज्यों तक सीमित है जो समुद्रतट के निकट हैं जैसे बंगाल, बम्बई, मद्रास, केरल तथा उड़ीसा इत्यादि। अभी तक इस उद्योग का बड़े पैमाने पर विकास नहीं हुआ है। सरकार ने मछली पकड़ने के उद्योग के विकास को सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत भी

शामिल कर लिया है। उत्तर प्रदेश के पहाडी क्षेत्रो मे मत्स्य पालन विकास तथा अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये गये हैं। योजना यह है कि तालाबो तथा झीलों में मछली पालने के काम को प्रोत्साहन दिया जावे। जबकि देश मे खाद्य संकट है मछली उद्योग के विकास से खाद्य समस्या कुछ हद तक दूर हो सकती है।

कुटीर उद्योगों को उन्नति के लिए सुझाव

कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगो के विकास के लिये सरकार द्वारा अनेक योजनायें बनाई गई है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित सुझावो पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है —

(१) **सामान्य तथा टैक्नीकल शिक्षा का प्रसार**—भारत में दोनो प्रकार की शिक्षा की कमी है। कुटीर उद्योगो में काम करने वाले कारीगर पुराने तरीको से उत्पादन का कार्य करते हैं। टैक्नीकल शिक्षा के लिये अलग स्कूल खोले जाने चाहिये। इस ओर सरकार का ध्यान तो है किन्तु अब तक की प्रगति बहुत मन्द गति से हुई है।

(२) **नवीन तथा सुधरे हुए औजारो की व्यवस्था**—सरकार को नए ढग के तथा सुधरे हुए औजारो और छोटी मशीनो के निर्माण को प्रोत्साहन देना चाहिए और इस बात की व्यवस्था करनी चाहिए कि कारीगरो को सस्ते मूल्य पर आसानी से उप ब्ध हो सकें।

(३) **विज्ञापन तथा बिक्री की उचित व्यवस्था**—कुटीर उद्योगो द्वारा निर्मित वस्तुओ के विज्ञापन तथा बिक्री की व्यवस्था का कार्य किसी सगठित सस्था द्वारा किया जाना चाहिए। सरकार इस कार्य में महत्वपूर्ण योग दे रही है। सरकार द्वारा जो अनेक अखिल भारतीय बोर्ड स्थापित किए गए हैं वे इस क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। देश के बाहर भी भारतीय वस्तुओ की काफी माग है। उसे विज्ञापन द्वारा और अधिक बढाया जा सकता है। देश के प्रमुख नगरो मे इस प्रकार की दुकानो की स्थापना की गई है जहा कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओ की बिक्री की व्यवस्था है। इनकी शाखायें सभी नगरो मे खोली जानी चाहिए।

(४) **सहकारी प्रणाली का विकास**—कुटीर उद्योगो का संगठन साख और बिक्री की व्यवस्था करने के लिए सहकारी समितियो की स्थापना होनी चाहिए। इन समितियो के द्वारा कारीगरों को हर प्रकार की सुविधाए प्रदान की जाए। इस दिशा मे जो प्रयत्न किये गये है उन्हे काफी सफलता मिली भी है इसलिए इनके और विस्तार की आवश्यकता है।

(५) **साख की सुविधाएं**—छोटे पैमाने के तथा कुटीर उद्योगो को साख की कठिनाई अनुभव होती है। इसका प्रबन्ध सहकारी समितियो के निर्माण से किया जा सकता है। सरकार के सहयोग से विभिन्न राज्यो मे वित्त निगमो (Finance Corporations) की स्थापना की गई है। यह निगम साख की सुविधाएं प्रदान करने मे सहक री समितियो की सहायता करेंगे। आशा की जाती है कि अगले कुछ वर्षों मे यह सुविधाए विस्तृत रूप से उपलब्ध होने लगेंगी।

(६) **मशीन से बने माल की प्रतियोगिता मे संरक्षण**—भारत मे कुटीर उद्योग उस समय तक पनप नही सकते जब तक उन्हे मशीन के बने माल की प्रतियोगिता से पूरी तरह सरक्षण प्राप्त न हो। अब तक इस दिशा मे जो प्रयत्न किए गए है वे अपर्याप्त हैं। सरकार को चाहिए कि इनका क्षेत्र बिलकुल पृथक कर दिया जावे ताकि जो वस्तुएं कुटीर उद्योगो द्वारा निर्मित होती हैं उन्हे बड़े उद्योग न बनावें और प्रतियोगिता का कोई प्रश्न ही न उठे।

(७) **बिजली तथा यातायात की सुविधाएं**—देश की पनबिजली योजनाओ के पूरे होने से भारी मात्रा मे बिजली का निर्माण होने लगेगा। यह बिजली ग्रामो मे शीघ्र अति शीघ्र पहुचाई जावे तथा कुटीर उद्योगो को बिजली प्राप्त करने मे प्राथमिकता दी जाए। यही बात यातायात के साधनों के विकास के विषय मे कही जा सकती है। इनका कुटीर उद्योग के विकास पर गहरा प्रभाव पडेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त सुझावो को ध्यान मे रखकर कुटीर उद्योगो का विकास किया जा सकता है।

प्रश्न ६६—**भारत के कुटीर उद्योगों का क्या महत्व है? इनकी उन्नति के लिये हाल ही मे किये गये प्रयत्नों की विवेचना कीजिये।**

(अगरा ५१, लखनऊ ५०, ४७, राजपूताना ५६, ५३, ५१, ४६)

Establish the importance of Cottage Industries to the country and comment upon the recent meas res adopted to develop them

(Agra 51, Lucknow 50, 47, Rajputana 56, 53, 51, 49)

भारत मे कुटीर उद्योगो का महत्व—भारतीय अर्थ व्यवस्था मे कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगो का महत्वपूर्ण स्थान है। केवल भारत मे ही नही वरन् अमरीका, इगलैंड तथा जापान जैसे औद्योगिक क्षेत्र मे उन्नति किये हुए देशों मे भी छोटे पैमाने के उद्योग अपना महत्वपर्ण स्थान रखते हैं। अमेरिका की व्यापारिक सस्थाओ मे ६२.५% छोटे व्यवसायो की सस्थायें हैं जिनमे देश के ४५ प्रतिशत श्रमिक कार्य करते हैं। फ्रास मे ६६ प्रतिशत से भी अधिक औद्योगिक सस्थाओ मे १०० से कम श्रमिक कार्य करते हैं। जापान मे ५३ प्रतिशत जनसख्या कुटीर उद्योगो पर निर्भर है। भारत मे औद्योगिक जनसख्या का ६० प्रतिशत भाग कुटीर तथा लघु स्तरीय उद्योगो से अपनी जीविका उपार्जन करते हैं। निम्नलिखित तालिका स इसका ठीक पता चल सकता है :—

हाथ कर्घा तथा खादी उद्योग	५० लाख व्यक्ति
चमड़ा "	२४ "
लकड़ी "	२० "
धातु का सामान बनाने का उद्योग	४० "
मिट्टी के बर्तन, ईंटें इत्यादि	२० "
रसायनिक वस्तुयें उद्योग	१० "
खाद्यान्न वस्तुयें बनाने का "	२० "

कपडो की सिलाई तथा प्रसाधन उद्योग	११ लाख व्यक्ति	
अन्य	"	६ "
कुल योग		२०१ "

बेकारी की समस्या और कुटीर उद्योग—भारत जैसे देश में कुटीर उद्योगो का महत्व इसलिये और भी अधिक है कि भारत एक गरीब देश है जहाँ की अधिकांश जनसख्या को खेती पर निर्भर रहना पडता है। खेती से इतनी बडी जनसख्या को रोजगार प्राप्त नही हो सकता। उसका तो हमे कोई अन्य उपाय करना होगा। जो लोग खेती करते हैं उन्हे भी साल मे कुछ मास खाली बैठना पडता है। इन लोगो के लिये उपयुक्त ग्राम उद्योगो की व्यवस्था की आवश्यकता है। अतिरिक्त जनसख्या के लिए तो कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगो का विकास करना ही है। इसके अलावा बेरोजगारी तथा अर्धरोजगारी को दूर करने का और कोई उपाय हो ही नही सकता। बडे पैमाने के उद्योग इस समस्या का हल कदापि नही कर सकते। न तो बडे पैमाने के उद्योगो मे इतने आदमी खप सकते हैं और न इतनी भारी सख्या मे नये कारखाने लगाने के लिये देश के पास पूंजी ही है। उक्त बेरोजगारी की समस्या का एक मात्र उपाय कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगों का विकास ही है।

उपभोग की वस्तुओं की कमी और कुटीर उद्योग—हम जानते हैं कि भारत-वासियो का रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा है। इसके दो कारण है। एक तो गरीबी और बेरोजगारी तथा दूसरा आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन की कमी। कुटीर उद्योग बेरोजगारी को दूर करके जनता के हाथ म आवश्यक क्रय शक्ति तो प्रदान कर ही सकते हैं साथ ही आवश्यक उपभोग की वस्तुओ जैसे कपडा आदि की कमी को भी पूरा कर सकते हैं। आज देश क समस्त साधन खाद्य उत्पादन को बढाने तथा आधार-भूत उद्योगो के विकास मे लगे हुये है। देश के पास इतनी पूजी नही है जिसे उप-भोग की वस्तुओ के उत्पादन म वृद्धि के लिये व्यय किया जावे अर्थात् इस श्रेणी के नये कारखाने लगाने के लिए इस समय देश के पास पूंजी की कमी है। दूसरे शब्दो मे हम यह भी कह सकते हैं कि उपभोग की वस्तुओ के उद्योगों को इस समय प्राथमि-कता नही दी जा सकती। यह कार्य तो कुटीर उद्योगो के विकास द्वारा ही पूरा किया जा सकता है।

कुटीर उद्योग और सम्पत्ति का वितरण—बडे पैमाने के उद्योगों की स्थापना का अर्थ यह होता है कि उससे प्राप्त होने वाला लाभ कुछ थोडे से पूँजीपतियो की जेबो म जाता है। गरीब मजदूरो को अपनी मेहनत का पूरा फल प्राप्त नही होता। सरकार चाहे जितना नियन्त्रण रखे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे मजदूर वर्ग के साथ पूर्ण न्याय नही होता। कुटीर उद्योगो के विकास का अर्थ ही यह है कि धन अथवा सम्पत्ति का केन्द्रीकरण कुछ थोडे से हाथो मे नही हो सकता। धन तथा सम्पत्ति के न्यायपूर्ण वितरण के लिए कुटीर उद्योगो के विकास का अधिक महत्व है। भारत म वास्तविक समाजवादी अर्थ व्यवस्था स्थापित करने का यह एक सुगम उपाय है।

उद्योग धन्धो का विकेन्द्रीकरण (Decentralization)—भूतकाल मे भारतीय उद्योगो का विकास बिना किसी प्रकार के नियोजन के हुआ। देश के कुछ भाग, आज भी पिछड़ी हुई अवस्था मे हैं। देश की सुरक्षा की दृष्टि से तथा आर्थिक और सामाजिक न्याय के विचार से उद्योगो का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति बहुत कुछ कुटीर उद्योगों का विकास के द्वारा हो सकती है। अविकसित प्रदेशों मे कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगों का विकास कम पूंजी और परिश्रम से हो सकता है। और यह पिछली कमी को पूरी करने का एक सरल उपाय हो सकता है।

कलापूर्ण वस्तुओ का निर्माण और कुटीर उद्योग— भारत प्राचीन काल मे उच्च कोटि की कलापूर्ण वस्तुओं के निर्माण के लिये प्रसिद्ध रहा है यह वस्तुए बडे पैमाने के उद्योगो के द्वारा नही बनाई जा सकती। इन वस्तुओ का हमारे सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन मे भारी महत्व है। इस लिये इनसे सम्बन्ध रखने वाले कुटीर उद्योग भी देश के लिये गौरव का विषय हैं। उनका हमारी औद्योगिक व्यवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण के लिए सोने चादी के आभूषण हाथी दांत का सामान रेशम की साडिया धातु की बनी कलापूर्ण वस्तुओ का निर्माण भारत की प्राचीन औद्योगिक महानता की निशानी हैं। आज भी इनकी देश मे काफी माग है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगो का भारतीय अर्थ व्यवस्था मे एक महत्वपूर्ण स्थान है और रहेगा।

नोट —कुटीर उद्योगो के विकास के लिये किये गये प्रयत्नो के लिये प्रश्न सख्या ७० के उत्तर को पढिये।

प्रश्न ७०—भारत मे कुटीर उद्योग धन्धों के पतन के मुख्य कारण क्या थे? उनके फिर से विकास के लिए क्या प्रयत्न किये गये है?

(दिल्ली ५५, हैदराबाद ५४, आगरा ५४, राजपूताना ५०)

What causes led to the decline of cottage industries in India? Enumerate the main difficulties of cottage industries in the present set up? What measures would you suggest for helping them? *(Delh 55, Hyderabad 54 Agra 54 Rajputana 50)*

भारत प्राचीन काल से अपने कुटीर उद्योग धन्धो के लिए प्रसिद्ध रहा है। भारत की बनी हुई कलापूर्ण विलासिता की वस्तुए सारे ससार म प्रशसा की दृष्टि से देखी जाती थी। इनमे सोने चादी तथा हाथी दात का सामान ढाके की मलमल, धातु की बनी सुन्दर वस्तुए मिट्टी के बतन तथा अन्य बहुत सी वस्तुए विश्व भर मे लोकप्रिय थीं। किन्तु दुर्भाग्यवश इन उद्योगो का धीरे धीरे पतन होता गया और आज भारत इस क्षेत्र मे अन्य देशो से बहुत पीछे रह गया है। इस पतन के निम्नलिखित मुख्य कारण थे —

(१) देश के राजा महाराजाओं का पतन—भारत मे अग्रेजी शासन आने से पुराने राजाओ का पतन होता गया। यह राजा लोग तथा इनके दरबारी ही इन कलापूर्ण वस्तुओ के प्रेमी थे। प्रत्येक दरबार मे राजा तथा उनके दरबारी लोगों की

इच्छानुसार वस्तुएं बनाने के लिए कारीगर नियुक्त किये जाते थे जो काफी समय और परिश्रम के बाद उच्च कोटि की वस्तुयें निर्मित करते थे। उनको अपनी मेहनत तथा कारीगरी का पूरा पुरस्कार मिलता था। जब यह राज दरबार समाप्त होने लगे तो इन कारीगरो के भूखो मरने की नौबत आगई क्योंकि न तो कोई इनकी कला की कद्र करने वाला रहा और न कोई उसके लिये उचित मूल्य देने वाला रहा। विदेशो को भी इन वस्तुओ का जाना बन्द हो गया। इस प्रकार धीरे धीरे भारत से बहुत से महत्वपूर्ण उद्योग सदैव के लिये उठ गये।

(२) मशीन की बनी विदेशी वस्तुओं की प्रतियोगिता—जिस काल मे भारत मे अंग्रेजी शासन की नीव मजबूत हो रही थी उसी काल मे यूरोप मे औद्योगिक क्राति चल रही थी तथा मशीन मे चलने वाले बडे २ उद्योगो की स्थापना हो रही थी। इन उद्योगो द्वारा बनी हुई वस्तुए काफी सस्ती और सुन्दर होती थी तथा बडे पैमाने पर उनका निर्माण किया जाता था। इन वस्तुओ के लिये विश्व व्यापी बाजारो की आवश्यकता हुई और भारत एक उपयुक्त बाजार समझा गया। इस प्रकार बडी मात्रा मे विदेशो की बनी हुई वस्तुए भारत मे आयात होने लगी और वे इतनी सस्ती थी कि भारतीय कुटीर उद्योग उनकी प्रतियोगिता का सामना नहीं कर सके और उनका पतन हो गया।

(३) ब्रिटिश सरकार की विरोधी नीति—जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भारत मे विदेशी सरकार का ध्येय अपने देश की वस्तुओ के लिए भारत मे बाजार बनाना था। यह उस समय तक नही हो सकता था जब तक कि भारतीय उद्योगो का विनाश न किया जाय। इसलिये विदेशी शासको ने विदेशी प्रतियोगिता के विरुद्ध कुटीर उद्योगो को सरक्षण देने के बजाय उसे प्रोत्साहन दिया। भारत से कच्चा माल विदेशो को जाने लगा और उसके बदले मशीनो का बना हुआ सामान देश मे आयात होने लगा। इस प्रकार भारत एक कृषक देश बन गया और यहा के हजारो साल पुराने उद्योग सदैव के लिए नष्ट हो गए।

(४) विदेशी शिक्षा तथा सभ्यता का प्रभाव—अंग्रेजी शासन के साथ साथ भारत मे विदेशी शिक्षा तथा सभ्यता का प्रचार बढा। बहुत से भारतीय विदेशो को गये और वहा से नए विचार लेकर आए। लोगो की रुचि तथा स्वभाव मे भी परिवर्तन हो गये। अब उन्हे देश की बनी हुई वस्तुओ की अपेक्षा विदेशी सामान अधिक पसन्द आने लगा। इस प्रकार स्वदेशी वस्तुओ की माग कम होती गई और उसके स्थान पर विदेशी वस्तुओ का प्रयोग बढता गया। इस परिवर्तन से देश के कुटीर उद्योगों को भारी हानि हुई और उनका पतन तीव्र गति से होने लगा।

(५) भारतीय कारीगरों मे दूरदर्शिता का अभाव—भारतीय कारीगर अनपढ, अज्ञान तथा पुराने विचारो के थे। उन्होने बदलती हुई परिस्थितियो के अनुसार अपने कार्य करने के ढग मे कोई सुधार नही किया। वे उसी पुराने ढग पर चलते रहे जिस पर उनके बाप दादे चलते चले आ रहे हैं। फल यह हुआ कि समय की दौड में वे पीछे रह गये और विनाश की गति को प्राप्त हुए।

उपरोक्त कारणों के बाद भी भारत से कुटीर उद्योगों का पूरी तरह विनाश नहीं हुआ। बहुत से उद्योग हीन दशा में घिसटते चले आ रहे हैं और आज भी जीवित हैं। महात्मा गांधी के स्वदेशी आन्दोलन से इनमे एक नये जीवन का संचार हुआ है और देश की स्वतन्त्रता के बाद से इनके पुनः विकास के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं ताकि भारत की नवीन अर्थ व्यवस्था में यह अपना महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकें। भारतीय कुटीर आज भी कुछ विशेष कठिनाइयों का अनुभव कर रहे हैं जिस के कारण इनका पूरी तरह विकास नहीं हो पा रहा है। यह कठिनाइयां निम्नलिखित है —

वर्तमान स्थिति में कुटीर उद्योगों की कठिनाइयाँ

(१) आज भी कुटीर उद्योगो मे उत्पादन के वही तरीके प्रयोग मे लाये जाते है जो सौ वर्ष पहले प्रयोग मे आते थे। उनमे समय के अनुसार आवश्यक परिवर्तन नहीं हुआ जबकि संसार बहुत आगे निकल गया है। जापान का उदाहरण हमारे सामने है। जापान मे आज भी कुटीर उद्योगों का महत्व है किन्तु उनका आधुनिकीकरण कर दिया गया है। वहाँ अब छोटी मशीनों तथा बिजली आदि का प्रयोग किया जाता है।

(२) साख तथा वित्त व्यवस्था की कठिनाइयां—कुटीर उद्योगो मे कार्य करने वाले कारीगरो को बहुधा वित्त (Finance) की कठिनाइयां अनुभव होती हैं। उनके पास स्वयं के इतने साधन नहीं होते जिससे वे अपना काम सुचारु रूप से चला सकें। कच्चा माल खरीदने के लिये तथा बने हुये माल की बिक्री तक उन्हे अनेक कामो के लिए धन की आवश्यकता होती है यह धन उन्हे महाजनो आदि से कर्ज के रूप मे प्राप्त होता है जिस पर बहुत ऊंची दर से ब्याज देना पड़ता है। भारत मे कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगो को साख प्रदान करने वाली सहकारी समितियो का बहुत कम विकास हुआ है तथा देश के व्यापारिक बैंक इस क्षेत्र मे कोई रुचि नहीं रखते।

(३) संगठित बाजार की कमी —छोटे पैमाने के उत्पादकों को एक बड़ी कठिनाई यह अनुभव होती है कि उनकी वस्तुओ के विक्रय के लिये देश में संगठित बाजारों का अभाव है। उन्हें बिचौलियों (Middlemen) पर निर्भर रहना पड़ता है जो पूरी तरह उनका शोषण करते हैं और मुनाफे का बड़ा भाग खा जाते हैं।

(४) मशीन की बनी वस्तुओं से प्रतियोगिता:— जो वस्तुए बड़े पैमाने के उद्योगो द्वारा बनाई जाती हैं और उनका निर्माण कुटीर उद्योगो द्वारा भी होता है उनके बीच प्रतियोगिता की एक भारी समस्या उत्पन्न हो जाती है क्योंकि कुटीर उद्योग इस प्रतियोगिता का सामना करने की क्षमता नहीं रखते। इस विषय मे उन्हे सरकार की सहायता की आवश्यकता होती है।

(५) कच्चे माल को प्राप्त करने की कठिनाइयां — कुटीर उद्योगो मे काम करने वाले कारीगरो को सस्ते दामो पर कच्चा माल प्राप्त करने मे कठिनाई अनुभव होती है। न तो उनके पास इतना धन होता है कि थोक बाजार से इकट्ठी मात्रा मे कच्चा माल खरीद सकें और न उन्हे इस सम्बन्ध मे वे सुविधाए प्राप्त होती हैं जो बडे पैमाने के उद्योगो को प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार इनकी उत्पादन की लागत अपेक्षाकृत और भी अधिक बढ जाती है।

(६) सस्ती मशीनों तथा बिजली की शक्ति का अभाव.—कुटीर उद्योगो की कार्यक्षमता बढाने के लिये सस्ती तथा छोटे पैमाने की मशीनो का प्रयोग होना चाहिए जो भारत मे न तो सुगमता पूर्वक उपलब्ध हैं और न भारतीय कारीगर अपनी गरीबी के कारण उन्हे खरीद सकता है। इन मशीनो को चलाने के लिये सस्ती बिजली भी चाहिये। यह भी भारत मे पूरी तरह उपलब्ध नही है। इस प्रकार भारतीय कुटीर उद्योग आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति का लाभ नही उठा सकते।

(७) करों का भार —स्थानीय संस्थाओ द्वारा लगाये गय करो का भार भारतीय कारीगरो की क्षमता से बाहर है। इस भार के कारण यह उद्योग भली प्रकार पनप नही पाते और सदैव हीन अवस्था मे रहते हैं।

(८) उपभोक्ताओं की अरुचि —कुटीर उद्योगो की एक बडी कठिनाई यह है कि उपभोक्ता, उनके द्वारा निर्मित वस्तुओ को अधिक पसन्द नही करते वरन् मिल के बने माल को प्राथमिकता देते हैं। इसका एक कारण यह है कि कुटीर उद्योग उपभोक्ताओ की रुचि के अनुसार वस्तुओ का निर्माण नही कर पाते और उनकी उत्पादन लागत अधिक होती है।

(९) टैक्नीकल जानकारी का अभाव—कुटीर उद्योगो मे काम करने वाले कर्मचारी अधिकतर अशिक्षित होते हैं और उद्योग के सम्बन्ध मे आवश्यक टैक्नीकल जानकारी उन्हे नही होती। इसी कारण इस क्षेत्र मे आवश्यक शोध का तथा अनुसन्धान (R search) का कार्य नही हो पाता अथवा उसका उन्हे ज्ञान नही होता।

कुटीर उद्योगों के विकास के लिए किए गए प्रयत्न

१९४७ के बाद से सरकार की नीति विशेष रूप से कुटीर उद्योगो के प्रति उदार रही है। सरकार देश की गरीबी को दूर करने तथा बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिये कुटीर उद्योगो का विकास आवश्यक समझती है। १९४८ की औद्योगिक नीति के अनुसार कुटीर उद्योगो को भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। प्रथम पचवर्षीय योजना में भी कुटीर उद्योगो के विकास पर विशेष महत्व दिया गया था। दूसरी पचवर्षीय योजना मे रोजगार बढाने तथा उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए कुटीर उद्योगो को विशेष महत्व दिया गया है।

१९४८ मे अखिल भारतीय कुटीर उद्योग बोर्ड की (All India Cottage Industries Board) की स्थापना की गई। कुटीर उद्योगो के सम्बन्ध मे

आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिये बोर्ड ने एक सर्वेक्षण (Survey) किया, जिससे वर्तमान कुटीर उद्योगो की समस्याओ के विषय मे महत्वपूर्ण बातो का पता चला है।

१९५२ मे अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड (All India Handicrafts Board) की स्थापना की गई। जिसका उद्देश्य कुटीर उद्योगो द्वारा बनी हुई वस्तुओ की किस्म (Quality) मे सुधार करना तथा देश के अन्दर और विदेशो मे इन वस्तुओ के विक्रय की व्यवस्था करना है।

१९५२ मे हाथकर्घा उद्योग (Handloom) की सहायता के लिये अखिल भारतीय हाथ कर्घा बोर्ड (All India Handloom Board) की स्थापना की गई। यह बोर्ड सहकारिता के आधार पर इस उद्योग के पुनर्गठन का प्रयत्न कर रहा है और उद्योग द्वारा निर्मित वस्तुओ की बिक्री पर विशेष ध्यान दे रहा है।

१९५३ मे अखिल भारतीय खादी तथा ग्राम उद्योग बोर्ड (All India Khadi & Village Industries Board) की स्थापना की गई। खादी तथा दस अन्य ग्राम उद्योगो के विकास के लिये प्रयत्न करना इस बोर्ड का उद्देश्य है।

इन बोर्डों की स्थापना के अतिरिक्त सरकार ने कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगो के विकास लिये इनके सहवर्गी मिल उद्योगो पर एक प्रकार का कर (Cess) लगा दिया जिससे प्राप्त आय कुटीर उद्योग की उन्नति पर व्यय होगी। उदाहरण के लिये मिल के बने कपडे पर एक पैसा प्रति गज के हिसाब से कर लिया जाता है जो हाथ कर्घा उद्योग के विकास पर व्यय होना है। इसी प्रकार सरकार ने कुछ कपडे की किस्मे निश्चित करदी हैं जो मिलो द्वारा नही बनाई जा सकती। उनका उत्पादन हाथ कर्घा उद्योग के लिये सुरक्षित है।

छोटे उद्योगो को साख की सुविधाए प्रदान करने के लिये १० राज्यो मे वित्त निगमो की स्थापना करदी गई है। रिजर्व बैंक को एक अधिकार दे दिया गया है कि वह राज्यो के सहकारी बैंको को साख की सुविधाए प्रदान करे।

सरकार द्वारा इन उद्योगो की उन्नति के लिये निम्नलिखित अन्य उपाय भी किए गये —

(१) सरकार द्वारा अपनी आवश्यकता की वस्तुओ को खरीदने मे इन उद्योगो की बनी हुई वस्तुओ को प्राथमिकता देना।

(२) इन उद्योगो के विकास के लिये एक विकास कमिश्नर (Development Commissioner) की नियुक्ति की गई है।

(३) अम्बर चर्खे को लोकप्रिय बनाना जिससे लाखो आदमियो को लाभ होगा।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे लगभग ३१.२ करोड रुपया इनके विकास पर व्यय किया गया। खादी का उत्पादन १९५०—५१ मे ७१२० लाख गज से बढकर १९५५—५६ मे १४५०० लाख गज हो गया। विदेशो मे भी भारतीय खादी की

माग बढी है और देश से इसका निर्यात होने लगा है। दूसरी पंचवर्षीय योजना मे लगभग २० करोड रुपया इन उद्योगो के विकास पर व्यय किया जायेगा।

सरकार औद्योगिक बस्तियो (Industrial Estates) की स्थापना भी करना चाहती है जिन पर १० करोड रुपया व्यय किया जावेगा। इन बस्तियो मे छोटे उत्पादन कर्ताओ को बसाया जावेगा जहा उन्हे बिजली, पानी, गैस तथा उत्पादन की मुख्य सुविधाए प्रदान की जावेगी। इस प्रकार की १० बस्तियो की स्थापना की अनुमति दे दी गई है।

प्रश्न ७१— पचवर्षीय योजना मे कुटीर तथा लघुस्तरीय उद्योगो का क्या स्थान है।

Briefly discuss the place assigned to cottage and small scale industries in the Five Year Plans.

उत्तर—कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योग भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद इनके विकास पर विशेष रूप से जोर दिया जा रहा है। इनका उद्देश्य लोगों को काम करने का अवसर प्रदान करना, उनकी आय मे वृद्धि करना, रहन सहन के स्तर को ऊचा उठाना और ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का सतुलित विकास करना है।

इस सम्बन्ध मे योजना कमीशन के यह शब्द उल्लेखनीय है 'दूसरी पंचवर्षीय योजना का एक एक मुख्य उद्देश्य रोजगार देना है। छोटे पैमाने के और ग्राम उद्योगों से अधिक व्यक्तियो को काम मिलता है। उतनी ही पूंजी लगाकर इन उद्योगों मे बडे कारखानो की अपेक्षा कही अधिक व्यक्ति लगाये जा सकते हैं। ऐसे उद्योगो से जो आमदनी होती है, वह देश के अपेक्षाकृत गरीब वर्गो को मिलती है और इस तरह गाँवो की अर्थ व्यवस्था का अधिक संतुलित एव समन्वित विकास ही हो पाता है।' इन कारणो से दूसरी पचवर्षीय योजना मे छोटे और ग्रामोद्योगो पर विशेष जोर दिया गया है।

आगे चल कर योजना कमीशन ने कहा है "इससे यह नही समझना चाहिए कि हमारी अर्थ व्यवस्था मे यह उद्योग सदैव हो इसी पुराने ढर्रे पर चलते रहेगे। जैसे जैसे गाँवों की प्रगति होतीजायेगी, वैसे वैसे उनकी बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए देहाती दस्तकारियो मे क्रमशः नई विकसित मशीनो का प्रयोग शुरू कर दिया जाएगा। ये छोटे उद्योग विकेन्द्रित और प्रगतिशील होंगे। एक ओर कृषि से और दूसरी ओर बडे उद्योगो से इनका निकट सम्पर्क रहेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की पचवर्षीय योजनाओ मे कुटीर तथा ग्रामोद्योग विकास कार्य को प्रमुख तथा महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुटीर उद्योग

प्रथम पचवर्षीय योजना मे छोटे तथा कुटीर उद्योगो के विकास के लिये दो महत्वपूर्ण कदम उठाये गए।

(१) हाथ कर्घा उद्योग, खादी और ग्रामोद्योग दस्तकारियों, छोटे उद्योगों, रेशम के कीडे पालने के उद्योग तथा नारियल की जटा के उद्योगों की समस्याओं का हल करने के लिये कई अखिल भारतीय बोर्ड बनाए गये जिनमे निम्नलिखित शामिल है —

(अ) अखिल भारतीय कुटीर उद्योग बोर्ड (१९४८)

(ब) अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड (१९५२)

(स) अखिल भारतीय हाथकर्घा बोर्ड (१९५२)

(द) अखिल भारतीय खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड (१९५३)

(२) सरकार ने फैसला किया कि कई वस्तुए केवल छोटे और ग्रामोद्योगो की बनी हुई ही खरीदी जावें। इससे हाथकर्घा तथा खादी जैसे कई उद्योगो के उत्पादन और उनमे काम करने वालो की संख्या बढ गई।

इसके अतिरिक्त इन उद्योगों को काफी मात्रा मे साख की सुविधाए प्रदान की गईं। हाथकर्घा उद्योग एक ऐसी स्थिति मे से गुजर रहा था कि उसकी हालत दिन प्रति दिन बिगडती जा रही थी। प्रथम पचवर्षीय योजना के चालू होते ही इसमे नये जीवन का सचार हुआ। १९५०—५१ में इसका कुल उत्पादन ७४२० लाख गज था जो १९५५—५६ मे १४५०० लाख गज हो गया। खादी का मूल्य १ ३ करोड रुपये से बढ कर ५ करोड रुपये हो गया। १९५२—५३ मे सरकार द्वारा कुल ६६ लाख रुपये का सामान इन उद्योगो से खरीदा गया जो १९५४—५ मे १०५ लाख रुपये हो गया।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सम्बन्धित बडे तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के उत्पादन की मिली जुली योजना बनाई गई ताकि प्रतियोगिता के स्थान पर वे एक दूसरे के पूरक बन सकें। यह कार्य इस प्रकार था :—

(अ) बडे कारखानो की उत्पादन क्षमता के विस्तार पर रोक।

(ब) बडे कारखानो की बनी वस्तुओ पर उत्पादन कर।

(स) छोटे उद्योगो को कच्चा माल, धन तथा मशीनो आदि की सहायता।

इस नीति से बहुत से छोटे उद्योगो को लाभ हुआ है। कपडे की कुछ किस्मे केवल हाथ कर्घा उद्योग द्वारा उत्पादन के लिये सुरक्षित करदी गई हैं। सूती वस्त्र उद्योग पर उत्पादन कर लगा कर एक कोष का निर्माण किया गया है जो हाथ कर्घा उद्योग के विकास के लिए व्यय किया जाता है। बडे कारखानो मे बनने वाले चमडे के जूते, दियासलाई, कपडे धोने के साबुन आदि पर इसी प्रकार के उत्पादन कर लगाये गये हैं। नये कारखानो की स्थापना के लिये अनुमति पत्र (Licence) देने से पूर्व इस बात पर विचार कर लिया गया है कि उनका कुटीर उद्योग पर क्या प्रभाव पडेगा।

प्रथम योजना मे कुछ उद्योगों के विकास की पृथक योजना बनाई गई जिसमे खेल का सामान, पेंसिल, मोमबत्ती, कृषि यन्त्र आदि शामिल हैं।

दूसरी योजना मे कुटीर उद्योग—दूसरी योजना मे ग्राम तथा छोटे उद्योगो के

विकास के लिये जो कार्यक्रम बनाया गया था उस पर विचार करने के लिये योजना कमीशन ने जून १९५५ मे एक समिति नियुक्त की थी। यह कमेटी कर्वे कमेटी (Karve Committee) के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमेटी ने दूसरी योजना के कार्यकाल मे छोटे उद्योगो के लिये आवश्यक साधन और अधिक मात्रा मे उपलब्ध कराने के लिए एक योजना बनाई और कई महत्वपूर्ण सिफारिशें की जिन्हे सरकार ने स्वीकार कर लिया है और जिन पर कार्य करने से छोटे उद्योगो का विकास तीव्र गति से तथा सुचारु रूप से हो सकेगा। इन सिफारिशो मे निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं —

(१) कुछ प्रकार का सामान केवल छोटे उद्योगो द्वारा ही बनाया जावे।

(२) बडे उद्योगो मे बनने वाले वैसे सामान पर उपकर (Cess) लगाया जावे।

(३) छोटे उद्योगो को उत्पादन के हिसाब से आर्थिक सहायता दी जावे अथवा बिक्री मे ग्राहकों को छूट दी जावे।

(४) आवश्यक वित्तीय तथा प्राविधिक सहायता एव बिक्री के लिये उचित सुविधाए दी जाए।

१९५६ मे जो नई औद्योगिक नीति घोषित की गई उसमे भारत सरकार ने छोटे उद्योगो के बारे मे अपना मत स्पष्ट कर दिया है। नीति प्रस्ताव मे कहा गया है कि आवश्यकता पडने पर सरकार बडे उद्योगो द्वारा कुछ चीजें बनाए जाने पर प्रतिबन्ध लगा सकती है, कर मे हेर फेर कर सकती है या सीधे ग्राम और छोटे उद्योग को सहायता दे सकती है किन्तु सरकार का उद्देश्य यह होगा कि इनकी स्थिति ऐसी हो जावे कि यह अपने पैरो पर आप खडे हो सकें। बडे उद्योगो के साथ इनका सम्बन्ध सर्वमान्य उत्पादन कार्यक्रम पर आधारित होगा। सरकार ऐसे कदम उठाएगी कि छोटे उद्योग बडे उद्योगो की प्रतियोगिता का मुकाबला कर सकें। औद्योगिक सहकारी संस्थाओ (Industrial Co-operative Societies) को प्रोत्साहन दिया जाएगा विशेषकर कच्चे माल को प्राप्त करने और बिक्री के सम्बन्ध मे।

बैंक आदि से साधारणतया इन उद्योगों को जितनी पू जी मिलेगी उसके अलावा दो अरब रुपये की और व्यवस्था की गई है। इस धन को अलग २ उद्योगो पर इस प्रकार बाटा जावेगा।

(१) हाथ कर्घा उद्योग —

सूत की बुनाई	५६० करोड रुपया
रेशम की बुनाई	१५ " "
ऊन की बुनाई	२० " "
कुल योग	५९·० करोड रुपया

(२) खादी उद्योग —	
ऊन की कताई	१६ करोड रुपये
सूत की विकेन्द्रित कताई और खादी	१४८ "
योग	१६७ "
(३) ग्रामोद्योग—	
चावल की हाथ से कुटाई	५० करोड रुपये
घानी का वनस्पति तेल	६७ "
गाव मे बने चमडे के जूते और चमडा कमाई	५० "
गुड और खडसारी	७० "
हाथ की बनी दियासलाई	११ "
अन्य ग्रामोद्योग	१४० "
योग	३८८ "
(४) दस्तकारियां —	६० करोड रुपये
(५) छोटे पैमाने के उद्योग —	५५० "
(६) अन्य उद्योग —	
रेशम के कीडे पालना	५० "
नारियल की जटा की कताई और बुनाई	१० "
(७) सामान्य योजनायें:—	
प्रसाधन तथा शोध	१५० "
योग	८५० "

दूसरी पंचवर्षीय योजना में विकास कार्यक्रम

(१) हाथ करघा और खादी—कर्वे कमेटी के अनुसार १९६०—६१ तक हाथ करघों पर १७० करोड गज कपडा बनाया जा सकता है। इस कार्य को पूरा करने के लिए अम्बर चर्खे का प्रयोग अधिक उपयोगी रहेगा।

(२) ग्रामोद्योग—चावल की हाथ की कुटाई को प्रोत्साहन देने के लिए सुझाव दिया गया कि धान कूटने वाली नई मिलें स्थापित न की जावे। इसी प्रकार वनस्पति तेल, चमडा उद्योग, हाथ की बनी दियासलाई, गुड तथा खडसारी, मधु-मक्खी पालन, ताड गुड, कागज, साबुन मिट्टी के बर्तन आदि उद्योगों को विकसित करने के बहुत से व्यवहारिक सुझाव दिए गए हैं।

(३) छोटे उद्योग-जिन कारखानों मे ५ लाख रुपये से कम पूजी लगी है (शक्ति चालित कारखानो) और उनमे ५० या ५० से कम आदमी काम करते हैं तो वे छोटे उद्योग माने गये हैं। इन उद्योगों के लिए एक विशद कार्यक्रम बनाया गया है। अखिल भारतीय छोटे उद्योग निगम की चार शाखाए बम्बई, मद्रास कलकत्ता और दिल्ली मे खोली गई हैं। यह बढाकर २० करदी जावेंगी, मशीनो को किराए पर लेने अथवा खरीदने की और अधिक सुविधायें प्रदान की जावेंगी।

(४) दस्तकारियां–धातु की कलापूर्ण वस्तुयें, खिलौने खजूर के पत्तो का सामान, पत्थर और सगमरमर पर खुदाई, पीतल पर सुनहरी पालिश चढाने आदि की दस्तकारियो के विकास की याजना बनाई गई है।

(५) औद्योगिक बस्तियां–१८ करोड रुपये की लागत से देश मे कई औद्योगिक बस्तियां खोली जावेंगी। जिनमें इस प्रकार की सुविधायें उपलब्ध होंगी कि छोटे उद्योग अनुकूल वातावरण का अनुभव कर सकें और उत्पादन की लागत कम हो सके।

(६) सगठन—योजना आयोग ने इस बात पर बल दिया है कि विभिन्न राज्यो के औद्योगिक विभाग मौके पर प्रबन्ध व्यवस्था को सुदृढ करें। इसके अलावा कर्मचारियो तथा कारीगरो के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जावे।

कर्वे समिति ने सुझाव दिया था कि केन्द्रीय सरकार एक पृथक मन्त्रालय कुटीर तथा छोटे उद्योगो के लिये स्थापित करे।

आशा है दूसरी योजना मे इन उद्योगो की विशेष प्रगति होगी।



अध्याय १०

औद्योगिक श्रम

प्रश्न ७२—क्या भारतीय श्रमिक अन्य देशों के श्रमिकों से कम कार्यकुशल हैं ? यदि हैं तो कम कार्यकुशलता के कारण बताइये और सुधार के उपाय बताइये।
(पंजाब ४६, कलकत्ता ४७)

अथवा

ऐसा क्यों है कि भारतीय श्रमिक अमरीकन अथवा ब्रिटिश श्रमिक से कम कार्य कुशल हैं ? भारतीय श्रमिक की कार्य कुशलता में वृद्धि करने के उपाय बताइये। (राजपूताना ५१)

Is Indian labour less efficient than industrial labour in other countries? If so, account for the low efficiency and suggest remedies ? *(Punjab 49, Calcutta 47)*

Or

Why is it that Indian labour is not as efficient as American or British labour ? Suggest remedies for improving the efficiency of Indian labour *(Punjab 51)*

उत्तर—श्रम की कार्य कुशलता एक तुलनात्मक वस्तु है। जब हम यह कहते हैं कि भारतीय श्रमिक अमरीकन अथवा ब्रिटिश श्रमिक से कम कार्य कुशल हैं तो इसका यह अर्थ होता है कि उतने ही समय में अमरीकन अथवा ब्रिटिश श्रमिक भारतीय श्रमिक से अधिक और उत्तम काम करते हैं। इस प्रकार भारतीय श्रमिक की कार्य कुशलता अन्य देशों के श्रमिकों की कार्य कुशलता की तुलना में बहुत कम है। इस सम्बन्ध में अनेक लेखकों ने तुलनात्मक आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। १९१८ के औद्योगिक कमीशन के सामने अपना बयान देते समय सर ए० मैकरावर्ट ने बताया कि एक ब्रिटिश श्रमिक भारतीय मजदूर से चार गुना अधिक कार्य कुशल है। १९२६—२७ में सूती वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध में टैरिफ बोर्ड ने अपनी जांच में लिखा कि भारत में एक मजदूर १८० कर्घों पर कार्य करता है जबकि एक जापानी मजदूर २४०, ब्रिटिश मजदूर ५०० से ६०० तक, तथा अमरीकन मजदूर ११२० कर्घों पर कार्य करता है। इससे यह स्पष्ट है कि भारतीय मजदूर की कार्य कुशलता प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षाकृत बहुत कम है।

भारतीय श्रमिक की कम कार्य कुशलता के कारण

भारतीय श्रमिक की कम कार्य कुशलता के अनेक कारण हैं। इनमें से कुछ

तो ऐसे है जिन पर श्रमिक का कोई अधिकार नही है। उदाहरण के लिए भारत की जलवायु तथा प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण यहा का श्रमिक एक ठडे देश के श्रमिक के मुकाबले में अधिक कार्यकुशल नहीं हो सकता। जहा तक अन्य बातो का प्रश्न है वे भी भारतीय श्रमिक के हित के अनुकूल नही है। यदि इनमें सुधार कर दिया जाय तो उनकी कार्य कुशलता में अवश्य सुधार हो सकता है। श्रम की कार्य कुशलता कम होने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं —

(१) जलवायु — भारत की जलवायु मुख्य रूप से गर्म है। गर्म देश के रहने वाले कडी मेहनत के आदी नही होते। उनका जीवन आलसी होता है। वे ठडे देश की भाति कठोर परिश्रम नही कर पाते इसलिए अपेक्षाकृत कम कार्य कुशल और महनती होते है। जलवायु की भिन्नता के कारण कार्य कुशलता में थोडा बहुत अन्तर होना स्वाभाविक है।

(२) मजदूरी की दर और रहन सहन का स्तर —भारत में मजदूरी की प्रचलित दर अन्य देशों की तुलना में बहुत नीची है। यह बात अर्थशास्त्र के सभी विद्वान मानते है कि मजदूरी की दर का रहन सहन के स्तर तथा कार्य कुशलता से सीधा सम्बन्ध है। नीची मजदूरी की दर का प्रभाव यह है कि भारतीय श्रमिक का रहन सहन का स्तर बहुत नीचा है। उनके पास न तो रहने को अच्छा मकान है, न खाने को अच्छा भोजन और न पहनने को अच्छा कपडा। स्वास्थ्य इत्यादि की भी उन्हे पर्याप्त सुविधाए प्राप्त नही होती। इन बातों का उनकी कार्य कुशलता पर बुरा प्रभाव पडता है।

(३) काम के घण्टे और वातावरण —भारतीय कारखानो में काम करने की परिस्थितिया श्रमिक की कार्य कुशलता पर बुरा प्रभाव डालने वाली हैं। यहा हवा पानी आदि की उचित व्यवस्था नही होती। मजदूरो को अधिक घण्टो तक कार्य करना पडता है। यदि हम भारतीय मिलो में भी वही सुविधाए और वातावरण उत्पन्न कर दें जो अमरीका अथवा इगलैंड के श्रमिको को वहा की मिलो में मिलता है तो हम आशा कर सकते है कि भारतीय श्रमिक की कार्य कुशलता मे पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। भारत में दो एक कारखाने है जहाँ अनुकूल परिस्थितिया पाई जाती है और वहा कार्य करने वाले श्रमिक अमरीका और इगलैंड के श्रमिको की भाति ही कार्य कुशल है। इसका प्रमाण यह है कि दूसरे महायुद्ध में अमरीका से ग्रेडी मिशन (Grady Mission) भारत आया था। उसने अपना विचार व्यक्त किया कि बम्बई के फाउटर स्टोन रबर कारखाने अथवा टाटा के लोहे तथा इस्पात के काम करने वाले मजदूर लगभग उतने ही कार्य कुशल है जितने अमरीकन कारखानों के मजदूर हैं।

(४) प्रवासी का स्वभाव —भारतीय मजदूरों की एक विशेषता यह है कि वे स्थाई रूप से जमकर कारखानो में काम नहीं करते। वे साल के कुछ महीनों मे गाँव छोडकर शहरो मे आ जाते है और जिस किसी भी मिल में उन्हें काम मिल जाता है वहीं काम करने लगते हैं। फसल के समय वे फिर देहात को लौट जाते हैं।

उन्हे किसी विशेष प्रकार के कार्य मे रुचि नही होती । जब भी वे देहात से लौटकर आते है तो जो भी काम जिस किसी मिल मे मिल जाता है उसे करने लगते हैं । इस प्रकार हम अधिकाश मजदूरो को सही अर्थों मे औद्योगिक श्रम की सज्ञा नहीं दे सकते । यह बात अन्य देशों के श्रमिको में नही पाई जाती । इसका श्रम की कार्य कुशलता पर गहरा प्रभाव पडता है ।

(५) **शिक्षा तथा प्रशिक्षण की कमी** :—अधिकतर श्रमिक अशिक्षित और ज्ञानहीन होते हैं । उन्हें मशीनों के प्रयोग आदि के विषय मे कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता । इनकी अज्ञानता केवल उनकी कार्य कुशलता पर ही प्रभाव नही डालती वरन् उनका समस्त दृष्टिकोण ही दूसरे प्रकार का रहता है । वे अन्ध विश्वासी, जातिवाद को मानने वाले, नई बातों को सीखने से उदासीन रहते हैं और अपनी हित अहित की बात को भली प्रकार सोच नही पाते । इन सब का प्रभाव उनकी मजदूरी की दर, काम करने के घण्टे तथा वातावरण और अन्त में उनकी कार्य-कुशलता पर पडता है । भारतीय श्रमिकों की कार्य-कुशलता का भी एक प्रमुख कारण है ।

(६) **मकानों की समस्या** :—भारतीय श्रमिक की कार्य-कुशलता पर प्रभाव डालने वाला एक अन्य कारण उनके निवास स्थान का है । भारत में अधिकतर कारखाने बडे बडे नगरो में स्थापित हैं जहां मजदूरों को गन्दी बस्तियो में रहना पडता है । यह बस्तिया इतनी गन्दी होती हैं कि मानव को उन पशुओ से भी बदतर जीवन व्यतीत करना पडता है । लगभग आठ घण्टे काम करने के बाद जब मजदूर घर लौटता है तो वहां भी उसे साफ हवा और खुला वातावरण नसीब नही होता । एक ही कमरे में आठ दस व्यक्तियो को रहना खाना तथा सोना पडता है । इसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है । मिल मालिक इस दिशा में कोई ध्यान नहीं देते । इस कारण मकानो की समस्या अथवा गन्दी बस्तियों की सफाई का श्रम की कार्य-कुशलता से सीधा सम्बन्ध है ।

(७) **मजदूरों की ऋण ग्रस्तता** :—मजदूर गरीब होने के कारण कर्जे के भार से दबे रहते है । कर्जे की चिन्ता के कारण उनके मन की शाति भग हो जाती है । काम करने में उनका जी नहीं लगता और उनका नैतिक पतन होने लगता है । इन सब बातो का अन्त में उनकी कार्य-कुशलता पर प्रभाव पडता है ।

(८) **पुरानी मशीनें** :—कार्य-कुशलता कम होने का जितना दोष श्रमिको पर है उससे कही ज्यादा उन मशीनो का है जिनपर उन्हे काम करना पडता है । भारत के अधिकतर कारखानो में पुरानी तथा घिसी हुई मशीनें चली आ रही हैं । उनके स्थान पर नई और सुधरी हुई मशीनो का प्रयोग भारत मे बहुत कम हो रहा है । इसका श्रम की कार्य कुशलता पर भी प्रभाव पडता है । इस विषय में यदि हम अन्य देशो से तुलना करें तो हमें पता चलेगा कि वहा दिन प्रतिदिन नई २ मशीनों का आविष्कार होता जा रहा है जिनके प्रयोग से मानव का काम कम होता जा रहा है और उत्पादन शीलता बढती जा रही है । इसका श्रेय श्रमिक को भी मिलता है और हम कहते यह हैं कि श्रमिक पहिले से अधिक कार्यकुशल हो गया है । इस दृष्टि से भारतीय

श्रमिक की कार्य कुशलता की तुलना अमरीका अथवा इंगलैंड के श्रमिक से उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि भारत में भी उत्पादन की वही परिस्थिति उत्पन्न न हो जाए जो इन देशों में है।

(९) भारतीय श्रमिकों में गैरहाजरी की आदत :—भारतीय श्रमिक की यह विशेषता है कि जब उसका जी चाहता है वह काम पर नहीं जाता। विशेषकर वेतन प्राप्त करने के बाद अथवा शादी आदि के अवसरों पर काम की छुट्टी कर देता है। जब तक उसके पास जेब में पैसे रहते हैं उसे काम की चिन्ता नहीं रहती। जेब खाली होने पर उसे फिर काम तलाश करने की सूझती है। ऐसी हालत में श्रमिक अपने काम में कार्य-कुशलता प्राप्त नहीं कर सकता यह बात हमें अन्य देशों के श्रमिकों में देखने को नहीं मिलती।

(१०) नैतिक पतन :—औद्योगिक नगरों में रहने वाले श्रमिकों में बहुत सी सामाजिक बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं। उन्हें शराब, जुआ, वैश्यागमन की आदत पड़ जाती है। इस नैतिक पतन का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उनकी कार्य-कुशलता भी कम हो जाती है। यह बुराई भारत के लगभग सभी बड़े नगरों में पाई जाती है।

(११) श्रम संघर्ष —श्रम की कार्य कुशलता के लिए यह आवश्यक है कि मिल मालिक और मजदूर अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार अनुभव करें और एक दूसरे के सहयोग से काम करें। जब श्रमिक तथा मिल मालिक दोनों अपने २ उत्तर-दायित्व से उदासीन हो जाते हैं और सारा दोष एक दूसरे पर रखने लगते हैं तभी इस प्रकार की बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं और श्रम की कार्य-कुशलता भी कम हो जाती है।

श्रम की कार्य-कुशलता में वृद्धि करने के उपाय

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिक के कम कार्य कुशल होने में श्रमिक का इतना अधिक दोष नहीं है जितना सरकार, मिल मालिकों और सामाजिक वातावरण का है। श्रम की कार्य-कुशलता को बढ़ाने के लिए निम्न-लिखित उपाय किए जाने चाहिए :—

(१) टैक्नीकल तथा सामान्य शिक्षा का प्रसार —यह सबसे बड़ी आवश्यकता है जिसे प्राथमिकता मिलनी चाहिए। मिल मालिकों को अपने यहां काम करने वाले श्रमिकों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। सरकार का यह कर्त्तव्य है कि देश औद्योगिक शिक्षा के लिए उचित संख्या में टैक्नीकल स्कूलों तथा कालिजों की व्यवस्था करें। वैसे तो सरकार का ध्यान इस ओर गया है किन्तु अब तक की प्रगति संतोषजनक नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकतर मिलमालिक इस ओर से उदासीन हैं अथवा इसके महत्व को पूरी तरह नहीं समझते।

(२) श्रमिकों के लिए मकानों का निर्माण :—सरकार तथा मिलमालिक मजदूर के रहने के लिए साफ सुथरे मकानों के निर्माण के कार्य पर और अधिक ध्यान दें। गन्दी बस्तियों (slums) की सफाई होनी चाहिए। कुछ नगरों में सरकार

तथा मिल मालिकों के प्रयत्नों से १९४७ के बाद मकान निर्माण के कार्य में कुछ प्रगति हुई है और इसका श्रम की कार्य कुशलता पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। दूसरी पंच वर्षीय योजना में इस कार्य को और अधिक तेजी के साथ करने की व्यवस्था की गई है। फिर भी देश की आवश्यकता को देखते हुये अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब मिल मालिक सच्चे मन से इस कार्य में सरकार का हाथ बटावें।

(३) **मनोरंजन आदि की व्यवस्था**—शराब, जुआ तथा वैश्यागमन की बुराइयों को दूर करने के लिए यह जरूरी है कि शुद्ध मनोरंजन के साधन श्रमिकों के लिए उपलब्ध कराये जावें ताकि काम से लौटने के बाद श्रमिक अपनी थकान को दूर कर सकें और उनका मन बहलाव हो सके। इस हेतु कुछ स्थानों पर श्रम हितकारी केन्द्रों की स्थापना की गई है। यहां रेडियो, सिनेमा, पुस्तकालय खेल कूद आदि की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार की सुविधाओं का श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा मानसिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और उनकी कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। जिन मालिकों ने इस सम्बन्ध में परीक्षण किये हैं उन्हें संतोषजनक परिणाम मिले हैं अतः इन कार्यों के विस्तार की आवश्यकता है।

(४) **काम के घण्टों में कमी और काम की परिस्थितियों में सुधार**—वैसे तो फैक्ट्री कानून द्वारा काम के घण्टों को कम करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु अभी भी भारतीय मजदूर को अपेक्षाकृत बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है। विशेषकर जिन परिस्थितियों में उसे कार्य करना पड़ता है वे अधिक थकान पैदा करने वाली और स्वास्थ्य को खराब करने वाली है। कार्य के बीच कुछ समय का विश्राम तथा भोजन आदि की छुट्टी मिलना आवश्यक है।

(५) **मजदूरी की दर में वृद्धि**—कार्य कुशलता को बढ़ाने के लिये तथा रहन सहन के स्तर में सुधार करने के लिये मजदूरी की दर में वृद्धि होनी चाहिए।

यह हर्ष का विषय है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद से भारत सरकार का ध्यान इस समस्या की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है और प्रथम तथा दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं में श्रम समस्याओं का पूरी तरह ध्यान रखा गया है।

प्रश्न ७३—'श्रम हितकारी कार्यों' से आप क्या समझते हैं? हाल के वर्षों में श्रम हितकारी कार्यों की वृद्धि के लिए सरकार द्वारा कौनसे कानूनी कदम उठाये गए हैं। (बिहार ५३)

What do you mean by 'Labour Welfare Work'? What legislative steps have been taken by the government in recent years for promoting labour welfare? *(Bihar 1953)*

श्रम हितकारी कार्यों का अर्थ: श्रम हितकारी कार्य का अर्थ श्रमिकों को इस प्रकार की सुविधाएं प्रदान करना है जिससे वे शांतिपूर्वक और आराम का जीवन व्यतीत कर सकें और अपनी पूरी शक्ति तथा क्षमता के साथ जी लगाकर काम कर सकें। दूसरे शब्दों में कुशलता पूर्वक कार्य करने के लिए श्रमिकों के सामने उचित

वातावरण उत्पन्न करना ही श्रम हितकारी कार्यों का मुख्य ध्येय है। उदाहरण के लिए श्रमिको के रहने के लिए अच्छे मकानों का प्रबन्ध तथा बिजली पानी की व्यवस्था, उनके बच्चो आदि के लिये डाक्टरी सेवाएं तथा शिक्षा की सुविधाए उनके उचित मनोरंजन तथा खेल कूद की व्यवस्था, तथा यातायात की सुविधाए आदि शामिल हैं। श्रम हितकारी कार्यों का श्रम की कार्य कुशलता से सीधा सम्बन्ध है। इसलिए केवल मानवता के नाते ही नही वरन् उनकी कार्य कुशलता में वृद्धि करने के उद्देश्य से भी श्रम हितकारी कार्य करना आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organization or I. L. O.) ने एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन (Asian Regional Conference) में श्रम हितकारी कार्य के विषय में बताया कि श्रमिक के लिए उनकी परिस्थितियों में ऐसी सेवाओ सुविधाओ आदि का प्रबन्ध किया जाए जिससे काम पर लगे कर्मचारी स्वस्थ और उचित ढग से काम कर सकें। श्रम हितकारी कार्य के सम्बन्ध में I. L. O. ने १९३७ में एक प्रस्ताव पास किया था जिसमें निम्नलिखित कार्य इसमें शामिल किये थे—कैन्टीन की व्यवस्था, आराम तथा खेल कूद की सुविधाएं, काम के स्थान से दूर रहने वाले श्रमिकों के लिए यातायात का प्रबन्ध इत्यादि। इन कार्यों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी बातें भी श्रम हितकारी कार्यों में शामिल की जा सकती हैं।

श्रम हितकारी कार्य कौन करें :—यह एक विवादपूर्ण विषय है। श्रम हितकारी कार्य करने का उत्तरदायित्व मिल मालिकों पर तो है ही परन्तु सरकार श्रम सघ (Trade Unions) तथा जन सेवक संस्थाए भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं। मिल मालिको का अपना हित भी इन बात में है कि उनके श्रमिक सुखी और अधिक कार्य कुशल हैं। इससे आपसी सम्बन्ध ठीक रहते हैं। श्रम सघर्ष कम होते है और श्रम की उत्पादनशीलता बढ जाती है। विगत काल में भारत के कुछ उदार हृदय वाले मिल मालिको ने इस दशा मे महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। बम्बई की लगभग सभी सूती वस्त्र मिलो मे मजदूरो के हित के लिए दवाखाने खोले जा रहे हैं। मिलों में काम करने वाली माताओं के बच्चो की देखभाल की व्यवस्था की गई है। अनाज की सस्ती दुकानें तथा मिलो में कैन्टीन स्थापित किये गये हैं। बहुत सी मिलों ने कर्मचारियो द्वारा सहकारी समितियो की स्थापना को प्रोत्साहन दिया है।

अहमदाबाद की सूती वस्त्र मिलो में दवाखानों की व्यवस्था, मजदूरो के बच्चों के लिए दूध तथा फल आदि का वितरण तथा बच्चो की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है।

दिल्ली क्लाथ तथा जनरल मिल्स मे श्रम हितकारी कार्य के उद्देश्य से एक कर्मचारी हितकारी फन्ड ट्रस्ट स्थापित किया गया है जिसमें प्रतिवर्ष लाभांश आदि में से एक निश्चित रकम जमा कर दी जाती है। इस कोष द्वारा स्वास्थ्य बीमा योजना, बुढ़ापे की पेन्शन, प्रोविडेन्ट फड, लडकी की शादी के लिए धन देने का प्रबन्ध किया

जाता है। यहा के कर्मचारियो का अपना एक बैंक भी है जिसमें वे रुपया जमा करते हैं। लम्बी बीमारी, विशेष चिकित्सा तथा दाह संस्कार आदि के लिए विशेष आर्थिक सहायता का प्रबन्ध है। कर्मचारियो की एक बीमा कम्पनी है, एक नये ढंग का अस्पताल है बच्चो को निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध है और उनकी जानकारी के लिए साप्ताहिक अखबार प्रकाशित करने की व्यवस्था है।

एक अन्य उदाहरण मद्रास की बकिंघम तथा कर्नाटक मिल्स का है। इनके यहा एक दवाखाना तथा महिला डाक्टर का प्रबन्ध है। लड़कियों को घरेलू कामकाज (Home science) की शिक्षा दी जाती है तथा अन्य विविध प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जाती है।

भारतीय जूट मिल एसोसिएशन ने यह समस्त भार अपने ऊपर ले रखा है। उनकी ओर से श्रम हितकारी केन्द्रो की स्थापना की गई है। यह केन्द्र आपसी खेल कूद प्रतियोगिता, संगीत शिक्षा, नाटक वाचनालय, पुस्तकालय तथा रेडियो आदि का प्रबन्ध करते हैं। इनकी एक महिला कल्याण समिति भी है। दवाखानो की व्यवस्था भी की गई है।

श्रम संस्थाओं द्वारा प्रयत्न - श्रम सस्थाओ के पास धन के अभाव के कारण अधिक कार्य करने की क्षमता नहीं। कुछ श्रम सस्थाए अपनी साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकाए प्रकाशित करती है। रात्रि पाठशालाओं का प्रबन्ध करती है और छोटे पैमाने के दवाखानो की व्यवस्था भी करती है। अहमदाबाद की सूती वस्त्र श्रमिक एसोसिएशन ने इस क्षेत्र मे उल्लेखनीय कार्य किया है।

समाज सेवा संस्थाओं द्वारा कार्य—देश की प्रमुख सस्थाओ ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। इन सस्थाओ में Y M C A. का नाम सबसे पहिले आता है। यह एक इसाई मिशनरी सस्था है जिसने अनेक प्रकार के श्रम हितकारी कार्यों मे भाग लिया है। इसके अतिरिक्त बम्बई की समाज सेवा लीग, सर्वेन्टस आफ इण्डिया सोसाइटी, सेवा सदन सोसाइटी आदि ने भी महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

सरकार द्वारा किए गए प्रयत्न—भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा श्रम हितकारी कार्यों को सफल बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए हैं। एक तो कानून द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था करना कि मिल मालिकों को उस कार्य के लिये बाध्य किया जा सके कि जो वर्तमान फैक्ट्री कानून के अन्तर्गत किया गया है और जिसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे। दूसरी ओर राज्य सरकारो द्वारा अपने श्रम विभागो के आधीन श्रम हितकारी केन्द्रो की स्थापना और उनका सचालन। हम इन दोनों प्रकार के कार्यों पर पृथक विचार करेंगे।

(अ) फैक्ट्री कानून में श्रम हितकारी कार्य की व्यवस्था—फैक्ट्री कानून जो १९४८ मे सशोधन रूप से पास किया गया श्रम हितकारी कार्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त १९५१ मे बागान श्रम कानून (Plantation Labour Act) तथा १९५२ के खान कानून (Mines Act) मे भी श्रम हितकारी कार्यों की व्यवस्था। सरकार वे सभी कार्य जो श्रम हितकारी

कार्य कहे जा सकते हैं और जिन्हे पूरा करने के लिये मिल मालिक बाध्य हैं उनकी व्यवस्था इस कानून में करदी गई है। स्वास्थ्य तथा सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की व्यवस्था इस कानून मे है जैसे प्रति व्यक्ति ५०० घन फीट स्थान पीने के लिए साफ पानी का प्रबन्ध, २६० या इससे अधिक कर्मचारियों वाली मिलो मे एक कैन्टीन की व्यवस्था, ५०० या इससे अधिक कर्मचारियो वाली मिलों मे एक श्रम हितकारी अफसर (Labour welfare officer) की नियुक्ति आदि की व्यवस्था है। इसके अलावा सप्ताहिक काम के घण्टे, साल में सवेतन छुट्टी इत्यादि के विषय में स्पष्ट व्यवस्था करदी गई है। इस पर कार्य न करने वाले को सजा दी जाती है।

राज्य सरकारों के श्रम विभागों द्वारा किए जाने वाले कार्य

श्रम हितकारी कार्य करने का मुख्य उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर है। प्रत्येक राज्य में श्रम विभागों की स्थापना कर दी गई जिनकी देख रेख में इस कार्य का संचालन होता है। बम्बई तथा उत्तर प्रदेश की सरकार ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया है।

बम्बई राज्य में सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न प्रकार के ४० श्रम हितकारी केन्द्र हैं। उत्तम श्रेणी के केन्द्रों मे हर प्रकार के खेलो की व्यवस्था है जैसे हाकी, फुटबाल, वालीबाल, अथवा ताश, शतरंज, कैरम इत्यादि। इनमे व्यायाम शाला, स्त्री पुरुषो के पृथक स्नान गृह, तथा बच्चो के खेलो का प्रबन्ध है। इसी प्रकार फिल्म शो रेडियो, नाटक संगीत प्रतियोगिता, वाचनालय, पुस्तकालय, स्कूल तथा डाक्टरी सुविधाओं की भी व्यवस्था है। प्रत्येक केन्द्र का संचालन एक योग्य सरकारी कर्मचारी के हाथो में होता है जो समय समय पर शिक्षा सबन्धी अथवा मनोरंजन के हेतु विभिन्न प्रकार के आयोजन करता रहता है। औरतो की शिक्षा तथा मनोरंजन का भी प्रबन्ध करता है। श्रम कार्यकर्ताओं को शिक्षा देने और नागरिकता की शिक्षा के लिये स्कूल खोले गए हैं।

उत्तर प्रदेश के लगभग सभी औद्योगिक नगरो में श्रम हितकारी केन्द्रो की स्थापना हो चुकी है। विशेष रूप से कानपुर नगर में इस प्रकार के कई केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रो में लगभग वे सभी कार्य होते हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त खेल कूद प्रतियोगिता, कवि सम्मेलन आदि का आयोजन, संगीत की शिक्षा, गर्भवती स्त्रियो और बच्चो को दूध का वितरण, चर्खा चलाने की शिक्षा तथा अन्य कई प्रकार के कार्य किये जाते हैं। बिहार सरकार ने भी जमशेदपुर तथा कटिहार में दो श्रम हितकारी केन्द्रों की स्थापना की है। पश्चिम बंगाल राज्य मे भी इसी प्रकार के श्रम हितकारी केन्द्र खोले गए हैं जिनका उद्देश्य इस प्रकार है —

(अ) मनोरंजन के साधनो की व्यवस्था करना।
(ब) बच्चो और बड़ो की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करना।
(स) डाक्टरी सुविधाओं का प्रबन्ध करना।
(द) श्रम संघ कार्यकर्ताओं का निर्देशन।

इसी प्रकार देश के अन्य राज्यों मे भी श्रम हितकारी कार्य राज्य सरकारों द्वारा किये जा रहे हैं।

भारतीय रेलों मे काय करने वाले कर्मचारियो तथा अन्य सरकारी उद्योगो के श्रमिको की सुविधाओ और हितो का विशेष ध्यान रखा जाता है और उन्हें हर प्रकार की सुविधा प्रदान की जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रम हितकारी कार्य मानवता के विचार से तथा श्रम की कार्य कुशलता की वृद्धि के विचार से आवश्यक हैं और सरकार मिलमालिकों, श्रम सघो तथा समाज सेवा सस्थाओ को अपनी क्षमता के अनुसार इस कार्य मे योग देना चाहिए।

प्रश्न ७४—भारत सरकार द्वारा औद्योगिक श्रम की सहायतार्थ 'सामाजिक सुरक्षा' प्रदान करने के लिए किए प्रयत्नों का उल्लेख कीजिए। क्या आप इस प्रगति को पर्याप्त समझते हैं? (आगरा ५६)

अथवा

१६४८ के 'कर्मचारी राज्य बीमा कानून' की मुख्य बातो की विवेचना कीजिए। इससे श्रमिकों की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा? (पटना ५२)

Give a brief account of the social security measures adopted by the Government of India to help industrial labour Do you regard the progress as adequate? *(Agra 56)*

Or

State the main provisions of the Employees State Insurance Act of 1948 How does it affect the positions of the workers? *(Patna 52)*

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ

सामाजिक सुरक्षा (Social security) एक व्यापक शब्द है। इसका अर्थ है कि मनुष्य की उन सभी विपदाओ से रक्षा की जानी चाहिए जिनका उसे अपने जीवन काल मे सामाजिक सदस्य होने के नाते सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए भूख, बेरोजगारी, बुढापा, गरीबी बीमारी आदि से उनकी रक्षा की जाय ताकि वह भयरहित जीवन व्यतीत कर सकें। एक लोक हितकारी (Welfare State) मे सरकार अथवा समाज का उत्तरदायित्व है कि वह मनुष्य को इन सभी विपदाओ से सुरक्षा प्रदान करे।

पूरे मानव समाज को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना किसी भी देश के लिए सम्भव नहीं है किन्तु कुछ सीमित क्षेत्रो मे औद्योगिक श्रमिको को सामाजिक सुरक्षा का लाभ पहुचाया जा सकता है।

इगलैंड मे बेवरिज योजना (Beveridge Plan) के आधीन बीमारी का बीमा तथा बुढापे की पेन्शन आदि की सुविधाएं प्रदान की गई हैं। भारत सरकार की ओर से श्री अदारकर (Adarkar) इस योजना का अध्ययन करने गए

थे और एक सीमित क्षेत्र मे कुछ अंशो मे भारत मे इसे लागू करने की उन्होने भारत सरकार के सामने पेश की जिसे सरकार ने मन्जूर कर लिया था। १६४८ मे उसी के आकार पर एक कानून पास किया जिसका उल्लेख हम नीचे करेंगे।

कर्मचारी राज्य बीमा कानून १६४८—यह कानून भारतीय ससद द्वारा १६४८ मे पास किया गया। यह उन सभी कारखानो पर लागू किया जा सकता है जिनमे शक्ति का प्रयोग होता है और २० या उससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं। यह फौज मे काम करने वाले व्यक्तियो तथा ४०० रुपये प्रति मास से अधिक वेतन पाने वालो पर लागू नही होता। शेष सभी प्रकार के मजदूरो तथा दफ्तर के बाबुओं पर लागू होता है।

प्रशासन—इस योजना का प्रशासन करने के लिए कर्मचारी राज्य बीमा निगम (Employees State Insurance Corporation) की स्थापना की गई है। इसके ३८ सदस्य हैं जिनमे मजदूरो, मालिको, भारत सरकार तथा राज्य सरकारो के प्रतिनिधि हैं। इनके अतिरिक्त डाक्टरी पेशे के लोगो और भारतीय ससद के सदस्य भी इनके सदस्य हैं। इनमे से १३ सदस्यों की एक समिति निगम के सामान्य प्रशासन की देखभाल करती है। डाक्टरी सुविधाए प्राप्त करने के विषय मे २८ व्यक्तियो की एक अन्य समिति परामर्श देती है निगम का सबसे बड़ा अधिकारी एक डायरेक्टर जनरल है जिसकी सहायता के लिये चार अन्य सहायक अफसर हैं। निगम द्वारा देश के कुछ प्रमुख औद्योगिक केन्द्रो मे प्रादेशिक तथा स्थानीय दफ्तर स्थापित किये गये हैं।

निगम के वित्तीय साधन—कर्मचारी राज्य बीमा योजना को चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है। वह भारत सरकार, प्रान्तीय सरकारो, मिल मालिको तथा मजदूरो द्वारा प्राप्त किया जाता है। भारत सरकार समस्त योजना के प्रशासन का भार उठाती है और उसका व्यय स्वयं करती है। प्रान्तीय सरकारें योजना के आधीन अस्पतालो आदि की व्यवस्था करती है। मजदूर अपने साप्ताहिक वेतन के आधार पर २ आने से १ रु० ४ आने प्रति सप्ताह देते हैं। मिल मालिकों को भी लगभग इसका दोगुना धन देना पडता है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत मिलने वाली सुविधायें

इस योजना के अन्तर्गत कई प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं—

(१) **डाक्टरी सुविधा**—जो कर्मचारी इस योजना के आधीन अपना बीमा कराए हुए होते हैं उन्हे बीमारी के दिनों मे मुफ्त इलाज की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। सरकारी अस्पतालो मे उनके लिए पृथक स्थान रहता है और निगम स्वय अपने दवाखाने खोलता है तथा डाक्टरो की नियुक्ति करता है। इन दवाखानो से मामूली बीमारी की दवा मुफ्त मिलती हैं।

(२) **बीमारी में आर्थिक सहायता**—यदि बीमार व्यक्ति लगभग ६ महीने पूर्व से अपना बीमा कराए हुए है और बीमे की साप्ताहिक किश्ते बराबर देता आ

रहा है तो बीमारी के दिनों में उसे नकद आर्थिक सहायता भी दी जाती है। यह सहायता उसकी औसत मजदूरी के हिसाब से दी जाती है।

(३) मातृत्व लाभ सुविधा (Maternity Benefit)—यह सुविधा केवल स्त्री कर्मचारियों को उस काल में दी जाती है जब उनके बच्चा पैदा होने वाला होता है। बच्चे के जन्म से ६ सप्ताह पूर्व और ६ सप्ताह बाद तक यह सुविधा मिल सकती है। इससे उन्हें प्रतिदिन १२ आने के हिसाब से नकद सहायता मिलती है। इस सुविधा के साथ कुछ शर्तें भी रहती हैं जैसी कि अन्य सुविधाओं के लिए हैं।

(४) अपाहिजों की सुविधा—जो कर्मचारी काम करते समय चोट फेंट के कारण अपाहिज हो जाते हैं और काम करने के योग्य नहीं रहते उन्हें नकद आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था है। यदि चोट अस्थाई है तो ठीक होने तक औसत वेतन का ½ भाग सहायता के रूप में मिलता है। इसके विपरीत यदि अपाहिजपन स्थाई है तो जन्म भर को पेन्शन दी जाती है।

(५) परिवार वालों को सुविधा— जिन कर्मचारियों का बीमा है और जो काम करते समय हादसे के कारण मर जाते हैं उनके परिवार वालों को (पत्नी तथा बच्चों) आर्थिक सहायता दी जाती है। पत्नी को उस समय तक सहायता दी जाती है जब तक वह दुबारा शादी न करले। इसी प्रकार लडको को १५ साल की आयु तक और अविवाहित लडकियों को १३ साल की आयु तक सहायता मिलती है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना की प्रगति

यह योजना सर्व प्रथम १९५३ मे कानपुर तथा दिल्ली राज्य मे लागू की गई थी। इसके बाद पंजाब के कुछ क्षेत्रों मे भी जिनमे अमृतसर, अम्बाला, जलधर, लुधियाना तथा जगाधरी आदि शामिल हैं लागू की गई। इसके बाद १९५४ मे नागपुर तथा बम्बई नगर म इसे लागू किया गया। १९५५ मे कोयम्बटूर, इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन तथा रतलाम मे लागू की गई। इस समय देश के लगभग १३ लाख कर्मचारी इसमे लाभ उठा रहे हैं। इसे २२ अन्य औद्योगिक केन्द्रों मे लागू करने की योजना है जिससे ८५ हजार कर्मचारियों को और लाभ होगा।

सामाजिक सुरक्षा के अन्य उपाय

हम कर्मचारी राज्य बीमा योजना का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं। इस योजना के लागू होने से पूर्व भी भारत मे कई अन्य कानून पास किये जा चुके हैं जिनका उद्देश्य मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना ही समझना चाहिये। इनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण है।

(१) कर्मचारी मुआवजा कानून (१९२३)—इस कानून का उद्देश्य यह है कि काम करते समय जिन कर्मचारियों को चोट आ जाती है अथवा जो अपाहिज हो जाते हैं उन्हें मिल मालिकों से मुआवजा दिलवाना है। इस कानून मे कुछ ऐसे दोष हैं कि जिनके कारण मिल मालिक बहुधा मुआवजा देने से बच जाते है और मजदूर को कोई सहायता नहीं मिल पाती। अब जिन स्थानों पर कर्मचारी राज्य बीमा योजना लागू हो गई है वहा इस कानून का स्थान बीमा योजना ने ले लिया है

और उसी योजना के आधीन सब प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। आशा की जाती है कि समस्त देश में राज्य बीमा योजना लागू हो जावेगी तब इस कानून की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

(२) कोयला खान प्राविडेन्ट फंड कानून (१६४८)—इस कानून के द्वारा भारत सरकार को यह अधिकार मिल गया है कि वह कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों को प्राविडेन्ट फंड तथा बोनस के वितरण की योजना बनाकर लागू कर सके। इस कानून से कोयले की खान में काम करने वाले प्रत्येक मजदूर को बोनस तथा प्राविडेन्ट फंड का लाभ अनिवार्य रूप से प्राप्त होता है।

(३) प्राविडेंट फंड कानून (१६५२)—५० या इससे अधिक व्यक्ति जिस औद्योगिक संस्था में कार्य करते हैं और जो तीन साल से अधिक से कार्य कर रहा है उसमें कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी को प्राविडेंट फंड की सुविधाएं प्रदान कर दी गई हैं। मजदूर अपने वेतन में से १ आना रुपया के हिसाब से कटौती कराते हैं और इसी दर से मिल मालिकों को भी उसमें धन जमा करना पड़ता है। इस समय देश के ३२ उद्योगों में काम करने वाले २८ लाख मजदूर इससे लाभ उठा रहे हैं। प्राविडेंट फंड में लगभग १०० करोड़ रुपया जमा हो गया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत में सामाजिक सुरक्षा की दिशा में कुछ प्रारम्भिक कार्य किये गये हैं किन्तु इनकी अब तक प्रगति को देखकर यह कहा जा सकता है कि भारत इस क्षेत्र में काफी आगे बढ़ चुका है। सामाजिक सुरक्षा की सफलता में अनेक बाधाएं हैं। भारत जैसे देश में समाज सुरक्षा की योजनाओं को पूरी तरह लागू करने के लिये बहुत अधिक वित्तीय साधनों की आवश्यकता है। यह भार सरकार पूरी तरह ग्रहण नहीं कर सकती। मिल मालिक इस विषय में सरकार के साथ पूरी तरह सहयोग करने को तैयार नहीं हैं। उनका कहना है कि उद्योग पर एक तो कर का भार बहुत अधिक है दूसरे श्रम की कार्यक्षमता बहुत कम है। इसलिए जब तक उद्योग की उत्पादन क्षमता न बढ़े उद्योग इन नई योजनाओं के भार को सहन नहीं कर सकता। सरकार भी इस विषय में शीघ्रता नहीं करना चाहती। यही कारण है कि सामाजिक सुरक्षा की योजना का विस्तार धीरे धीरे किया जा रहा है।

प्रश्न ७५— भारत में औद्योगिक श्रम की मकानों की समस्या क्या है? मिल मालिकों अथवा सरकार द्वारा इसके समाधान के लिए क्या प्रयत्न किये गये हैं?

What is the problem of housing of industrial labour in India ? What steps have been taken by the Employer or the State to solve it ? *(Lucknow 47)*

उत्तर—औद्योगिक मकानों की समस्या—भारत में औद्योगिक श्रमिक मकान की समस्या से सबसे अधिक पीड़ित है। कलकत्ता, बम्बई, कानपुर तथा अन्य बड़े औद्योगिक नगरों में मजदूरों के रहने के लिये जिस प्रकार के मकान उपलब्ध हैं उन्हें

मकान कहना मकान शब्द का अपमान करना है। गन्दी बस्तियो मे श्रमिको को इस प्रकार की छोटी तथा अन्धेरी कोठरियो मे रहना पडता है जो किसी भी प्रकार मनुष्यो के रहने योग्य नही है। इनम साफ हवा धूप तथा रोशनी का कोई प्रबन्ध नहीं होता। यह जाडो मे सर्द गर्मियो मे गर्म और बरसात मे सील से भरी रहती हैं। इतना ही नही एक २ कोठरी मे ६ अथवा ७ आदमी रहते हैं। उन्हे वही खाना पकाना, वही सोना तथा अपना सामान रखना पडता है। ऐसी दशा मे श्रमिक का स्वास्थ्य खराब होजाना अथवा उसकी कार्य कुशलता का घट जाना कोई आश्चर्य की बात नही है। इसलिए इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि इन गन्दी बस्तियो को समाप्त करके नई मजदूर बस्तियो का निर्माण किया जाय और इस कार्य को अन्य श्रम हितकारी कार्यों के साथ प्राथमिकता दी जाए।

समस्या का समाधान और उसकी प्रगति—औद्योगिक मकानो की समस्या कोई नई समस्या नही है। लगभग सभी औद्योगिक देशो मे यह समस्या औद्योगिक विकास के साथ २ उत्पन्न होती है और इसके समाधान के लिए प्रयत्न करने पडते हैं। सर्व प्रथम तो मिल मालिको का यह कर्त्तव्य है कि वे पने कार्यों मे कार्य करने वाले श्रमिको के लिए आरामदायक मकानो का निर्माण करावें। यदि वे किसी कारण इस कार्य को करने मे असफल रहे तो सरकार को इनमे योग देना चाहिये। इसके लिए सरकार के पास एक स्पष्ट नीति तथा योजना होनी जरूरी है। भारत के कुछ प्रमुख मिलमालिको ने अपने मजदूरो के वास्ते सुन्दर श्रम बस्तियो का निर्माण कराया है जिनमे बिजली, पानी तथा सभी प्रकार की आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध हैं। टाटानगर, जमशेदपुर मोदीनगर मेरठ डालमिया नगर तथा इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। इतना होते हुए भी समस्या अभी भी उतनी ही जटिल है जितनी पहले थी। इसका एक कारण तो यह है कि देश का औद्योगिक विकास हो रहा है और उसी के साथ २ औद्योगिक मकानो की आवश्यकता भी बढती जा रही है।

सरकार की नीति—भारत सरकार ने औद्योगिक मकानों के सम्बन्ध मे १९५० के बाद से विशेष रुचि लेना प्रथम प्रारम्भ किया। पचवर्षीय योजना मे इस कार्य के लिए महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। योजना आयोग (Planning Commission) के सुझाव पर १९५२ मे सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास (Subsidised Industrial Housing Scheme) योजना पर कार्य शुरू किया गया और प्रथम योजना के कार्य काल मे इस योजना की काफी प्रगति भी हुई।

सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना (Subsidised Industrial Housing Scheme) इस योजना के द्वारा राज्य सरकारो, आवास बोर्डों (Housing Boards), मिल मालिको तथा सहकारी मकान निर्माण समितियों (Cooperative House-Building Societies) के माध्यम से औद्योगिक मकान निर्माण कार्य को प्रोत्साहन देना है। यह योजना सर्व प्रथम उन औद्योगिक

मजदूरो के हेतु लागू की गई जो १६४८ के फैक्ट्री कानून के आधीन आते थे। अब यह कोयला तथा अबरक (Coal & Mica) की खानो मे काम करने वाले मजदूरो को छोडकर शेष उन मजदूरो के लिए लागू कर दी गई है जो १९५२ के भारतीय खान कानून (Mines Act of 1952) के आधीन आते हैं।

इस योजना के अन्तर्गत भारत सरकार औद्योगिक मकानो के निर्माण के लिए अनुदान तथा कर्ज के रूप मे आर्थिक सहायता प्रदान करती है। राज्य सरकारो को एक कमरे वाले मकानो के निर्माण की ५० प्रतिशत लागत अनुदान के रूप मे और ५० प्रतिशत कर्ज के रूप मे दी जाती है। कलकत्ता तथा बम्बई म इस प्रकार के मकान की औसत लागत ४ ०० रुपये तथा अन्य स्थानो पर २७०० रुपये निर्धारित की गई है। इसी प्रकार सहकारी मकान निर्माण समितियों तथा मिल मालिको को भी अलग अलग अनुपात मे आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजनाओं की प्रगति—प्रथम पचवर्षीय आयोजन म इस कार्य के लिए ३८ ५ करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी। १६५७ तक २५ ५६ करोड रुपये की कुल स्वीकृति इस योजना के अन्तर्गत दी गई। प्रथम योजना के अनुसार कुल ७६६७६ मकान बनाने का अनुमान था। निम्नलिखित तालिका विभिन्न राज्यो मे बनने वाले मकानो की सख्या को स्पष्ट करती है—

बम्बई	१६१६५ मकान
उत्तर प्रदेश	६१७०६ "
हैदराबाद	५६२६ "
मध्य प्रदेश	५१८१ "
मध्य भारत	३४४४ "

नवीनतम आकडो के अनुसार १६५७ तक लगभग ६६७०० मकान बन कर तैयार हो चुके हैं। शेष बन रहे थे और इस वर्ष तक बन कर पूरे हो जाने की आशा है। प्रथम योजना मे जितने मकानो के बनने की स्वीकृति दी गई थी उनमे से लगभग ८५ प्रतिशत राज्य सरकारो द्वारा बनाये गये हैं।

निम्नलिखित तालिका आर्थिक सहायता की मात्रा तथा बनने वाले मकानो की स्वीकृत सख्या की ओर सकेत करती है।

	स्वीकृत आर्थिक सहायता (करोड रुपयो मे)			स्वीकृत मकानो की सख्या
	कर्ज	अनुदान	योग	
१–राज्य सरकारो को	१२ ०८	११ ३७	२३ ४५	७५३८५
२–मिल मालिको को	० ८३	० ९३	१ ७६	१३१७१
३–सहकारी समितिया को	२५	० ३८	३८	१७४७
	१३ १६	१२ ४३	२५·५६	९०३०३

हाल ही मे ३·६८ करोड रुपए की लागत से १३४७६ और मकान बनाने की योजना पर विचार किया जा रहा था और यह आशा है कि उन पर कार्य शुरु हो गया होगा।

दूसरी पंचवर्षीय योजना मे इस कार्य के लिये ४५ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है और सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत १२८००० मकानो का निर्माण दूसरी योजना के काल मे होने की आशा है।

गन्दी बस्तियों की सफाई—बडे २ औद्योगिक नगरो मे गन्दी बस्तिया स्थापित हो गई हैं जिन्हें हाते, चाल, बस्ती तथा अन्य कई नामो से पुकारा जाता है। राज्य सरकारो को आदेश दिया है कि वे इन बस्तियों की जाच पडताल करें और धीरे २ पूर्व निश्चित योजना के अनुसार इन्हे समाप्त करके इनके स्थान पर नये मकानों का निर्माण करें। इस कार्य पर जो व्यय होगा उसका २५% अनुदान के रूप मे तथा ५०% तीस साल के कर्जे के रूप मे भारत सरकार देगी। शेष २५ प्रतिशत का प्रबन्ध राज्य सरकार को अपने पास से करना होगा। कानपुर, दिल्ली, कलकत्ता तथा अन्य बडे नगरो के लिए गन्दी बस्ती सफाई योजनाएँ बनाली गई हैं।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे इस कार्य के लिए २० करोड रुपया व्यय करने की व्यवस्था की गई है। इन बस्तियो के स्थान पर ११०००० नये मकानो का निर्माण किये जाने की आशा है।

औद्योगिक श्रमिको के अतिरिक्त बागान (Plantations मे कार्य करने वाले मजदूरो के लिए भी मालिको द्वारा मकान की व्यवस्था करना अनिवार्य कर दिया गया है जो छोटे बागान के स्वामी हैं और स्वय मकान बनाने का कार्य नही कर सकते वहा राज्य सरकारें इस कार्य को करेंगी और भारत सरकार से उन्हे आर्थिक सहायता प्राप्त होगी। इस विषय म १९५६ मे एक योजना तैयार करली गई है और राज्य सरकारो के पास विचार के लिये भेज दी गई है।

प्रश्न ७६—भारत मे औद्योगिक श्रम के लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये। इसकी सफलता की क्या सम्भावना है?

(पटना ५२)

Point out the necessity of fixing minimum wages for Industrial Labour in India. Indicate the prospects of the success

(Patna 52)

न्यूनतम मजदूरी का अर्थ—न्यूनतम मजदूरी का अर्थ कानून द्वारा निर्धारित मजदूरी की उस दर से है जिससे कम मजदूरी किसी भी व्यक्ति को न दी जाये। दूसरे शब्दों में, कानून मिल मालिको को कम से कम न्यूनतम मजदूरी देने को बाध्य करे ताकि मजदूर कम से कम एक न्यूनतम स्तर का जीवन व्यतीत कर सकें। १९२८ मे सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ (International Labour Organization) ने अपने सम्मेलन में सदस्य देशों द्वारा न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित करने का प्रस्ताव पास किया था। १९३१ मे शाही श्रम उद्योग (Royal Commission

on Labour) ने भी भारत मे न्यूनतम मजदूरी की दर लागू करने की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया था।

भारत मे न्यूनतम मजदूरी की आवश्यकता— भारत भी उन देशो मे से एक है जहा प्रचलित मजदूरी की दर बहुत कम है और श्रमिको का रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा है। इसका उनकी कार्य कुशलता पर भी बुरा प्रभाव पडता है। मजदूरो को यदि जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी (Living Wage) न मिले तो कम से कम इतनी मजदूरी तो मिलनी ही चाहिए जिसमे वे अपना और अपने परिवार का पेट भर सकें, एक न्यूनतम सुविधाए प्रदान करने वाले मकान मे रह सकें और सर्दी गर्मी से बचने योग्य कपडे पहिन सकें। इससे कम मजदूरी करना उनके साथ सामाजिक तथा नैतिक अन्याय है। भारत मे मजदूर वर्ग का शोषण बहुत पहिले से होता आ रहा है किन्तु इस ओर कभी सरकार का ध्यान नहीं गया। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद देश की राष्ट्रीय सरकार ने इस विषय में कुछ आवश्यक कदम उठाये हैं।

देश मे कुछ उद्योग ऐसे भी हैं जिनमे कार्य करने वाले मजदूरों को बहुत अधिक परिश्रम करना पडता है। उनका स्वास्थ्य बिगड जाता है और उन्हे नाना प्रकार के रोग लग जाते हैं। ऐसे उद्योगो को परिश्रमशील उद्योग (Sweated Industries) कहते हैं। इनमे कार्य करने वाले म दूरो की स्थिति बहुत ही दयनीय है। उनमे आपसी सगठन बहुत कम है। उनकी मजदूरी की दर भी बहुत नीची है। इसलिए मजदूरो के लिए न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित करना परम आवश्यक है।

न्यूनतम मजदूरी कानून १९४८ (Minimum Wages Act 1948)– भारतीय ससद ने १९४८ मे न्यूनतम मजदूरी कानून पास किया जिसके अनुसार कुछ चुने हुए उद्योगो और व्यवसायो मे काम करने वाले मजदूर के लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई। यह वे उद्योग हैं जिनमे बहुत अधिक परिश्रम की आवश्यकता पडती है और काम को देखते हुये जिनमे मजदूरी की दर बहुत कम है। इनमे चावल और आटे की मिलें, तेल मिलें चमडे के कारखाने, मोटर यातायात तथा सडकें बनाने आदि के कार्य शामिल हैं।

इस कानून का उद्देश्य विशेष रूप से उन श्रमिको के लिये जीवन निर्वाह योग्य एक न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करना है जो पूरी तरह सगठित नहीं हैं। यह कानून वैसे तो एक उच्च आदर्श को लेकर बनाया गया है किन्तु इस समय इसका क्षेत्र बहुत सीमित रखा गया है। देश मे ऐसे कितने ही व्यवसाय है जिनमे कार्य करने वाले मजदूर शोषण का शिकार हैं किन्तु उनकी सहायता की कोई व्यवस्था इस कानून मे नहीं है। राज्य सरकारों को यह अधिकार अवश्य दे दिया गया है कि वे जिस उद्योग पर उचित समझें तीन महीने का नोटिस देकर यह कानून लागू कर सकती हैं।

इस कानून मे यह व्यवस्था है कि राज्य सरकारें किसी भी उद्योग पर इसे तभी लागू कर सकती हैं जब उसमे कम से कम १००० व्यक्ति काम करते हैं। इसका प्रभाव यह है कि १००० से कम व्यक्तियों वाले उद्योगो मे काम करने वाले मजदूर इसका कोई लाभ नहीं उठा सकते।

न्यूनतम मजदूरी की दर किस प्रकार निर्धारित की जाए यह एक जटिल प्रश्न है। इस विषय पर कानून मे कोई विशेष व्यवस्था नही की गई है। न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित करने का कार्य जिन समितियो द्वारा किया जाता है उनमे मालिको तथा कर्मचारियो के समान संख्या मे प्रतिनिधि होते हैं किन्तु उनके चुनाव तथा नियुक्ति की व्यवस्था दोषपूर्ण है।

न्यूनतम मजदूरी कानून मे १९५४ मे कुछ संशोधन (Amendments) किये गये है। कानून मे एक सूची है जिसमे उन उद्योगो का उल्लेख किया गया है जिन पर यह कानून लागू किया जा सकता है। इस सूची के दो खंड हैं। प्रथम खंड मे जिन उद्योगो का उल्लेख है उन पर यह कानून लगभग सभी राज्यो मे लागू हो चुका है। सूची का दूसरा खण्ड कृषि मजदूरो से सम्बन्ध रखता है। कृषि मजदूरो के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना और भी जटिल कार्य है। क्योंकि देहातो मे मजदूरी के भुगतान का कोई निश्चित तरीका नही है। इस क्षेत्र मे कानून को लागू करने के लिये समस्या को पूरी तरह जाच पड़ताल करने की आवश्यकता अनुभव की गई है। कुछ राज्यो मे स्थानीय रूप से कृषि मजदूरो के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करदी गई है।

न्यूनतम मजदूरी कानून की सफलता की सम्भावना—जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण एक उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिये किया जाता है। वह आदर्श यह है कि कुछ समय के पश्चात देश के प्रत्येक मजदूर को चाहे वह किसी भी प्रकार के व्यवसाय मे कार्य करता है एक जीविका योग्य (Living Wage) निर्धारित करना है जीविका योग्य मजदूरी उसे कहते हैं जिससे मजदूर एक अच्छा रहन सहन का स्तर बनाये रख सके कुशलता पूर्वक कार्य करे और उसका जीवन सामान्य रूप से सुखमय हो। जीविका योग्य मजदूरी सबसे बाद की सीढ़ी है। इससे पूर्व न्यायपूर्ण मजदूरी (Fair Wage) का प्रश्न आता है। न्यायपूर्ण मजदूरी का अर्थ यह है कि श्रमिक अपनी कार्य कुशलता को बनाये रख सके और सामान्य खर्चों के बाद कुछ बचत भी करता रहे। यह हमारे आदर्श के बीच की सीढ़ी है। भारत मे न्यायपूर्ण मजदूरी की दर निर्धारित करने से सम्बन्धित कानून संसद के सामने पेश हो चुका है किन्तु अभी तक पास नहीं हुआ। न्यायपूर्ण मजदूरी के विषय मे यह कहा गया है कि यह न्यूनतम मजदूरी से अधिक और जीविका मजदूरी से कुछ कम होनी चाहिये। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत मे जीविका योग्य मजदूरी अथवा न्यायपूर्ण मजदूरी भी सारे देश के मजदूरो पर लागू नही हुई है।

न्यूनतम मजदूरी कानून मे कुछ दोष हैं जिनके कारण इसकी प्रगति बहुत धीमी रही है। सर्व प्रथम तो यह कानून बहुत सीमित क्षेत्र मे कुछ थोड़े से उद्योगो तथा व्यवसायो में लागू किया गया है। दूसरे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय कौनसी विधि अपनाई जावे इस विषय मे कानून मे कोई विशेष उल्लेख नही है। तीसरी बात यह है कि मिल मालिक इसके अधिक पक्ष में नही हैं क्योंकि उनका मत

यह है कि न्यूनतम मजदूरी उसी समय लागू की जानी चाहिये जब उद्योग उसका भार सहन करने की क्षमता रखता हो। वर्तमान समय मे उनके अनुसार भारतीय उद्योग इस स्थिति मे नही है कि न्यूनतम मजदूरी अथवा न्यायपूर्ण मजदूरी का भार सहन कर सके।

हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार की कोई भी योजना उसी समय सफल हो सकती है जब देश की राष्ट्रीय आय मे समुचित वृद्धि हो। इसके लिए उद्योगों की उत्पादन क्षमता बढ़नी चाहिए। यह तभी हो सकता है जब उनमें कार्य करने वाले कार्य कुशल हो। भारत मे राष्ट्रीय आय मे अभी तक इस मात्रा मे वृद्धि नही हो रही है कि इस प्रकार की योजनाए सारे देश पर लागू की जा सकें। यह बात स्पष्ट है कि मजदूरी आदि का वितरण राष्ट्रीय आय में से ही होना है। यदि मजदूरों को उनकी सेवाओ के अनुसार उचित मजदूरी मिल रही हो तो मजदूरी की दर मे वृद्धि की जा सकती है किन्तु स्थाई रूप से सुधार की योजना तभी लागू हो सकती है जब राष्ट्रीय आय मे भी उसी अनुपात मे वृद्धि हो ताकि उद्योग उसके भार को सहन कर सके।

उपरोक्त विवेचन मे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि निकट भविष्य के भारत मे सामान्य रूप से न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण की कोई सम्भावना नहीं। इसके लिये अभी काफी समय चाहिए।

प्रश्न ७७—भारत मे श्रम सघ आन्दोलन के विकास पर प्रकाश डालिए। इसकी मन्द गति के क्या कारण रहे हैं ? इसे मजबूत बनाने के लिए अपने सुझाव दीजिए।

(आगरा ५६; पटना ५५; इलाहाबाद ५०; ४८ राजपूताना ५३; ५५ पजाब ५६; ४८)

Trace the growth of Trade Union Movement in India. Account for its slow progress and offer suggestions to make it strong

(Agra 56, Patna 55, Allahabad 50, 48, Rajputana 53, 55, Punjab 56, 48)

भारत मे श्रम आंदोलन का विकास

भारत मे २० वी शताब्दी के आरम्भ मे कुछ श्रम सघ (Trade Unions) थे जिनका कार्य क्षेत्र बहुत सीमित था। इन श्रम सघो का मुख्य कार्य हड़तालो का आयोजन करना था क्योकि इसके अतिरिक्त इनके पास अन्य और कोई प्रोग्राम नहीं था। भारत मे प्रारम्भिक काल मे श्रम आन्दोलन की सन्तोष जनक प्रगति नही हुई जिसके अनेक कारण थे। भारत मे न तो उस तीव्र गति से औद्योगिक विकास हुआ जैसा कि अन्य देशो मे हुआ था और न देश मे वह वातावरण उत्पन्न हो सका जो एक सगठित तथा मजबूत श्रम आन्दोलन के लिये आवश्यक है।

श्रम आन्दोलन के सगठन का वास्तविक प्रयत्न १९१८ मे तथा उसके बाद के वर्षों मे किया गया। यह कहना गलत न होगा कि स्वतन्त्रता आंदोलन के साथ

साथ भारतीय श्रम आदोलन ने भी जोर पकडा और मजदूर वर्ग मे एक नई प्रकार की चेतना जागृत हुई। १६२० मे महात्मा गाधी ने अहमदाबाद सूती मिल मजदूर सघ स्थापित किया जिससे सारे देश के मजदूरो को सगठित होने और अपनी आवाज बुलन्द करने की प्रेरणा मिली। इससे पूर्व १६१६ मे जिनेवा मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ (Int rnational Labour Organisation) की स्थापना हो चुकी थी जिसमें भाग लेने के लिये भारत से मजदूर प्रतिनिधि भी गए थे। इससे भारतीय श्रम आदोलन को बडा प्रोत्साहन मिला और राष्ट्रीय आधार पर श्रम आदोलन को सगठित करने के लिये १६ ० म अखिल भारतीय श्रम सघ काग्रेस (All India Trade Union Congress) की स्थापना हुई।

श्रम सघ कानून १६२६ (Trade Union Act 1926)—प्रसिद्ध मजदूर नेता एन० एम० जोशी (N M Joshi) ने सर्व प्रथम १६२ मे श्रम सघो के सरक्षण के लिये एक उचित कानून पास करने का प्रस्ताव पेश किया। १६२६ मे श्रम सघ कानून पास किया गया जिसके अनुसार श्रम सघो के रजिस्ट्रेशन की व्यवस्था की गई। रजिस्टर्ड ट्रेड यूनियन को अपने उद्देश्य की घोषणा करनी पडती थी। अपने सदस्यों की सूची तैयार करनी पडती थी। सघ के हिसाब किताब की सालाना जाच अनिवार्य थी। सघ के कम से कम ५ प्रतिशत पदाधिकारी उसी उद्योग के कर्मचारी होने चाहिए जिनके विरुद्ध हडताल या औद्योगिक झगडों के सम्बन्ध मे कोई मुकदमा नही चलाया जा सकता। सघ का पैसा मजदूरो के हित के कार्यों पर व्यय किया जा सकता था यद्यपि राजनैतिक प्रचार के लिये उन्हे एक अलग कोष स्थापित करने का अधिकार था।

१६२७ के बाद कम्युनिस्ट नेताओ का प्रभाव श्रम आन्दोलनों मे बढने लगा जिसके कारण श्रम नेताओ के विचार मे मतभद हो गया। इसके फलस्वरूप १६२६ मे नेशनल ट्रेड यूनियन फैडरेशन (National Trade Union Federation) श्री एन० एम० जोशी की अध्यक्षता मे स्थापित हुई क्योंकि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस के नेता श्री रानाडे और श्री देशपाण्डे थे। १६३८ मे श्री गिरि (V V Giri) के प्रयत्नो से इन दोनो सस्थाओं का एकीकरण हो गया।

दूसरे महायुद्ध के आरम्भ होते ही श्रम सघ मे फिर फूट पड गई और १६४० मे श्री एम० एन० राय ने इण्डियन फैडरेशन ऑफ लेबर (Indian Federation of Labour) की स्थापना की। १६४७ के बाद सरदार पटेल तथा अन्य काग्रेसी नेताओं के प्रयत्न से भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काग्रेस (Indian National Trade Union Congress) की स्थापना की। १६४६ मे समाजवादियो ने हिन्द मजदूर सभा की स्थापना की। इस प्रकार इस समय भारत में अखिल भारतीय स्तर के ४ सघ हैं।

(१) भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (I N T U.C)
(२) हिन्द मजदूर सभा
(३) यूनाइटेड ट्रेड यूनियन काग्रेस (U T U C.)

(४) अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन (A.I. T. U C)

श्रम संघ संशोधन कानून १६४७ (Trade Union Amendment Act) १६४७ मे १६२६ के श्रम सघ कानून मे कुछ आवश्यक सशोधन कर दिये गये। अब प्रतिनिधि श्रम संघो को मान्यता देना उद्योगपतियो के लिये अनिवार्य हो गया है। मजदूरी तथा अन्य झगडो मे उन्हे श्रम संघ से फैसला करना पड़ता है और यदि कोई बाधा हो तो फैसला करने के लिये श्रम न्यायालय की व्यवस्था कर दी गई है। जो श्रम सघ कानून के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त करते हैं उनका रजिस्टर्ड होना अनिवार्य है तथा हड़ताल आदि करने से पूर्व उन्हे उचित नोटिस देना पड़ता है।

श्रम संघ कानून १६५१—इन कानूनो के अनुसार श्रम सघ के कार्य मे उद्योगपतियो को हस्तक्षेप करने का अधिकार नही है। मजदूरो का कोई भी मामला हो उसे निपटाने का अधिकार केवल श्रम सघ को ही है। इस कानून के पास होने से श्रम सघो का महत्व बहुत बढ गया है और श्रम आन्दोलन मे एक प्रकार की दृढता आ गई है। निम्नलिखित तालिका मे १६५२–५४ के काल मे भारत मे कुल रजिस्टर्ड श्रम सघो की सख्या दिखाई गई है और चारो अखिल भारतीय श्रम सघो से सम्बन्धित श्रम सघों की सख्या तथा उसके सदस्यो की सख्या भी दिखाई गई है।

तालिका (१)

रजिस्टर्ड श्रम संघ तथा उनके सदस्यों की संख्या

	केन्द्रीय सघो की सख्या		राज्य सघो की संख्या	
	१६५४—५५	१६५५—५६	१६५४—५५	१६५५—५६
रजिस्टर मे अकित सघ	१४४	१७	६५०४	७६७५
संघ जो अपनी वार्षिक रिपोर्ट भेजते है।	१०"	१०५	३००८	३८०६
वार्षिक रिपोर्ट भेजने वाले सघो की सदस्य सख्या।	१,७५,५०८	२,१२ ८४८	१६,६४,६४२	२०,१२,४६२

तालिका (२)
अखिल भारतीय श्रम संघों की सदस्य संख्या

	सम्बन्धित श्रम संघो की संख्या			सदस्य संख्या		
	१९५४	१९५५	१९५६	१९५४	१९५५	१९५६
१-भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	६०९	६०४	६१७	८,८८,२६१	९,३०,९६८	९,७१,८४०
२–हिन्द मजदूर सभा	३३१	१५७	११६	४ ६२,३६२	२,११,३१५	२,०३,७९८
३-अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	९२५	४८१	५५८	—	३,०९ ९६३	४,२९,८५१
४–यूनाईटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस	१६६	२२८	२३७	—	१,९५,२४२	१,५६,१०६
योग	२०३१	१४७०	१५३१	—	६ ४४,४८८	१७,५७,४९८

भारत के सभी राज्यों मे श्रम आन्दोलन की प्रगति एक साथ नहीं हुई है। बम्बई, मद्रास, बिहार, उत्तर-प्रदेश, हैदराबाद, मध्य प्रदेश तथा केरल राज्य मे इनका विशेष रूप से विकास हुआ है।

श्रम की मन्द गति के कारण

भारत में श्रम संघ आन्दोलन की प्रगति कुछ धीमी रही है और इस आंदोलन मे कुछ कमजोरी भी पाई जाती है जिसके निम्नलिखित मुख्य कारण हैं —

(१) श्रम की निरक्षरता–भारत में अधिकतर मजदूर अनपढ हैं। वे अपने हित तथा अनहित को भली प्रकार सोच नही पाते। वे श्रम संघ तथा उसके कार्यो मे कोई रुचि नही रखते। न तो वे श्रम संघ के सदस्य बनते हैं और न उसके कार्यो मे सहयोग देते हैं।

(२) गरीबी—भारतीय मजदूरो को बहुत कम मजदूरी मिलती है जिससे अपना और अपने परिवार वालो का पेट पालना ही कठिन हो जाता है। वे श्रम संघ का चन्दा तक नही दे पाते। इस कारण अधिकतर श्रम संघो की आर्थिक दशा खराब रहती है और वे अपने कार्य को ठीक प्रकार नही चला पाते।

(३) राजनैतिक नेताओ का अधिकार– भारत मे श्रम आन्दोलन का विकास राष्ट्रीय आंदोलन के साथ साथ हुआ जिसमे देश की राजनैतिक संस्थाओं तथा उनके

नेताओ का प्रमुख हाथ रहा है। यह स्थिति आज भी बनी हुई है। यह राजनैतिक नेता श्रम सघो मे घुसकर अपने राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिये हडतालें आदि कराते हैं। होना चाहिए कि मजदूरो के नेता स्वय मजदूरो मे से उत्पन्न हो जो राजनैतिक दलबन्दी से अलग रह कर मजदूरो के हित की बात सोच सकें। विभिन्न राजनैतिक दलो के कारण मजदूर पूरी तरह सगठित नही हो पाते। उनमे आपस मे फूट रहती है जिसके कारण उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

(४) मिल मालिको की विरोधपूर्ण नीति—अधिकाश भारतीय मिल मालिक श्रम सघो तथा उनके नेताओ को अपना शत्रु समझते हैं और हर प्रकार के उपायो द्वारा उनमे फूट डालने अथवा उन्हे असफल करने का पयत्न करते हैं। वे श्रम सघो मे क्रियाशील भाग लेने वाले मजदूरो के साथ तरह तरह के बुरे वर्ताव करते है जिसके भय से बहुत से मजदूर श्रम सघ के कार्यो म भाग लेने से डरते हैं।

(५) जाति भेद—भारतीय श्रम आन्दोलन की कमजोरी का एक प्रमुख कारण यह भी है कि जाति भेद के तथा छूआछूत के कारण मजदूरो म एकता तथा भाईचारे का भावना उत्पन्न नही हो पाती। वे एक साथ बैठकर तथा एक साथ मिलकर कार्य नही कर सकते।

(६ बोल चाल तथा रीति-रिवाज की भिन्नता—जो मजदूर अलग अलग प्रान्तो से आते हैं उनकी बोली, खान-पान तथा रीति-रिवाज एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इस भिन्नता के कारण वे एक दूसरे से मिलने जुलने मे सकोच करते हैं और उन्हे शका की दृष्टि से देखते हैं।

उन्नति के सुझाव

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही मजदूरो मे भी एक प्रकार की नई जागृति उत्पन्न हो गई है। उनमे एकता की भावना का विकास हो रहा है। भारत सरकार ने जो श्रम सघ कानून बनाये हैं उनमे श्रम आन्दोलन का भविष्य काफी उज्ज्वल हो गया है। फिर भी श्रम सघ आन्दोलन को मजबूत बनाने के लिये निम्नलिखित बातो पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

(१) शिक्षा का प्रसार—यथा सम्भव मजदूरो को शिक्षित बनाया जाय ताकि वे अपने हित तथा अहित को भली प्रकार सोच सकें और सगठित होकर अपने हितों की भली प्रकार रक्षा कर सकें।

(२) श्रम सघो की आर्थिक स्थिति मे सुधार—श्रम सघो को अपनी सदस्य सख्या बढानी चाहिये और अपने पास एक सुरक्षित कोष की व्यवस्था करनी चाहिये। जब तक इनकी आर्थिक स्थिति मजबूत नही होगी यह कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर सकते। केवल हडताल करना ही श्रम सघ का उद्देश्य नहीं है। अपने सदस्यो के हित के लिये श्रम सघ और भी अनेक प्रकार के कार्य कर सकते हैं किन्तु इसके लिये उन्हे धन की आवश्यकता होगी। इसलिये आर्थिक स्थिति में सुधार परम आवश्यक है।

(३) मजदूर नेता—श्रम संघों का संचालन राजनैतिक कार्य कर्त्ताओं के हाथ मे न रह कर स्वय मजदूरो के अपने नेताओ के हाथ मे होना चाहिये। उनका कर्तव्य है कि वे मिल मालिको से सहयोग और सद्भावना स्थापित करें और राजनैतिक दलबन्दी से अलग रहे।

इसके अतिरिक्त यदि मिल मालिक भी श्रम संघो के प्रति उदारता की भावना रखें और मजदूरो मे आपसी ऊ च नीच का विचार समाप्त हो जाये तो श्रम आन्दोलन अधिक तीव्रता से उन्नति कर सकता है।

प्रश्न ७८—फैक्ट्री कानून के इतिहास मे पिछले ४० वर्षों मे भ रत मे जो महान परिवर्तन हुए हैं उनका वर्णन कीजिए। इनका श्रम की कार्य कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ा है। (आगरा ५३)

Describe the landmarks in the history of factory legislation in India during the past 40 years Discuss their influence on the efficiency of labour *(Agra 53)*

उत्तर—भारत मे सर्व प्रथम १८८१ मे एक फैक्ट्री कानून पास किया गया। जिसके अनुसार ७ साल से कम आयु के बच्चो की भर्ती कम कर दी गई और ७ से १२ वर्ष तक के बच्चो के लिए ६ घन्टे प्रतिदिन काम की सीमा निर्धारित कर दी गई। यह कानून उन कारखानो पर लागू किया गया जिनमे १०० से अधिक मजदूर काम करते थे। १८८१ के फैक्ट्री कानून की कमियो को दूर करने के लिए १८९१ म एक दूसरा कानून पास किया गया जो उन सभी कारखानो पर लागू होता था जिनमें ५० या ५० से अधिक व्यक्ति काम करते थे। इस कानून मे ९ साल तक के बच्चो की भर्ती बन्द कर दी गई और १४ साल तक के बच्चो के लिए ७ घ टे प्रतिदिन का काम निश्चित किया गया। बच्चो और स्त्रियो के रात्रि म काम करने पर पाबन्दी लगादी गई। यह स्पष्ट है कि इस कानून मे पहले से अधिक सुविधाए प्रदान की गई थी। फिर भी अधिक सुधार की आवश्यकता थी।

१९११ का फैक्ट्री कानून (Factory Act of 1911)—इस कानून की आवश्यकता इसलिए हुई कि २० वी शताब्दी के आरम्भ मे तथा उसके बाद अधिकतर कारखानो मे शक्ति का प्रयोग होने लगा और यह कारखाने रात दिन चलने लगे जिससे मजदूरो की स्थिति पहले से भी बिगड़ गई। उन्हें बहुत अधिक काम करना पड़ता था और उनकी सुरक्षा तथा स्वास्थ्य आदि की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता था। १९११ मे जो फैक्ट्री कानून पास किया गया उसमे निम्नलिखित बातों की व्यवस्था की गई।

(१) बच्चों के लिए ६ घन्टे प्रतिदिन का काम निश्चित किया गय, और भरती से पूर्व उन्हे अपनी आयु का प्रमाण पत्र देना अनिवार्य कर दिया गया।

(२) स्त्रियो तथा बच्चो को रात्रि मे काम करने से रोक दिया गया।

(३) मजदूरो के लिए १२ घन्टे प्रतिदिन का काम निश्चित किया गया। दोपहर के समय १ घन्टे की छुट्टी अनिवार्य कर दी गई है।

(४) यह कानून उन कारखानों पर लागू किया गया जिनमे २० या २० से अधिक व्यक्ति काम करते हो और सारे साल अथवा वर्ष मे चार महीने चालू रहते हो जैसे चीनी के कारखाने।

(५) इस कानून में कारखाने के निरीक्षण की व्यवस्था और भी कड़ी कर दी गई।

(६) मजदूरो के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना कारखानो के लिए अनिवार्य हो गया।

१६२२ का फैक्ट्री कानून—प्रथम महायुद्ध मे लड़ाई की माँग बढ जाने के कारण कारखानों को पूरे जोर से कार्य करना पड़ा जिसके कारण काम की दशायें काफी खराब हो गईं जिनके कारण मजदूरो मे भारी असन्तोष फैलने लगा। इधर देश मे श्रम आन्दोलन भी जोर पकड रहा था। ऐसी स्थिति मे मजदूरो की दशा सुधारने के लिए १६२२ मे एक नया फैक्ट्री एक्ट पास किया गया। इस कानून मे निम्नलिखित बातो की व्यवस्था थी।

(१) यह कानून उन सभी कारखानो पर लागू किया गया जिनमे शक्ति का प्रयोग होता था और जिनमे २० या २० से अधिक मजदूर काम करते थे। प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार दिया गया कि वे यदि चाहे तो यह कानून उन कारखानो पर भी लागू कर सकती हैं जिनमे कम से कम १० मजदूर काम करते हैं।

(२) मजदूरो के लिए ११ घन्टे प्रतिदिन का काम निश्चित किया गया तथा सप्ताह मे ६० घन्टे का काम और एक दिन की छुट्टी निश्चित की गई। ६ घन्टे लगातार काम करने के पश्चात १ घण्टे का विश्राम भी अनिवार्य हो गया।

(३) १२ साल से कम के बच्चे काम पर नही रखे जा सकते थे। उनके लिए ६ घण्टे प्रतिदिन का काम और ४ घण्टे लगातार काम करने के बाद १½ घण्टे का विश्राम निश्चित किया गया।

(४) मजदूरो को अतिरिक्त काम (Over Time Work) के लिए १½ गुनी मजदूरी देने की व्यवस्था की गई।

(५) कारखानो का निरीक्षण करने के लिए प्रान्तीय सरकारो को आज्ञायें दी गईं।

(६) मजदूरो की शारीरिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य का प्रबन्ध कुछ और कड़ा कर दिया गया।

१६३४ का फैक्ट्री कानून—१६२६-३१ मे शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) ने अपनी रिपोर्ट मे मजदूरों की दशा सुधारने के सम्बन्ध मे अनेक सुझाव दिये जिन पर पूरी तरह विचार करने के बाद १६३४ मे एक नया फैक्ट्री एक्ट पास किया गया जिसकी मुख्य धारायें निम्नलिखित है।

(१) १२ से १५ साल तक के बच्चो के लिए ५ घन्टे काम निश्चित किया गया।

(२) कारखानो के दो वर्ग कर दिये गये। एक तो मौसमी कारखाने जिनमे साल मे कुल १८० दिन से कम काम होता है और दूसरे वे कारखाने जो १८० दिन से अधिक चालू रहते हैं।

(३) मौसमी कारखानो मे मजदूरो के लिये ११ घण्टे प्रतिदिन अथवा ६० घण्टे प्रति सप्ताह का काम निश्चित किया गया और सारे साल चलने वाले कारखानो के मजदूरो के लिए १० घण्टे प्रतिदिन और ५४ घण्टे प्रति सप्ताह का काम निश्चित किया गया।

(४) अतिरिक्त काम के लिये १॥ गुनी मजदूरी दिए जाने की व्यवस्था की गई।

(५) कारखानो मे विश्राम गृह, प्रारम्भिक सहायता (First Aid) स्वास्थ्य रक्षा आदि की व्यवस्था की गई और यह भी तय किया गया कि स्त्रियो और बच्चो के लिये अलग २ कमरे होने चाहिए।

(६) ५० से अधिक स्त्रियां जिस कारखाने मे काम करती हो वहा काम के समय उनके बच्चो को देखभाल के लिए पालने अथवा झूले का प्रबन्ध अनिवार्य कर दिया गया।

(७) शाम के ७ बजे से सुबह के ६ बजे तक स्त्रिया तथा बच्चे काम पर नही बुलाए जा सकते। स्त्रियो के लिये १० घण्टे प्रतिदिन का काम निश्चित किया गया।

(८) १५ साल से १७ साल तक की आयु के व्यक्तियो की एक नई श्रेणी बनाई गई जो न तो बच्चो मे शामिल थे और न आदमियो मे। इन्हे अपनी आयु का डाक्टरी आयु पत्र देना अनिवार्य कर दिया गया।

१९४६ का संशोधन कानून—इन संशोधन कानून के अनुसार स्थाई कारखानो मे ९ घण्टे प्रतिदिन अर्थात् ४८ घण्टे प्रति सप्ताह और अस्थाई कारखानो मे १० घण्टे प्रतिदिन अथवा ५४ घण्टे का काम निश्चित किया गया। अतिरिक्त कार्य के लिए दोगुना वेतन देने की व्यवस्था की गई।

१९४७ मे इस कानून मे फिर संशोधन किया गया जिसके अनुसार २५० से अधिक मजदूर जिस कारखानें में काम करते हों वहां एक कैन्टीन का होना अनिवार्य हो गया।

१९४८ का फैक्ट्री कानून

पिछले ४० वर्षो के श्रम इतिहास मे यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण कानून है जो १९४८ मे पास किया गया और १९४९ मे लागू हुआ। इसमे मजदूरो की सुरक्षा तथा उनके हित के लिये कई महत्वपूर्ण व्यवस्थायें की गई हैं। इसकी मुख्य धाराए निम्नलिखित हैं —

(१) इस कानून के द्वारा राज्य सरकारो को यह अधिकार मिल गया है कि वे कारखाने की किसी शाखा अथवा विभाग को एक पृथक संस्था घोषित कर सकती हैं।

(२) सारे साल चलने वाले तथा मौसमी कारखानो का भेद समाप्त कर दिया गया।

(३) जिन कारखानो मे २० या इससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं किन्तु शक्ति का प्रयोग नही होता तथा उन कारखानो मे जहां १० या इससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं और शक्ति का प्रयोग होता है, यह कानून लागू किया गया है।

(४) मजदूरो के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया। कारखाने के कमरो की सप्ताह मे एक बार धुलाई और १४ महीने मे एक बार सफेदी अनिवार्य है। जिले का मजिस्ट्रेट अपने जिले का फैक्ट्री निरीक्षक होगा। कारखाने मे प्रति-व्यक्ति ३४० घनफुट स्थान होना जरूरी है। १ अप्रैल १९४८ के बाद बनने वाले कारखानो के कमरो मे प्रति व्यक्ति ५०० घनफुट स्थान होना चाहिये।

(५) मजदूरो के पीने के लिये शुद्ध पानी की व्यवस्था होनी चाहिए तथा शौचालय आदि का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

(६) मजदूरों की रक्षा के लिये मशीनें ढक कर रखी जायें और चालू मशीनों के पास स्त्रिया या बच्चे काम न करें। कारखाने के अन्दर नहाने की भी व्यवस्था होनी चाहिये और जहा १५० व्यक्तियो से अधिक काम करते हैं वहा भोजन करने का स्थान और विश्राम गृह का प्रबन्ध होना चाहिए। २५० से अधिक मजदूरा वाले कारखाने मे एक कैन्टीन का होना अनिवार्य है।

(७) प्रत्येक कारखाने मे प्रारम्भिक सहायता (First Aid) का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। और जहाँ ५०० से अधिक व्यक्ति काम करते हैं वहा एक डाक्टरी कमरा (Ambulance Room) होना चाहिये।

(८) जिस कारखाने मे ५० से अधिक स्त्रिया काम करती हैं वहा उनके ६ साल से कम आयु वाले बच्चो के लिये एक पालना गृह होना चाहिये।

(९) ५०० से अधिक मजदूरो वाले कारखाने में एक श्रम हितकारी अफसर (Labour Welfare Officer) की नियुक्ति अनिवार्य करदी गई।

(१०) हर व्यक्ति के लिये ९ घण्टे प्रतिदिन और ४८ घण्टे प्रति सप्ताह का काम निश्चित किया गया है जिसमे आधे घण्टे का विश्राम भी शामिल है।

(११) १३ साल से कम बच्चो की भरती नही हो सकती और उनसे ४½ घण्टे प्रतिदिन से अधिक काम नही लिया जा सकता।

(१२) सप्ताह मे एक दिन की छुट्टी अनिवार्य है इसके अतिरिक्त एक साल लगातार काम करने के बाद हर २० दिन के पीछे १ दिन की सवेतन छुट्टी मिलेगी।

(१३) यदि किसी मजदूर का देहान्त हो जाये या चोट लग जाने या बीमारी के कारण ४८ घण्टे तक कार्य न कर सके तो कारखाने के मैनेजर को इसकी सूचना फैक्ट्री इन्सपेक्टर के पास भेजनी चाहिये।

१९५५ का फैक्ट्री संशोधन कानून

इस संशोधन के अनुसार साल के २४० दिन काम कर लेने के बाद मजदूर सवेतन छुट्टी लेने का अधिकारी है। यदि किसी त्योहार की छुट्टी शुरू, बीच अथवा अन्त मे पड जाये तो वह सवेतन छुट्टी मे नही जोडी जायेगी। एक साल की छुट्टी दूसरे साल की छुट्टी मे जोडी जाएगी किन्तु मजदूर को ३० दिन से अधिक की छुट्टी नही दी जा सकती। एक मजदूर ३ महीने मे ५० घण्टे से अधिक अतिरिक्त काम नहीं कर सकता।

श्रम की कार्य कुशलता पर प्रभाव—हम देखते हैं कि फैक्ट्री कानून का श्रम की कार्य कुशलता पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। इससे पूर्व मजदूरों को दिन में १५-१६ घण्टे तक काम करना पड़ता था और उनके स्वास्थ्य तथा शारीरिक सुरक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। जिसके कारण उनकी कार्य क्षमता दिन प्रतिदिन क्षीण होती जाती थी। १९४८ के फैक्टरी कानून में विशेष रूप से उन सब बातों की व्यवस्था कर दी गई है जो श्रम की कार्य-कुशलता बढ़ाने के लिये एक प्रकार से आवश्यक हैं। काम करने के घण्टे पहले से बहुत कम कर दिये गये हैं। लगातार काम के बीच विश्राम सप्ताह में एक दिन की छुट्टी तथा अतिरिक्त काम के लिये दुगना वेतन श्रम की कार्य-कुशलता पर अच्छा प्रभाव डालने वाली बातें हैं। इसी प्रकार कारखानों में काफी वायु तथा प्रकाश का प्रबन्ध पीने के पानी की व्यवस्था, कैन्टीन की व्यवस्था तथा डाक्टरी सुविधा आदि से श्रम की कार्य-कुशलता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

इस विषय में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह श्रम हितकारी अफसर की नियुक्ति है। श्रम हितकारी अफसर का यह कर्तव्य है कि वह मजदूरों की सब प्रकार की सुविधाओं का ध्यान रखे और मिल मालिकों को इस बात का अवसर न दे कि वे अपनी मनमानी कर सकें तथा मजदूरों का शोषण कर।

कारखानों के निरीक्षण के विषय में भी अब काफी सख्ती बरती जाती है। यदि किसी मिल मालिक ने कानून की व्यवस्था के अनुकूल काम नहीं किया है तो उसे दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार वास्तव में १९४८ का फैक्टरी कानून मजदूरों के लिये बहुत हितकर सिद्ध हुआ है। यह सच है कि श्रम की कार्य-कुशलता पर अन्य बहुत सी बातों का भी प्रभाव पड़ता है किन्तु फैक्ट्री कानून भी उनमें से एक है।

प्र० ७६—भारत में औद्योगिक झगड़ों को निपटाने तथा कम करने की वर्तमान प्रणाली क्या है ? (बम्बई ५२, मद्रास ५३, कलकत्ता ५६)

Describe the existing machinery for the settlement and prevention of industrial disputes in India

(Bombay 52, Madras 53, Calcutta 56)

औद्योगिक झगड़ों का अर्थ—औद्योगिक झगड़ों से हमारा तात्पर्य मजदूरों तथा मिल मालिकों के बीच होने वाले उस संघर्ष से है जिनके कारण या तो मजदूरों द्वारा हड़ताल की जाती है अथवा मिल मालिक तालाबन्दी (Lock out) कर देते हैं। छोटी २ बातों पर भी अनेक प्रकार के विवाद और संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं जिससे न केवल मजदूरों को हानि होती है और उत्पादन को सुचारू रूप से चलाने में बाधा होती है वरन् एक प्रकार से सारे देश को नुकसान पहुंचता है। इसलिये यह आवश्यक समझा गया है कि जहां तक सम्भव हो मिल मालिकों और मजदूरों के आपसी सम्बन्ध अच्छे रहें और उनके बीच जो भी विवाद अथवा संघर्ष उत्पन्न हो जाये उसे शान्तिपूर्ण ढंग से आपसी समझौते द्वारा अथवा पञ्च फैसले के द्वारा निपटा दिया जाये। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा भी इस बात की कानूनी

व्यवस्था कर दी गई है कि औद्योगिक झगडे यथा सम्भव रोके जा सकें तथा उनका निपटारा आसानी से किया जा सके। इसके लिए श्रम अदालतो आदि की व्यवस्था की गई है।

औद्योगिक झगडे निपटाने की पद्धति—औद्योगिक झगडो का मुख्य कारण मजदूरो का सगठन तथा उनकी आपसी एकता है क्योंकि सगठित शक्ति के सामने मिल मालिक अपनी मनमानी नही कर सकते और यदि करते हैं तो उनका विरोध किया जा सकता है। अपने अधिकारो की रक्षा के लिए तथा अपनी उचित मागो को मनवाने के लिए हडताल करना मजदूरो का जन्म सिद्ध अधिकार माना गया है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि मजदूर जब चाहे तथा जिस बात के लिये चाहे हडताल कर दे। ऐसा करने से औद्योगिक शांति भग होती है और उत्पादन के कार्य मे बाधा पडती है।

१९२६ म जो भारतीय श्रम सघ कानून (Indian Trade Union Act) पास किया गया था उनमे दो बातो की विशेष रूप से व्यवस्था कर दी गई थी। एक तो यह कि रजिस्टर्ड श्रम सघ के कार्य कर्ताओ के विरुद्ध मिल मालिको द्वारा किसी प्रकार का अत्याचार अथवा कानूनी कार्यवाही न की जा सके और दूसरे यह कि हडताल करने से पूर्व इस बात का प्रयत्न किया जाये कि झगडा निपट जाये अथ्व हडताल के लिए उचित कार्यों का होना आवश्यक है वरन् हडताल अवैध मानी जायेगी।

१९४७ का औद्योगिक सघर्ष कानून (Industrial Disputes Act 1947)—औद्योगिक झगडो को निपटाने के लिए हाल ही मे जो कदम उठाए गये हैं उनमे १९४७ के इस कानून का विशेष महत्व है। इस कानून मे औद्योगिक सघर्ष निपटाने के लिए निम्नलिखित सस्थाओ की व्यवस्था की गई है।

(१) **कार्य समितिया (Work Committees)**—यह समितियाँ उन सभी कारखानो मे स्थापित की जाती हैं जिनमे १०० या १०० से अधिक मजदूर काम करते हैं। इन समितियो म मजदूरो तथा मिल मालिको अथवा मिल मैनेजरो के बराबर सख्या मे प्रतिनिधि होते हैं। इन समितियो का कार्य यह है कि कारखाने मे दिन प्रतिदिन के होन वाले छोटे मोटे वाद विवादो को आपसी बातचीत के द्वारा निपटाना और औद्योगिक सम्बन्धो को मजबूत करना ताकि औद्योगिक सघर्ष पैदा न होने पावे।

(२) **समझौता अफसर (Conciliation officer)**—इन अफसरो की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। इनका कार्य झगडो मे बीच-बचाव करना है ताकि आपसी समझौते हो सकें और औद्योगिक सम्बन्ध बिगडने न पावे।

(३) **समझौता बोर्ड (Conciliation Board)**—समझौता बोर्डों का भी लगभग वही कार्य है जो समझौता आफीसर है। सरकार समझौता बोर्ड की नियुक्ति उस समय करती है जब समझौता अफसर समझौता कराने मे असफल रहते हैं।

(४) श्रम अदालत (Industrial Court)—जब समझौता अधिकारी अथवा समझौता बोर्ड अपने कार्य में असफल रहता है तो वह इसकी सूचना १४ दिन के अन्दर सरकार के पास भेज देता है जो इस झगड़े को या तो श्रम न्यायालय के पास भेज देती है अथवा आरबीट्रेशन बोर्ड (Arbitration Board) के पास भेज देती है जिसका फैसला दोनों पक्षों पर मान्य होता है।

श्रम अदालतें राज्यों में कार्य करती हैं। इनमें केवल एक न्यायाधीश होता है। यह ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो कानून के क्षेत्र में ७ वर्ष का अनुभव रखता हो अथवा किसी श्रम अदालत में ५ वर्ष तक न्यायाधीश रह चुका हो। जिन झगड़ों में १०० या १०० से कम मजदूर सम्बन्धित होते हैं वे श्रम अदालत के सामने पेश किये जाते हैं। जो झगड़े विशेष महत्व रखते हैं अथवा १०० से अधिक मजदूर उनसे प्रभावित हैं तो वे झगड़े राज्य सरकारों द्वारा औद्योगिक ट्रिब्यूनल (Industrial Tribunal) के सामने पेश किये जाते हैं जिसका सभापति हाई कोर्ट का जज होता है। औद्योगिक ट्रिब्यूनल एक ऊंचे किस्म की श्रम अदालत है। इसी प्रकार जो झगड़े राष्ट्रीय महत्व रखते हैं अथवा जिनका सम्बन्ध १ से अधिक राज्यों से होता है वे राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल के सामने पेश किये जाते हैं जिसे भारत सरकार नियुक्त करती है और जो बहुत ऊंचे किस्म की श्रम अदालत है।

यह तीनों प्रकार की श्रम अदालतें एक दूसरे से अलग कार्य करती हैं और एक के निर्णय की अपील दूसरी अदालत में नहीं हो सकती। १९५९ से पूर्व श्रम एपीलेट ट्रिब्यूनल (The Labour Appellate Tribunal) थी जो १९५६ के संशोधन कानून के द्वारा भंग करदी गई। उसके स्थान पर अब श्रम न्यायालय की अपील हाई कोर्ट अथवा उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है।

इन तीनों प्रकार की श्रम अदालतों को गवाह बुलाने तथा बयान लिखने के वे ही अधिकार प्राप्त हैं जो एक दीवानी अदालत को प्राप्त हैं। इन अदालतों के सामने जो मामले पेश होते हैं वे या तो सरकार द्वारा अपनी मरजी से भेजे जाते हैं अथवा सम्बन्धित पक्षों में से किसी एक अथवा दोनों की प्रार्थना पर भेजे जाते हैं।

जो मामले श्रम अदालतों के सामने पेश किये जा सकते हैं उनका उल्लेख कानून की दूसरी तथा तीसरी सूची में किया गया है। दूसरी सूची में निम्नलिखित मामले सम्मिलित हैं —

(१) मजदूरों को नौकरी से अलग करना अथवा बरखास्त करना।

(२) हड़ताल का वैध अथवा अवैध होना।

(३) कारखाने की स्थाई आज्ञायें (Standing Orders) के लागू होने तथा उनकी व्याख्या से सम्बन्धित समस्याएं।

(४) अन्य वे सभी बातें जिनका उल्लेख तीसरी सूची में नहीं किया गया है।

तीसरी सूची मे निम्नलिखित मामलो का उल्लेख किया गया है —

(१) मजदूरी के भुगतान का समय तथा भुगतान के तरीके से सम्बन्धित झगडे।

(२) मुआवजा तथा अन्य भत्तो का भुगतान।

(३) काम करने के घण्टे तथा विश्राम का समय।

(४) सवेतन छुट्टी तथा सामान्य छुट्टिया।

(५) बोनस प्राविडेन्ट फन्ड इत्यादि का भुगतान।

(६) अनुशासन के मामले।

(७) अभीनवीकरण आदि।

(८) मजदूरो की छटनी तथा कारखाने को बन्द करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त विषयो से सम्बन्धित जो झगडे उत्पन्न होते हैं उन्हे सर्व प्रथम आपसी बात चीत के द्वारा समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। यदि इसमे सफलता नहीं मिलती तो बीच बचाव तथा पच फैसले (Conciliation and Arbitration) का प्रयत्न किया जाता है। यदि इससे भी सफलता नही मिलती तो सरकार उन झगडो को श्रम अदालत के सुपुर्द कर देती है जिसका निर्णय अन्तिम तथा दोनो पक्षो पर मान्य होता है।

वैसे तो मजदूरो अथवा मिल मालिको को इस बात का अधिकार नहीं होता कि वे सीधे श्रम अदालत के सामने किसी मामले को ले जाए किन्तु बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध कानून (Bombay Industrial Relations Act) मजदूरो तथा मिल मालिको को इस बात का अधिकार देता है कि व सीधे श्रम अदालत या अन्य ट्रिब्यूनल के सामने किसी भी मामले को ले जाए।

वैसे तो श्रम अदालत का निर्णय अन्तिम होता है किन्तु भारतीय ससद ने भारत सरकार को इस बात का अधिकार दिया हुआ है कि वह श्रम अदालत अथवा ट्रिब्यूनल के निर्णय को अस्वीकार करदे अथवा उसमे सशोधन कर दे। यह कार्य केवल सार्वजनिक हित को ध्यान म रखकर किया जा सकता है।

कानून म इस बात की व्यवस्था है कि सार्वजनिक हित की सस्थाओ मे (Public Utility Concerns) मे कोई भी हडताल अथवा तालाबन्दी गैर-कानूनी मानी जायेगी यदि उससे पूर्व ६ सप्ताह का नोटिस नही दिया गया है अथवा वह झगडा किसी श्रम अदालत के विचाराधीन है। यदि झगडो को निपटाने के लिए आपसी समझौते के प्रयत्न किये जा रहे हों तो उस काल में हडताल अथवा ताला-बन्दी नहीं की जा सकती।

१९५१ से १९५७ (अक्टूबर मास) तक भारत मे होने वाले औद्योगिक झगडो का अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है :—

वर्ष	झगडो की सख्या	प्रभावित मजदूरो की सख्या (हजारो मे)	श्रम दिनो की हानि (हजारो मे)
१९५१	१०७१	६९१	३८१९
१९५२	९६३	८०९	३३३७
१९५३	७७२	४६७	३३८३
१९५४	८४०	४७७	३३७३
१९५५	११६६	५२८	५६९८
१९५६	१२०३	७१५	६९९२
१९५७	१९०	९५	४७२

अध्याय ११

यातायात के साधन

प्रश्न ८०—भारतीय यातायात की मुख्य समस्यायें क्या हैं ? इनका उचित समाधान क्या हो सकता है ? (आगरा १९५६)

What are the main problems of transport in India to-day ? How may they be best tackled ? (*Agra 1956*)

उत्तर—*भारत में यातायात के प्रमुख तथा उल्लेखनीय साधन चार हैं अर्थात् रेल, सड़क, वायु तथा जल यातायात । इन चारों से सम्बन्धित प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं :—*

(१) **रेल यातायात की समस्यायें** :—रेलें भारत के यातायात के साधनों में सबसे प्रमुख हैं । दूसरे महायुद्ध के काल में रेलों की स्थिति काफी बिगड़ गई थी जिसके कारण कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो गई थीं । देश की राष्ट्रीय सरकार यातायात की समस्याओं को सुलझाने तथा यातायात के साधनों के बीच सामजस्य स्थापित करने का पूरा प्रयत्न कर रही है । रेल यातायात की मुख्य समस्याएं इस प्रकार हैं :

(अ) **रेल के इंजन तथा डिब्बों की कमी**.—जिस गति से देश की जन-संख्या में वृद्धि हो रही है तथा देश के आर्थिक विकास का कार्य चल रहा है उसको देखते हुए भारतीय रेलें यातायात सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हैं । *सवारी गाड़ियों में बहुत अधिक भीड़ रहती है किन्तु इंजन तथा डिब्बों की कमी के कारण नई गाड़िया चालू नहीं की जा सकतीं । माल गाड़ियों की स्थिति इससे* अधिक खराब है । पचवर्षीय योजनाओं के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान तक कच्चा माल, कोयला, इस्पात, मशीनें, लोहा तथा सीमेंट आदि पहुँचाने के लिए बहुत अधिक संख्या में माल गाड़ी के डिब्बों की आवश्यकता है । देश की खाद्य स्थिति को देखते हुए भी अनाज को लाने ले जाने के लिए प्राथमिकता मिलनी चाहिए । इन सब कारणों से रेलों के सुचारु रूप से चलाने में कठिनाई अनुभव हो रही है ।

(ब) **रेलों की कार्यक्षमता** :—भारतीय रेलों की कार्यक्षमता कम होने के अनेक कारण हैं, भारत में तेज रफ्तार से चलने वाली गाड़ियों की कमी है । गाड़िया अक्सर समय के अनुसार नहीं चलतीं । अधिकांश रेलवे लाइनें तथा रेल के पुल पुराने हैं । *उनपर तेज रफ्तार वाली गाड़ियाँ नहीं चलाई जा सकती । इसके लिये पहिले नए पुलों का निर्माण करने की आवश्यकता है साथ ही पुरानी लाइनों के स्थान पर अधिक वजन वाली नई लाइनें डाली जानी चाहिए ।*

(स) रेल दुर्घटनाए :—भारतीय रेलो पर दुर्घटनाए भी अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। इसका एक कारण पुलो तथा लाइनो का पुराना होना है दूसरे देश में वर्षा तथा बाढ के कारण लाइनें बह जाती हैं। इन दुर्घटनाओं से लाखो रुपये के माल तथा जानो की हानि होती है। एक अन्य कारण यह भी है कि भारतीय रेलो में अभी तक पूरी तरह स्वचालित यंत्रो (Automatic Machines) का प्रयोग नहीं हुआ है। गाडियो के सिगनल आदि का कार्य मानव शक्ति के द्वारा ही होता हैं जिसमें भूल की सभावना अधिक रहती है।

(द) भ्रष्टाचार:— भ्रष्टाचार भारतीय रेलो की मुख्य विशेषता है। विशेष रूप से माल य तायात में धन तथा सामान आदि की चोरी के कारण रेलों को प्रति वर्ष लाखो रुपये की हानि होती है। यही बात रेलो के वर्कशापो के विषय मे है। वहा भी लाखो रुपए का स्टोर्स का सामान चोरी हो जाता है। सरकार ने भ्रष्टाचार तथा चोरियो को रोकने के लिये अनेक आवश्यक कदम उठाये हैं किन्तु इनसे कोई विशेष लाभ नही हुआ। हा बिना टिकट चलने की समस्या अब बहुत कुछ हल हो गई हैं।

(२) सडक यातायात की समस्या :—भारत जैसे विशाल देश में जहा की अधिकांश जनता देहातो मे रहती है, सडक यातायात का विशेष महत्व है। यह सच है कि रेलो का राष्ट्रीय महत्व बहुत अधिक है किन्तु रेल प्रत्येक गाँव तक नही पहुचाई जा सकती। ग्रामीण यातायात की समस्या केवल सडको द्वारा ही पूरी हो सकती है। सडक यातायात की मुख्य समस्याए इस प्रकार हैं :—

(अ) अच्छी सडकों की कमी :—भारत की विशालता को देखते हुए यहा सडक की लम्बाई बहुत कम है। अधिकाश गाँव एक दूसरे से अथवा मण्डी से सडक द्वारा जुडे हुए नहीं हैं। पक्की सडको का तो कहना ही क्या देश मे कच्ची सडको का भी अभाव है। नई सडकों का निर्माण तथा पुरानी सडको का सुधार भारत के लिये परम आवश्यक है।

(ब) मोटर यातायात के विकास की कमी :—भारत के ग्रामीण क्षेत्रो में प्राचीन काल से बैलगाडी का प्रयोग होता आया है। देश मे मोटर चलाने योग्य सडके बहुत कम हैं और मोटर यातायात का विकास इतना अधिक नहीं हो पाया है जितना वर्तमान युग के अनुसार होना चाहिए था। देश में किराये पर चलने वाली मोटर गाडियो की सख्या बहुत कम है और उन्हे दूर के स्थानों तक चलाने की अनुमति नही है। इस सम्बन्ध में मोटर गाडियो से सम्बन्धित कानून भी काफी कठोर हैं।

(स) रेल सडक प्रतियोगिता —रेल तथा सडक यातायात के विकास मे बाधा डालने वाली एक अन्य समस्या आपसी प्रतियोगिता (Competition) की है। रेल तथा सडक एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य न करके प्रतिद्वन्दी के रूप में कार्य करती हैं जिससे दोनों विशेषकर रेलो को अधिक हानि पहुचती है। इस समस्या के उपचार के अनेक उपाय किए गये हैं जिनमे सडक यातायात का राज्यों द्वारा

राष्ट्रीयकरण भी है। इस क्षेत्र में अभी तक पूरी तरह सफलता नही मिली है। रेल तथा सड़क यातायात के बीच सामजस्य स्थापित करने में अभी कई बाधाए है।

(३) जल यातायात की समस्याएं —जल यातायात का अर्थ नदियो तथा नहरों मे नाव चलाने से और समुद्री तट पर तथा गहरे समुद्र में जहाजरानी से है। भारत में नदियो तथा नहरो के द्वारा यातायात का कार्य प्राचीन काल म होता आया है किन्तु आधुनिक ढग मे देश में इनका विकास नही हुआ है। भारत में नदियो में वर्ष भर तक इतना अधिक पानी नहीं रहता कि छोटे जहाज अथवा स्टीमर्स Steamers) उनमें चल सकें। भारतीय नहरें भी इस योग्य नही है। भविष्य में इनके विकास की सम्भावनाओं पर विचार किया जा रहा है। भारतीय समुद्री जहाजरानी की मुख्य समस्याए यह हैं।

(अ) उत्तम श्रेणी के आधुनिक जहाजों की कमी :—भारत के पास पर्याप्त सख्या मे उत्तम श्रेणी के आधुनिक जहाजो की कमी है। इन जहाजो को विदेशों से खरीदने में बहुत अधिक धन की आवश्यकता होती। देश में इनका निर्माण शुरू तो हो गया है किन्तु उसकी प्रगति इनकी तीव्र नही है जो देश की आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

(ब) बन्दरगाहों में सुधार की आवश्यकता —कराची बन्दरगाह के पाकिस्तान में चले जाने से बम्बई बन्दरगाह पर अधिक भीड़ (Conjestion) रहने लगा है। कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास को छोड़ कर शेष बन्दरगाह आधुनिक सुविधाओं से से पूर्ण बड़े बन्दरगाह नही है। उनमे सुधार की आवश्यकता है। कांधला (Kandla) नामक नये बन्दरगाह के बन जाने से यह समस्या कुछ हद तक हल हो जावेगी।

(स) विदेशी कम्पनियों की प्रतियोगिता :—स्वतन्त्रता मिलने से पूर्व सम्पूर्ण भारतीय जहाजरानी पर विदेशी कम्पनियो का एकाधिकार था। भारतीय कम्पनियो मे उनका मुकाबला करने की क्षमता नही थी। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भारत सरकार ने तटवर्ती जहाज रानी (Coastal Shipping) पूरी तरह भारतीय कम्पनियो के लिए सुरक्षित कर दी है। क्षेत्र में उन्हे विदेशी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा उन्हे आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

(४) वायु यातायात की समस्याएं —भारतीय वायु यातायात की अधिकांश समस्याओं का समाधान इसके राष्ट्रीयकरण के बाद हो गया है। इस समय वायु यातायात के सामने एक समस्या अच्छे हवाई अड्डो की है जहा सब प्रकार की नवीनतम सुविधाए उपलब्ध हो। दूसरी समस्या नये प्रकार के हवाई जहाजो की है। हवाई जहाजों की निर्माण कला में दिन प्रतिदिन नवीन सुधार हो रहे हैं। विदेशी कम्पनिया अच्छे से अच्छे हवाई जहाज प्रयोग मे लाती है। भारत में हवाई जहाजो के निर्माण का काम अभी इतनी उन्नति नही कर सका है। इसका परिणाम यह है कि अपनी कार्यक्षमता को बनाए रखने के लिये भारत को विदेशो से हवाई जहाज

खरीदने पड़ते हैं। इस कार्य के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा की भारत के पास कमी है इसीलिये भारतीय वायु यातायात पूरी तरह उन्नति नहीं कर रहा। भारत के पास योग्य कुशल तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों का भी अभाव है। इन सब बातों के होते हुये भी भारत में अब तक भी वायु यातायात की प्रगति को सतोषजनक नहीं कह सकते

प्रश्न ८१—भारतीय रेलों के विकास पर एक निबन्ध लिखिए तथा बताइए कि रेलों के विकास से भारतीय कृषि तथा उद्योग धन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा है।

Write an essay on the development of Indian Railways What has been its influence on the agricultural and industrial growth of India ?

उत्तर—यातायात के साधनों में रेल यातायात का विशेष स्थान है क्योंकि व्यापारिक एवं औद्योगिक दृष्टियों से यह साधन अधिक उपयुक्त है क्योंकि भारी से भारी माल इस साधन द्वारा शीघ्र से शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जा सकता है।

विकास—१८४३ में गवर्नर जार्ज आर्थर के निमन्त्रण पर श्री जी० टी० क्लार्क नामक रेलवे इन्जीनियर बम्बई आये जिनके आने का मुख्य ध्येय था भारत में रेल यातायात की सम्भावनाओं का स्थानीय अध्ययन करना। परन्तु रेलों के निर्माण कार्य का प्रारम्भ वस्तुतः लार्ड डलहौजी के समय से प्रारम्भ हुआ। इसका निर्माण कार्य नितांत राजनैतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया गया था। आर्थिक दृष्टिकोण को दूसरा स्थान दिया गया था।

पुरानी गारन्टी पद्धति :—"ईस्ट इण्डिया कम्पनी" और 'ग्रेट इण्डियन पैनिनशुला" आदि से सरकार से समझौता हुआ जिसमें कुछ शर्तों सहित रेल निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। यह शर्तें निम्नलिखित थी :—

(१) भारत सरकार द्वारा बिना मूल्य के भूमि प्रदान करना।

(२) भारत सरकार को यह अधिकार था कि २५ अथवा ५० वर्ष बाद अपनी इच्छा से यदि चाहे तो रेलवे रेलवे का सामान (Rolling Stock) आदि समुचित मूल्यांकन से खरीद सकती है।

(३) एक शर्त यह भी थी कि निश्चित दर से (४½% से ५%) अधिक लाभ होने पर आधा लाभ सरकार को जमानत के रूप में ब्याज की पूर्णता के लिये दी हुई राशि के भुगतान में लगाया जायेगा तथा आधा हिस्सेदारों में बांटा जायेगा।

(४) निजी कम्पनियों को उनकी लगी हुई पूंजी पर सरकार द्वारा ४½ से ५% सूद की दर न्यूनतम गारन्टी देना।

(५) निरीक्षण का अधिकार सरकार को था।

जब उक्त समझौते पर हस्ताक्षर हो गए तब निजी कम्पनियों ने रेल यातायात का निर्माण प्रारम्भ किया और खूब मनमाना अपव्यय किया जिससे लाभ के बजाय वह धन भी नहीं मिला जिससे ब्याज ही निपटा दिया जाता यह सारा बोझ

घाटे के रूप में भारत सरकार को पूरा करना पड़ा।

सरकार द्वारा रेल निर्माण :—उपरोक्त कारणों से १८६९ में रेलों के निर्माण तथा संचालन की समस्त जिम्मेदारी भारत सरकार ने अपने हाथ में ले ली और निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। परन्तु इसी समय भारत में अकाल पड़ जाने एवं अफगान युद्ध के शुरू हो जाने के कारण रेलवे का राजनैतिक दृष्टि से निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक हो गया। १० वर्ष में ही कम्पनी से ½ लागत पर ही लगभग २००० मील नई रेलों का निर्माण कराया। १८६९ से १८८१ तक रेलों के निर्माण में सरकार को १५ करोड़ रुपये की हानि हुई। इसके कारण रेलों के निर्माण के सम्बन्ध में सरकार को फिर से अपनी नीति बदलनी पड़ी।

नई गारन्टी पद्धति (१८८१ से १९०० तक).—इस काल में रेलों को तीन श्रेणियों में बाटकर उनका निर्माण कराया गया जो इस प्रकार थी। (अ) उत्पादक रेलें जिनमें लगी हुई पूजी पर ५ वर्ष के भीतर ४% ब्याज वसूल होने लगा। (ब) अनुत्पादक रेलें जिनसे कोई लाभ नहीं होता था किन्तु लड़ाई के विचार से उनकी आवश्यकता थी। (स) संरक्षण रेलें, जिनके द्वारा उन स्थानों में जहां अकाल आदि पड़ने पे लोगों की जान बचाने के लिए अनाज आदि भेजने का प्रबन्ध करना पड़ता था। सरकार के पास धन की कमी हो जाने के कारण सरकार को रेलों के निर्माण का कार्य छोड़ देना पड़ा और सरकार ने फिर से कम्पनियों के साथ रेलों के निर्माण के लिये समझौता किया। सरकार ने उन्हें गारन्टी दी कि जितनी पूजी वह इस कार्य में लगायेंगी उस पर उन्हें ३½ % ब्याज मिलेगा। इसके बदले में यदि कम्पनियों को रेलों से जो अतिरिक्त लाभ होगा उसका ½ सरकार ले लेगी। २५ वर्ष के बाद यदि सरकार चाहे तो रेलों को खरीद सकती है। इस नई गारन्टी पद्धति के काल में ४ हजार मील लम्बी नई लाइनें डाली गईं।

प्रथम महायुद्ध से पूर्व का काल (१९०६—१९१४):—वैसे तो १९०० तक देश की मुख्य लाइनें बन चुकी थी किन्तु ब्रांच लाइनों की बहुत अधिक आवश्यकता थी। १९०७ में मैके कमेटी ने भी इस बात पर विशेष जोर दिया था। इस काल में सरकार ने १० हजार मील लम्बी छोटी तथा बड़ी लाइनें डालीं। १९१४ में भारत में कुल २४००० मील लम्बी रेलें बन चुकी थीं।

प्रथम महायुद्ध तथा उसके बाद का काल :—प्रथम महायुद्ध के काल में नई रेलों का निर्माण नहीं हो सका। इसके विपरीत भारतीय रेलों को युद्ध के कारण बहुत अधिक कार्य करना पड़ा जिसके कारण रेलों की व्यवस्था बहुत अधिक बिगड़ गई। युद्ध समाप्त होने के बाद रेलों की हालत में सुधार की आवश्यकता अनुभव की गई। १९२० में सरकार ने आकवर्थ कमेटी की नियुक्ति की। इस कमेटी के सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि सरकार रेलों को अपने हाथ में ले ले अथवा कम्पनियों द्वारा उनका संचालन होने दे। इस प्रश्न पर बहुत वाद विवाद हुआ और अन्त में सरकार ने रेलों को अपने हाथ में लेने का निश्चय किया। १९२५ तक लगभग सभी महत्वपूर्ण रेलें भारत सरकार के हाथ में आ गईं और तभी से अब यह

पूर्णतया भारत सरकार के स्वामित्व एवं प्रबंध में है।

द्वितीय महायुद्ध तथा उसके बाद की स्थिति (१९३९ से १९४७).—द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय रेलो की स्थिति काफी अच्छी हो गई था किन्तु ज्यूं २ युद्ध जोर पकडता गया और रेलों पर भार बढना गया भारतीय रेलो की व्यवस्था बिगडती गई। रेल के डिब्बो तथा इंजिनो की कमी अनुभव होने लगी और यात्रियो तथा सामान को ढोने मे अनेक प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हो गई। यह स्थिति युद्ध के बाद के काल में भी चलती रही क्योंकि उस समय तक अधिकांश इंजिन तथा डिब्बे जीर्ण अवस्था मे पहुँच चुके थे। सरकार को रेलो की कार्य कुशलता को बनाये रखना असम्भव हो गया।

देश के विभाजन का प्रभाव और उसके बाद की स्थिति (१९४७ से १९५१)—१९४७ में देश के विभाजन का रेलो पर भी प्रभाव पडा। अधिकाश कुशल कर्मचारी पाकिस्तान चले गए। रेलवे मे भ्रष्टाचार और अकुशलता बहुत अधिक बढ गई। सरकार ने यह आवश्यकता अनुभव की कि रेलो की स्थिति सुधारने के लिए विदेशों से नये इंजिन मंगाये जाए तथा भारत में उनके निर्माण के प्रश्न पर विचार किया जाए। इसी प्रकार रेल के डिब्बो की सख्या मे वृद्धि के प्रयत्न किये गये।

१९५० म भारत सरकार ने रेलो का पुनर्गठन किया जिसके अनुसार समस्त रेलों को ७ वृत्तो (Zones) मे बाट दिया। बाद मे इन वृत्तो की सख्या ८ कर दी। अब इन वृत्तो को उत्तर रेलवे, उत्तर पूर्व रेलवे, पूर्वी रेलवे, दक्षिण पूर्व रेलवे, मध्य रेलवे, दक्षिण रेलवे तथा पश्चिम रेलवे के नाम से पुकारा जाता है। निम्नलिखित तालिका में रेलवे वृत्तो (Zones) की पूर्ण विवरण दिया गया है —

वृत्त का नाम	जन्म तिथि	मुख्य कार्यालय	लम्बाई मीलो में
दक्षिण रेलवे	१४–४–५१	मद्रास	६१०००४
मध्य रेलवे	५–११–५१	बम्बई	५२८५·६२
पश्चिम रेलवे	५–११–५१	बम्बई	१०१२·६१
उत्तर रेलवे	१४–४–५२	दिल्ली	३३८·६१
उत्तर-पूर्व रेलवे	१४–४–५२	गोरखपुर	३०६०·३०
उत्तर-पूर्व सीमावर्ती रेलवे	१५–१–५८	पाडो	१७३८·००
पूर्व रेलवे	१–८–५५	कलकत्ता	२३२१·४२
दक्षिण-पूर्वरेलवे	१–८–५५	कलकत्ता	३४२३·५६

वर्तमान स्थिति (१९५१से १९५७ तक)—१९५१ मे भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना चालू की गई जिसमे रेलो के विकास तथा पुनर्गठन पर विशेष जोर दिया गया। इस काल में कई महत्वपूर्ण नई रेलवे लाइनें बिछाई गई। रेलों के

इंजिन बनाने का एक कारखाना चितरंजन में स्थापित किया गया जो तीव्र गति से प्रगति कर रहा है और १०० से अधिक इंजिन बना चुका है। रेल के डिब्बों को बनाने के कार्य में भी काफी प्रगति हुई है। इस काल में भ्रष्टाचार कम करने तथा तीसरे दर्जे को अधिक सुविधाएं प्रदान करने की दिशा में अनेक प्रयत्न किये गये हैं। विदेशी मुद्रा की कमी के कारण रेलों के विकास का का कार्य उतनी तीव्र गति से नहीं चल पा रहा है जितनी कि आशा की जाती थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी बड़े पैमाने पर रेलों के विकास की व्यवस्था की गई है जिसमे रेल यातायात से सम्बन्धित सभी प्रकार की समस्याओं को ध्यान में रखा गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में रेलों पर ४०० करोड़ रुपया व्यय करने की व्यवस्था थी जबकि वास्तव में ४३२ करोड़ रुपया व्यय किया गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में कुल मिलाकर ११२५ करोड़ रुपया व्यय करने का अनुमान है। १९५५—५६ के अन्त तक भारत में कुल मिलाकर ३४७३६ मील लम्बी रेलवे लाइनें थीं जिनमें ९७५५० लाख रुपए की पूंजी लगी हुई है। भारतीय रेलों से ३१७५१ लाख रुपया प्रतिवर्ष की कुल आमदनी (Gross Earnings) हुई और कुल चालू व्यय २६०१७ ला रुपये हुआ।

निम्नलिखित तालिका से रेलों की प्रगति का सही अनुमान लगाया जा सकता है :—

(लाख रुपये में)

वर्ष	लम्बाई मीलों में	पूंजी	शुद्ध आय
१८५३	२०	३८	०·४९
१८६३	२५०७	५३००	८७·००
१८७३	५ ९७	९१७३	३६५ ००
१८८३	१०४४७	१६८३१	८४२ ००
१८९३	१८४५९	२३३१८	१५७३ ००
१९०३	२६९५६	३४१११	१८९०·००
१९१३	३४६५६	४९५०९	२०६६ ००
१९२३	३८०३९	७१७९३	९९३५·००
१९३३	४२९५३	८८४४१	३००४·००
१९४३	४०५१२	८५८५४	८५२१·००
१९५१	३४११९	८६१५५	६६५५ ००
१९५६	३४७४४	१०७८२३	७०४२·००

१९४७ में देश के विभाजन के कारण कुछ रेलें पाकिस्तान को दे दी गईं जिसमे रेलों की लम्बाई में कुछ कमी आ गई। पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार महत्वपूर्ण क्षेत्रों में नई रेलों के निर्माण पर विशेष जोर दे रही है।

रेलों का आर्थिक महत्व—प्रत्येक देश में कृषि तथा उद्योगों के विकास पर यातायात के साधनों का विशेष प्रभाव होता है। यातायात के

साधनो में रेलो का प्रमुख स्थान है क्योंकि अन्य साधनो की अपेक्षा रेलें अधिक सुविधायें प्रदान करती हैं। लम्बी दूरी तय करने तथा भारी मात्रा मे कच्चा माल कृषि, पदार्थ, कारखानो की बनी हुई वस्तुए और मशीनरी आदि को रेलें ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता पूर्वक ले जा सकती हैं।

भारत एक विशाल देश है जहा बडी मात्रा मे कृषि वस्तुए तथा अन्य प्रकार के औद्योगिक पदार्थ देश से बाहर भेजे जाते हैं और विदेशो से आयात किये जाते हैं। इन वस्तुओ को बन्दरगाहो तक ले जाना तथा बन्दरगाहो से देश के विभिन्न भागो तक पहुँचाने का कार्य भारतीय रेलें ही करती हैं। यह काम वस्तुओ को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ले जाने के लिए रेलो द्वारा किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रेलो के विकास का भारतीय कृषि उद्योग तथा व्यापार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है जो निम्नलिखित है।

कृषि पर प्रभाव—रेलो के विकास ने भारतीय कृषि का मौलिक स्वरूप ही बदल दिया है। अब खेती केवल जीवन निर्वाह के लिए ही नही की जाती वरन् व्यापार की दृष्टि से भी की जाती है। भारत मे व्यापारिक फसल जैसे गन्ना, कपास, तम्बाकू कच्ची जूट, तिलहन तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुओ का उत्पादन बडे पैमाने पर होने लगा है। यह वस्तुए भारतीय उद्योगो मे कच्चे माल के रूप मे प्रयोग होती हैं और विदेशो को भी भेजी जाती हैं। इस कार्य को करने मे भारतीय रेलो का महत्वपूर्ण स्थान है और वे देश की एक महत्वपूर्ण सेवा कर रही हैं।

रेलो के विकास से पूर्व भारत के किसी न किसी भाग मे अकाल पडते रहते थे जबकि अन्य भागो मे अनाज की बहुतायत रहती थी। यह स्थिति कुछ कुछ आज भी है किन्तु रेलो के विकास से अकाल की स्थिति का सुगमता पूर्वक सामना कर लिया जाता है। भारी मात्रा में विदेशो से जो अनाज आयात किया जाता है उसे रेलें शीघ्रता पूर्वक कमी वाले इलाको तक पहुँचा देती हैं। भारत जैसे अनाज की कमी वाले देश के लिए रेलो की यह बहुत बडी सेवा है।

उद्योगो पर प्रभाव—कृषि की भाँति उद्योगों के विकास पर भी रेलो का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। रेलें उन स्थानो को जहाँ बडे बडे कारखाने स्थापित है मशीनें, कोयला, कच्चा माल तथा मजदूरो आदि को पहुचाती हैं और जो सामान उन मिलो में तैयार होता है उसे देश के विभिन्न भागो में उपभोक्ताओ के लिए तथा बन्दरगाहो तक निर्यात के लिए पहुचाती हैं। यदि देखा जाये तो भारत में उद्योग धन्धे उन्ही स्थानो पर विकसित हुए हैं जहाँ रेल यातायात की सुविधायें पहले से मौजूद है। अब जिन स्थानो पर उद्योगो का विकास किया जा रहा है वहा रेलें पहले से पहुचाई जा रही हैं। रेलो के विकास के बिना उद्योगों का विकास सम्भव नही है।

भारत जैसे विशाल देश को देखते हुए रेल यातायात की बहुत कमी है और भारत के आर्थिक दृष्टि से अविकसित होने का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

प्रश्न ८२—भारत में सडक यातायात का क्या महत्व है? इसके पिछड़े रहने के कारणों पर प्रकाश डालिये और बताइए कि सडक यातायात की उन्नति के लिए सरकार द्वारा क्या प्रयत्न किए गए हैं?

What is the importance of road transport in India ? Discuss the causes for its being undeveloped and write the steps taken by the Government for its progress

सडक यातायात का महत्व—वर्तमान युग मे सडको का बडा भारी महत्व आर्थिक एव सामाजिक दोनो ही क्षेत्रो में है। सडको का महत्व गावो एव शहरो दोनो के लिए ही है। किसी भी देश को आर्थिक एव सास्कृतिक प्रगति का अनुमान हम सडको से ही लगा सकते हैं। रस्किन ने कहा है कि 'राष्ट्र की सारी सामाजिक व आर्थिक प्रगति सडको के निर्माण में ही निहित है। भारत कृषि प्रधान देश होने के नाते इस देश के लिए सडको का विशेष महत्व है। सडको के होने से ही ग्रामो से कच्चा माल और कृषि उत्पादन कारखानो, कस्बो, और नगरो तक पहुचाया जाता है और बन्दरगाहों तथा कारखानो से माल कस्बो तक सडक की सहायता से भेजा जाता है। परन्तु भारत में सडको का बहुत अधिक अभाव है जिसके कारण कृषक को मजबूरन अपना माल गावो में ही बेच देना पडता है इसके अभाव मे न तो वह अपना माल नगरो तक पहुचा पाते हैं और न ही अपने उपयोग की वस्तुओं को नगरो से ला सकते हैं। सडक यातायात के महत्व पर प्रकाश डालते हुए जानमथाई ने कहा था 'यदि देश के विपुल स्रोत एव असीमित जन शक्ति का उपयोग साधारण मानव के लिये करना है तो उनका उपयोग मानव के लिए होना चाहिए जो यातायात साधनो से विशेषतया सडक यातायात से प्रगतिशील बनाये जा सके।

सडको की सहायता से ही व्यक्ति एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। देश की सुरक्षा के लिए भी सडक यातायात का बहुत अधिक महत्व है क्योकि आवश्यकता पडने पर किसी भी स्थान पर फौजो को सुगमता से भेजा जा सकता है यदि सडकों का अभाव हो तो सेना शीघ्र एव सुगमता से नही भेजी जा सकती। आधुनिक युग मे फौजो का भी यन्त्रीकरण सा हो गया है जिससे उनका आवागमन अधिकतर मोटरो एव ट्रैक्टरो तथा अन्य चक्रवाह साधनो (Wheels) से होता है जिसके लिए सडको का होना अत्यन्त आवश्यक है।

सडको का महत्व सामाजिक दृष्टिकोण से भी है क्योकि किसी भी देश का सास्कृतिक एव सामाजिक विकास इस बात पर निर्भर रहता है कि सब देश के विभिन्न अग एक सूत्र से बधे हो जिससे उनमे परस्पर विचार विनिमय एव सचार आदि सुगमता से हो सके। यह तभी सम्भव होता है जब सडक यातायात का विकसित रूप होता है।

आर्थिक प्रगति तभी सभव है जब सडक यातायात अच्छा हो अर्थात् सडके आर्थिक स्थिति की परिचायक हैं। यदि आप यह जानना चाहते है कि समाज की क्या स्थिति है तो आप वहा की सडको को देख कर उसी प्रकार जान सकते हैं जितना कि वहा के विश्वविद्यालयो एव पुस्तकालयो के देखने से क्योकि यदि समाज में गति है तो सडके जो गति की परिचायक हैं इस तथ्य को प्रकट करेंगी। इसी प्रकार यदि किसी प्रकार की प्रगति हो रही है यदि नवीन कल्पनाए एव आशाओ का

संचार है तो वहा की निर्मित सडको से वहा का ज्ञान हो सकता है। सम्पूर्ण सृजन क्रियाएं चाहे वे सरकार, उद्योग, विचार अथवा धर्म सम्बन्धी हो सडकों का निर्माण कराती हैं।

इसके अतिरिक्त भी सडक यातायात का विशेष महत्व है। जैसे सडक यातायात की व्यवस्था करने में उतना अधिक व्यय नही करना पडता जितना अन्य यातायात के साधनो में जैसे रेल यातायात। इसके लिए यह भी जरूरत नही होती कि उसके सचालन करने के लिये काफी मुसाफिरो या सामान इत्यादि की आवश्यकता हो। कम सामान और थोडे से मुसाफिरो के होने से ही हम मोटर गाडिया को सडकों पर दौडा सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रो मे मुसाफिर आदि के कम होने तथा गाव की दूरी कम होने के कारण सडक यातायात का विशेष महत्व है क्योकि वहा रेल यातायात से अधिक लाभ नही होगा।

आज स्वतन्त्र भारत देश के नव निर्माण की योजनाएं बना रहा है। कृषि के विकास की तथा उद्योग धन्धो की उन्नति की योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। परन्तु इन सबका यथेष्ट उत्थान तब तक नही हो सकता जब तक देश में सडको का यथेष्ट विकास न हो। हमारी बहुत सी राष्ट्रीय समस्याओ का हल तब तक नही हो सकता जब तक सडको की अच्छी व्यवस्था का अभाव रहेगा। खाद्यान्नो तथा कच्चे व बने हुए माल का उत्पादन व वितरण सडको के पूर्ण विकास पर ही निर्भर है। अतएव सडक यातायात का उचित विकास हमारे देश के आर्थिक उत्थान के लिये नितान्त आवश्यक है। इस में कोई भी सन्देह नही है कि सडको के अपर्याप्त विकास के कारण ही भारत की औद्योगिक एव कृषि की समृद्धि नही हो सकी है। क्योकि भारत मे आज भी गाँव एव कृषि बाजारो मे सडको के अभाव से सम्पर्क नही है, इसलिये आन्तरिक यातायात के विकास की ओर आज भी ध्यान देना अति आवश्यक है।

सडक यातायात के अविकसित होने के कारण—सडक यातायात का विकास किसी निश्चित योजना को अपनाकर नही किया गया। जिस प्रकार से रोम के प्राचीन नगरो का निर्माण हुआ था उसी प्रकार भारत मे भी सैनिक आवश्यकताओ को ध्यान में रखकर सडको का विकास किया गया क्योकि भारत काफी समय तक गुलाम रहा। शासको ने इस देश को आर्थिक लाभ पहुचाने की चेष्टा ही नही की। जिन सडको का निर्माण हुआ भी वह केवल अपने हित को ध्यान में रखकर किया गया। उससे भारतीय जनता को कोई विशेष लाभ नही हुआ। मुख्य सडको का निर्माण बीसवी सदी के प्रारम्भ मे हुआ। भारत मे बर्मा को छोडकर लगभग १७६००० मील सडकें थी जिनमें से ४७००० मील पक्की तथा १२१००० मील कच्ची थी। इसी समय इगलैड मे भी उतनी ही सडकें थी जब कि वहां का क्षेत्रफल ब्रिटिश भारत का $\frac{१}{१०}$ था और अमेरिका मे भारत से १२ गुनी अधिक सडकें थी। भारत में सडको का निर्माण अत्यन्त धीमीगति से हुआ है। इसकी पुष्टि इससे की जा सकती है कि १९०० से १९४१ तक कुल ६०५३५ मील नई सडको का निर्माण हुआ था जब कि इतनी लम्बी सडकें अमेरिका मे १½ वर्ष मे ही बन गई थी। विभाजन से ५७,०००

मील सड़कें पाकिस्तान में चली गई। १९५६ तक सड़कों का योग २६६००० मील तक हो गया था। भारत की विशालता एवं यहां की जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए २६५००० मील सड़कें अत्यन्त कम हैं। दूसरे देशों की तुलना में भारतीय सड़कों की स्थिति निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है।

देश	क्षेत्रफल के प्रति वर्ग मील पर सड़कें (मीलों में)	सड़कें प्रति १०० ००० व्यक्तियों पर
भारत	०·२०	१४० मील
संयुक्त राज्य अमेरिका	१ ००	२.५३ मील
जर्मनी	१ १६	५६५ मील
फ्रांस	१ ८६	१३६० मील
यू० के०	२·००	२०७ मील
जापान	३ ००	६८६ मील

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सड़कें भारत में अन्य देशों की तुलना में बहुत कम हैं। भारत में जो जिन प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति अच्छी नहीं है जैसे आसाम राजपूताना इत्यादि स्थानों में सड़कें और भी अधिक कम हैं। आज भारत स्वतन्त्र हो गया है और वह जिस समस्या को सुलझाना चाहे अपनी नीति से सुलझा सकता है परन्तु भारत में सड़कों के विकास की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है, इसके कई कारण हैं—

(१) भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। देश में वित्त का बहुत अधिक अभाव है जिसके कारण नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों के आधीन जो सड़कें हैं उनकी स्थिति अच्छी नहीं है राज्य सरकारों की भी स्थिति अच्छी नहीं है। वैसे उनके पास कुछ कोष है परन्तु उसका उपयोग सड़कों के निर्माण में कम और अन्य कार्यों में अधिक किया गया है और न ही केन्द्रीय सरकार ने कोई विशेष रुचि ली है।

(२) सरकार और स्थानीय संस्थाओं ने सड़कों के विकास की ओर उचित ध्यान नहीं दिया। इधर कुछ वर्षों से ही सड़कों के विकास की आवश्यकता और इनके महत्व की ओर सरकारों का ध्यान गया है और दोनों सरकारों ने सड़क यातायात के विकास की योजनाएं बनाई हैं।

(३) सडको के अविकसित होने का प्रमुख कारण है निर्माण कार्यों के लिए सामान एवं मशीनों का अभाव जिनके लिए हम को दूसरे देशो पर निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु सरकार की नीतियो से इस प्रकार की सभी वस्तुओ का उत्पादन भारत में ही होने लगा है। फिर भी इस क्षेत्र में हम काफी पीछे है।

उपरोक्त कारणों से देश में सड़क यातायात उन्नति नही कर सका।

सड़क यातायात की उन्नति के लिए किए गए प्रयत्न

भारत में सड़क यातायात की उन्नति के लिये सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न अच्छी सड़को का है। १९२७ में डाक्टर जायकर की अध्यक्षता में एक सड़क विकास कमेटी (Road Development Committee) नियुक्त की गई थी। इस कमेटी ने सुझाव दिया कि सडको की दशा को सुधारने का भार केन्द्रीय सरकार पर होना चाहिए क्योंकि मोटर तथा पेट्रोल पर लगाया हुआ कर केन्द्रीय सरकार भी वसूल करती है।

१९३४ में सड़क निर्माण करने वाले इंजीनियरो की सदस्यता से एक भारतीय सड़क कांग्रेस (Indian Road Congress) की स्थापना की गई जो आज तक जीवित है। इस संस्था ने सड़को के निर्माण तथा उनमे सुधारआदि की समस्याओ पर विचार करके अपनी राय प्रकट की।

१९४३ में भारत सरकार के निमन्त्रण में नागपुर में एक सम्मेलन हुआ जिसमें सड़को के विकास की एक दस वर्षीय योजना बनाई गई जो नागपुर योजना (Nagpur Plan) के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के अनुसार सड़को की राष्ट्रीय (National Highways), प्रदेशीय, जिला तथा ग्राम सड़को के नाम से चार श्रेणियों में विभाजित किया गया। नागपुर योजना के अनुसार १० वर्ष में ४४८ करोड़ रुपये की लागत से ४ लाख मील लम्बी सड़को का निर्माण किया जाना था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है १९२७ मे जायकर कमेटी ने सडको के विकास के विषय में कुछ सुझाव दिये थे। इन्ही में से एक सुझाव के अनुसार १९३० में एक केन्द्रीय सड़क विकास कोष (Central Road Development Fund) स्थापित किया गया था जिसमे मोटर-स्प्रिट पर बढ़ाया हुआ कर जमा किया जाता है। इस कोष का १५ प्रतिशत केन्द्रीय सड़क अनुसंधान कोष (Central Road Research Fund) को दे दिया जाता है और कुछ भाग एक सुरक्षित कोष (Reserve Fund) मे जमा हो जाता है। शेष विभिन्न राज्यो के सड़क विकास के लिये दिया जाता है।

नागपुर योजना मे समस्त भारत के लिये ३३१००० मील लम्बी सडकों का लक्ष्य निर्धारित किया था जिसका विवरण इस प्रकार था :—

राष्ट्रीय सड़के	१६६००	मील
राष्ट्रीय पूरक सडकें	६१५०	,,
प्रांतीय सडकें	५३९५०	,,
जिला तथा ग्रामीण सडके	२५६३००	,,
	३३१०००	,,

प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्त में नागपुर योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्य में केवल १००० मील पक्की तथा ६०००० मील कच्ची सडकों की ही कमी रह गई थी।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सडको का विकास :—प्रथम पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में भारत मे कुल ९८००० मील लम्बी पक्की सड़कें तथा १५१००० मील लम्बी कच्ची सडकें थी। १९५६ मे जब प्रथम योजना समाप्त हुई उस समय देश मे कुल ३२०५२२ मील लम्बी कुल सडके थी जिनमें १२२९७० मील लम्बी पक्की सडकें तथा १९८५५२ मील कच्ची सडकें थी। इनमे वे सडकें भी शामिल हैं जो *सामुद विक विकास योजना तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड योजना के अन्तर्गत बनाई* गई हैं। यह कमी दूसरी पचवर्षीय योजना मे अवश्य पूरी हो जायगी। सडकों के विकास मे एक मुख्य बाधा यह है कि सभी नदियो पर यथा स्थान पुल नहीं बनाए जा सकते। इसमें काफी समय लगने की सम्भावना है।

दूसरी पचवर्षीय योजना और सडकों का विकास :—दूसरी पचवर्षीय योजना में केन्द्रीय सरकार तथा राज्यो ने सडको के विकास के लिए २ अरब ४६ करोड रुपये की व्यवस्था की है। इसमे नई सडको का निर्माण तथा पुरानी सडकों का सुधार शामिल है। इस धन के अतिरिक्त केन्द्रीय सडक विकास कोष से २५ करोड रुपया और प्राप्त होगा। आशा है कि दूसरी योजना मे नागपुर योजना में निर्धारित लक्ष्य पूरे हो जावेंगे।

पहली योजना मे जो कार्य शुरू किया गया था उसे चालू रखा जायगा। सडकों को एक दूसरे से मिलाने वाली ६०० मील लम्बी सडकें तथा ६० बडे पुल बनाने की व्यवस्था है। ७०० मील लम्बी सडकें सुधारी जाएगी और ३००० मील लम्बी सडकें चौडी की जाएगी।

राज्यो के सडक विकास कार्यक्रम के अनुसार दूसरी योजना में १७००० मील लम्बी सडके बनाने की आशा है। सडक यातायात के राष्ट्रीयकरण (Nationalization) पर अधिक जोर दिया जावेगा। इस कार्य के लिये योजना में १३ करोड ५० लाख रुपये की व्यवस्था है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी सरकार सडक यातायात को अन्य योजनाओं की भांति विशेष महत्व देती है और इसके विकास के लिए पूरी तरह प्रयत्नशील है।

प्रश्न ८३—भारत मे रेल तथा सडक यातायात के सामजस्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए। उपरोक्त दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश में सडक यातायात की प्रगति की विवेचना कीजिए ? (आगरा १९५५)

Examine the necessity of Rail-Road Co-ordination in India Discuss the working of the road transport in U. P. from the above point of view *(Agra 1955)*

उत्तर—परिवहन विक्रय का आवश्यक अंग है। आधुनिक व्यवसायिक विकास ने अच्छी सडकों के प्रचार के महत्व को बहुत बढा दिया है। परन्तु इसमें कोई सदेह

नही कि भारी यातायात और दूरी के फासले के क्षेत्र में सडक यातायात रेलो से किसी प्रकार की भी प्रतियोगिता नही कर सकता। सडक यातायात तो केवल थोडी सी दूरी तय करने और हल्की व महगी वस्तुओ को इधर से उधर ले जाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। भारत जैसे देश के लिए दोनो प्रकार के परिवाहनो की आवश्यकता है। इसमे सदेह नही कि अच्छी परिवहन व्यवस्था से कृषि उत्पादन को निश्चय ही प्रेरणा मिलेगी और जीवन निर्वाह कृषि का स्थान व्यवसायिक कृषि लेगी जिसमे ग्रामीणो का जीवन स्तर ऊचा होगा, समय की बचत होगी तथा निर्यात या आतरिक उपभोग वाले कृषि उत्पादन से सम्बन्धित उद्योगो को भी पर्याप्त सहायता पहुचेगी। दोनो परिवहन उद्योगो के विकेन्द्रीकरण में सहायक सिद्ध होंगे।

भारत में अधिकाश सडकें रेलों के समानातर हैं जिसके फलस्वरूप दोनो मे प्रतिस्पर्धा की दौड लग होती है। निकट भविष्य में रेल यातायात के विकास के लिए नई और बडी २ योजनाओ का निर्माण किया जा रहा है। परन्तु इतने विशाल देश के लिये वह तब भी अपर्याप्त रहेगी। इस अपर्याप्तता को दूर करने के लिये हमको औद्योगिक केन्द्रो को बन्दरगाहो से सम्बद्ध करने के लिये सडक यात यात से सहायता लेनी पडेगी। सडक यातायात के नवीन निर्माण में अधिक व्यय करना पडेगा। परन्तु रेल यातायात से वह व्यय कम ही होगा। सडक यातायात के सस्ते होने का एक यह भी कारण है कि सडक की देखभाल पर जो व्यय होता है वह कर द्वारा वसूल कर लिया जाता है और रेलो को एक तो पटरी आदि बिछानी पडती है और फिर इनकी देखभाल पर स्वय ही व्यय करना पडता है। परन्तु इन दोनो परिवाहनो का होना अति आवश्यक है। यही कारण है कि कुछ स्थानो पर वे एक दूसरे को सहायता पहुचाती हैं और पूरक का काम करती है और कुछ स्थानो पर इन दोनों साधनों में प्रतिद्वंदिता भी रहती है। सडकें किसानो की चीजो को बाजारो और पास के स्टेशन से सयुक्त करती हैं। इसके विपरीत रेलवे उत्पादन क्षेत्र और दूर के उपभोक्ताओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है तथा नगर के उत्पादकों और हल कृत्रिम खाद और कपडा खरीदने वाले किसानो को मिलाती है, अच्छी और पर्याप्त सडको के बिना कोई भी रेलवे परिवहन के लिए पर्याप्त सामग्री इकट्ठी नही कर सकती। इसके विपरीत सबसे अच्छी सडकें भी फसल का उत्पादन करने वालो को उपभोक्ताओ के सम्पर्क मे नही ला सकती। इस तथ्य से इस बात की तो पुष्टी होती ही है कि रेलवे और सडको के बीच थोडी सी प्रतिद्वन्दिता तो अवश्य बनी रहेगी। यही कारण था कि १९२० मे दोनों में प्रतिस्पर्धा हुई और सडक यातायात को काफी हानि उठानी पडी। १९२९ में इन दोनों की प्रतियोगिता ने और भी विकट रूप धारण कर लिया। क्योकि महामारी के प्रकोप से रेल यातायात को इधर उधर ले जाने के लिए सवारी नही मिली और दूसरी आर मोटरो की कीमते गिरी पैट्रोल आदि भी सस्ता हो गया। इस प्रतियोगिता के काल में रेल यातायात को २ करोड रु० प्रतिवर्ष की हानि उठानी पडी।

इस समस्या पर विचार हेतु १९३२ में सरकार ने मिचेल ककनेस समिति (Mitchell Kirkness Committee) बनाई जिसने सुझाव दिया कि सडक

यातायात पर नियन्त्रण रखा जाये और यातायात सम्बन्धी एक केन्द्रीय यातायात मण्डल बनाया जाए। इस सुझाव के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में यातायात परामर्शदाता समितियां (Transport Advisory Committee) स्थापित की गई। इसके अतिरिक्त एक संवहन विभाग (Communication Department) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य समस्त यातायात के साधनों पर निरीक्षण करने का था।

सन् १९३६ में वेजउड समिति (Wedgewood Committee) की स्थापना की गई जिसने रेल सड़क प्रतिस्पर्धा की आर्थिक समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया। जिसने बताया कि प्रांतीय सरकारों का सड़क परिवहन का नियमन अपर्याप्त और अस्त व्यस्त था। इस प्रकार की नीति का अनुसरण सरकार ने किया थी कि जिससे रेलों को नुकसान हो और स्वयं भी सेवा का कार्य न कर सकें। समिति इस बात से सहमत नहीं थी कि सड़कों का नियमन केवल रेलवे की सुरक्षा की दृष्टि से ही किया जा रहा था। केन्द्रीय सरकारों द्वारा निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार प्रांतीय सरकारों को सड़कों का नियमन करना चाहिए किन्तु सड़कों के परिवहन पर इस प्रकार के कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाने चाहिए जिन से उनके विकास में बाधा पड़े। इसने यह सुझाव दिया कि मोटर यातायात पर नियन्त्रण रखने के लिये मोटर चालकों व मालिकों को अनुमति पत्र (Licence) दिए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त इसने यह भी सिफारिश की कि सड़क यातायात में रेलवे को भी भाग लेना चाहिए अर्थात् रेलों को स्वयं अपनी मोटरें चलानी चाहिए।

इस प्रतिस्पर्धा को नष्ट करने के लिए १९३९ में मोटर गाड़ी अधिनियम बनाया गया जिसमें सवारी संख्या निश्चित की गई, माल लदान निश्चित किया गया, मोटर कर्मचारियों के काम करने के घण्टे मोटर रफ्तार आदि निश्चित किए गए। उपरोक्त कार्यों की देखभाल के लिये प्रांतीय यातायात अधिकारियों की नियुक्ति की गई। कानून के उल्लघन करने वाले के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई। इसके बाद १९४८ में राष्ट्रीय सरकार ने यातायात निगम अधिनियम (Road Transport Corporation Act) पास किया। इसके अनुसार राज्य सरकारों को सड़क यातायात पर पूर्ण अधिकार सचालन एव नियन्त्रित करने का मिल गया। रेल यातायात का राष्ट्रीयकरण हो जाने के बाद सड़क यातायात का भी राष्ट्रीयकरण करना अनिवार्य सा हो गया। कुछ राज्यों ने तो इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया है। इस अधिनियम के बन जाने से प्रतिस्पर्धा को कम करने में काफी सहायता मिली परन्तु जब दोनों साधनों का राष्ट्रीयकरण हो गया तो स्पर्द्धा का लगभग अन्त हो गया।

पहले रेलों के समानान्तर ही सड़कों का निर्माण किया गया था तथा प्रतिस्पर्द्धा का होना अति आवश्यक था। किन्तु भविष्य में जिन सड़कों का निर्माण होगा उनका उद्देश्य होगा कि वे पर्याप्त मात्रा में रेलों को सामग्री प्रदान कर सके। दूसरे शब्दों में मोटर गाड़ियां अन्य क्षेत्रों में चलेंगी जिससे दोनों में स्पर्द्धा का प्रश्न ही नहीं आयेगा।

स्पर्द्धा को दूर करने के लिए यह आवश्यक हो गया कि सरकार इनमें हस्त–

क्षेप करे कि सड़क यातायात में मोटरों आदि में बहुत अधिक लाभ होने लगा। जिससे पूंजीपतियों ने अपना अपना धन रेल यातायात की बजाय मोटर यातायात में लगाना प्रारम्भ किया जिसका प्रभाव हुआ कि रेल और सड़क यातायात में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी जिसमें रेलों को काफी हानि उठानी पड़ी और दूसरी ओर स्वयं मोटर मालिकों में प्रतियोगिता का श्रीगणेश हुआ जिसमें मोटर यातायात को काफी धक्का पहुंचा। उपरोक्त समस्याओं को सुलझाने के हेतु सरकार को सड़क यातायात के राष्ट्रीयकरण पर विचार करना पड़ा। इस राष्ट्रीयकरण की नीति की आलोचना हुई और समालोचना भी।

आलोचना—जब राष्ट्रीयकरण की बात मोटर मालिकों ने सुनी तो इन्होंने कड़ा विरोध किया। मिन मालिकों ने कहा कि इस उद्योग में हमारी काफी पूंजी लगी हुई है। और जब इसको हानि का सामना करना पड़ रहा था तब किसी ने राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव नहीं रखा और जब लाभ होने लगा तब सरकार राष्ट्रीयकरण की बात सोच रही है। इन्होंने कहा कि सरकार यातायात में स्पर्द्धा के अभाव से यात्रियों की कुशलता एवं सुविधा का ध्यान नहीं रक्खा जायेगा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकरण के बाद सरकार को काफी बड़ी धन राशि मोटर मालिकों को मुआवजे के रूप में देनी पड़ेगी। जबकि सरकार को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है और वह यातायात के किराये भाड़े की अधिक रक्खेगी जिससे व्यवसाय और यात्रियों को हानि होगी। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीकरण से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि मोटर यातायात पर नियन्त्रण करने के लिये मोटर गाड़ी अधिनियम की विभिन्न धारायें पर्याप्त हैं। अतः राष्ट्रीयकरण से रेल सड़क सामन्जस्य का कोई निश्चित रूप से लाभ नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार को कोई विशेष लाभ नहीं होगा वरन् इनकी सम्भावना अधिक है कि उनकी आय भी कम हो जाय।

समालोचना—कुछ व्यक्तियों का कहना है राष्ट्रीयकरण से किराये भाड़े में कमी होगी और क्षमता व कुशलता में वृद्धि होगी। राष्ट्रीयकरण से यात्रियों को विविध प्रकार की सुविधायें प्राप्त हो सकेंगी—जैसे मोटर और बस समयानुसार चलेंगी और भीड़ कम होगी इसके अतिरिक्त सड़क निर्माण कर्ताओं तथा सड़क प्रयोग कर्ताओं में कोई भेद नहीं होगा। इस यातायात को वहां भी प्रोत्साहित किया जा सकेगा जहां यह यातायात अलाभकारी सिद्ध हुआ है। इस नीति के अनुसरण से यातायात विभाग के कर्मचारियों को उचित वेतन आराम तथा छुट्टी आदि अनेक प्रकार सुविधा हो सकेंगी।

उत्तर प्रदेश में सड़क यातायात की प्रगति—भारत सरकार ने रेलों के राष्ट्रीयकरण के बाद राज्य सरकारों द्वारा सड़क यातायात के राष्ट्रीयकरण की नीति को अपनाने का निश्चय किया है। इस प्रकार यदि रेल तथा सड़क यातायात पर सरकार का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होगा तो दोनों में सुगमता पूर्वक सामन्जस्य स्थापित किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश सरकार ने सड़क यातायात का राष्ट्रीयकरण करके एक प्रगतिशील कदम उठाया है। राज्य के कुछ थोड़े से भागों को छोड़कर शेष सब भागों

पर यू० पी० गवर्नमेंट रोडवेज की बसें चलाई जाती हैं। रोडवेज के स्वामित्व में उत्तर प्रदेश सरकार तथा रेलों का हिस्सा है। पुरानी निजी मोटर कम्पनियों को भी मुआवजे के रूप में इसके कुछ हिस्से मिले हुए हैं। उत्तर प्रदेश गवर्नमेंट रोडवेज का संचालन राज्य सरकार के परिवहन विभाग द्वारा किया जाता है। प्रारम्भ के कुछ सालों में रोडवेज के कारण सरकार को काफी हानि हुई किन्तु बाद में सरकार को पर्याप्त लाभ हो रहा है। इस समय उत्तर प्रदेश में १८०० के लगभग रोडवेज की बसें चल रही हैं। बसों के निर्माण के लिए कानपुर में एक केन्द्रीय निर्माणशाला स्थापित की गई है। इसके अतिरिक्त राज्य को कई क्षेत्रों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र में एक छोटी वर्कशाप स्थापित की गई है जहां बसों की मरम्मत तथा सफाई आदि का कार्य होता है।

उत्तर प्रदेश में सड़क यातायात के राष्ट्रीयकरण से अब रेल सड़क प्रतियोगिता का भय कम हो गया है। छोटी दूरी के लिए सरकारी बसें सुविधाजनक यात्रा प्रदान करती हैं किन्तु इनका किराया रेलों की अपेक्षा कुछ अधिक होता है। जो लोग अधिक व्यय करके समय की बचत और सुविधाजनक यात्रा करना चाहते हैं वे इन बसों में सफर करते हैं। सरकारी रोडवेज का मुख्य उद्देश्य केवल धन कमाना नहीं है वरन् जनता की सेवा करना भी है। बसों का समय पर छूटना, उनमें यात्रियों के लिए हर प्रकार की सुविधा तथा कार्य कुशलता का विशेष ध्यान रखा जाता है। रेल सड़क यातायात सामन्जस्य की दृष्टि से इसे पूरी सफलता प्राप्त हुई है।

प्रश्न ८४ — निजी मोटर कम्पनियों की अपेक्षा सरकारी रोडवेज द्वारा सवारी और सामान लेजाने के क्या लाभ हैं। अपना उत्तर तर्क सहित दीजिए।

(आगरा १९५२)

Discuss the merits of Government Roadways as against private motor companies in the carrying of passengers and goods Give reasons for your reference *(Agra 1952)*

उत्तर—रेल तथा सड़क यातायात के बीच सामन्जस्य स्थापित करने के उद्देश्य से १९४८ में सड़क यातायात निगम कानून (Road Transport Corporation Act) पास किया गया जिसमें राज्यों को इस बात का अधिकार मिल गया कि वे एक सड़क यातायात निगम के द्वारा सड़क यातायात का संचालन तथा नियन्त्रण कर सकते हैं। इससे पूर्व कई राज्यों में राज्यों की सरकारों ने यातायात का राष्ट्रीयकरण करके उसे अपने हाथ में ले लिया था। उस समय यह वादविवाद बड़े जोरों के साथ उत्पन्न हुआ कि सड़क यातायात को कुशलतापूर्वक चलाने के लिये निजी मोटर कम्पनियाँ अधिक उपयुक्त हैं अथवा सरकारी रोडवेज। दोनों पक्षों की ओर से अनेक तर्क पेश किये गये। काफी विचार के बाद यही उचित समझा गया कि सड़क यातायात में सवारी तथा सामान ले जाने के लिए सरकारी रोडवेज की व्यवस्था ही अधिक उपयुक्त और लाभपूर्ण है। इसके निम्नलिखित लाभ हैं—

सरकारी रोड-वेज के लाभ

(१) **कार्य क्षमता मे वृद्धि** — सरकारी रोडवेज केवल लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से नही चलाई जाती वरन् जनता की सेवा का भाव भी उसमे रहता है। बसें समय पर चलाई जाती हैं चाहे उसम पूरे यात्री हों या न हों। निजी मोटर कम्पनियो के मालिक समय का कोई ध्यान नही रखते। जब तक यात्री पूरे न हो जावें वे बस को नही चलाते। उनका उद्देश्य केवल लाभ कमाना ही होता है। सरकारी रोडवेज मे बसो की मरम्मत तथा उनको चालू हालत ठीक रखने की पूरी व्यवस्था रहती है। इससे बसें रास्ते मे कम खराब होती है। जब बसें पुरानी हो जाती हैं तो उनके स्थान पर नई बसें सडको पर चलाई जाती हैं। बसो की मरम्मत की व्यवस्था करना सरकारी रोडवेज के लिए सरल है क्योंकि उनकी क्षेत्रीय तथा स्थानीय वर्कशाप स्थापित कर दी जाती है। यह कार्य बडे पैमाने पर होता है इसलिए उसमे पूरी किफायत रहती है। निजी मोटर कम्पनिया इस प्रकार की व्यवस्था नहीं कर पाती

(२) **किराए मे निश्चितता** —सरकारी रोडवेज के किराये निश्चित होते हैं। उनमे बार बार हेर फेर नही किया जाता। निजी मोटर कम्पनिया के किराये निश्चित नही रहते। वे समय तथा स्थिति के अनुसार अपने किराये मे हेर फेर कर लेते है। यदि भीड अधिक है तो वे अपने किराये बढा लेते हैं और यदि यात्री कम है तो कम पैसे लेकर भी उन्ह बिठा लेते हैं। यह नीति उचित नही मानी जाती। सरकारी रोडवेज म पूरी तरह किराए की समानता और स्थिरता रहती है।

(३) **यात्रियो की निश्चित संख्या** —सरकारी रोडवेज मे यात्रियो की सख्या निश्चित रहती है। कानून द्वारा निर्धारित सख्या से अधिक एक भी यात्री नही बिठाया जा सकता। निजी मोटर कम्पनियो के कर्मचारी यात्रियो की सख्या का विशेष ध्यान नही रखते। वे आवश्यकता पडने पर निर्धारित सख्या से भी अधिक बैठा लेते हैं चाहे उससे अन्य यात्रियो को कितनी ही असुविधा क्यो न हो।

(४) **परस्पर प्रतिस्पर्द्धा की समाप्ति** —सरकारी रोडवेज की स्थापना से रेल सडक प्रतियोगता तो समाप्त होती ही है सडक यातायात वालो की आपसी प्रतियोगिता भी नष्ट हो जाती है। निजी मोटर कम्पनिया किराये कम करके तथा अन्य प्रकार की अनुचित रीतिया अपनाकर एक दूसरे से प्रतियोगिता करते है। यह प्रतियोगिता एक ओर तो रेल यातायात के लिए हानिकारक है और दूसरी ओर इसका सडक यातायात की कार्यकुशलता पर भी बुरा प्रभाव पडता है। ऐसे मार्गो पर जहा काफी यातायात हुआ है बहुत बडी सख्या मे निजी बसें चलती रहती है जबकि उनकी आवश्यक्ता नही होती। सरकारी रोडवेज प्रत्येक मार्ग पर सम्भावित यातायात का पूरी तरह अनुमान लगाकर ठीक सख्या मे बसे चलाती है।

(५) **अलाभकारी मार्गो पर भी बसों का चलना** —निजी मोटर मालिक उन मार्गों पर अपनी बसें चलाना पसन्द नही करते जिन पर अधिक लाभ की आशा नही होती क्योकि व किसी प्रकार की हानि सहन करने को राजी नही हो सकते। सर-

कारी रोडवेज जनता की सेवा के विचार से ऐसे मार्गों पर भी अपनी बसें चलाती है। सरकारी रोडवेज लाभकारी तथा अलाभकारी दोनो प्रकार के मार्गों पर चलती हैं। इसलिए जिन मार्गो पर रोडवेज को हानि होती है वह अन्य मार्गों के लाभ से पूरी हो जाती है।

(६) सड़क निर्माण कर्ता तथा सडक प्रयोग कर्ता के भेद की समाप्ति—सडक यातायात की एक विशेषता यह है कि सडकों का निर्माण तथा उनकी मरम्मत तथा देखभाल सरकार द्वारा की जाती है किन्तु उनका प्रयोग निजी मोटर कम्पनियो तथा जनता के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार पक्की सडको के बनाने तथा उनकी देख भाल का व्यय तो सरकार को करना पड़ता है किन्तु उनका लाभ निजी मोटर कम्पनियो को प्राप्त होता है। सरकारी रोडवेज के चलने से यह भेद समाप्त हो जाता है। सरकार अच्छी सडकें बनाती है, उनकी देखभाल मे रुचि लेती है और उनका पूरा लाभ प्राप्त करती है।

(७) समाजवादी अर्थ व्यवस्था की ओर एक कदम—भारत समाजवादी अर्थ व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है जिसके लिये समस्त लोक हितकारी सेवाओ का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए ताकि उनका सचालन व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर सामाजिक लाभ के लिये हो सके।

(८) राजकीय आय का साधन—सडक यातायात के राष्ट्रीयकरण से यह राजकीय आय का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। वर्तमान युग मे सरकार को अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार भारतीय रेलें केन्द्रीय सरकार की आय का एक अच्छा साधन हैं उसी प्रकार सरकारी रोडवेज राज्य सरकारो की आय का एक अच्छा साधन हैं।

(९) कर्मचारियो की दशा मे सुधार—सरकारी रोडवेज के कर्मचारियो को अच्छा वेतन मिलता है तथा छुट्टी आदि की सुविधाएं प्राप्त होती हैं। उन्हे अपनी नौकरी छुटने का इतना अधिक भय नही होता जितना निजी कम्पनियो मे काम करने वाले कर्मचारियो को रहता है। वे २४ घन्टे के नौकर होते हैं और उन्हे अपने मालिक की इच्छाओ के अनुसार काम करना पड़ता है। सरकारी रोडवेज के कर्मचारी सरकार के नौकर होते हैं। उनके काम के घण्टे तथा अन्य बाते सरकार द्वारा निर्धारित नियमो के अनुसार चलती हैं।

जहा तक माल लाने ले जाने का प्रश्न है इस क्षेत्र मे सरकारी रोडवेज ने अभी तक कोई प्रगति नही की है। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक इस सम्बन्ध में किसी विशेष प्रगति की आशा भी नहीं है। तब तक यह कार्य निजी मोटर कम्पनियो के पास ही रहेगा। यह बात निश्चित है कि सरकारी रोडवेज की कार्य-क्षमता निजी कम्पनियो की कार्य क्षमता से सवारी अथवा माल यातायात दोनो ही क्षेत्रो में अधिक होगी।

निजी मोटर कम्पनियो के पक्ष में भी बहुत से तर्क पेश किये गये है और उन्हे सरकारी रोडवेज से अधिक कार्य-कुशल बताया गया है किन्तु अब यह विषय अधिक

विवाद का नहीं रहा क्योंकि इस सम्बन्ध मे भारत सरकार की नीति स्पष्ट रूप मे घोषित कर दी गई है और योजना आयोग ने भी इसका अनुमोदन कर दिया है। सड़क यातायात का राष्ट्रीयकरण वैसे भी समाजवादी अर्थ व्यवस्था की नीति के अनुसार ही है।

प्रश्न ८५–भारतीय जहाजरानी के विकास तथा वर्तमान स्थिति की विवेचना करो।

Discuss the growth, development and present position of Indian Shipping

उत्तर—समुद्री यातायात का आर्थिक और व्यापारिक दृष्टिकोण से अन्य यातायात की भांति काफी महत्व है। इस समय भारत मे जहाजरानी अविकसित रूप मे है परन्तु प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता लगता है कि भारत मे घने मजबूत और सुन्दर जहाजो के सहारे ही ईरान, अरब, पूर्वी अफ्रीका, मलाया और पूर्वी द्वीपो इत्यादि देशो से व्यापारिक सम्बन्ध थे और जहाजरानी की सहायता से ही माल मसाले तथा विभिन्न प्रकार के सामान इन देशो को भेज जाते थे। डा० राधाकमल मुकर्जी ने इस विषय मे लिखा है कि भारत की प्राचीन सभ्यता इसलिये ससार के कोने कोने तक पहुची कि इसे बडी सामुद्रिक शक्ति प्राप्त थी। इसके कारण ही ससार के लोग हमारे धर्म और संस्कृति से प्रभावित हुए थे। जहाज का उद्योग प्राचीन समय मे भी था। इतिहास से पता चलता है कि जब सिकन्दर महान अपने देश को वापिस हो रहा था तब २००० भारतीय जहाजो पर अपनी सेना एव सामान ले गया था। मुगल शासन काल मे भी जहाजरानी उद्योग विकास की ओर बढ रहा था। इस उद्योग की प्रशसा करते हुए बावरी और फायर ने लिखा है कि "उस समय भारत मे मजबूत जहाज बनाये जाते थे। यूरोपीय देशो मे इतने विशाल जहाजों का अभाव था। १६६२ के लगभग जहाज बनाने के केन्द्र ढाका, जैसोर, सूरत, मसूली पट्टम गोवा, बेसिन और हुगली थे।

शिवाजी के पास भी मजबूत जहाजी बेडा था जिस बेडे से अग्रेजो को सदा भय बना रहता था। उसके बाद के काल मे भी जहाजरानी की दशा अच्छी रही परन्तु २० वी शताब्दी के प्रारम्भ होते ही यह उद्योग अवनति करता गया जिसका मुख्य कारण था अग्रेजो का भारत पर शासन स्थापित होना।

भारत मे रेल यातायात की स्थापना हो जाने के बाद रेल यातायात और समुद्री यातायात मे प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हो गई। सरकार ने इस प्रतिस्पर्द्धा को नष्ट करने के लिये कभी कोई कदम नहीं उठाया। वरन् जब कभी भारतीय कम्पनियो ने समुद्र मे अपने जहाज चलाने के प्रयत्न भी किए तब उनको विदेशी जहाजरानी कम्पनियों से प्रतिस्पर्द्धा करनी पडी जिससे उनको काफी हानि का सामना करना पडा। यह प्रतिस्पर्द्धा दो प्रकार से लडी जाती थी—एक तो भाडा कम करके दूसरे विलम्बित कटौती प्रथा द्वारा। उदाहरण के लिए जब टाटा कम्पनी ने चीन से सूत का व्यापार करने के लिए जहाजरानी कम्पनी प्रारम्भ करने का सोची तभी पी० एण्ड

ग्रो० कम्पनी (P & O Co.) ने अपने भाडे १६ रु० टन मील से घटाकर १½ रु० टन प्रति मील कर दिया। इससे टाटा कम्पनी प्रतियोगिता लेने मे असमर्थ रही और बाद मे भाडे को बढाकर १७ रु० कर दिया। विलम्बित कटौती प्रथा (Deferred Rebate System) के अनुसार विदेशी कम्पनिया कुछ समय पश्चात् भारतीय व्यापारियो को पिछले दिये हुए किराये मे से कुछ कटौती इस शर्त पर देती थी कि भविष्य मे वह अपना माल इन्ही जहाजरानी कम्पनी द्वारा ही भेजेंगे। इस प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला भारतीय जहाजरानी कम्पनिया नही कर सकी जिसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश कम्पनियो का एक प्रकार से एकाधिकार हो गया जिससे मनमाना भाडा लेकर अनुचित लाभ कमाने लगी।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भारतीयो मे जागृति का सचार हुआ और उन्होने इस बात की माग करना प्रारम्भ की कि भारतीय जहाजरानी उद्योग को अपना विकास करने का अवसर प्रदान किया जाए। अत १९२३ मे इण्डियन मरकन्टाइल तथा मेरिन कमेटी (Indian Mercantile Marine Committee) की नियुक्ति की गई। इस समिति का उद्देश्य यह जांच करना था कि भारतीय जहाज चलाने तथा जहाज बनाने के काम मे किन किन उपायो से उन्नति हो सकती है। समिति ने जो सुझाव दिये वह इस प्रकार हैं:—

(१) भारतीय व्यापारिक जहाजरानी के लिये अनिवार्य अफसरो की प्रशिक्षा हेतु सरकार द्वारा बम्बई मे जलयान प्रशिक्षण की स्थापना की जानी चाहिये।

(२) सामुद्रिक इन्जीनियरो की ट्रेनिङ्ग के लिए इन्जीनियरिंग कालिजो की सुविधाए दी जानी चाहिए तथा सामुद्रिक अनुभवो की सुविधाए भी देनी चाहिए।

(३) तटीय व्यापार लाईसेंस प्राप्त जहाजो के लिए सुरक्षित रखा जाय।

(४) भारतीय कम्पनियो को व्यापार हेतु अनुदान देने के प्रश्न पर विचार किया जाए।

(५) कलकत्ता को स्वत चलित जलयानो के निर्माण का केन्द्र बनाया जाये।

(६) भारतीय कम्पनियो द्वारा जलयान निर्माण प्रागण की स्थापना मे सरकार को सहायता देनी चाहिये।

(७) भारतीयो को विदेशी कम्पनियो से नियुक्त किया जाना चाहिए। सिवाए इसके कि डफरिन (जहाजी बेडे) मे जहाजी कर्मचारियो तथा इजीनियरो की शिक्षा की व्यवस्था हो गई, उपरोक्त किसी भी सिफारिश को नही माना। इसके बाद १९२८ मे श्री हाजी साहब ने असेम्बली मे तटीय यातायात को भारतीय जहाजो के लिये सुरक्षित रखने के हेतु एक विधेयक पेश किया। बिल के जो सिद्धान्त थे वे प्रायः व्यापारिक जहाजरानी का विकास करने के इच्छुक प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपनाये गये है, परन्तु भारत सरकार ने कहा कि वह इस मामले को तब तक हाथ मे नहीं ले

सकती जब तक कि भारत और इंगलैंड के व्यापारिक सम्बन्ध और विभेदकारी अधिनियमों के बारे में निर्णय नहीं हो जाता अर्थात् यह बिल अस्वीकृत कर दिया गया। इसके बाद १९३९ में हाजी साहब ने विलम्बित बट्टे के अन्त (Abolition of Deferred Rebates) के लिये प्रस्ताव रखा परन्तु इसमें भी सफलता न मिल सकी। १९३७ में सर अब्दुल हालिम गजनवी ने एक विधेयक पेश किया परन्तु उसका भी कोई परिणाम न निकला। इस प्रकार जहाजरानी के विकास के लिये जो भी प्रयत्न किये गये वे सब असफल रहे।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व भारत के पास केवल १२५००० जी० आर० टी० (Gross Registered Tonnage) के जहाज थे जो संसार भर के जहाजों का ०.२४ प्रतिशत भाग है। जब युद्ध का समय निकट आया तब अंग्रेजी सरकार को भारत की जहाजी सम्बन्धी कमी का काफी ज्ञान हुआ। उस समय भारतीय नौसेना के महत्व का पता चला। दूसरी ओर बंगाल में भीषण अकाल पड़ा, खाने की कमी हो गई। भारत के पास खाद्यान्न के यातायात के लिये यथेष्ट जहाज न होने के कारण स्थिति और भी गम्भीर हो गई। युद्ध काल में जापानी और जर्मनी के जहाजों की प्रतियोगिता से बचने के लिये ब्रिटिश सरकार को कानून बनाने की सूझी। सरकार की आंखें खुली। जहाजरानी की गम्भीर समस्या पर विचार करने के लिए सर सी० पी० रामास्वामी ऐयर की अध्यक्षता में एक युद्धोत्तर पुनर्निर्माण नीति उपसमिति (Post War Reconstruction Policy's Sub-Committee) की नियुक्ति की जिसने अपनी विज्ञप्ति १९४ में पेश की जिसमें सरकार की नीति की आलोचना की गई। इसने सिफारिश की कि ५, ७ वर्षों की अवधि में भारतीय जहाजरानी उद्योग की क्षमता २० लाख टन कर दी जाय। दूसरे भारत के तटीय व्यापार का १०० प्रतिशत, निकटवर्ती देशों के साथ होने वाले व्यापार का ७५ प्रतिशत दूरवर्ती देशों के साथ होने वाले व्यापार का ५० प्रतिशत तथा जर्मनी आदि शत्रु राष्ट्रों के खोये हुये व्यापार का ३० प्रतिशत भाग भारतीयों के हाथ में ५ से ७ वर्ष तक आ जाना चाहिये। परन्तु इस सम्बन्ध में सरकार ने कोई उल्लेखनीय कार्यवाही नहीं की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने उपरोक्त लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जहाजी कम्पनियों को सहायता देने का निश्चय किया।

उपरोक्त लक्ष्य पर पहुंचने के शिपिंग एक्ट १९४७ पास किया गया जिसके द्वारा जहाजों का लाइसेंसिंग अनिवार्य किया गया। इसके बाद एक सम्मेलन द्वारा जहाजी निगमों (Shipping Corporations) की स्थापना का निर्णय किया गया। इन निगमों का उद्देश्य भारतीय जहाजों की टन क्षमता तथा जहाजी यातायात में वृद्धि करनी होगी। ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन आज पूर्ण रूप से सरकारी स्वामित्व में है।

वर्तमान स्थिति—स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय सरकार अपने जहाजी व्यापार के विकास के लिये काफी प्रयत्न कर रही है। नवीन बन्दरगाहों का निर्माण जारी है और योजना बनाई जा रही है। भारत सरकार अब इस बात को भली भांति

जानती है कि भारतीय जलयानो को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे तथा राष्ट्र की रक्षा मे बडा कार्य करना है। इसके लिये वाणिज्य विभाग की अध्यक्षता मे बम्बई म एक डायरेक्टरेट जनरल आफ शिपिंग की स्थापना की गई है जिसका उद्देश्य भारतीय जलयान नीति का एकीकरण करना है। विजगापट्टम बन्दरगाह को सरकार आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रही है। सरकार ने यह भी निश्चय कर लिया है कि भविष्य मे भाडे आदि के संघर्ष के कारण भारतीय जहाजरानी या जलयान उद्योग को कोई हानि नही होने पायेगी। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय जलयान कम्पनियाँ भारत यूरोप तथा उत्तरी अमरीका के बीच अच्छी सेवाए कर रही हैं।

भारत सरकार ने १९५१ न अग्रेजी प्रभुत्व के जहाजी सम्मेलन के स्थान पर एक नया भारतीय तटीय सम्मेलन (Indian costal conference) की स्थापना की जिसके द्वारा सारा तटीय व्यापार भारतीय जहाजो द्वारा किया जाता है। जहाजरानी को इतना प्रोत्साहित करने के बाद भी भारतीय जहाजरानी पूर्ण विकसित नही हो पाई है। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार का कुल ५ प्रतिशत भाग भारतीय जहाजो द्वारा किया जाता है जबकि लक्ष्य ५० प्रतिशत था। इस प्रकार जहाजरानी के विकास क लिये बहुत कुछ करना है।

प्रथम पचवर्षीय योजना—योजना आयोग की सिफारिश के अनुसार प्रथम योजना म जहाजी उद्योग की टन शक्ति ६ लाख टन बढाने की थी। जिसके लिये जहाज खरीदने के लिये १९.५ करोड रुपये की सहायता देने की सिफारिश थी। योजना म पूर्वी कार्पोरेशन के लिए इतनी धनराशि का प्रायाजन किया था कि वह ६०००० टन के जहाज खरीद सके। योजना आयोग ने सिफारिश की थी कि सरकार इस उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान करे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा कि जहाजी बेडे को विकास योजना को दी हिन्दुस्तान शिपयार्ड विशाखापट्टम की योजना से मिला देना चाहिये। जिससे अधिक उन्नति हो सके। यह भी आवश्यक है कि प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाये जिसके लिये भाडे उचित और एक समान होने चाहिए। सरकार ने उपरोक्त सभी सुझावो को मान्यता प्रदान की और हर प्रकार से इस उद्योग के विकास म सहयोग प्रदान कर रही है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—दूसरी पचवर्षीय योजना म ४५ करोड रुपए का आयोजन जहाजरानी के लिये किया है इसमे ८ करोड रुपए की पहली योजना की शेष धन राशि का समावेश भी है। प्रथम योजना मे ६ लाख टनेज की पूरा होने मे कुछ कमी रह गई लेकिन दूसरी योजना के अन्तर्गत ९०००० टन के जहाज बदले जायेंगे और टनेज का लक्ष्य ९००००० टन रखा गया है। दूसरी पचवर्षीय योजना मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भारतीय जहाजो का भाग १५ प्रतिशत तक हो जाने की आशा है।

बडे बन्दरगाहो की विकास योजना पर ५८.३१ करोड रुपया व्यय किया जायेगा। जो इस प्रकार होगा—

१.	कलकत्ता	१६ ८८ करोड रु०
२	बम्बई	१७.४२ ,,
३	मद्रास	८४६ ,,
४	कोचीन	३ ६१ ,,
५	कांधला	८ ६४ ,,
		५८ ३१ ,,

द्वितीय योजना मे ४ करोड रु० प्रकाश गृह के ऊपर व्यय किया जायेगा। छोटे बन्दरगाहो के विकास के हेतु ५ करोड रु० निर्धारित किये गये हैं। इस समय विशाखापट्टम शिपयार्ड की उत्पादन शक्ति ४ बडे जहाजो की है। उत्पादन को बढाने के लिए दूसरा शिपयार्ड कोचीन मे स्थापित किया जायेगा जिससे विदेशो से व्यापार मे प्रगति की जा सके। इसके अतिरिक्त मौजूदा प्रकाश-स्तम्भो का आधुनिकीकरण करने और कई नये प्रकाशस्तम्भ बनाने की भी दूसरी योजना मे व्यवस्था है।

दूसरी योजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि पहली योजना मे जो योजनाएं शुरू की गई थी उन्हें पूर्ण किया जाये तथा उपकरणो से सुसज्जित किया जाए और गोदियों (डॉक) का आधुनिकीकरण किया जाये तथा उन उपकरणो से सुसज्जित किया जाय जिनसे देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास से पैदा होने वाली जरूरतें पूरी की जा सकें।

प्रश्न ८६—भारत मे वायु यातायात के विकास तथा वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिए तथा इसकी भावी उन्नति की सम्भावनाओ पर प्रकाश डालिए?

Discuss the growth and present position of Air Transport in India. What are the possibilities of its further development?

प्रारम्भिक काल—अन्य देशों की अपेक्षा वायु यातायात का विकास काफी देर से हुआ। वैसे तो १९११ म बम्बई के गवर्नर सर जार्ज लायड ने बम्बई से करांची तक प्रयोगात्मक वायु यात्रा प्रारम्भ की थी किन्तु इसे सरकार की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। १९१४ मे जब प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तब वायु यातायात को कुछ प्रोत्साहन मिला किंतु वह केवल लडाई से सम्बन्धित था।

१९२७ मे भारत सरकार ने एक नागरिक उडान विभाग (Civil Aviation Department) की स्थापना की और १९२८ मे दिल्ली कराची, बम्बई तथा कलकत्ता मे उडान क्लब (Flying Clubs) खोले। १९२९ मे इम्पीरियल ऐयरवेज सर्विस को दिल्ली तक बढाने की व्यवस्था की गई। इसी के साथ साथ विमान चालको और टैक्नीकल कर्मचारियो के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध किया गया। वह यह समय था जिसके बाद से वास्तव मे भारत मे वायु यातायात का श्रीगणेश हुआ।

१९३२ मे टाटा एयरवेज लिमिटेड ने इलाहाबाद, कलकत्ता तथा कोलम्बो के बीच वायु यातायात शुरू किया और बाद मे करांची तथा मद्रास को भी इससे जोड दिया। १९३३ मे भारतीय राष्ट्रीय एयरवेज (Indian National Air Ways)

ने भी देश के वायु मार्गों पर अपने वायुयान चलाना शुरू किया। १६३७ मे एयर-सर्विसेज ग्राफ इण्डिया (Air Services of India) नामक एक कम्पनी भी स्थापित हुई जो कुछ समय बाद सिन्धिया कम्पनी द्वारा खरीद ली गई। १६३८ मे एम्पायेर एयर मेल योजना चालू की गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ होने तक भारत मे कई वायु यातायात कम्पनिया स्थापित हो चुकी थी यद्यपि उनकी ग्रार्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी और उनमे से कई एक को भारी ग्रार्थिक हानि का सामना करना पडा। उसका एक कारण यह था कि उस समय तक वायु यातायात न तो पूरी तरह देश मे लोकप्रिय हुआ था और न सुरक्षा तथा टैक्नीकल क्षेत्र मे इतनी अधिक प्रगति हो पाई थी जितनी आज देखने को मिलती है। उस समय तक देश मे अच्छे हवाई अड्डो का भी अभाव था।

दूसरे महायुद्ध मे वायु यातायात को विशेष प्रोत्साहन मिला। इस युद्ध मे वायु सेना का भी एक महत्वपूर्ण कार्य रहा। भारतीय वायु सेना के विस्तार के उद्देश्य मे सरकार ने देश मे अनेक हवाई अड्डे बनाये और वायुयान भी खरीदे। वायु सेना के विकास के साथ साथ नागरिक वायु यातायात को भी विकसित होने का पूरा अवसर प्राप्त हुआ।

दूसरे महायुद्ध के बाद का काल—युद्ध की समाप्ति के बाद वायु यातायात को अनेक प्रकार की सुविधाए प्राप्त हुईं। जो हवाई अड्डे युद्ध काल मे वायु सेना के प्रयोग के लिये बनाये गए थे वे नागरिक वायु यातायात के विकास के लिये प्रयोग मे आने लगे। बहुत से डैकोटा हवाई जहाज विमान चालक, टैक्नीकल कर्मचारी तथा अन्य प्रकार की सामग्री इन कम्पनियो के लिये कम दामो पर उपलब्ध हो गई। युद्धोत्तर काल मे सरकार ने वायु यातायात के भावी विकास के लिये एक निश्चित नीति निर्धारित की जिसमे निम्नलिखित बातें शामिल थी।

(१) वायु यातायात का सचालन तथा स्वामित्व निजी क्षेत्र मे अर्थात गैर सरकारी कम्पनियो पर छोड दिया गया।

(२) जो कम्पनिया निश्चित रूप से वायु यातायात के क्षेत्र मे कार्य करना चाहती थी उन्हे वायुयान लाइसेंस बोर्ड से लाइसेन्स प्राप्त करना अनिवार्य हो गया।

(३) विशेष परिस्थितियो मे सरकार द्वारा इन कम्पनियो को आर्थिक सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की गई जिससे कि वे शैशव काल की कठिनाइयो का सामना करने मे समर्थ हो सकें। इस प्रकार तेजी से वायु यातायात का विकास होने लगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात—देश के विभाजन के समय से लेकर १६४८ तक पाकिस्तान से शरणार्थियो को भारत लाने के कार्य मे महत्वपूर्ण योग दिया। १६५० में जब पाकिस्तान ने काश्मीर पर हमला किया तो वायु यातायात के कारण ही कम से कम समय मे भारतीय सेनाए काश्मीर की रक्षा के लिये भेजी जा सकी।

दूसरे महायुद्ध के काल में वायु यातायात की जो प्रगति हुई उसके कारण भारतीय पूंजीपतियों ने व्यवसाय मे और अधिक रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप कई नई कम्पनियों की स्थापना हो गई। १६४६ के अन्त तक भारत मे कुल ११ वायु यातायात कम्पनियां लाइसेंस प्राप्त कर चुकी थी। १६४८ से भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय वायु यातायात मे भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और भारतीय विमान यात्रियों तथा सामान को लेकर योरप तथा ससार के अन्य प्रमुख देशो के बीच चलने लगे। १६४६ मे रात्रि वायु डाक व्यवस्था भी की गई।

१६५० तक की वायु यातायात की प्रगति उत्साहवर्धक होते हुये भी अनियन्त्रित तथा योजना रहित थी। जिन कम्पनियों को लाइसेंस दिये गये उनके पास न तो पूरी सामग्री थी और न देश में इतनी कम्पनियों के लायक कार्य ही था। परिणाम यह हुआ कि इन कम्पनियो म आपसी प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई। इस प्रकार एक ओर तो इन कम्पनियो का सचालन व्यय बढता गया और दूसरी ओर इन्हे पर्याप्त मात्रा मे आय नही हुई। अपने को जीवित रखने के लिए इन्हें सरकार से कर्ज तथा अनुदान के रूप मे आर्थिक सहायता की मांग करनी पडी। सरकार द्वारा भरसक सहायता प्रदान करने के बाद भी स्थिति में कोई सुधार नही हुआ और ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह कम्पनियां कभी भी स्वावलम्बी बनकर कार्य नही कर सकेगी। दूसरे शब्दो मे इन्हे सदैव बडी मात्रा म सरकारी सहायता पर निर्भर रहना पडेगा। सरकार ने यह सोचा कि जब उसे इतना अधिक व्यय करना पडता है तो क्यो न इनका सचालन अपने हाथ मे ले लें। १६५० म इस प्रश्न की जाच करने के लिये एक समिति नियुक्त की गई।

राजाध्यक्ष समिति (१६५०)—बम्बई हाई कोर्ट के जज श्री राजाध्यक्ष के सभापतित्व मे वायु यातायात जाच समिति (Transport Enquiry Committee) की नियुक्ति १६५० म की गई। इस समिति ने वायु यातायात की विभिन्न समस्याओं तथा कठिनाइयो पर पूरी तरह विचार करने के बाद कुछ सुझाव दिये जिनमे निम्नलिखित मुख्य है —

(१) अगले ५ वर्षो तक वायु यातायात का राष्ट्रीयकरण न किया जाये।

(२) कुछ कम्पनियों को दुबारा लाइसेंस न दिये जायें और जो स्थाई कम्पनियां हैं उन्हे इस प्रकार सगठित किया जाय कि केवल चार कम्पनियां ही देश मे काम करें।

(३) इन कम्पनियो के भागो को पुनर्विभाजित किया जाये कि एक मार्ग पर कई कम्पनियां कार्य न कर सकें।

(४) वायु यातायात के किराये इस प्रकार सशोधित किए जायें कि कम्पनियो की अचल पूंजी पर १० प्रतिशत के लाभ के सिद्धांत को आधार माना जाये।

(५) पुराने वायुयानो को हटा दिया जाए और अतिरिक्त कर्मचारियो को भी अलग कर दिया जाए।

(६) सरकार को आर्थिक सहायता जारी रखनी चाहिये।

भारत सरकार ने समिति ने अधिकांश सुझाव सिद्धांतिक रूप से स्वीकार कर लिए किन्तु उन पर कार्य नहीं किया। इसके विपरीत वायु कम्पनियों की बिगड़ती हुई दशा को देखकर सरकार ने उनके राष्ट्रीयकरण का निश्चय कर लिया। यद्यपि जाँच समिति ने इसका विरोध किया।

वायु यातायात का राष्ट्रीयकरण—१९५२ में वायु यातायात के संचालकों तथा नागरिक उडान विभाग (Civil Aviation D partment) का एक सम्मेलन हुआ था जिसमे यह सिफारिश की गई कि पुराने वायुयानों के स्थान पर नए वायुयान खरीदने के लिए सरकार आर्थिक सहायता दे। इसके अतिरिक्त सरकार को ४० लाख रुपए प्रतिवर्ष परोक्ष रूप से सहायता के रूप में व्यय करने पड़ते थे। *इन सब बातों को सोचकर तथा योजना आयोग की अनुमति से राष्ट्रीयकरण का* निश्चय कर लिया गया।

२१ मार्च १९५३ को संचार मन्त्री श्री जगजीवन राम ने संसद के सामने वायु यातायात निगम बिल (Air Transport Corporation Bill) पेश किया जो दोनों सदनों द्वारा पास कर दिया गया और कानून के रूप में १ अगस्त १९५३ से लागू हो गया। इस कानून के अनुसार २ निगमों की स्थापना की गई जिनमें एक भारतीय एयर लाइन्स कारपोरेशन तथा दूसरा एयर इण्डिया इण्टर नेशन के नाम से कार्य कर रहे हैं।

वर्तमान स्थिति—भारतीय एयर लाइन्स कारपोरेशन में ८ वायु यातायात कम्पनियों को शामिल किया गया है और इसके वायुयान देश के भीतर एक नगर से दूसरे नगर तक उडान करते हैं। वायु यातायात को ७ भागों में बाँटा गया है जिनका भार ७ रेजीडेन्ट प्रतिनिधि सम्भालते हैं। इनमें से तीन के प्रधान कार्यालय कलकत्ते में और शेष के दिल्ली मद्रास और हैदराबाद में हैं। इस समय इस निगम के पास ९१ वायुयान हैं *जिनमें ६६ डैकोटा, १२ विकिंग्स, ६ स्काई मास्टर और ८ हैरोंस* हैं। देश के अन्दर वायु यातायात के कुल मार्गों का विस्तार १९९८५ मील है।

दूसरा निगम एयर इण्डिया इण्टर नेशनल श्री जे आर० डी० टाटा की अध्यक्षता में विदेशी वायु यातायात का संचालन करता है। इसके पास इस समय ५ सुपर कान्सटेलेशन, ३ कान्सटेलेशन और १ डैकोटा जहाज है। १५ देशों में तथा २३४८३ मील के वायु मार्ग पर यह वायुयान उडान करते हैं। १९५४–५५ में जब कि भारतीय एयर लाइन्स कारपोरेशन को ९० १५ लाख रुपये का घाटा हुआ था एअर इण्डिया नेशनल को ३३'९५ करोड रुपये का लाभ हुआ।

राष्ट्रीयकरण के कारण सरकार ने निजी कम्पनियों को मुआवजा देने की व्यवस्था की थी जिसकी रकम ४८ करोड रुपये तय की गई। इसमे से ४८ लाख रुपये नकद तथा शेष को ऋण पत्रों के रूप में दिया गया।

प्रथम पचवर्षीय योजना में वायु यातायात के विकास को दो भागों में विभाजित किया गया था। १९५१–५२ तथा १९५२–५३ के दो वर्षों में १ ८५ करोड रुपया व्यय करने की व्यवस्था की गई। बाद के तीन वर्षों में ९ ६७ करोड का व्यव-

स्था थी जिसमें चालू व्यय के अतिरिक्त आवश्यक सामग्री खरीदने तथा निजी कम्पनियो को मुआवजा देने की व्यवस्था थी। प्रथम योजना मे ११ नये हवाई अड्डे स्थापित किये गये। इस प्रकार इस समय नागरिक वायु यातायात विभाग के आधीन ८१ हवाई अड्डे हैं।

भावी विकास की सम्भावनाएं—द्वितीय पचवर्षीय योजना मे वायु यातायात के विकास के लिये १२.५ करोड रुपया निर्धारित हुआ है जबकि वास्तव मे १८ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान है। इसमे से हवाई अड्डो के निर्माण एवं सुधार पर ८.३ करोड रुपया टेली कम्यूनिकेशन की सामग्री पर ७.८ करोड रुपया, प्रशिक्षण एव शिक्षा के सामान पर ५० लाख तथा अनुसधान तथा विकास आदि पर २६ करोड रुपया व्यय किया जायेगा। दूसरी योजना मे ८ नये हवाई अड्डे बनाये जायेगे और वर्तमान अड्डो मे आवश्यक सुधार होगे ताकि दिन तथा रात मे वायुयानो की उडान के कार्य मे और अधिक प्रगति हो सके। इस प्रकार भारत के समस्त राज्यो की राजधानिया तथा देश के सभी प्रमुख नगर वायु मार्ग पर आ जायेगे। भारतीय एयर लाइन्स कारपोरेशन के विकास पर १६ करोड रुपया तथा एयर इण्डिया इटर नेशनल के विकास पर १४.५ करोड रुपया व्यय करने का आयोजन है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अगले कुछ वर्षों मे ही यातायात के अन्य साधनो की भाति वायु यातायात भी भारत मे यातयात का एक प्रमुख साधन बन जायगा।

अध्याय ११

भारत में आर्थिक नियोजन

प्रश्न ८८—भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिये। यह कहा तक सफल हुई है? (आगरा १९५४)

Describe the main features of the First Five year Plan of India How far has it been successful? (*Agra 1954*)

उत्तर—भारतीय सविधान लागू हो जाने के बाद १९५० में ही भारत सरकार ने योजना आयोग (Planning Commission) की स्थापना की। इसका *उद्देश्य भारत के आर्थिक विकास तथा लोगो के रहन-सहन के स्तर में सुधार करने* के लिये पंचवर्षीय योजनायें तैयार करना था। जौलाई १९५१ मे योजना आयोग ने प्रथम पचवर्षीय योजना का मसौदा पेश किया। यह योजना प्रथम अप्रैल १९५१ से ३१ मार्च १९५६ तक के लिये बनाई गई थी। प्रारम्भिक मसौदे मे कुछ सशोधन करने के बाद अन्तिम रूप मे यह योजना प्रधान मन्त्री द्वारा ८ दिसम्बर १९५२ को भारतीय ससद के सामने की गई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य तथा विशेषताएं—योजना आयोग के शब्दो मे "योजना का मुख्य उद्देश्य लोगो के रहन सहन के स्तर को ऊंचा करना तथा उन्हे एक सुखी और अधिक व्यापक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करना था।" दूसरे शब्दो मे प्रत्येक क्षेत्र मे उत्पादन को अधिकतम सीमा तक बढाकर, लोगो को पूर्ण रोजगार प्रदान करके तथा देशवासियो को आर्थिक तथा सामाजिक न्याय की व्यवस्था करके वास्तविक अर्थ मे एक लोक हितकारी राज्य की स्थापना करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रथम पचवर्षीय योजना उस आधार शिला के समान थी जिस पर देश के भावी विकास की इमारत बनेगी।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था—प्रथम पचवर्षीय योजना मे भारत के लिये एक मिश्रित अर्थ व्यवस्था की कल्पना की गई जिसमे सरकार को एक महत्वपूर्ण तथा क्रियाशील भाग लेना था। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करके सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के बीच सामन्जस्य स्थापित करने की आशा प्रकट की गई ताकि अपने क्षेत्र मे दोनो का विकास हो सके।

कृषि की प्रधानता—इस योजना मे कृषि के विकास को सबसे अधिक महत्व दिया गया। द्वितीय महायुद्ध तथा देश के विभाजन के कारण भारतीय अर्थ व्यवस्था मे एक प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न हो गया था। देश मे खाद्य सामग्री तथा कच्चे माल

के उत्पादन में वृद्धि करने की आवश्यकता थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कृषि विकास तथा छोटी बड़ी सिंचाई की योजनाओं को प्राथमिकता दी गई।

जल विद्युत का विकास—एक बड़े पैमाने पर जल-विद्युत उत्पन्न करने की आवश्यकता को अनुभव करते हुये योजना में इस कार्य के लिए महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। योजना आयोग के विचार में सिंचाई तथा ग्रामोद्योगों के विकास के लिये बड़े पैमाने पर बिजली का निर्माण आवश्यक है। इसलिये जनता को पूर्ण रोजगार की सुविधायें प्रदान करने के लिये बिजली का विकास किया जाना चाहिए।

यातायात के साधनों का विकास—सिंचाई तथा जल-विद्युत के बाद यातायात के साधनों के विकास की आवश्यकता अनुभव की गई। रेल यातायात तथा सड़क यातायात के विकास के साथ ग्रामीण सड़कों को बनाने के लिये जनता के सामुदायिक प्रयत्न तथा श्रमदान को महत्व दिया गया और सामुदायिक विकास योजनाएं पंचवर्षीय योजना में शामिल की गई।

उद्योग-धन्धों का विकास—बड़े पैमाने के उद्योगों के विषय में यह सोचा गया कि उपभोक्ता की वस्तुओं से सम्बन्धित नये कारखाने न लगाये जायें वरन् वर्तमान कारखानों की उत्पादन क्षमता को ही पूरी सीमा तक प्रयोग में लाया जाये। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों का विकास किया जाए।

निम्नलिखित तालिका में प्रथम पंचवर्षीय योजना का संक्षिप्त विवरण दिया गया है —

		(करोड़ रुपयों में)		
		प्रारम्भिक अनुमान	संशोधित अनुमान	प्रतिशत व्यय
१	कृषि तथा सामुदायिक विकास	३६१	३७२	१६
२.	सिंचाई तथा बिजली	६१	६६१	१८
३.	उद्योग तथा खनिज पदार्थ	१७३	१७६	७
४	यातायात तथा संचार	११७	५५६	२४
५.	समाज सेवायें	४२५	५४७	२३
६	अन्य कार्य	५५२	४१	२
	योग	२५६६	२३५६	१००

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि प्रारम्भिक अनुमान के अनुसार योजना पर २०६९ करोड रुपये व्यय किये जाने थे किन्तु देश मे बढती हुई बेरोजगारी की समस्या के तत्कालीन समाधान के उद्देश्य से यह व्यय २३५६ करोड रुपये कर देना पडा। निजी क्षेत्र मे भी १४०० करोड रुपये से बढाकर १५०० करोड रु० के विनियोग की व्यवस्था करदी गई।

योजना के लिए निर्धारित लक्ष्य—योजना मे कई बडी बहुमुखी नदी घाटी योजनायें सम्मिलित की गई जिमसे १६८ लाख एकड अतिरिक्त भूमि की सिंचाई तथा ४६ किलोवाट अतिरिक्त बिजली उत्पन्न होने का अनुमान था। देश मे खाद्य उत्पादन में भी इस योजना के फलस्वरूप ७६ लाख टन को वृद्धि की कल्पना की गई इसी प्रकार कपास, कच्ची जूट, गन्ना तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुओ के उत्पादन में भी काफी वृद्धि का अनुमान लगाया गया। उपरोक्त लक्ष्यो मे प्राप्ति के अतिरिक्त सहकारी ग्राम प्रबन्ध, सामुदायिक ग्राम योजनायें तथा राष्ट्रीय विचार सेवा खण्डो के माध्यम से ग्रामीण जीवन के सर्वमुखी विकास पर जोर दिया गया।

योजना मे उद्योग धन्धो के विकास पर १७३ करोड रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी जिसमे विशेष जोर लोहा तथा इस्पात उद्योग तथा भारी रसायनिक पदार्थों के विकास पर किया गया। इसके बाद कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास को भी आवश्यक स्थान मिला। अन्य उद्योगो की उत्पादन क्षमता को देखते हुए उत्पादन मे वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये। निजी क्षेत्र द्वारा उद्योगो के विकास पर २३३ करोड रुपये के व्यय का अनुमान था।

राष्ट्रीय सडको के विकास के लिए २६ करोड रुपये तथा राज्यो के आधीन सडको के विकास के लिए ७३ ५४ करोड रु० की व्यवस्था की गई। जहाजी कम्पनियो के विकास के लिए सहायतार्थ १५ करोड रु०, काडला के नये बन्दरगाह के लिए १३ ५ करोड रुपये की व्यवस्था की गई। समाज सेवाओ के लिए जो धन व्यय होना था उसमे से शिक्षा पर १५१ करोड रु०, स्वास्थ्य पर ९९ करोड रुपये, मकानो के निर्माण पर ४९ करोड रु०, श्रम हितकारी कार्यों के लिए ७ करोड रु० तथा पिछडी हुई जातियो के लिए २९ करोड रु० की व्यवस्था की गई।

१९५० —५१ मे भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगभग ९ हजार करोड रुपये का था। यह कल्पना की गई कि १९५५-५६ तक भारत की राष्ट्रीय आय १० हजार करोड रुपये हो जायेगी अर्थात् २ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से' वृद्धि होने की सम्भावना थी। राष्ट्रीय आय की वृद्धि का ⅕ फिर से विकास कार्यो में विनियोग हो जाना चाहिए। रोजगार के सम्बन्ध मे यह अनुमान लगाया गया कि योजना काल मे लगभग ५५ लाख व्यक्तियो को पूर्ण रोजगार तथा ३८ लाख व्यक्तियो को अर्ध रोजगार प्राप्त हो सकेगा।

योजना की वित्त व्यवस्था—योजना पर व्यय होने वाले २०६९ करोड रुपये म से विभिन्न साधनो द्वारा जो धन प्राप्त होने की समावना थी उसका अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है।

१	केन्द्रीय सरकार द्वारा बचत	१६०	करोड रुपये
२	रेलो की बचत	१७०	" "
३	राज्य सरकारो द्वारा बचत	४०८	" "
४	सार्वजनिक ऋण	११५	" "
५	छोटी बचतें	१७०	" "
६	डिपाजिट तथा प्रावीडेन्ट फन्ड	२३५	" "
७	विदेशी सहायता	२१	" "
८	घाटे का बजट	२६०	" "
	योग	२०६६	करोड रुपये

प्रथम पंचवर्षीय योजना—प्रथम पचवर्षीय योजना ने प्रारम्भ के वर्षो मे बहुत थोडी प्रगति की। १९५३ के मध्य मे बेरोजगारी की समस्या जटिल हो जाने के कारण सरकार को अधिक मात्रा मे योजना पर धन व्यय करना पडा। वैसे तो सशोधित अनुमान के अनुसार योजना के काल मे विकास कार्यो पर कुल २३५६ करोड रु० व्यय होना था किन्तु वास्तव मे केवल १९६० करोड रु० व्यय किया जा सका अर्थात् प्रथम पचवर्षीय योजना पर अनुमान से १७ प्रतिशत कम व्यय किया जा सका। प्रतिवर्ष के व्यय के आकडे निम्नलिखित है—

१९५१–५२	२५९ करोड रु०
१९५२–५३	२७३ " "
१९५३–५४	३४० " "
१९५४–५५	४७६ " "
१९५५–५६	६१२ " "
पाच साल का कुल व्यय का योग	१९६० " "

उपरोक्त व्यय निम्नलिखित साधनो से प्राप्त किया गया।

१	रेलो सहित राजस्व की बचत से	७४५ करोड रु०
२	सार्वजनिक ऋण से	२०३ " "
३	छोटी बचतो द्वारा	३०० " "
४	पूजीगत खाते मे अन्य प्राप्ति	१०० " "
५	विदेशी सहायता	१९७ " "
६	घाटे की बजट व्यवस्था	४१५ " "
	योग	१९६० " "

प्रथम पचवर्षीय योजना मे जिन लक्ष्यो की प्राप्ति की जा सकी है उन्हे अभी अन्तिम रूप में प्रकाशित नही किया गया है यद्यपि ३१ मार्च १९५६ को प्रथम पच-वर्षीय योजना पूरी हो गई थी। २२ जून १९५७ की योजना आयोग के उप सभापति ने जो विज्ञप्ति प्रकाशित करने के हेतु तैयार की थी उसमे प्रथम पचवर्षीय योजना की प्रगति तथा सफलताओ की विवेचना की गई है। इसमे एक महत्वपूर्ण बात की

और संकेत किया गया है वह यह है कि यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र में अनुमान से लगभग ४८६ करोड रु० कम व्यय हुआ परन्तु निजी क्षेत्र ने इस दिशा में पूरी सफलता प्राप्त की अर्थात औद्योगिक विकास के लिये २३३ करोड रु० व्यय होने का अनुमान था जबकि वास्तव में २३१ करोड रु० व्यय किया गया।

पहली योजना का व्यापक प्रभाव इस बात से प्रकट होता है कि योजना काल में वास्तविक राष्ट्रीय आय में लगभग १८% की वृद्धि हुई है। १९५२-५३ के मूल्यों के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि १९५५—५६ में राष्ट्रीय आय १८०० करोड रु० हो गई जब कि यह १९५०—५१ में केवल १५१० करोड रु० थी। इस अवधि में प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) में ११% की वृद्धि और उपभोग व्यय में ९% की वृद्धि हुई है।

सबसे महत्वपूर्ण प्रगति कृषि उत्पादन के क्षेत्र में हुई। खाद्यान्न का उत्पादन २०% कपास का उत्पादन ४५% तथा मुख्य तिलहनों का उत्पादन ८ प्रतिशत बढ गया। सिंचाई की छोटी और बडी योजनाओं के परिणाम स्वरूप सिंचित भूमि में १०६० एकड भूमि की वृद्धि हो गई है। बिजली का उत्पादन १९५०—५१ में ६ लाख ७७ करोड ५० लाख किलोवाट घन्टे था। १९५५—५६ में यह बढ कर ११ अरब किलोवाट हो गया। औद्योगिक उत्पादन का सूचक अंक १९५० में १०५ था जो १९५५ में बढकर १६१ हो गया।

सार्वजनिक क्षेत्र में योजना काल के जो नये कारखाने खोले गये उनमें से कुछ के नाम यह हैं।

(१) सिंधरी—रसायनिक खाद का कारखाना
(२) चितरंजन—रेल के इंजिन बनाने का कारखाना
(३) हिन्दुस्तान केबिल्स दुर्गापुर
(४) हिन्दुस्तान शिपयार्ड विशाखापटनम
(५) इन्टेग्रेल कोच फैक्ट्री मद्रास
(६) हिन्दुस्तान मशीन टूल मैसूर
(७) नैशनल इन्स्ट्रूमैन्ट्स फैक्ट्री कलकत्ता
(८) टैलीफून फैक्ट्री बंगलोर

पहली योजना की अवधि में अर्थव्यवस्था में कुल विनियोग (Investment) ३१०० करोड रु० आका गया है। विनियोग की दर १९५०-५१ में लगभग ५ प्रतिशत थी जो १९५५-५६ में बढकर ७·३ प्रतिशत हो गई विनियोग में हुई इस वृद्धि के साथ देश में मुद्रा स्फीति से वृद्धि हुई। इस योजना के आरम्भ के काल की तुलना में सामान्य मूल्य स्तर में योजना समाप्त होने तक लगभग १३ प्रतिशत की कमी हो गई। विदेशी भुगतान का सतुलन अनुकूल ही रहा है। वरन् उसमें कुछ थोडी सी बचत हुई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की कमियां—यद्यपि पन्चवर्षीय योजना को पर्याप्त मात्रा में सफलता प्राप्त हुई किन्तु इसमें बहुत सी त्रुटियां भी रह गई। कुछ लोगों का अनुमान है कि जितना धन योजना पर व्यय किया गया उसके अनुपात में उत्पादन

मे वृद्धि नहीं हुई अर्थात् भारी मात्रा मे देश के पैसे का अपव्यय हुआ। सरकार ने भी कुछ अंशो मे इस बात को स्वीकार किया है। उनके अनुसार इसका मुख्य कारण अनुभवहीनता तथा जनता के सहयोग की कमी थी। पूंजी तथा सामग्री की कमी के कारण तथा टैक्नीकल कर्मचारियों के अभाव की वजह से बहुत से कार्य क्रम पूरे नही हो सके। योजना के प्रारम्भ के तीन वर्षों मे आवश्यक सामग्री के कमी के कारण बहुत कम कार्य हुआ और बाद के दो वर्षों मे तीव्रगति से कार्य को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया जिसकी वजह से धन तथा सामग्री की बर्बादी स्वाभाविक ही थी।

कुछ आलोचकों का कहना है कि प्रथम पचवर्षीय योजना वास्तव मे विकास की योजना नही थी वरन् भविष्य की योजनाओं की सफलता के लिये आवश्यक वातावरण प्रस्तुत करना इसका मुख्य उद्देश्य था। इस लिये सरकार ने इस योजना के विज्ञापन पर बहुत अधिक व्यय किया। यह मानना पड़ता है कि प्रथम पचवर्षीय योजना के कारण देश मे एक प्रकार की जागृति उत्पन्न हो गई और लोग अपने उत्तरदायित्वों तथा सरकार की कठिनाइयों को अनुभव करने लगे हैं।

प्रश्न ८६—भारत की दूसरी पचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्यों तथा विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। यह प्रथम योजना से किस प्रकार भिन्न है?

Describe the main objectives and features of the Second Five Year Plan of India How does it differ from the First Five Year Plan ?

उत्तर— प्रथम पचवर्षीय योजना ३१ मार्च १९५६ को समाप्त हुई। दूसरी योजना के सम्बन्ध मे राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) मे बोलते हुये प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू जी ने कहा था "हमने अपनी यात्रा का पहला चरण पूरा कर लिया है किन्तु हम तुरन्त ही अपनी दूसरी यात्रा के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए"। आगे चलकर उन्होंने कहा "जिस प्रकार जीवन का निर्वाह जारी रहता है, उसी प्रकार योजना और विकास भी जो किसी राष्ट्र के जीवन प्रवाह का नियमन करते हैं, निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रियायें हैं"। इस प्रकार प्रथम पचवर्षीय योजना समाप्त होने के तुरन्त बाद अर्थात् १ अप्रैल सन् १९५६ को दूसरी योजना लागू कर दी गई। दूसरी योजना का मसौदा बनाने से पूर्व सरकार ने २१ भारतीय अर्थशास्त्रियों के एक मण्डल द्वारा विचार करने के बाद उसे अन्तिम स्वरूप दिया।

दूसरी योजना के सम्बन्ध मे दो महत्वपूर्ण बातों को याद रखना आवश्यक है। पहली बात यह है कि दूसरी योजना ऐसी नही है कि जिसमे कोई हेर फेर किया जा सके किन्तु वह अनिवार्य रूप से माननीय है। आर्थिक तथा वित्तीय गति विधियों तथा विविध क्षेत्रों मे हुई प्रगति को ध्यान मे रखकर वार्षिक कार्य-क्रमों के आधार पर यह योजना चलाई जा रही है। प्रत्येक समय पर पुनर्विचार किया जाता है। दूसरी बात यह है कि तीव्रगति से होने वाले विकास के इस काल मे जो मुद्रा स्फीति

होने की सम्भावना है उसके प्रभाव को कम करने के लिए योजना मे जो प्रस्तावित कृषि उत्पादन के लक्ष्य रखे गये हैं उन्हे और अधिक बढाया जायेगा। सक्षेप मे 'दूसरी योजना का उद्देश्य यह है कि ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण किया जाये। औद्योगिक उन्नति की नीव डाली जाये और जनता के उस भाग का जो कमजोर है और अपेक्षाकृत अधिकारहीन है, अपने विकास का अधिक से अधिक अवसर दिया जाए।"

दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य

जैसा कि ऊपर कहा गया है, दूसरी योजना का उद्देश्य भारत की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का पुनिर्माण करना तथा तीव्रगति से देश का औद्योगिक विकास करना है। इसके अतिरिक्त दूसरी योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) **राष्ट्रीय आय मे वृद्धि**—५ वर्ष के समय मे राष्ट्रीय आय मे २५ प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है जिससे कि प्रति व्यक्ति आय तथा प्रति व्यक्ति उपभोक्ता मे वृद्धि हो और रहन सहन का स्तर ऊंचा उठ सके।

(२) **आधारभूत उद्योगों का विकास**—दूसरी योजना मे खनिज पदार्थों के विकास और आधारभूत उद्योग जैसे लोहा इस्पात उद्योग तथा मशीन बनाने के उद्योग आदि पर विशेष महत्व दिया गया है क्योकि देश के भावी औद्योगीकरण के लिए इन उद्योगो का विकास अति आवश्यक है।

(३) **बेरोजगारी की समस्या का समाधान**—दूसरी पंचवर्षीय योजना मे लगभग एक करोड अतिरिक्त व्यक्तियो को रोजगार दिलाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। भारत की जनसंख्या मे वृद्धि के साथ साथ रोजगार हीन लोगो की संख्या मे भी वृद्धि हो रही है। इस बात को पूरी तरह ध्यान मे रखा गया है।

(४) **समाजवादी अर्थव्यवस्था**—भारत अब तक मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति पर चल रहा है किन्तु धीरे २ देश मे समाजवादी अर्थव्यवस्था चालू की जाएगी जिसके अनुसार यद्यपि निजी क्षेत्र को भी कार्य करने का अवसर मिलेगा किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र के विकास पर अधिक जोर दिया जायेगा। इस सम्बन्ध मे ३० अप्रैल सन् १९५६ को भारतीय संसद ने सरकार की औद्योगिक नीति का प्रस्ताव पास कर दिया है। समाजवादी अर्थ व्यवस्था का अर्थ यह होगा कि इससे सम्पत्ति और आय की असमानता को कम करके लोगो के जीवन को अधिक सुखी और समृद्धशाली बनाने के प्रयत्न किये जाएगे।

उपरोक्त सब उद्देश्य एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं। रहन सहन का स्तर ऊंचा उठाना अधिक उत्पादन पर निर्भर है। अधिक उत्पादन के लिए तेजी से औद्योगीकरण की आवश्यकता है और औद्योगीकरण के लिए मूल उद्योग का विकास आवश्यक है। मूल उद्योगो मे पूजी लगाने से उपभोग की वस्तुओ की माग बढती है जिससे बहुत हद तक बेरोजगारी की समस्या का हल हो सकता है क्योंकि उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन सुसगठित ढग से कुटीर उद्योग धन्धों के विकास द्वारा किया जा सकता है।

योजना आयोग के शब्दों में "दूसरी योजना एक प्रगतिशील सामाजिक तथा आर्थिक दर्शन पर आधारित है। इसलिये इस योजना का उद्देश्य आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं को घटाते हुए देश का विकास करना है।"

योजना की रूपरेखा—दूसरी पचवर्षीय योजना उन विकास प्रयत्नों का ही एक अटूट रूप है जो प्रथम योजनाओं में चालू किए गए थे। प्रथम योजना में कुल २०६९ करोड़ रुपए की (जो बाद में २३५६ करोड़ रुपये कर दी गई) व्यवस्था की गई थी। इसकी तुलना में दूसरी योजनाएं केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के विकास कार्यों पर ४८०० करोड़ रु० व्यय किया जायेगा। इनमें से २५५९ करोड़ रुपये केन्द्रीय सरकार तथा २२४१ करोड़ रुपया राज्य सरकारें व्यय करेंगी जिन मदों पर यह रुपया व्यय किया जायगा। उसका ब्यौरा निम्नलिखित है—

विवरण	कुल व्यय करोड़ रु० में	प्रतिशत
(१) कृषि तथा सामुदायिक विकास	५६८	११.८%
(२) सिंचाई और बिजली	९१३	१९%
(३) उद्योग और खनिज	८९०	१८.५%
(४) परिवहन और सचार	१३८५	२८.९%
(५) समाज सेवायें	९४५	१९.७%
(६) विविध	९९	२.१%
योग	४८००	१००%

उपरोक्त ब्यौरे से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दूसरी योजना में उद्योगों, खानों, परिवहन तथा सचार साधनों के विकास पर पर्याप्त जोर दिया गया है। योजना के कुल व्यय का लगभग आधा इनके विकास पर व्यय किया जायेगा। जब कि प्रथम योजना के कुल व्यय का तिहाई भाग ही इन पर व्यय किया गया था। यदि बिजली को भी औद्योगिक विकास का अंग मान लिया जाये तो यह व्यय कुल व्यय का लगभग ५६ प्रतिशत हो जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के अतिरिक्त निजी क्षेत्र के विकास कार्यों पर जो व्यय होगा उसका ब्यौरा निम्नलिखित है—

(१) संगठित उद्योग और खानें	५७५ करोड़ रुपय	
(२) बागान बिजली उद्योग और रेलो को छोड़कर अन्य परिवहन	१२५	"
(३) निर्माण	१०००	"
(४) कृषि तथा ग्राम और छोटे पैमाने के उद्योग	३००	"
(५) स्टाक	४००	"
योग	२४००	"

इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र में मिलाकर दूसरी पंचवर्षीय योजना पर केवल ६२०० करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है।

योजना के वित्तीय साधन—दूसरी पंचवर्षीय योजना के सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिए निम्नलिखित साधनों से धन प्राप्त किया जाएगा।

क्रम संख्या	विवरण	करोड़ रुपए	
१	घरेलू साधन		८००
	१—चालू राजस्व से बचत		
	(क) कर की वर्तमान दरों के अनुसार	३५०	
	(ख) अतिरिक्त करों से	४५०	
	२—जनता से ऋण के रूप में		१२००
	(क) बाजार में ऋण	७००	
	(ख) छोटी बचत	५००	
	३—बजट के अन्य साधनों से		४००
	(क) विकास कार्यों में रेलों का भाग	१५०	
	(ख) भविष्य निधि तथा जमा खाते	२५०	
२	विदेशों से		८००
३	घाटे का बजट बनाकर		१२००
४	कमी जो देश में नये साधनों द्वारा पूरी करनी होगी		४००
	कुल योग		४८००

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस योजना पर जो व्यय होगा, उसका लगभग आधा भाग घरेलू साधनों से पूरा किया जायेगा। शेष का ५ प्रतिशत भाग घाटे का बजट बनाकर ३३ प्रतिशत विदेशी सहायता से पूरा किया जायेगा।

योजना में निर्धारित लक्ष्य

विभिन्न क्षेत्रो मे होने वाले विकास कार्यों के द्वारा जिन लक्ष्यों की प्राप्ति होगी उनका विस्तृत ब्योरा इस प्रकार है।

(१) कृषि उत्पादन—कृषि उत्पादन मे १८ प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। १९५५-५६ में अनाज का उत्पादन ६५० लाख टन था जो १९६०-६१ तक ७५० लाख टन हो जाएगा। इसके अतिरिक्त गन्ने के उत्पादन मे २२ प्रतिशत, तिलहन के उत्पादन मे २७ प्रतिशत, जूट म २५ प्रतिशत तथा कपास मे ३१ प्रतिशत की वृद्धि होने का अनुमान है। सिचाई के साधनो के विकास मे २१० एकड नई भूमि पर सिचाई की जा सकेगी। १९५५-५६ मे लगभग ६ लाख टन रसायनिक खाद का प्रयोग किया गया था जो १९६०-६१ में १८ लाख टन हो जायेगा।

अनाज का लक्ष्य निर्धारित करते समय देश की बढती हुई जनसख्या पर भी विचार किया गया है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता १८ औंस प्रति व्यक्ति प्रतिदिन की मानी गई।

कृषि उत्पादन के अतिरिक्त मछली पकडने के उद्योग का विकास तथा वन विकास पर भी विशेष जोर दिया गया है। १९५५-५६ मे ११ लाख रुपया था। १९६०—६१ मे यह १४ लाख रु० हो जाने की आशा है। वनो के सम्बन्ध मे यह अनुमान है कि इनका क्षेत्रफल धीरे धीरे बढाकर देश के कुल क्षेत्रफल का ३ प्रतिशत कर देना चाहिए।

(२) सिंचाई के साधन—प्रथम योजना में १७३ लाख एकड अतिरिक्त भूमि पर सिंचाई की सुविधाए प्रदान की गई थी। दूसरी योजना मे २१० लाख एकड अतिरिक्त भूमि पर सिंचाई की जायेगी। सिचाई की योजना म १९५ प्रोजैक्ट शामिल किये गये हैं। ३५८ ट्यूबवैल बनाने का भी प्रबन्ध किया गया है।

(३) जल विद्युत—प्रथम पचवर्षीय योजना तैयार करते समय जल विद्युत विकास की १५ वर्षीय योजना बनाई गई थी जिसका दूसरा चरण इस योजना मे पूरा होगा। १९५५—५६ मे ११०००० लाख यूनिट बिजली का उत्पादन था। योजना के अन्त तक इसके दोगुने हो जाने की आशा है। आशा की जाती है कि योजन काल मे १०००० तथा इससे अधिक जनसख्या वाले स्थान पर बिजली पहुचाई जा सकेगी।

(४) औद्योगिक विकास—दूसरी योजना मे मूल उद्योगो के विकास को मुख्य स्थान दिया गया है। योजना काल मे ३ लोहा इस्पात के बडे कारखाने स्थापित किये जाएगे जिन पर क्रमश १२८ करोड ११० करोड और ११२ करोड रुपया व्यय होगा। यह कारखाने रूरकेला, भिलाई और दुर्गापुर नामक स्थानो पर लगाए जा रहे हैं। इनसे स प्रत्येक की उत्पादन क्षमता १० लाख टन प्रतिवर्ष होगी।

इसके अतिरिक्त बिजली का सामान बनाने के उद्योग पर २० करोड रुपया, औद्योगिक मशीन के बनाने पर १० करोड रुपया व्यय किया जायेगा। नागल और

बड़े उद्योग और खनिज पदार्थ	८००
कुटीर और छोटे उद्योग	४५०
वन मछली पकड़ना, सामुदायिक विकास	४·१५
शिक्षा	२६०
स्वास्थ्य	१·१६
अन्य समाज सेवाएं	.४२
सरकारी नौकरियां	४·३४
व्यापार और वाणिज्य	२७०४
योग	७० ४६

इस प्रकार यह आशा की जाती है कि कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में ० लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल सकेगा। भूमि सुधार, सिंचाई की सुविधाओं के कारण तथा बागान और साग सब्जी उद्योग के विकास से लगभग १६ लाख व्यक्तियों को अर्ध रोजगार के स्थान पर पूरे समय का रोजगार मिलने लगेगा।

दूसरी योजना की प्रथम योजना से तुलना

प्रथम योजना का मुख्य उद्देश्य देश की अर्थ व्यवस्था की जड़ मजबूत करना और उसे शक्ति तथा स्थिरता प्रदान करना था। प्रथम योजना उस समय बनाई गई थी जब दूसरे महायुद्ध और विभाजन के कारण देश की अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। अन्न तथा आवश्यक कच्चे माल की कमी और मुद्रा स्फीति के कारण आर्थिक असन्तुलन हो गया था जिसे ठीक करना और गतिविद्ध अर्थ व्यवस्था को गति प्रदान करना इसका उद्देश्य था। दूसरी योजना निम्नलिखित बातों में प्रथम योजना से भिन्न है.—

(अ) प्रथम योजना पाँच सालों की एक सनुचित योजना थी जबकि दूसरी योजना प्रत्येक वर्ष की समाप्ति के बाद परिस्थितियों तथा अनुभव के पश्चात् बदलती रहेगी। इस प्रकार यह कठोर योजना नहीं है।

(ब) प्रथम योजना में कृषि विकास तथा सिंचाई और बिजली पर अधिक बल दिया गया था। दूसरी योजना में मूल उद्योग तथा बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गई है।

(स) प्रथम योजना की सफलता को ध्यान में रखकर तथा उससे प्राप्त अनुभव के आधार पर दूसरी योजना काफी विशाल और व्यापक बनाई गई है।

(द) प्रथम योजना में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पर जोर दिया गया था जिसका आधार १९४८ की औद्योगिक नीति का प्रभाव था। दूसरी योजना समाजवादी अर्थ-व्यवस्था को आधार मानकर बनाई गई है। इसका आधार १९५६ की नई औद्योगिक नीति है।

प्रश्न १०—भारत की दूसरी पचवर्षीय योजना को सफलता के लिए विदेशी सहायता तथा घाटे की अर्थ व्यवस्था का क्या महत्व है ?

Discuss the role of foregin aid and deficit financing for the success of the Second Five Year Plan in India

उत्तर—दूसरी पचवर्षीय योजना में केवल सार्वजनिक क्षेत्र मे ४८०० करोड रु० के व्यय होने का अनुमान है। हो सकता है कि वास्तविक व्यय इससे भी अधिक हो जाये। ४८०० करोड रु० प्राप्त करने के लिए योजना मे जिन विभिन्न साधनो का उल्लेख किया गया है उनमे घाटे की बजट व्यवस्था (Deficit Financing) तथा विदेशी सहायता का भी उल्लेख है। दूसरी पचवर्षीय योजना के मसौदे मे विदेशी सहायता से ८०० करोड रु० तथा घाटे की बजट व्यवस्था से १२०० करोड रु० प्राप्त करने का अनुमान लगाया गया है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे विदेशी सहायता से १९७ करोड रु० तथा घाटे की बजट व्यवस्था से ४१५ करोड रु० प्राप्त किया गया था। इससे यह स्पष्ट है कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे इन दोनो साधनो को अधिक महत्व का स्थान दिया गया है। अब यह देखना है कि यह दोनो साधन इस योजना की सफलता मे कहा तक सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

विदेशी सहायता—जिस समय दूसरी पचवर्षीय योजना का मसौदा तैयार किया जा रहा था उस समय राजनैतिक क्षेत्रो मे इस बात पर सन्देह प्रकट किया गया कि शायद भारत सरकार ८०० करोड रुपये की विदेशी सहायता प्राप्त न कर सके। इसका मुख्य कारण विश्व की राजनैतिक स्थिति तथा भारत की तटस्थता पूर्ण नीति बताया गया। फिर भी यह आशा की गई कि यदि पर्याप्त मात्रा मे विदेशी सहायता प्राप्त न भी हुई तो भी योजना के मुख्य उद्देश्यो को पूरा करने का प्रयत्न किया जायेगा चाहे उसके लिए जो भी उपाय करना पडे।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे मूल उद्योगो के विकास पर अधिक जोर दिया गया है। जिसके लिए सरकार को बडी मात्रा मे विदेशो से लोहा तथा इस्पात और मशीनो आदि का आयात करना पडता है इस प्रकार विदेशी भुगतान की स्थिति मे भारी घाटा उत्पन्न हो जाने की सम्भावना है। इसे पूरा करने के लिए प्रारम्भ मे ही सरकार ने इस प्रकार की आयात और निर्यात नीति अपनाई है कि देश मे अनावश्यक और कम महत्व वाली वस्तुओ का आयात कम किया जाए। दूसरी ओर देश के निर्यातो को अधिक से अधिक बढावा दिया जाये। इसके अतिरिक्त भारत के पौंड पावनो (Sterling Balances) तथा सुरक्षित विदेशी मुद्रा के कोष (Foreign Exchange Reserves) का प्रयोग किया जा रहा है। किन्तु योजना के प्रारम्भ के दो वर्षों मे ही कुछ इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके कारण विदेशी भुगतान के सम्बन्ध मे एक सकट की स्थिति का भय होने लगा है। अनुमान लगाया गया है कि सम्भव सम्भव प्रयत्न करने के बाद भी दूसरी पचवर्षीय योजना के कारण भारत को लगभग ७०० करोड रु० के विदेशी भुगतान के घाटे का सामना करना पडेगा। यह धन या तो विदेशो से आर्थिक सहायता तथा दीर्घकालीन ऋण के रूप मे प्राप्त होना चाहिये अथवा योजना आयोग को दूसरी पचवर्षीय योजना मे कुछ काट छाट करना पडेगा जिसका प्रभाव कुछ ऐसे कार्यक्रमो पर पडेगा जो देश

के विकास की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं किन्तु जिनकी सफलता विदेशों से आयात की हुई वस्तुओं और सामग्री पर निर्भर है।

इस संकटपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिये सितम्बर सन् १६५७ मे भारत के वित्त मंत्री श्री टी० टी० कृष्णमाचारी अमेरिका, कनाडा, इंगलैंड तथा पश्चिमी जर्मनी के दौरे पर गये थे और वहाँ उन्होने इस बात की छानबीन की थी कि इन क्षेत्रों से विशेषकर अमेरिका से भारत को किस सीमा तक विदेशी सहायता प्राप्त हो सकती है। अमेरिका मे उन्हे कोई सफलता प्राप्त नही हुई यद्यपि उन्होंने अमेरिका सरकार के उच्च अधिकारियों तथा पूंजीपतियों से बातचीत करके भारत की वास्तविक स्थिति तथा भारत की आवश्यकताओं से उन्हें पूरी तरह अवगत करा दिया था। उनकी असफलता के दो मुख्य कारण रहे। एक तो भारत की आर्थिक स्थिति, जो समाजवादी अर्थ व्यवस्था पर आधारित है और जिसके अन्तर्गत धीरे २ प्रमुख उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण तथा सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार शामिल हैं। इस नीति के कारण अमेरिका के पूंजीपति तथा बैंक आदि भारत मे अपनी पूंजी का विनियोग करने के लिए तैयार नही हैं। दूसरी बात अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की विदेश नीति है जिसमे अमेरिका सहमत नही है और जिससे कारण अमेरिका भारत को उस सीमा तक सहायता करने को तैयार नही है जिस सीमा तक भारत को उसकी सहायता की आवश्यकता है यद्यपि भारत सरकार की ओर से यह बात स्पष्ट करदी गई थी कि भारत किसी प्रकार की भीख नही चाहता और किसी भी कीमत पर भारत अपनी स्वतन्त्रतापूर्ण विदेशी नीति को त्याग नही सकता। भारत को केवल दीर्घकालीन ऋण के रूप में विदेशी सहायता की आवश्यकता है जिसे वह ईमानदार देश की भांति आगे चलकर चुका देगा। इस सम्बन्ध म ससार में भारत की साख काफी ऊंची है। इन आश्वासनों का अमेरिका पर कोई प्रभाव नही पड़ा। यही स्थिति कनाडा और इंगलैंड मे भी उत्पन्न हुई और वहां भी उन्हे कोई विशेष सफलता नही मिली।

इसके विपरीत पश्चिमी जर्मनी जापान तथा यूगोस्लाविया आदि देशों ने भारत को ऋण के रूप मे सहायता प्रदान करने का वचन दिया है। यह सहायता किस मात्रा मे और किस रूप मे प्रदान की जायेगी इस सम्बन्ध मे सम्बन्धित देशों के बीच बातचीत शुरू हो गई है। यह नही कहा जा सकता कि भारत दूसरी पचवर्षीय योजना को पूरा करने मे विदेशी भुगतान के इस घाटे को कम करने मे कहा तक सफल होगा और यदि योजना मे काट छांट करनी पड़ी तो उसका रूप क्या होगा। इस बीच भारत सरकार ने कुछ वस्तुओं जिनमे चीनी, काली मिर्च काजू तथा कपड़ा आदि शामिल हैं की निर्यात को बढ़ाने की व्यवस्था की है। जापान से एक समझौता किया जा रहा है जिसमे भारत जापान को कच्चा लोहा निर्यात करेगा और उसके बदले जापान से लोहा तथा इस्पात उद्योग के लिये मशीनें आदि प्राप्त होगी। श्री कृष्णमाचारी के स्वदेश लौटने के बाद विभिन्न राज्य सरकारों को यह आदेश जारी किये गये हैं कि वे खनिज पदार्थों को अधिक मात्रा मे निकालने के उद्देश्य से उन सभी व्यक्तियों को उदारतापूर्वक लाइसेंस प्रदान करें जिनके आवेदन पत्र राज्य सरकारों के विचाराधीन

है। इस प्रकार आने वाले काल मे भारत से और अधिक मात्रा मे खनिज पदार्थों का निर्यात हो सकेगा।

१ नवम्बर १६५७ को भारत सरकार ने एक आदेश द्वारा रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम मे कुछ आवश्यक सशोधन किये हैं जिसके अनुसार रिजर्व बैंक के पास विदेशी प्रतिभूतिया (Foreign Securities) तथा सोने की न्यूनतम मात्रा ३०० करोड़ से घटाकर २०० करोड कर दी गई है। इस प्रकार यह १०० करोड रुपये योजना की विदेशी मुद्रा सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये प्रयोग हो सकेंगे।

घाटे की अर्थ व्यवस्था—दूसरी योजना के लिए १२०० करोड रुपये के घाटे की अर्थव्यवस्था का भी प्रबन्ध किया गया है। योजना तैयार करने से पूर्व ३१ अर्थशास्त्रियो का जो मडल सरकार ने परामर्श देने के लिए नियुक्त किया था उसके एक सदस्य प्रो० शिनोइ (Shenoi) ने घाटे की अर्थव्यवस्था के सम्बध मे अपना विपरीत मत प्रकट किया था और इस बात पर जोर दिया था कि घाटे की अर्थव्यवस्था के कारण देश मे मुद्रा स्फीति होना अनिवार्य है। इसके कारण जो मूल्यो मे वृद्धि होगी तथा आर्थिक परिणाम निकलेंगे उनका योजना पर बुरा प्रभाव पड सकता है। हो सकता है कि सरकार उस समय स्थिति का सामना न कर सके। अन्य अर्थशास्त्रियो ने घाटे की अर्थव्यवस्था का समर्थन किया और यह सुझाव दिया कि प्रारम्भ से ही सरकार को मुद्रा स्फीति से सतर्क रहना चाहिए और उसकी रोकथाम के लिये आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

उपरोक्त बातो को ध्यान मे रखते हुये १९५६ मे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम मे सशोधन किया गया जिससे रिजर्व बैंक को अधिक नोट छापने की स्वतन्त्रता मिल गई। इसी के साथ रिजर्व बैंक को साख नियन्त्रण के लिये पहले से अधिक व्यापक अधिकार प्रदान कर दिये गये ताकि मुद्रा स्फीति की रोक थाम की जा सके।

दूसरी पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ के एक वर्ष मे ही घाटे की अर्थव्यवस्था के कारण मुद्रा प्रसार के लक्षण नजर आने लगे जिसके परिणामस्वरूप सरकार को अपनी नीति मे थोडा सा परिवर्तन करना पडा। भारत के नये वित्त मन्त्री श्री टी० टी० कृष्णामाचारी के विचार मे घाटे की अर्थव्यवस्था के स्थान पर अतिरिक्त कर लगाकर धन प्राप्त करना अधिक उपयुक्त रहेगा। इसी नीति का अनुसरण करते हुये १६५७-५८ के बजट मे कई नए करो की व्यवस्था की गई है। जिस स्थिति से होकर योजना इस समय गुजर रही है उसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि योजना के अन्तिम वर्षो मे सरकार को और अधिक मात्रा से घाटे के बजट का सहारा लेना पडेगा क्योकि आन्तरिक ऋण तथा बजट से भी उतना धन प्राप्त नहीं हो सकता जितना कि योजना मे अनुमान लगाया गया है।

प्रश्न ९१—भारत की दूसरी पचवर्षीय योजना की प्रगति पर सक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए।

Write a brief descriptive note on the progress of the 2nd Five year Plan

उत्तर—भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना १ अप्रैल १९५६ को प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ से योजना को सफलता के विषय मे तरह-तरह की शकायें उत्पन्न होने लगी। कुछ लोगो ने यह मत प्रकट किया कि यह योजना आवश्यकता से अधिक व्यापक तथा बडी है जिसे पूरा करने की सामर्थ्य भारत जैसे निर्धन देश मे नही है। ४८०० करोड रुपये की इस योजना को पूरा करने के लिये जिन-जिन स्रोतो से धन प्राप्त करने के अनुमान लगाये गये थे उनके बारे में भी यह सोचा गया कि शायद इतनी मात्रा मे उन साधनो से धन प्राप्त न हो सके। इसलिए इस बात की आशका प्रकट की गई कि या तो सरकार को योजना मे फेर बदल करना पडेगी अथवा यह योजना सफल नही हो सकती।

दूसरी पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के समय से ही देशी तथा विदेशी दोनो प्रकार के साधनों पर बराबर दबाव पडता रहा है। अप्रैल १९५६ और अगस्त १९५७ के बीच थोक मूल्यो मे १४ प्रतिशत की वृद्धि हो गई। बाद मे उनमे कुछ गिरावट आई किन्तु जून १९५८ के बाद फिर एक बार थोक मूल्यो मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। अप्रैल १९५६ से मार्च १९५८ तक के प्रथम दो वर्षो मे विदेशी भुगतान सतुलन मे ८२ करोड रुपए की कमी रही। इधर देश के सामने खाद्य समस्या एक विकट रूप मे आ उपस्थित हुई है जिसने स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया है। इन अवस्थाओ को सुधारने के लिये अनेक उपाय किये गये हैं और किए जा रहे है जिनमे विदेशी निर्यातो को प्रोत्साहन देना आयातो पर कठोर प्रतिबध लगाना, विदेशी सहायता तथा दीर्घकालीन ऋण के लिये अमेरिका पश्चिमी जर्मनी तथा जापान आदि भिन्न देशो से बातचीत करना आदि शामिल है। जो कठिनाइयां दूसरी योजना क प्रारम्भ से ही देखन मे आ रही हैं उनका मूलभूत रूप से विकास कार्यों से सम्बन्ध है और आशा है कि वे योजना के अन्त तक जारी रहेंगी।

पहले दो वर्षो म योजना पर १४९६ करोड रुपये व्यय किए गए है। चालू वर्ष अर्थात् १९५८–५९ मे कुल आय का योग ९६० करोड रुपये हो सकता है। इस प्रकार योजना के प्रथम तीन वर्षो के व्यय का कुल योग लगभग २४५६ करोड रुपये बनता है। शेष दो वर्षो मे जो व्यय करना होगा वह कुल योजना के व्यय के आधे से कुछ ही कम होगा। देखना यह है कि उसे किस प्रकार से पूरा किया जा सकेगा अथवा योजना मे कुछ फेर बदल करनी पडेगी। प्रथम तीन वर्षों मे जो २४५६ करोड रुपए का व्यय हुआ है उसका विवरण इस प्रकार है।—

	(करोड रुपयों मे)
राजस्व से शेष	४३९
रेलो का योगदान	१२९
सार्वजनिक ऋण, छोटी बचत और अन्य पूंजीगत प्राप्ति	५३३
विदेशी सहायता	४३८

	(करोड रुपयो में)
घाटे की वित्त व्यवस्था	६१७
योग	२४५६

आयोजना के लिये उपलब्ध साधन अब तक आशा से कड़ी कम रहे हैं। १६५७-५८ के बजट मे ४६४ करोड रुपए का घाटा रहा था जो घाटे की वित्त व्यवस्था के द्वारा पूरा किया गया। चालू वर्ष अर्थात् १६५८-५६ के बजट मे ऋणो तथा छोटी बचत से काफी अधिक धन मिलने की आशा की गई है जिसके फलस्वरूप ऐसा अनुमान है कि १६५७-५८ की अपेक्षा घाटे की वित्त व्यवस्था मे २५० करोड रुपये की कमी हो जायगी। १६५७-५८ मे विदेशी सहायता केवल १०० करोड रुपए के लगभग प्राप्त हुई थी परन्तु चालू वर्ष मे वह बढकर ३०० करोड रुपए हो जाने की आशा है।

विदेशी विनिमय की कमी—१६५७-५८ मे विदेशी विनिमय की कमी ने एक विषम समस्या उत्पन्न कर दी थी। ऐसी दशा मे कुछ प्रायोजनाओ को विदेशी विनिमय की आवश्यकता की दृष्टि से अत्यावश्यक मानना पडा और आयोजना के विविध क्षेत्रो के लिये निर्धारित खर्चों मे भी हेर फेर करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसके अतिरिक्त आयोजनो के आकार पर भी नये सिरे से विचार करना पडा। राष्ट्रीय विकास परिषद ने इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया और यह निश्चय किया गया कि द्वितीय आयोजन का व्यय ४८०० करोड रुपए यथावत बनाये रक्खा जाये। विकास परिषद के सामने प्रश्न यह था कि योजना के अन्तिम २ वर्षो मे २३४४ करोड रुपये की आवश्यकता होगी जो ४८ करोड रुपए के आधे से कुछ ही कम है। चूकि पहले दो वर्षों में घाटे की वित्त व्यवस्था बहुत अधिक मात्रा मे करनी पडी थी और अब उसे कम से कम प्रयोग मे लाना है इसलिये २३४४ करोड रुपए की इस राशि का प्रबन्ध करना आसान नही है। प्रथम तीन वर्षो की प्रवृत्तियो को देखते हुये तथा ऋणो और छोटी बचतो से होने वाली प्राप्ति को ध्यान मे रखते हुये यह अनुमान लगाया गया है कि आयोजनाओ के अन्तिम दो वर्षो मे अधिक से अधिक १८०४ करोड रुपए ही उपलब्ध हो सकेंगे और पाचो वर्षो का कुल योग ४८०० करोड की बजाय ४२६० करोड रुपये ही हो पायगा। इस प्रकार व्यय के लिये उपलब्ध धन मे जो कमी रह जायगी उसे न तो घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा पूरा करना उचित है और न विदेशी सहायता पर अधिक भरोसा करना उचित है इसलिए यह कमी अन्य साधनो अर्थात् करो, ऋणों तथा छोटी बचतो आदि पर भरोसा करके तथा विशेष प्रयत्न करके पूरी करनी होगी। आयोजना के अतिरिक्त होने वाले व्यय मे किफायत करना भी परम आवश्यक है। एक उपाय यह भी हो सकता है कि आयोजन का खर्च ४८०० करोड से घटाकर ४२६० करोड रुपये की सीमा तक ले जाया जाय यद्यपि ऐसा करना न केवल अवाछनीय है वरन् ऐसा करने मे बहुत सी कठिनाइया भी है। यदि साधनो की स्थिति को देखते हुये आयोजना का व्यय घटाकर ४२६० करोड रुपए की सीमा तक लाना पडा तो सामाजिक सेवाओ के व्यय मे अधिक कटौती करनी पडेगी जो आयो-

जना के सतुलन को बनाये रखने के उद्देश्य से वांछनीय नही है। इसलिये वास्तव मे किये जाने वाले व्यय का स्तर ४५६० करोड रुपये से कम नही होना चाहिये। इन्ही सब बातो को ध्यान मे रखते हुये राष्ट्रीय विकास परिषद ने आयोजना का व्यय ४८०० करोड रुपये ही बनाये रखने का निश्चय किया किन्तु साथ ही उसने यह सुझाव दिया कि आयोजना के कार्य क्रमो को दो भागो म बाट दिया जाये अर्थात् (क) प्रथम भाग मे कृषि का उत्पादन बढाने से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले कार्य क्रमो के अतिरिक्त वे कार्य-क्रम हो जिन्हे मुख्य आयोजनायें माना गया है अथवा वे हो जो काफी आगे बढ चुकी हैं अथवा वे जिन्हे रोका नही जा सकता। (ख) शेष योजनाओ को दूसरे भाग मे रक्खा जाय और उन पर कुल ३०० करोड रुपया व्यय किया जाए।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे कहा गया था कि योजना की सफलता कुछ आवश्यक शर्तें पूरी होने पर निर्भर होगी। वे शर्तें इस प्रकार थी —

(१) कृषि उत्पादन मे काफी वृद्धि हो जाए।

(२) घरेलू बचतो मे बराबर वृद्धि हो।

(३) आयोजना के कारण होने वाली विदेशी विनिमय की कमी पूरी करने के लिये पर्याप्त विदेशी सहायता मिले।

(४) मूल्यो के स्तर ऐसे रूप म स्थिर रखे जायें जो उत्पादको तथा उपभोक्ताओ दोनो के लिये उचित हो।

(५) प्रशासन श्रेष्ठ रहे, प्रथम तथा द्वितीय आयोजनाओ के अन्तर्गत उत्पन्न हुए साधनो का उत्तम ढग से उपयोग किया जाय।

इन सभी शर्तों का आपस म घनिष्ठ सम्बन्ध है आयोजना तैयार करते समय इनका जो महत्व था उससे कही अधिक आज है क्योकि कृषि उत्पादन मे अनुमान के अनुसार वृद्धि नही हो रही है, घरेलू बचत भी अनुमान से कम है विदेशी विनिमय की कमी को देखते हुए पर्याप्त मात्रा म विदेशी सहायता नही मिल रही है और मूल्यो के स्तर मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस प्रकार दूसरी आयोजना की सफलता के लिये इन सभी शर्तों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता पड़ेगी।

दूसरी पचवर्षीय योजना की प्रगति के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो का जान लेना अत्यन्त आवश्यक है —

करो से प्राप्ति—जब से आयोजना प्रारम्भ हुई करो मे काफी वृद्धि हो गई अब तक केन्द्र ने जो कर लगाये हैं उनसे पाच वर्षों म लगभग ७२५ करोड रुपये की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार इन पाँच वर्षों म राज्यो को करो स १७३ करोड रुपए की प्राप्ति होगी। इस प्रकार आयोजना की अवधि म करो से प्राप्ति ९०० करोड रुपए के लगभग होगी।

करो स होने वाली इस प्राप्ति का बहुत बडा भाग अन्य मदो पर खर्च होगा जिनमे प्रतिरक्षा का खर्च प्रमुख है। करो से इतनी अधिक प्राप्ति करने का प्रयत्न किए जाने पर भी केन्द्रीय योजनाओ के खर्च के लिए केवल ४५ करोड रुपए ही अधिक प्राप्त हो सकेंगे। इसका यह अर्थ हुआ कि बहुत कम राशि उपलब्ध हो सकेगी।

राज्यो के अतिरिक्त करो मे आयोजना अवधि म १७३ करोड रुपए प्राप्त होगे वित्त आयोग के निश्चयानुसार राज्यो को १६० करोड रुपए के अतिरिक्त केन्द्रीय करो म से भी काफी अधिक हिस्सा मिलता था इतने पर भी आयोजना पर खर्च करने के लिए राज्यो के पास आशा से कही कम धन उपलब्ध हो सकता है। यदि यह मान लिया जाए कि राज्य करो से २२१ करोड रुपए प्राप्त कर सकेंगे तो वे अपने राजस्व मे से आयोजना पर सम्भवत ३५० करोड रुपए खर्च कर सकेंगे जबकि आशा ३७० करोड रुपए खर्च करने की थी।

पहले तीन वर्षो मे केन्द्र तथा राज्यो के बजटो मे आयोजना के लिए जो धन रखा जायगा उसका योग ११०० करोड रुपए होगा जबकि पांच वर्षो का अनुदान २४०० करोड रु० था। इस प्रकार ४०० करोड रुपए की कमी रह जाती है।

घाटे की वित्त व्यवस्था—साधनो की कमी के कारण आयोजना के शुरू के वर्षो में घाटे की वित्त व्यवस्था का अत्यधिक आश्रय लेना पड़ा है। इस समय इसे पास के वर्षो मे अधिक से अधिक ९०० करोड रुपए तक रखना था। परन्तु अब यह निश्चित लगता है कि यह राशि १२०० करोड रुपए तक जायगी जैसा कि पहले अनुमान किया गया था। सच तो यह है कि यदि (क) साधनो मे और अधिक वृद्धि करने तथा (ख) आयोजनो के खर्चो को सीमित रखने के प्रयत्न न किए गए तो घाटे की राशि और भी अधिक बढ सकती है।

यदि देश के पास विदेशी विनिमय का बहुत अधिक भण्डार सुरक्षित हो तो कार्यक्रम तैयार करने म कुछ ढील की जा सकती है। परन्तु वर्तमान स्थिति में तो ऐसा करना सम्भव नही। अप्रैल ९५६ और मार्च १९५८ के बीच रिजर्व बैंक का विदेशी विनिमय पावना घटकर ४७६ करोड रु० रह गया। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के नाम में जमा ९५ करोड रु० की राशि का भी उपभोग कर लिया गया है। द्वितीय आयोजना आरम्भ होने से अब तक जितनी विदेशी सहायता स्वीकृत हो चुकी है उसका योग ५७६ करोड रुपया है। आयोजना की शेष अवधि मे विदेशी विनिमय की जो आवश्यकता होगी उसे पूरा करने के लिए ५०० करोड रुपये की विदेशी सहायता और भी मिलनी चाहिये। आयोजना की आवश्यकता सरकारी प्रयोजनाओ के लिये भी २६६ करोड रुपये की आवश्यकता है।

उत्पादन क्षमता का उपयोग—वर्तमान आयात नीति बहुत ही सख्त है और आगे भी सख्त रखनी होगी। परन्तु देश म उत्पादन की जो क्षमता स्थापित हो चुकी है उसका यदि पूरा पूरा उपयोग न किया गया तो नये कारखाने बनाने और नई मशीनें लगाने पर खर्च करना भी एक सीमा पर पहुँचकर रोक देना होगा।

योजना की लागत में भी काफी वृद्धि हो गई है। फिर भी उसकी सीमा ४८०० करोड रुपये पर स्थिर रखी गई है। इसका अर्थ हुआ कि हमे भौतिक लक्ष्यो मे कमी करनी होगी। अत इस समय हमारी समस्या यह है कि ४८० करोड रुपय का खर्च निकालने के लिये काफी साधन खोज निकाले जा सकते है अथवा नही।

ऐसी दशा मे यह स्पष्ट बताना भी उचित है कि साधनों की कमी को पूरा करने के लिये भविष्य में हम और क्या प्रयत्न कर सकते हैं।

आयोजना के अन्तिम दो वर्षों में २३४४ करोड रुपये की आवश्यकता होगी। यदि १९५७-५८ तथा १९५८-५९ के खर्चे अनुमान से कही अधिक हुए तो २३४४ करोड रुपयो से भी अधिक राशि की आवश्यकता होगी। परन्तु वर्तमान लक्षणों से प्रकट होता है कि ४२६० करोड रुपये से अधिक उपलब्ध न हो सकेंगे। अत कम से कम ३० करोड रु० प्रतिवर्ष विदेशी सहायता मिलनी चाहिए तथा सार्वजनिक ऋणों और छोटी बचतो से भी अधिक धन प्राप्त होना चाहिए।

४८०० करोड रुपए का कुल खर्च निकालने के लिए जो अतिरिक्त साधन बनाने हैं उनमे अतिरिक्त करो से १०० करोड रु० ऋणों तथा बचत से ६० करोड रुपए और खर्च मे किफायत करके ८० करोड रु० प्राप्त होने का अनुमान है।

केन्द्र द्वारा अतिरिक्त कर लगाए जाने की बहुत कम गुंजाइश है फिर भी केन्द्र अगले दो वर्षों मे अतिरिक्त करो से ४० करोड रु० प्राप्त करने का यत्न कर सकता है। राज्यो के लिए करो की सीमा पहले २२५ करोड रु० रखी गई थी। उन्होंने अब तक जो प्रयत्न किए हैं उनसे १७३ करोड रु० प्राप्त हुए हैं इस प्रकार उनके प्रयत्नों मे ५२ करोड रु० की कमी रही है। राज्यो को सुझाव दिया गया है कि वे अगले दो वर्षों मे अतिरिक्त करो से ६० करोड रु० प्राप्त करने का यत्न करें। यदि यह लक्ष्य स्वीकार कर लिया जाय तो इसे प्राप्त करने के उपाय भी निर्धारित किये जा सकते हैं।

सार्वजनिक ऋण—सार्वजनिक ऋणो का प्राप्त करना बहुत कुछ बाजार की हालत पर निर्भर होता है। इसलिये ऋणो तथा छोटी बचत से प्राप्त होने के लिए ६० करोड रु० की जो राशि रखी गई है उसका अधिकांश भाग छोटी बचत को प्रोत्साहित करके प्राप्त करना होगा।

आयोजना से सम्बन्ध न रखने वाले खर्चों मे किफायत करके तथा शेष पडे करो और ऋणों को शीघ्र वसूल करके ८० करोड रुपए प्राप्त करने हैं। यह कठिन है परन्तु इसके लिए केन्द्र तथा राज्यों में दृढ प्रयत्न करने होंगे। राज्यो मे तो ये प्रयत्न अवश्य होने चाहिए। अब प्रश्न यह है कि यदि ये सब प्रयत्न किए जाए तो क्या आयोजना के लिए ४५०० करोड रुपए तक का खर्च निकल सकता है। साधनों का निश्चय हुए बिना इससे अधिक खर्च करने का कोई वचन नहीं दिया जा सकता।

इस समय देश मे आर्थिक स्थिरता तथा विदेशों मे हमारी अच्छी साख होनी आवश्यक है। चूंकि विदेशी विनिमय के भण्डार मे बहुत कमी हो गई है इसलिए घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा बहुत कम हो लिया जा सकता है।

आयोजना आयोग ने विकास की विभिन्न मदों के लिए राशियां निर्धारित की हैं वे यही सोचकर की हैं कि ४५०० करोड रुपए प्राप्त करने के प्रयत्न कर लिये जाएंगे यह राशि किस प्रकार प्राप्त की जा सकेगी यह नीचे की तालिका मे दिखाया गया है —

	योजना मे निर्धा-रित राशिया	प्रतिशत	संशोधित राशिया	प्रतिशत	साधनो की स्थिति के अनुसार अब प्रस्ता-वित व्यय	प्रतिशत
१. कृषि तथा सामुदायिक विकास	५६८	११ ८	५६८	११ ८	५१०	११ ३
२ सिंचाई तथा बिजली	९१३	१९ ०	८६०	१७ ९	८२०	१८ २
३ ग्रामोद्योग तथा लघु उद्योग	२००	४ २	२००	४ २	१६०	३ ६
४ उद्योग तथा खनिज	६९०	१४ ४	८८०	१८ ४	७९०	१७ ५
५ परिवहन तथा संचार	१३८५	२८ ९	१३४५	२८ ०	१३४०	२९ ८
६ समाज सेवाए	९४५	१९ ७	८६३	१८ ०	८१०	१८ ०
७ विविध	९९	२ ०	८४	१ ७	७०	१ ६
योग	४८००	१०० ०	४८००	१०० ०	४५००	१०००·

यदि ऊपर दिये गये साधनो अनुमानो के अनुसार आयोजना के खर्च को भी ४५०० करोड रुपये पर सीमित कर देना है तो राज्यो की योजना मे काफी कटौनी करनी होगी जो समाज सेवाओ मे विशेषतया की जायगी। यह कटौती तभी बचाई ·ा सकती है जबकि अन्य के अतिरिक्त साधन देश मे ही खोज निकाले जायें।

वित्तीय साधनो की कमी के पीछे उत्पादन तथा बचत का अपर्याप्त होना भी लगा हुआ है। खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढाने के लिए जो सुविधायें की जा चुकी हैं उनका पूर्ण उपयोग किया जाना अत्यावश्यक है। आयोजना के लक्ष्यो की सफलता का अनुमान केवल उसके खर्च निर्धारित कर देने से ही नही लगाया जा सकता। इसके साथ हम प्रत्येक कदम पर यह भी देखना चाहिए कि जो नई सुविधायें उपलब्ध हुई हैं उनका हम कब तक उपयोग कर सकते है।

काम पाने के इच्छुक व्यक्तियो की संख्या जितनी तेजी से बढ रही है उतनी तेजी से काम के अवसर नही बढ रहे हैं। इसका कारण यह है कि देश मे रुपये का जो विनियोग हो रहा है वह हमारी अर्थ व्यवस्था की आवश्यकताओ को देखते हुये अपेक्षाकृत कम है। विशेष क्षेत्रो मे नियोजन के अवसर उपलब्ध करने के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। उदाहरण के लिए ६०,००० अध्यापक नियुक्त करने का हाल मे ही निश्चय किया गया है। परन्तु अधिक बचत किए बिना अधिक लोगो को काम नही दिया जा सकता।

अभी यह कहना कठिन है कि आयोजना के मूल लक्ष्यो मे अब जो संशोधन किये जायेंगे उनके कारण उत्पादन तथा नियोजन पर क्या प्रभाव पडेगा। यह अनेक बातो पर निर्भर है, जैसे निजी क्षेत्र मे विनियोजन की स्थिति, उत्पादन को काफी ऊंचा बनाये रखने के लिए आयात की सुविधाए इत्यादि। मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि संशोधनो का आयोजना के औद्योगिक तथा अन्य अत्यावश्यक अंगो पर

कोई बुरा प्रभाव नही पडेगा। परिवहन तथा संचार के कार्य-क्रम भी ठीक तौर से निभ जायेंगे। समाज सेवा योजनाओ मे कमी हो सकती है और सिंचाई प्रयोजनाओं मे भी कुछ विलम्ब होने की आशंका है। विद्युत उत्पादन का विकास आवश्यकता के अनुसार नही चल सकेगा।

जहा तक नियोजन का सम्बन्ध है हमारे पास उसकी पिछली तथा आगामी स्थितियो के रुखो का अन्दाज लगाने के लिए पर्याप्त जानकारी नही है। आयोजना आयोग मे की गई कुछ गणनाओ के अनुसार प्रतीत होता है कि आयोजना के अमल मे आने के फलस्वरूप पहले दो वर्षो मे कृषि क्षेत्र से बाहर काम के लगभग २० लाख स्थान बने है। आशा है कि चालू वर्ष मे १० लाख मजदूरो को काम मिलेगा। आयोजना मे ७९ लाख व्यक्तियो को कृषि से बाहर के क्षेत्रो म तथा १६ लाख को कृषि क्षेत्रो मे काम दिए जाने की आशा की गई थी। विभिन्न प्रयोजनाओ का खर्च बढ जाने के कारण ४८०० करोड रुपए की आयोजना म कृषि से बाहर के क्षेत्रो मे नियोजन के स्थान घटकर ७० लाख रह जाने की आशा की गई है। आयोजन का *खर्च यदि घटकर ४५०० करोड रु० रहता है तो सरकारी क्षेत्र म नियोजन के अवसर* भी घटकर ६५ लाख रह जायेंगे। वे बहुत ही मोटे अनुमान हैं परन्तु इनसे कम से कम इतना तो प्रकट हो ही जाता है कि प्रतिवर्ष श्रमिको के दल मे जो वृद्धि होती जा रही है उसे काम देने योग्य अवसर निकालने के लिये पर्याप्त रुपए का विनियोजन नही किया जा रहा है। रुपए का विनियोजन बचत पर निर्भर होता है। इसलिए देश मे जितने लोगो को काम देने की आवश्यकता है उतने के लायक विनियोजन नही हो रहा है।

खाद्य उत्पादन—आयोजना तैयार करते समय खर्च की व्यवस्था मे ४०० करोड रुपये की ऐसी कमी छोड दी गई थी जिसकी कोई व्यवस्था नही की गई थी। इसके अतिरिक्त केन्द्र तथा राज्यो ने माग की है उनके कारण धन की आवश्यकता और भी बढ गई। आयोजन के आरम्भ म निजी क्षेत्रो म भी काफी अधिक परिमाण मे रुपया लगाया गया। इससे मुद्रा बाजार म जो सख्ती आ गई उसका सरकार द्वारा लिय जाने वाले ऋणो पर बुरा प्रभाव पडा। परन्तु वित्तीय साधनो की कमी का बडा कारण तो खाद्य उत्पादन का प्रश्न है देश म खाद्यान्नो के भाव चढे हुये हैं और विदेशो से उनका आयात करना पड रहा है। देश मे माग के अनुसार खाद्यान्नो का उत्पादन भी नही बढ रहा है।

पिछले कुछ वर्षो मे सिंचाई के काफी साधनो का निर्माण किया गया है। परन्तु उन साधनो का उपयोग नही किया जा सका है। आयोजना के अन्तर्गत तैयार किये गए बहुत मे साधनो से अभी लाभ उठाया जाना सम्भव नही हुआ है। इसके कारण हमारे आगे प्रयत्न भी सीमित रहेंगे। इसलिए सिंचाई के जो साधन तैयार हो गए हैं उनका पूरा पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। इस समय आवश्यकता यह है कि आयोजना मे खाद्यान्नो का उत्पादन बढाने के लिए जो उपाय बताये गये हैं उनके अनुसार पूरा पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए। यदि ऐसा हो सका तो हमारे

रूप से रोजगार पाए हुए हैं। यहा की बेरोजगारी की समस्या अन्य देशो की समस्या से बिल्कुल भिन्न है। भारत की बेरोजगारी को हम मुख्यतया तीन भागो मे बाट सकते हैं।

१ कृषि सम्बन्धी बेकारी।
२ औद्योगिक बेकारी।
३ शिक्षित समुदाय मे बेकारी।

यहा अब हम इन तीनों प्रकार की बेकारी पर अलग २ प्रकाश डालेंगे।

(१) कृषि सम्बन्धी बेकारी (Agricultural Unemployment)— ग्रामीण क्षेत्र मे बेरोजगारी का प्रभाव बडे अश मे पडा है। यह बेकारी मौसमी भी है और स्थायी भी। मौसमी बेकारी के समय गाव वालो के पास वर्ष के ५ से लेकर ९ महीनो तक कोई काम धन्धा नहीं रहता है क्योकि इन दिनो खेती का काम बन्द रहता है। स्थायी रूप की बेकारी इस बात पर आधारित है कि एक ओर लाभप्रद कृषि के लिये भूमि तो उपलब्ध है किन्तु दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं जिन्हे खेती के लिये भूमि की आवश्यकता है। कृषि सम्बन्धी बेकारी के लिये निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं —

(१) हमारे यहाँ की कृषि मानसून पर निभर है जो कभी समय पर नही होती या होती है तो अधिक मात्रा मे जिसके प ि णामस्वरूप मौसमी बेकारी और दुर्भिक्षो का सामना करना पडता है।

(२) गाव मे सहायक उद्योग धन्धो का अभाव।

(३) बडे पैमाने के उद्योग धधो की प्रतियोगिता के कारण छोटे उद्योगो के कारीगरो को अपने उत्पादन से वास्तविक लागत भी नही प्राप्त हो पाती है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय रहती है। इसी के प्रभाव से कुटीर उद्योगो का विनाश होना है और बेरोजगारी की समस्या विकट रूप धारण करती है।

(४ जनसख्या की तीव्र गति से बढने का प्रभाव यह हो रहा है कि जनसख्या का भार कृषि पर बढ रहा है जिससे बेकारी की समस्या और बढती जा रही है।

(५) उपज के बेचने की अच्छी व्यवस्था न होने के कारण आर्थिक स्थिति अच्छी नही है।

(६) अन्तिम कारण है भूमि का विभाजन होना, किसानो का ऋण ग्रस्त होना एव कृषि की दोष पूर्ण प्रणाली।

उपरोक्त कारणो से पता चलता है कि भारत मे कृषि का स्तर बिल्कुल ही गिर गया है, जिसके परिणामस्वरूप जो लोग इस धधे मे फसे हुये हैं वे अपना जीविकोपार्जन मे असमर्थ हैं। देश म गरीबी और दरिद्रता का प्रकोप है जिससे बेरोजगारी की समस्या और भी ज टिल रूप धारण करती जा रही है।

ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के उपाय

ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने के लिए निम्नलिखित अल्प व दीर्घकालीन

उपाय अपनाये जा सकते हैं —

(१) मौसमी बेरोजगारी को दूर करने के लिए उत्पादन कार्यों को अपना सकते हैं जैसे सार्वजनिक योजना चालू करना, सिंचाई की नाली आदि बनाने की योजना चालू करना। इसके अतिरिक्त कुछ फालतू फसलों को पैदा करना चाहिए। इसके साथ ही साथ इस समस्या को सुलझाने के हेतु पशु व मुर्गी आदि पालने का व्यवसाय अपनाना चाहिये।

(२) ऐसा उपाय करना चाहिये कि बढ़ती हुई जनसंख्या का भार खेती योग्य भूमि पर न पड़े

(३) कृषि के उत्पादन बढ़ाने के लिये कृषि मे अधिक पूंजी लगाई जानी चाहिये।

(४) खेतिहर मजदूरों की संख्या को कम करने के लिए खेती के लिए अधिक भूमि का प्रबन्ध करना चाहिये, और देश मे औद्योगीकरण कर देना चाहिये जिससे बची हुई जनसंख्या उद्योगो मे काम कर सके।

(५) बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिए हमको छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास अवश्य करना चाहिये। हाथकर्घा उद्योग के साथ साथ ताले, मोमबत्ती, बर्टन, जूते इत्यादि बनाने के छोटे कुटीर उद्योगो को अपनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त खेती के औजार चाकू, साइकिलो के छोटे २ पुर्जे, बिजली का सामान आदि उद्योगों को अपनाकर इस समस्या का बहुत कुछ समाधान किया जा सकता है।

(६) कृषि कार्य को व्यक्तिगत रूप से न करके संगठित रूप से करना चाहिए अर्थात् सामूहिक कृषि की नीति को अपनाना चाहिये।

(७) देहातों की दुर्भिक्षों से रक्षा हेतु यातायात का उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

उपरोक्त सुधारो को अपनाकर ही हम ग्रामीण क्षेत्रों की बेकारी की समस्या को समाप्त करने मे सफल हो सकते है और इन साधनो के न अपनाने से आर्थिक विकास ी असम्भव है।

औद्योगिक क्षेत्र मे बेकारी की समस्या (Industrial Unemployment)—एक समय था जब हमारे उद्योगो म श्रम का अभाव था। देश मे उद्योगो की स्थापना हो रही थी परन्तु श्रमिकों का अभाव हो रहा था। उस समय जो शहरो ों काम करने के लिए गाव के लोग आते थे,उसका कोई न कोई मुख्य कारण अवश्य होना था चाहे वह सामाजिक हो या राजनैनिक या और कोई कारण हो परन्तु श्रमिक अवसर पाते ही गाव चला जाया करते थे। इससे मिल मालिको को कठिन समस्या का सामना करना पड़ता था। परन्तु अब स्थिति बिल्कुल बदल गई है। अब श्रमिक खाली घूमा करते है और आज उद्योगो मे नौकरी पाने की आशा रखने वालो की संख्या बहुत अधिक है। इसका मुख्य कारण है ग्रामीण क्षेत्रों की हीन अवस्था। अब श्रमिको को अभाव की समस्या न होकर इस क्षेत्र मे बेकारी की समस्या फैल गई है। इसके मुख्य कारण निम्न लिखित है.—

(१) अभी हमारे देश के उद्योगो का विकास नही हुआ है जिसमे इसमे अधिक श्रमिकों को खपाया नही जा सकता।

(२) उद्योगो का स्थानीयकरण बड़ा अनार्थिक व त्रुटिपूर्ण है देश मे जिन उद्योगो की स्थापना हो चुकी है उनकी स्थापना सुनियोजित रूप स नही हुई है।

(३) आर्थिक मन्दी क कारण उद्योग की स्थिति बिगड़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप बहुत से मजदूरो को अपनी रोजी से हाथ धोना पड़ता है।

(४) ग्रामो की स्थिति असन्तोषजनक होने के कारण भी हमारे उद्योग अपना विकास नही कर पाते।

(५) जनता की क्रय शक्ति मुद्रा स्फीति के कारण भी कम हो गई इससे माल की माग कम हो गई है

(६) कुछ उद्योगो के अभिनवीकरण से भी यह समस्या बढ़ गई है।

उपरोक्त सभी कारणो से हमारे उद्योग धन्धो मे इतनी सामर्थ्य नही है कि बढ़ती हुई जनसख्या को अपने मे खपा सकें। टी० एन० रामास्वामी ने कहा कि भारतीय औद्योगिक व्यवस्था बुरी तरह कुए और खाई के बीच पड गई है। एक ओर *तो द्रव्य-श्रम-मडी है और दूसरी ओर निर्वाह। अर्थ व्यवस्था के कड़े शिकजे म जकडी* हुई जनता की उपभोग प्रवृत्ति की गति से निश्चित गौण मन्दी है।

इस समस्या के समाधान के उपाय इस समस्या के उपचार के लिए सर्व प्रथम हमको औद्योगिक विकास करना चाहिये। इस विकास के लिए औद्योगिक सगठन का परिवर्तन करने की आवश्यकता है। धन्धो के अधिक केन्द्रीयकरण को दूर करना चाहिए कच्चे माल की तरलता सुधारनी चाहिए, श्रमिको की औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए, पू जी स्रोतो को प्राप्त करना चाहिए और प्रबन्धकीय कौशल आदि म सुधार करने से इस समस्या के समाधान मे काफी सहयोग मिलेगा। वास्तव मे बेकारी की समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब औद्योगिक विकास सम्भव होगा। कृषि मे इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह बढ़ी हुई बेकार जनसख्या को खपा सके। निसदेह उद्योगो के विकास के सहारे ही हम इस सकट से छुटकारा पा सकते हैं। अर्थात् जब पूर्ण औद्योगिक विकास हो जायेगा बेकारी स्वय ही समाप्त हो जायेगी। भारतीय उद्योग अभी शिशु अवस्था मे है। यदि सावधानी से देश के आर्थिक विकास मे एक सम्बद्ध एव सयोजित अग के रूप मे औद्योगिक व्यवस्था का निर्माण किया जाय तो नौकरी का स्तर ऊचा बन सकेगा।

शिक्षित वर्ग मे बेकारी की समस्या—इस वर्ग मे इस समस्या का होना बहुत ही हानिकारक एव इसमे समस्या का भयानक रूप है क्यो कि समस्त समाज की यही शक्ति है। इस वर्ग मे बेकारी होने से राज्य को ही नहीं वरन् समस्त देश को हानि पहुच सकती है।

इस बेकारी का मुख्य कारण यहा की शिक्षा पद्धति है। यहा जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है उसका व्यवहारिक जीवन से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। अर्थात् यहा की शिक्षा किताबी शिक्षा है। जिसकी सहायता से विद्यार्थी

उच्च डिग्री प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनके जीवन का सार कुछ नहीं होता। ऐसे साधनों की कमी है जिनके द्वारा वह शिक्षा पाकर अपने जीवन स्तर को ऊंचा रख सकें क्योंकि पढ़ा लिखा व्यक्ति कुर्सी पर बैठकर ही कार्य करना चाहता है। इस शिक्षा पद्धति की समय समय पर खूब आलोचना की गई है। १९२७ में पंजाब बेकारी समिति ने कहा कि लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति केवल एक अनुवादकों का वर्ग उत्पन्न करने के लिए थी जो दुभाषियों का काम कर सके। शिक्षा ने इन दुभाषियों को दुभाषिया ही बना छोड़ा है। उससे ज्यादा कुछ नहीं और बाकी सब नकल और भूसा है जिसमें एक भी रत्ती को इन्सान बनाने लायक कोई चीज नहीं है। जार्ज एंडरसन ने भी इस भारतीय शिक्षा पद्धति की बड़े कड़े शब्दों में आलोचना की। श्री आर्मस्ट्रांग ने जो पंजाब के सार्वजनिक शिक्षा विभाग के डाईरेक्टर थे कहा था कि इसमें जरा भी सन्देह नहीं की शिक्षा के हमारे साहित्यिक स्वरूप ने ही भूतकाल में अपने विद्यार्थियों को बड़े दायरे में नौकरी पाने में मदद दी है। इनका यह कथन बिल्कुल सच है। उपरोक्त सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि शिक्षा पद्धति बड़ी दोषपूर्ण है। महात्मा गांधी ने भी इस शिक्षा पद्धति की कठोर शब्दों में आलोचना इस प्रकार की थी—' नवीन शिक्षा प्रणाली किसी भी रूप या प्रकार में देश की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं करता। शिक्षा के ऊंचे क्षेत्र में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बना देने से करोड़ों से ऊपर के शिक्षितों और नीचे के अधिकांश अशिक्षितों में एक स्थायी दीवार खड़ी हो गई। इसके कारण ज्ञान नीचे की जनता तक नहीं पहुंच पाता। अंग्रेजी भारतीय जीवन का मानसिक रूप में पंगु बना देता है और वह अपने देश में अजनबी बन जाता है। व्यवसायिक शिक्षा के अभाव में शिक्षित वर्ग उत्पादक कार्यों के लिए अनुपयुक्त से हो गये हैं और उनकी शारीरिक व्यवस्था पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है।"

शिक्षित वर्ग की बेरोजगारी दूर करने के उपाय—शिक्षित वर्ग की बेरोजगारी दूर करने का स्थाई इलाज तो यह हो सकता है कि देश की शिक्षा प्रणाली में सुधार कर दिया जावे। शिक्षा इस प्रकार की प्रदान करनी चाहिये जिससे पढ़ने के तुरन्त बाद ही व्यक्ति रोजगार पा जायें। औद्योगिक क्षेत्र में सरकार को स्वयं देख भाल कर उसका विकास करना चाहिये। इससे बेकारी को दूर करने में सहायता मिलेगी। वर्तमान औद्योगिक ढांचे को अधिक कार्यक्षम बनाया जाये। सरकार को विकास क्षेत्र के लिए अधिक धन की आवश्यकता है। इसके लिये व्यक्तिगत रूप से पूंजी विनियोग करने वालों के सामने अपनी योजनायें पूरी कर पूंजी की भावी सम्भावनाएं स्पष्ट रूप से रखना चाहिए जिससे सरकार अपनी योजना पूरी कर सके और बेरोजगारी की समस्या का समाधान हो सके।

निष्कर्ष—उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि हमारी बेकारी का सबसे बड़ा कारण हमारा आर्थिक पतन है अतः इस समस्या को सुलझाने के लिए हम विशेष नीति का अनुसरण करना होगा। इस नीति का मुख्य ध्येय यह होना चाहिए कि पहले तो इसके द्वारा अल्पकाल में ही इस समस्या को सुलझाने के प्रयास निहित हो और फिर रोजगारी के दीर्घकालीन विस्तार के लिए सुदृढ़ नींव डाली जा सके। योजना कमी-

शासन ने पंचवर्षीय योजनाओं में इस बात का काफी प्रयत्न किया है कि श्रमिक वर्ग इसमें खपाये जा सके परन्तु योजनाओं का ढांचा इस प्रकार का है कि उसमें बेरोजगारी की समस्या के समाधान के हेतु कोई विशेष प्रयास नहीं है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने दूसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में यह कहा था कि दूसरी योजना में पहली पंचवर्षीय योजना के अपेक्षाकृत इस समस्या को अधिक भली प्रकार सुलझाने का प्रयत्न किया जायेगा। निःसन्देह यदि बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया गया तो आर्थिक विकास असम्भव है।

प्रश्न ६३—राष्ट्रीय आय से आप क्या समझते हैं ? राष्ट्रीय आय का क्या महत्व है ? राष्ट्रीय आय को आंकने की विभिन्न रीतियों पर प्रकाश डालिए। भारत की राष्ट्रीय आय जानने के क्या प्रयत्न किये गये हैं। विभिन्न अनुमानों में भिन्नता के क्या कारण हैं ?

What is National Income ? What is its importance ? What are the various methods of calculating it ? Discuss the various efforts made so far to calculate the National Income of India and account for the variations in these calculations

राष्ट्रीय आय की परिभाषा—राष्ट्रीय आय को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंगों से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। मार्शल के शब्दों में "भौतिक और अभौतिक वस्तुओं और सेवाओं (जो साल भर में किसी देश में उत्पन्न की जाती हैं) के योग को राष्ट्रीय आय कहते हैं।" इस प्रकार राष्ट्रीय आय वह वस्तु है जो किसी वर्ष में किसी देश के प्राकृतिक साधनों द्वारा उत्पन्न की जाती है। इसमें कृषि उत्पादन औद्योगिक उत्पादन तथा अन्य प्रकार के व्यवसायों और सेवाओं के द्रव्य मूल्य (Money Value) का योग होता है। प्रो० पीगू के शब्दों में "समुदाय की आय का वह भाग जो मुद्रा में मापा जा सके राष्ट्रीय आय कहलाता है" प्रो० कालिन क्लार्क (Prof. Colin Clark) ने राष्ट्रीय आय का अर्थ किसी अवधि की उन वस्तुओं और सेवाओं के मुद्रा मूल्य से लगाया है जो उपभोग के लिए उपलब्ध होती हैं और जिनका प्रचलित दर पर मूल्यांकन किया जाता है। इसमें नई पूंजी का मूल्य जोड़कर पुरानी पूंजी की घिसावट का मूल्य घटा दिया जाता है।

प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री डा० वी० के० आर० वी० राव ने राष्ट्रीय आय को इन शब्दों में परिभाषित किया है "राष्ट्रीय आय आयात को मिलाकर वे वस्तुएं और सेवाएं होती हैं जो किसी अवधि में विक्री के लिये उपलब्ध होती हैं और जिनका अनुमान प्रचलित मूल्य के आधार पर किया जाता है। इनमें से निम्न मदों का मूल्य घटा देना चाहिये।

(अ) स्टाक की कमी का मूल्य।

(ब) उत्पादन में व्यय की हुई वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य।

(स) वर्तमान पूंजी की सुरक्षा हेतु प्रयोग हुई वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य।

(द) परोक्ष करों से राज्य की आय।

(थ) विदेशी व्यापार का अनुकूल सन्तुलन (Favourable Balance of Trade)

(न) *विदेशी ऋण में वृद्धि अथवा विदेशों में बचा हुआ धन चाहे वह सरकारी हो या व्यक्तिगत।*

अर्थशास्त्री इस बात पर सहमत नहीं हैं कि राष्ट्रीय आय की गणना करते समय कौनसी वस्तुएं और सेवायें सम्मिलित करनी चाहियें। उदाहरण के लिये जिन सेवाओं का मूल्यांकन द्रव्य के रूप में नहीं हो सकता वे राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं हो सकती चाहे वे कितनी महत्वपूर्ण हों। जैसे माता अथवा पत्नी द्वारा परिवार के सदस्यों की देखभाल के लिये की गई सेवायें। यही सेवायें यदि एक गृह सेविका अथवा नौकरानी द्वारा प्रदान की जाती हैं तो उन्हें राष्ट्रीय आय में सम्मिलित कर लेते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार सरकारी कर्मचारियों की सेवाओं तथा मिलने वाली पेन्शन को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं करना चाहिये।

राष्ट्रीय आय का महत्व—किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगा लेने के बाद बहुत सी महत्वपूर्ण बातों का पता चल जाता है। उदाहरण के लिये देश ने आर्थिक प्रगति की है अथवा नहीं, लोगों के रहन सहन के स्तर में सुधार हुआ है या नहीं देश की जनसंख्या का अर्थ व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है तथा इसी प्रकार की बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं। यदि हम गत वर्षों की राष्ट्रीय आय की वर्तमान वर्षों की राष्ट्रीय आय से तुलना करें तो हमें पता चल सकता है कि आर्थिक दृष्टि से कितनी उन्नति हुई है।

देश की आर्थिक क्रियाओं में जैसे आयात निर्यात कर लगाना उद्योगों को आर्थिक सहायता देना मजदूरी की दर निश्चित करना तथा कृषि और उद्योगों में समन्वय स्थापित करने में राष्ट्रीय आय के आंकड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। हम जानते हैं किसी भी देश के लोगों का आर्थिक कल्याण राष्ट्रीय आय के न्यायपूर्ण वितरण पर निर्भर होता है। भारत एक समाजवादी अर्थ व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जिसके लिये विकास की पंचवर्षीय योजनाएं चलाई जा रही हैं एक योजना समाप्त हो गई है और दूसरी पर कार्य हो रहा है। इन योजनाओं का अन्तिम अनुमान इस बात से लगाया जायेगा कि इनके फल स्वरूप राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होती है।

राष्ट्रीय आय आंकने की रीतियां—राष्ट्रीय आय नापने की दो प्रमुख रीतियां है—

(१) परिगणना रीति अथवा उत्पादन गणना रीति (Inventory Method or Census of Production Method)—इस रीति में विभिन्न उद्योगों, कृषि, व्यवसायों तथा सेवाओं द्वारा किये गये उत्पादन का द्रव्य के मूल्य में मूल्यांकन किया जाता है। यदि उत्पादन के सही आंकड़े उपलब्ध किये जा सकें तो यही रीति काफी सरल और सही है। इसमें दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है। एक तो यह कि दोहरी गणना न होने पावे और दूसरा यह कि मशीनों आदि की घिसावट का मूल्य घटा दिया जाये।

(२) आय कर रीति (Income tax Method)—इस रीति में

द्वारा हम सरकार को मिलने वाले आय कर के आधार पर देश के सभी व्यक्तियों की वार्षिक आय का अनुमान लगा सकते हैं और यही देश की राष्ट्रीय आय होगी। इस रीति में दोष यह है कि सभी व्यक्ति आय कर नहीं देते। दूसरे आय कर समान दर से नही लिया जाता। बहुत से लोग आय कर की चोरी भी करते हैं। इसलिये इस रीति के अनुसार राष्ट्रीय आय का जो अनुमान लगाया जाएगा वह पूरी तरह सही नहीं हो सकता।

डॉ० वी० के० आर० वी० राव ने अपने अध्ययन में उपरोक्त दोनों रीतियों का एक साथ प्रयोग किया है और इस प्रकार एक तीसरी रीति का आविष्कार हो गया है। उन्होंने समस्त अर्थ व्यवस्था को तीन वर्गों में विभाजित करके एक वर्ग पर प्रथम रीति तथा अन्य दो वर्गों पर दूसरी रीति का प्रयोग किया है।

भारतीय राष्ट्रीय आय का अनुमान—सर्व प्रथम दादा भाई नौरोजी ने भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया था। भारत की गरीबी और उसके कारणों की खोज करते हुए उन्होंने १८६८ में भारत की प्रति व्यक्ति आय (Per capita Income) का अनुमान २० रुपए लगाया था। १८९७–९८ में लार्ड कर्जन ने भी इस क्षेत्र में कार्य किया। उनके अनुसार यह प्रति व्यक्ति आय ३० रुपये थी। इसके पश्चात् फिन्डले शिराज ने कई बार राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया। उनके अनुसार यह १९११ में ४९ रुपए, १९२१ में १०७ रुपये, १९२२ में ११६ रुपये और १९३१ में ६३ रुपए थी।

उपरोक्त सभी अनुमानों में सही हम किसी को भी नहीं कह सकते क्योंकि अनुमान कर्ताओं के पास न तो उत्पादन आदि के पर्याप्त आंकड़े ही थे और न उन्होंने किसी वैज्ञानिक रीति का प्रयोग इस कार्य के लिये किया था। वास्तव में राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने के जो प्रयत्न वर्तमान समय में किये गए हैं उनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं—

डा० वी० के० आर० वी० राव का अनुमान (१९३१–३२)— प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री डा० राव ने १९३१–३२ में भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान १६८९ करोड़ रुपए लगाया था जिसके अनुसार प्रति व्यक्ति आय ६५ रुपए प्रतिवर्ष मानी गई थी। डाक्टर राव ने कुल भारतीय अर्थ व्यवस्था को तीन वर्गों में विभाजित किया। प्रथम वर्ग कृषि तथा सम्बन्धित व्यवसायों का था जिनमें कृषि के अतिरिक्त वन खनिज, मछली पकड़ना, मुर्गी पालना तथा डेरी उद्योग शामिल किये गये। डाक्टर राव ने इन समस्त उद्योगों की कुल उत्पत्ति को उनके मूल्यों से गुणा करके कुल उत्पादन का द्रव्य के रूप में अनुमान लगाया। दूसरा वर्ग उन व्यक्तियों का था जो आय कर (Income tax) देते हैं। इस वर्ग में सरकारी कर्मचारी, औद्योगिक मजदूर तथा विभिन्न व्यवसायों में लगे हुये कारीगर भी शामिल किये गये। तीसरे वर्ग में विविध मदें जैसे मकान तथा जायदाद तथा सरकारी व्यापारिक संस्थाएं शामिल की गई। इनसे उपलब्ध वार्षिक आय का अनुमान लगाया गया।

इस प्रकार तीनों वर्गों की वार्षिक आय का अलग अलग अनुमान लगाकर तथा उसे जोड़कर १६३१-३२ की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया गया। डा० राव ने १६३१-३२ का वर्ष इस लिए चुना कि उसी वर्ष जन गणना (Population Census) की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जिससे डाक्टर राव को काफी सहायता मिली। डाक्टर राव ने अन्य सरकारी प्रकाशनों (Government Publications) से महत्वपूर्ण आंकड़े सकलित किये तथा विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों तथा कारीगरों से स्वयं आवश्यक पूछताछ की। अन्त में उनके अनुमान के अनुसार भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति आय ५१ रु तथा नगरों में १६६ रुपये थी और औसत आय ६५ रु० थी।

यद्यपि डाक्टर राव के अनुमान में भी गलती की सम्भावना है किन्तु डाक्टर राव से पूर्व जितने भी अनुमान लगाये गए थे उनकी अपेक्षा डा० राव ने काफी वैज्ञानिक ढंग से इस समस्या को हल करने का प्रयत्न किया।

राष्ट्रीय आय समिति के अनुमान (National Income Committee)—भारत सरकार ने १६४६ में राष्ट्रीय आय समिति की नियुक्ति की। इस समिति का कार्य भारत की राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए—

(१) भारत की राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित करना।

(२) आंकड़े को एकत्रित करने की रीति के सुधार में सुझाव देना।

(३) राष्ट्रीय आय के क्षेत्र में भविष्य में अनुमान लगाने के सुझाव देना।

उपरोक्त कमेटी के अध्यक्ष प्रोफेसर महल नोबिस थे तथा अन्य सदस्यों में डाक्टर वी० के० आर० वी० राव, प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल तथा श्री आर० सी० देसाई थे। राष्ट्रीय आय कमेटी ने अपनी प्रथम रिपोर्ट १६५१ में तथा दूसरी रिपोर्ट १६५४ में प्रस्तुत की। इन दोनों रिपोर्टों में १६४८-४६ से १६५०-५१ तक की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया गया है। इसके बाद भारत सरकार ने राष्ट्रीय आय कमेटी के स्थान पर एक राष्ट्रीय आय इकाई (National Income Unit) नियुक्त की जिसने हाल में १६५ -५२ की राष्ट्रीय आय का अपना अनुमान प्रकाशित किया है। निम्नलिखित तालिका में यह सब अनुमान दिखाये गये हैं—

वर्ष	कुल आय (करोड़ रुपये)	प्रति व्यक्ति आय
१६४८— ६	८६५०	२४६·६ रुपए
१६४६—५०	८८३०	२४८ ६ "
१६५०—५	८८५०	२४६ ३ "
१६५ —५२	६१००	२५० १ "
१६,२— ५३	६४६०	२५६ ६ "
१६५३—५४	१००३०	२६८·७ "
१६५४—५५	१०२८०	२७१ ६ "
१६५५—५६	१०४२०	२७२ १ "

उपरोक्त अनुमान १६४८—४६ को आधार मान कर तथा चालू मूल्यों

(Current Prices) को स्थिर मान कर लगाया गया है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे राष्ट्रीय आय—भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना का लक्ष्य १९५०—५१ से १९५५—५६ तक राष्ट्रीय आय मे १५ प्रतिशत की वृद्धि करना था। इस सम्बन्ध मे यह बात विशेष रूप मे ध्यान मे रखने योग्य है कि भारत की बढती हुई जन—सख्या को भी ध्यान मे रखा जाए क्योकि जन—सख्या मे वृद्धि की दर का प्रति व्यक्ति आय से सीधा सम्बन्ध है। योजना आयोग के अनुसार प्रथम पच वर्षीय योजना के काल मे भारत मे प्रति व्यक्ति आय मे ११ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। १९५१—५२ मे राष्ट्रीय आय ९१६० करोड रुपये से बढ कर १९५५—५६ मे १०८०० रुपये हो गई है

दूसरी पचवर्षीय योजना मे राष्ट्रीय आय—दूसरी पचवर्षीय योजना मे अन्य उद्देश्यो के साथ साथ एक मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आय मे इतनी काफी वृद्धि करना है जिससे देश के रहन सहन का स्तर ऊचा हो। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत की राष्ट्रीय आय १३४८० करोड रुपये तक हो जाने का अनुमान है। आशा की जाती है कि प्रथम पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे जो भारत की राष्ट्रीय आय थी उसकी दो गुनी आय १९७३—७४ तक हो जावेगी।

राष्ट्रीय आय के अनुमान मे भिन्नता के कारण—गत वर्षो म भारत की राष्ट्रीय आय को आकने के जो प्रयास किये गए हैं वे पूर्णतया सही नही हैं। उनम काफी भिन्नता पाई जाती है और गलती की सम्भावना रहती है। इस भिन्नता के अनेक कारण हैं जिनमे निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं—

(१) भिन्नता का पहला कारण यह है कि अनुमान एक ही समय पर तैयार नही किये गये है। समय की भिन्नता के कारण परिस्थितियो मे भी भिन्नता हो जाती है। जनसख्या उत्पादन की मात्रा, वस्तुओ का मूल्य स्तर आदि सभी कुछ बदल जाता है इसलिए यह भिन्नता होनी स्वाभाविक है।

(२) जिन व्यक्तियो अथवा सस्थाओ ने राष्ट्रीय आय की गणना करने का प्रयत्न किया है उनके पास विश्वसनीय सूत्रो मे सम्पूर्ण आकडे उपलब्ध नही थे। भारत मे उत्पादन के आकडे सकलित करने की पद्धति ही दोषपूर्ण है। समय, धन तथा योग्य कर्मचारियो के अभाव के कारण राष्ट्रीय आय के अनुमान मे भिन्नता हो जाती है।

(३) विभिन्न सस्थाओ तथा व्यक्तियो ने समान रूप से एक ही क्षेत्र अथवा स्थान पर राष्ट्रीय आय की गणना नही की है। कुछ ने अपने अध्ययन मे सम्पूर्ण देश को सम्मिलित किया है और कुछ ने केवल कुछ राज्यो को। आरम्भ मे जिन व्यक्तियो ने राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया वे राजनैतिक कारणो की वजह से पक्षपात से दूर नही रह सके। कुछ ने जान बूझकर अपने अनुमानो को घटाकर बताया ताकि समस्त उत्तरदायित्व विदेशी शासन पर रखा जा सके और कुछ ने उसे बढाकर व्यक्त किया।

इस प्रकार हम देखते है कि भारत म यद्यपि काफी पहले से राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने के प्रयत्न किय गये है किन्तु उन पर पूरी तरह विश्वास नही किया जा सकता।

अध्याय १३

भारतीय विदेशी व्यापार

प्रश्न ६४—भारत के विदेशी व्यापार में गत २० वर्षों मे हुए परिवर्तनों की विवेचना कीजिए। (दिल्ली ५०, ५२, बम्बई ५८, कलकत्ता ५२)

Explain the main changes in India's foreign trade during the last 20 Years *(Delhi 50, 52, Bombay 52, Calcutta 52)*

उत्तर—पिछले २० वर्षों के भारतीय विदेशी व्यापार मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिन पर दूसरे महायुद्ध, देश के विभाजन, रुपये के अवमूल्यन तथा पचवर्षीय योजनाओं का विशेष प्रभाव पडा है। हमारे विदेशी व्यापार की मात्रा तथा उसके मूल्य आयात निर्यात की वस्तुओं, विदेशी भुगतान की स्थिति तथा जिन देशो से भारत का विदेशी व्यापार होता है इन सब मे गत २० वर्षों मे आधारभूत परिवर्तन हो गये हैं। दूसरे महायुद्ध से पूर्व भारत का व्यापार सतुलन प्रतिकूल था। उस समय भारत एक पराधीन देश था और विदेशी व्यापार क क्षेत्र मे उसे अपनी इच्छानुसार नीति अपनाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। भारत से मुख्यतया कच्चा माल विदेशो को जाता था और उनके बदले उपभोग की वस्तुए तथा मशीनें आदि आयात की जाती थी। भारतीय उद्योगो को पूरी तरह उन्नति करने की सुविधायें नहीं थी

दूसरे महायुद्ध के काल मे कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। युद्ध के कारण बहुत सी वस्तुओं का आयात लगभग बन्द हो गया और भारतीय उद्योगो को अपनी पूरी क्षमता के अनुसार कार्य करना पडा। क्योकि युद्ध के लिए आवश्यक सामग्री तैयार करने का भार भारतीय उद्योगो पर भी था। इसी काल मे भारी संख्या मे विदेशी सेनायें भारत मे पडी हुई थी जिनकी आवश्यकताओ को भारत ने पूरा किया। इस प्रकार युद्धकाल म भारत का व्यापार सन्तुलन अनुकूल हो गया और लगभग १७०० करोड रु० के पौण्ड पावनो (Sterling Balances) के रूप मे भारत ने जमा कर लिये। युद्ध के काल में भारत के आर्थिक विकास का प्रश्न उत्पन्न हुआ जिसके लिए विदेशी पूंजी तथा मशीनो आदि की आवश्यकता हुई। उसी समय भारत ने पुनः उपभोग की वस्तुओ के आयात को कम करने का प्रयत्न किया। देश के विभाजन तथा भयकर खाद्य समस्या के कारण भारत के विदेशी व्यापार मे असन्तुलन उत्पन्न हुआ। जूट तथा कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्र पाकिस्तान मे चले गये और इनके कारखाने भारत मे रह गये। इसी समय भारत को भारी मात्रा मे अनाज विदेशो से आयात

करना पडा। १६४६ मे रुपये का अवमूल्यन हुआ जिसका भारत के विदेशी व्यापार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा। १६५१ के बाद से भारत की पंचवर्षीय योजनाएं चालू हो गई। इन विकास योजनाओं को सफल बनाने के लिए सरकार को अनेक महत्व-पूर्ण कदम उठाने पड़े है। बहुत सी वस्तुओं का आयात बिल्कुल बन्द हो गया है और वे वस्तुए भारत में ही बनने लगी हैं। जो वस्तुए भारत पहले आयात करता था उसमे से कुछ का अब देश मे निर्यात होता है। इसके विपरीत अब बडी मात्रा में विदेशो से मशीनें, लोहा तथा इस्पात तथा अन्य पूंजीगत सामग्री भारत में मगाई जा रही है। दूसरी पचवर्षीय योजना की विशालता के कारण इन वस्तुओ की मांग और अधिक बढ गई है और आयात निर्यात का सतुलन बनाए रखना सरकार के लिये कठिन हो गया है। गत दस वर्षो मे भारत के विदेशी व्यापार में जो परिवर्तन हुये हैं उनका विस्तृत ब्यौरा इस प्रकार है —

(१) **हमारा विदेशी व्यापार मूल्य तथा मात्रा की दृष्टि से बहुत अधिक बढ गया है:**—गत वर्षों में न केवल भारत के निर्यात वरन् आयातों की मात्रा तथा मूल्यो में भारी वृद्धि हुई है। १ ३८—३६ में भारत का कुल व्यापार ३२१ करोड रु० था। १६५३—५४ में बढकर यह ११३१ ५ करोड रु० तथा १६५५–५६ मे १३६१·७ करोड रु० हो गया है। इस वृद्धि का एक कारण भारत तथा अन्य देशों में मुद्रा स्फीति है जिसकी वजह से वस्तुओं के मूल्यो मे वृद्धि हो गई है। देश के विभाजन के कारण जूट तथा कपास का व्यापार जो पहले भारत के घरेलू व्यापार में शामिल था अब विदेशी व्यापार का अंग बन गया है।

(२) **आयात निर्यात की वस्तुओं में परिवर्तन**:—पहले कपास, जूट, अनाज, खनिज पदार्थ तथा तिलहन इत्यादि मुख्य रूप से भारत के निर्यात में शामिल थे। इसी प्रकार कपडा, मशीन मोटर कार तथा साइकिलें इत्यादि भारत में आयात होती थी। देश की स्वतन्त्रता तथा विभाजन से परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। अब हमें कपास तथा कच्ची जूट पाकिस्तान से आयात करनी पडती है। इसी प्रकार भारत को गत १० वर्षो मे बहुत अधिक मात्रा में अनाज विदेशो से मगाना पडा है। इसके विपरीत अब भारत से कच्चे माल का निर्यात काफी कम हो गया है। अब देश से बनी हुई वस्तुए जैसे कपडा चीनी, सिलाई की मशीनें, बिजली का सामान, वनस्पति घी इत्यादि विदेशो को जाता है। दूसरी ओर अब भारत मे उपभाग की वस्तुए जिनमे कपडा, साइकिलें, मोटरकार, हजामत के ब्लेड, दवाइयां तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुओ का आयात कम हो गया है और इनके स्थान पर मशीनो आदि का आयात बढ गया है।

(३) **विदेशी व्यापार क्षेत्र का विस्तार**: द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भारत का विदेशी व्यापार मुख्यत इगलैंड, राष्ट्र मण्डल के देशो, जापान तथा अन्य कुछ देशो तक ही सीमित था। इस काल के भारत ने बहुत से देशों से अपने व्यापार सम्बन्ध स्थापित कर लिये है। सयुक्त राज्य अमेरिका से भारत के व्यापार मे काफी वृद्धि हुई है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया, कनाडा, बर्मा, मिस्र, युगोस्लाविया चीन, रूस,

पोलैण्ड हंगरी, रुमानिया तथा पश्चिमी जर्मनी आदि से भी भारत के मजबूत व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गए हैं। इन सम्बन्धों को अधिक व्यापक करने के प्रयत्न जारी हैं।

(४) विदेशी भुगतान के सतुलन मे अन्तर —वैसे तो दूसरे महायुद्ध से पूर्व हो भारत का व्यापार सतुलन अनुकूल ही रहता था किन्तु भारत को सदैव इगलैंड का कर्जदार रहना पडता था। इसका कारण यह था कि भारत को करोडो रुपये प्रतिवर्ष घरेलू व्यय (Home Charges) के रूप में देने पडते थे। और विदेशी पूजी के ब्याज के रूप में भुगतान करना पडता था। जैसा कि ऊपर कहा गया है दूसरे महायुद्ध में एक लेनदार देश के स्थान पर एक देनदार देश बन गया। युद्ध के बाद के काल में विशेष रूप से, डालर क्षेत्र के देशो के साथ भारत का व्यापार सतुलन प्रतिकूल हो गया। इसका कारण यह था कि भारत को इन देशों से अनाज तथा मशीनो आदि का आयात करना पडा। १९४८—४९ में लगभग २८४ करोड रु० का प्रतिकूल विदेशी भुगतान सतुलन था। यह स्थिति इगलैड तथा स्टर्लिंग क्षेत्र के अन्य देशो की भी थी। इसे सुधारने के लिये आयातो पर प्रतिबन्ध लगाये गये और १९४९ में रुपये का अवमूल्यन किया गया। १९४९—५० में भुगतान सतुलन का घाटा केवल ६० करोड रु० रह गया। अगले वर्ष कोरिया युद्ध के कारण यह घाटा केवल ३५ करोड रु० रह गया। १९५१—५२ में फिर से मशीनो तथा अनाज के भारी आयात के कारण २३२·८ करोड रु० का घाटा था। १९५५—५६ में यह घाटा १०६.५ करोड रु० था। दूसरी पचवर्षीय योजना के काल मे कुल मिला कर ७५० करोड रु० के घाटे का अनुमान है जिसे कम करने के लिये आयातो पर प्रतिबन्ध तथा निर्यातो को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था की जा रही है।

(५) डालर क्षेत्र से विदेशी व्यापार की कठिनाइयां —महायुद्ध से पूर्व डालर क्षेत्र के देशो से भारत का व्यापार सतुलन अनुकूल रहा करता था। किन्तु युद्ध के दिनों में स्थिति बदल गई। युद्ध के बाद के काल मे भी भारत को इन देशो से प्रतिकूल विदेशी भुगतान की कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है। यद्यपि सरकार ने स्थिति को सुधारने के लिये अनेक प्रयत्न किए हैं जिनमें रुपए का अवमूल्यन तथा आयातो पर प्रतिबन्ध भी शामिल हैं किन्तु पचवर्षीय योजनाओं के कारण तथा देश की खाद्य स्थिति के कारण कोई सुधार नही हुआ। दूसरी ओर पचवर्षीय योजना के काल मे स्थिति के और अधिक बिगड जाने की सम्भावना है। हाल में भारत के वित्त मंत्री श्री टी० टी० कृष्णमाचारी अमरीका तथा कनाडा गए थे किन्तु उन्हें कोई सफलता प्राप्त नही हुई। अमेरिकन बाजार में भारी प्रतियोगिता के कारण भारतीय वस्तुओं की अधिक खपत नही हो पाती। भारत सरकार ने एक निर्यात प्रोत्साहन समिति (Export Promotion Committee) नियुक्त की थी जिसने अपनी रिपोर्ट ३ नवम्बर सन् १९५१ को प्रकाशित की है। इस समिति ने डालर क्षेत्र के देशो को निर्यात बढाने के विषय में बहुत से सुझाव दिये हैं।

(६) व्यापार समझौते :—गत वर्षो में भारत सरकार ने अनेक देशों से सीधे

व्यापार समझौते किये हैं। इन समझौतों का उद्देश्य सीधा सम्पर्क स्थापित करके उन वस्तुओं को प्राप्त करना है जो प्रचलित व्यापार प्रणाली के आधार पर आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकती। इन समझौतों से दोनों सम्बन्धित देशों को लाभ होता है। भारत ने इन समझौतों द्वारा अपनी वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन दिया है और उनके बदले दुर्लभ वस्तुएं जैसे अखबारी कागज, पूंजीगत सामग्री तथा प्लान्ट का सामान इत्यादि प्राप्त किया है। यह वस्तुएं भारत के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास के लिये बहुत आवश्यक हैं। आपसी व्यापार समझौतों से विदेशी भुगतान की जटिल समस्याएं भी उत्पन्न नहीं होतीं। जिन देशों से भारत ने इस प्रकार के समझौते किये हैं उनमें से कुछ के नाम यह हैं—स्वीटजरलैंड हंगरी पोलैंड मिस्र, ईरान, आस्ट्रिया, अफगानिस्तान, बर्मा, आस्ट्रेलिया, चैकोस्लोवाकिया, पश्चिम जर्मनी, हिन्दचीन तथा जापान। इन समझौतों के सामूहिक प्रभाव से भारत को अपने विदेशी व्यापार सन्तुलन करने तथा आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करने में बहुत सहायता मिली है।

७) निर्यात को प्रोत्साहन देने के प्रयत्न :—गत वर्षों में प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिये निर्यातों को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसलिये सरकार की नीति निर्यात प्रतिबन्ध के स्थान पर निर्यात प्रोत्साहन की हो गई है। धीरे २ निर्यात प्रतिबन्धों को ढीला कर दिया गया। विदेशों से व्यापार समझौते किए गये। भारत की विदेशी व्यापार सेवाओं का पुन. संगठन किया गया। भारत ने विदेशी औद्योगिक मेलों तथा नुमाइशों में भाग लेकर अपनी वस्तुओं का प्रदर्शन किया, संसार के प्रमुख केन्द्रों में भारतीय वस्तुओं के शोरूम (Show Room) स्थापित किये गए। निर्यात की वस्तुओं के उत्पादन में सुधार किया गया और विदेशों में इन वस्तुओं के प्रचार तथा विज्ञापन पर विशेष ध्यान दिया गया। अब सरकार निर्यातों को प्रोत्साहन देने के लिए आर्थिक सहायता तथा उत्पादन करों तथा निर्यात करों में छूट देने के विषय में विचार कर रही है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गत २० वर्षों में विशेषतया स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भारत के विदेशी व्यापार में हर दिशा में व्यापक तथा मूलपरिवर्तन हुए हैं इन परिवर्तनों का भारत की अर्थव्यवस्था पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव हुआ है। अब भारत सरकार की व्यापार नीति एक स्वतन्त्र देश की व्यापार नीति है जिसका एकमात्र उद्देश्य देश के आर्थिक विकास में सहायता प्रदान करना तथा देश के उद्योगों का विकास करके देश के प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग करना है ताकि भारत शीघ्र एक उन्नतिशील देश बन सके।

प्रश्न ६५—भारतीय विदेशी व्यापार को प्रमुख आयात निर्यात की वस्तुएं क्या हैं? दूसरी पंचवर्षीय योजना में इनका क्या महत्व है?

What are the chief commodities of import and export in India's foreign trade ? What is their importance for the Second Five Year Plan

उत्तर—विदेशी व्यापार के क्षेत्र में भारत का संसार में पांचवा स्थान है। १९५५—५६ में भारत का कुल विदेशी व्यापार १३६१·७ करोड रु० था जिसमें से

६४३'१ करोड रु० के निर्यात तथा ५२०'६ करोड रु० के आयात थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना के काल में विदेशी व्यापार के और अधिक बढ जाने की सम्भावना है। भारत से निर्यात होने वाली प्रमुख वस्तुए निम्न प्रकार हैं। भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रथम श्रेणी में चाय, तम्बाकू, मसाले, अनाज दाल, आटा, मछली, फल तथा सब्जी शामिल हैं। दूसरी श्रेणी में खनिज पदार्थ, बीज, चमडा, खाल, तेल, मोम, चपडा, गोंद, नारियल का सामान खल, रबर, कपास, जूट, खाद, दवाइयां, इमारती लकडी, चाकू छुरे, कागज और कागज बनाने का सामान शामिल हैं। तीसरी श्रेणी में सूत और सूती कपडा, ऊन और ऊनी कपडा तथा जूट का सामान शामिल है। प्रमुख वस्तुओं का ब्यौरा इस प्रकार है।

(१) जूट का सामान :—भारत के विदेशी व्यापार में जूट के सामान को एक विशेष महत्व का स्थान प्राप्त है। डालर क्षेत्रों के देशों में जूट के सामान की काफी माग है जिससे भारत को काफी डालर की आय होती है। कुछ समय तक भारत को जूट के सामान के क्षेत्र में एकाधिकार प्राप्त था। किन्तु देश के बटवारे से स्थिति कुछ बदल गई है। कच्चा जूट पैदा करने वाले क्षेत्र पाकिस्तान के हिस्से में आ गए हैं और अधिकांश जूट की मिलें भारत के हिस्से में आ गई हैं। भारत पाकिस्तान व्यापार सम्बन्धों में कुछ अडचनें पड जाने से भारत को सुगमतापूर्वक पाकिस्तान से कच्ची जूट प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस कारण भारत में जूट के सामान की उत्पादन लागत भी कुछ बढ गई है। जिन देशों को भारत से जूट का सामान, जाता है उनमें अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इंगलैंड, ब्राजील, अर्जनटायना, जापान, हिन्द चीन, जावा, मिस्र तथा बर्मा शामिल हैं। १९४९–५० में १२६'९६ करोड रु०, १९५०–५१ में १४६'३१ करोड रु०, १९५३–५४ में ११०'८८ करोड रु०, १९५४-५५ मे १२४'२ करोड रुपया तथा १९५५— में ११८'४ करोड रु० का जूट का सामान भारत से निर्यात हुआ। पिछले दो तीन वर्षों में जूट के सामान के निर्यात में कमी का कारण पाकिस्तान की प्रतियोगिता रहा।

(२) सूती कपड़ा —द्वितीय महायुद्ध के बाद से भारत के बने सूती कपडे का निर्यात कई गुना बढ गया है। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग ने दक्षिण पूर्व एशिया तथा मध्य पूर्व के देशों के बाजारों पर अपना अधिकार जमा लिया है। भारतीय सूती कपडे के मुख्य खरीदारों में मलाया, आस्ट्रेलिया, हिन्द चीन, चीन, बर्मा, श्रीलंका, मिस्र एशिया, ईराक, अफगानिस्तान, ईरान, अरब, सूडान, हांगकांग तथा दक्षिणी अफ्रीका शामिल हैं। १९५०—५१ में भारत ने १३१ करोड रु० का निर्यात किया। १९५४—५५ में केवल ७४'०५ करोड रु० का कपडा देश से निर्यात किया गया क्योंकि सरकार ने घरेलू आवश्यकताओं को देखते हुए कपडे के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। १९५५—५६ में भी केवल ७७ करोड रु० का कपडा भारत से निर्यात हुआ। जिसका मुख्य कारण स्वेज नहर का झगडा तथा मध्य पूर्व के देशों की राजनैतिक स्थिति था। अब सरकार फिर से सूती कपडे के निर्यात को प्रोत्साहन देने का प्रयास कर रही है।

(३) चमड़ा तथा हड्डियां—भारतीय व्यापार निर्यात में इनका भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह कच्ची तथा कमाई हुई स्थिति में निर्यात की जाती हैं। अमेरिका, इंगलैंड जर्मनी और फ्रांस भारत के मुख्य ग्राहक हैं।

१९५४—५५ में भारत से १६.५ करोड़ रु० के मूल्य की कमाई हुई खालें तथा हड्डियां निर्यात की गईं। १९५५—५६ में इन वस्तुओं का कुल निर्यात २८.३६ करोड़ रु० का था।

(४) तम्बाकू—भारतीय तम्बाकू इंगलैण्ड जापान, स्वीडन, नीदरलैण्ड तथा बैलजीयम आदि देशों को निर्यात किया जाता है। १९५१—२ में भारत से १४.५३ करोड़ रु०, १९५३—५४ में ११.२४ करोड़ रु० १९५४—५५ में १०.८२ करोड़ रु०, १९५५—५६ में १०.६२ करोड़ रु० के मूल्य का तम्बाकू भारत से निर्यात किया गया।

(५) चाय—भारतीय निर्यात व्यापार में जूट के सामान के बाद चाय का दूसरा स्थान है। चीन के बाद चाय के उत्पादन में भारत संसार में दूसरे नम्बर का देश है। भारत अपनी कुल चाय की पैदावार का ७८% विदेशों को निर्यात कर देता है। कुल निर्यात का लगभग ७०% भाग केवल इंगलैण्ड द्वारा खरीदा जाता है। अन्य खरीदार देशों में कनाडा अमेरिका, आस्ट्रेलिया फ्रांस, हालैण्ड तथा मिश्र शामिल हैं। १९५२—५३ में भारत से ८०.०६ करोड़ रु० १९५३—५४ में १०१.६५ करोड़ रु० १९५४—५५ में १४७.३१ करोड़ रु० १९५५—५६ में १०६.२ करोड़ रु० के मूल्य की चाय भारत से निर्यात की गई। भारतीय चाय एक ऐसी वस्तु है जिसका निर्यात और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

(६) तिलहन—भारत से इंगलैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा, हंगरी, स्वीटजरलैंड फ्रांस तथा अमेरिका को तिलहन निर्यात किया जाता है। इसमें मूंगफली, सरसों तिल, अलसी, आदि शामिल हैं। १९५२—५३ में भारत से १.९८ करोड़ रु० के मूल्य का तिलहन निर्यात किया गया।

(७) तेल—भारत से मिल का तेल तथा वनस्पति तेल निर्यात किया जाता है। खरीदार देशों में लंका, अरब, बैल्जीयम इटली, मिश्र, जर्मनी, अमेरिका, स्पेन फ्रांस कनाडा आदि शामिल हैं। १९५४—५५ में ६.५ करोड़ रु० के मूल्य के तेल भारत से निर्यात किये गये। इस सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से जानने योग्य है कि भारत से वनस्पति तेल का निर्यात दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और भविष्य में इस ओर अधिक प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना है।

(८) कॉफी—चाय की भांति काफी भी भारत से निर्यात होती है हालांकि भारतीय काफी की संसार में इतनी अधिक मांग नहीं है जितनी चाय की है। खरीदार देशों में इंगलैण्ड जर्मनी, फ्रांस ईराक, आस्ट्रेलिया हालैंड आदि शामिल हैं।

(९) मसाले—भारत से काफी समय पूर्व से मसालों का निर्यात होता आया है। इसमें काली मिर्च का विशेष स्थान है। भारत से मसाले अरब, स्वीडन अमेरिका इंगलैंड और पाकिस्तान आदि देशों को भेजे जाते हैं। १९५३—५४ में १६.३३

करोड रु० के मूल्य के मसाले भारत से निर्यात किये गये ।

(१०) खनिज पदार्थ — लोहा, तांबा मेंगनीज, जस्ता, अबरक, क्रोमाइट, आदि वस्तुएं भारत से निर्यात की जाती हैं। १९५६–५७ में ३८.५६ करोड रु० के मूल्य के खनिज पदार्थ भारत से निर्यात किये गये। दूसरी पंचवर्षीय योजना में विदेशी मुद्रा की कमी को पूरा करने के लिए खनिज पदार्थों के निर्यात को और अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है। भारत तथा जापान के बीच एक व्यापारिक समझौते की बातचीत चल रही है जिसके अनुसार भारत बड़ी मात्रा में जापान को कच्चा लोहा निर्यात करेगा।

उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त कोयला और कोक, श्री लंका तथा पाकिस्तान को निर्यात किया जाता है। इसी प्रकार गोंद लाख और राल, ऊनी और सूती कपड़ा, नारियल का सामान फल और सब्जी, काजू तथा रबर तथा रबर का सामान भारत के निर्यात व्यापार में शामिल हैं।

भारत के आयात विदेशों से भारत में आयात होने वाली वस्तुओं में निम्नलिखित वस्तुओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है:—

(१) खाद्यान्न:—भारत को पिछले कुछ वर्षों से एक गम्भीर खाद्य स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भारत में अनाज का उत्पादन अनुमान के अनुसार नहीं चल पाता और अनाज की कमी को पूरा करने के लिए भारत को विदेशों से अनाज आयात करना पड़ता है। इस संकटपूर्ण स्थिति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि १९४८–४९ से १९५२–५३ के ५ वर्षों में भारत ने ७०३ करोड रु० के मूल्य का अनाज विदेशों से आयात किया। १९५३ के बाद से अनाज के आयात में बहुत कुछ कमी हो गई है किन्तु निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि भारत को अब विदेशों से कितना अनाज मांगना पड़ जाये। वैसे हम आशा करते हैं कि दूसरी पंचवर्षीय योजना की सफलता से भारत में अनाज का उत्पादन इतना बढ़ जायेगा कि विदेशी आयात पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी। जिन देशों से भारत को अनाज मंगाना पड़ता है उनमें अमेरिका, आस्ट्रेलिया कनाडा, अर्जेन्टाइना तथा बर्मा शामिल हैं।

(२) सामान्य इन्जीनियरिंग का सामान:—इसमें मशीनें औजार कृषि यन्त्र, पम्पिंग मशीनें, टाइप की मशीनें डिजिल इन्जिन बोयलर तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुएं शामिल हैं। देश की पंचवर्षीय योजनाओं के साथ साथ इनके आयात के मूल्य में भी वृद्धि होती जा रही है। इनके आयात का मूल्य लगभग ९५ करोड रुपये है। जिन देशों से यह मशीनें आदि आयात की जाती हैं उनमें इंग्लैंड अमेरिका, जर्मनी आदि का प्रमुख स्थान है। १९५६–५७ के प्रथम ६ माह में भारत ने ८९·४ करोड रु० की मशीनें, २०.७४ करोड रुपये के मूल्य के औजार तथा ५३·८७ करोड रु० के मूल्य का लोहा तथा इस्पात आयात किया।

(३) बिजली का सामान—वैसे तो भारत विभिन्न प्रकार के बिजली के सामान का उत्पादन स्वयं करने लगा है किन्तु फिर भी भारत को काफी मात्रा में विविध प्रकार का बिजली का सामान आयात करना पड़ता है जिसका औसत मूल्य

लगभग ३० करोड रु० प्रतिवर्ष है।

(४) **यातायात की सामग्री** —इसमे रेल के इंजिन, समुद्री जहाज, हवाई जहाज, मोटरकार, तथा यातायात सेवाओ से सम्बन्धित वस्तुए शामिल हैं। इनके वार्षिक आयात का मूल्य लगभग ४० करोड रु० है।

(५) **कपास** —भारत के विभाजन के पश्चात् कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये। जिसके कारण भारत को अपने सूती वस्त्र उद्योग को चलाने के लिये बडी मात्रा में कपास का आयात करना पडता है। इसका एक कारण यह भी है कि भारत में अच्छे किस्म की कपास उत्पन्न नहीं होती। १९५४—५५ में भारत ने ५८ ४४ करोड रुपए की कपास विदेशो से आयात की। भारत तथा मिस्र के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण भारत को मिस्र से बढिया कपास प्राप्त होती है। मिस्र के अतिरिक्त पाकिस्तान सूडान, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका तथा अमेरिका आदि शामिल है। भारत मे कपास के उत्पादन को बढाने के भरसक प्रयत्न किए जा रहे हैं १९५५—५६ मे भारत ने ५७ ३३ करोड रुपया तथा १९५६—७ के प्रथम ६ महीनो मे १८ ४६ करोड रुपये के मूल्य का आयात किया है।

(६) **कच्ची जूट** —कपास की भांति जूट पर भी देश के विभाजन का गहरा प्रभाव पडा है। विभाजन से पूर्व भारत कच्ची जूट का निर्यात करता था। अब भारत को अपने जूट के कारखाने चालू रखने के लिए पाकिस्तान से जूट का आयात करना पडता है। १९५४—५५ में भारत ने १३ करोड रुपये का आयात किया। १९५५—५६ में १६ ३२ करोड रुपये के मूल्य की कच्ची जूट मगाई गई। भारत सरकार देश में कच्चे जूट के उत्पादन को बढाकर आत्म-निर्भरता प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न कर रही है।

(७) **खनिज तेल** — खनिज तेल के उत्पादन मे भारत बहुत पीछे है। मोटरें बसें तथा वाई जहाज आदि चलाने के लिये भारत को खनिज तेल आयात करना पडता है। यह वस्तुए मुख्यतया ईरान अमेरिका तथा बर्मा से आयात की जाती हैं। १९५४—५५ में ८९ ५ करोड तथा १९५५—५६ में भारत ने ६७ २ करोड रुपये के मूल्य के खनिज तेल का आयात किया। प्रथम पचवर्षीय योजना मे भारत ने खनिज तेल साफ करने का कारखाना तथा खनिज तेलो मे सम्बन्धित वस्तुओ का निर्माण प्रारम्भ कर दिया है।

(८) **मोटर गाडिया**—१९५४—५५ मे ३५ ७ करोड रु० तथा १९५५—५६ मे ५८ करोड रु० के मूल्य की मोटर गाडिया तथा ट्रक आदि भारत मे आयात किए गये। वैसे तो इनका निर्माण भारत में भी शुरू हो गया है। किन्तु अभी कुछ वर्ष तक भारत को इनका निर्यात जारी रखना पडेगा। मोटर गाडियां इगलैंड अमेरिका तथा कनाडा से निर्यात की जाती हैं।

(९) **रसायनिक पदार्थ तथा दवाइया**—भारत में रसायनिक पदार्थो का आयात प्रतिवर्ष ३६ करोड रुपये के मूल्य का होता है। तथा लगभग १० करोड रुपये के मूल्य की दवाइया आयात की जाती हैं।

(१०) **शीशे और चीनी मिट्टी का सामान**—इसमें छोटे ग्लास, प्रयोगशाला-

ओं के लिए शीशे का सामान तथा चीनी मिट्टी के बर्तन इत्यादि शामिल हैं। यह वस्तुएं लगभग १५ करोड़ रुपये के मूल्य की प्रतिवर्ष आयात की जाती हैं।

(११) कागज विविध प्रकार का कागज जिसमें अखबारी कागज भी शामिल है विदेशों से मंगाया जाता है जिसका वार्षिक मूल्य लगभग १९ करोड़ रु० है।

(१२) ऊनी वस्त्र आदि—भारत ऊनी कपड़े तथा ऊनी सामान के आयात का प्रमुख स्थान रहा है। किन्तु पिछले कुछ दिनों से सरकार की नीति इसे कम करने की रही है। १९५३—५४ में भारत ने कुल ९·८९ करोड़ रुपये के मूल्य का ऊनी सामान विदेशों से आयात किया।

उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त जो अन्य वस्तुएं भारत में आयात की जाती हैं उनमें इमारती लकड़ी, मोम, साबुन, सिग्रेट, एसबस्टस सीमेन्ट, फर्नीचर, शराब रबड़ का सामान, फाउन्टेन पेन तथा अन्य विविध प्रकार की वस्तुएं सम्मिलित हैं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में आयात निर्यात का महत्व—दूसरी पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि भारत के निर्यातों को जहाँ तक सम्भव हो प्रोत्साहन दिया जाए। इसके लिए भारतीय वस्तुओं के लिए नए बाजार खोजने तथा उनका विस्तार करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं ताकि निर्यात का अधिक से अधिक बढ़ाकर विदेशी मुद्रा अधिक मात्रा में उपलब्ध की जा सके और इसका उपयोग भारी मशीनों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के आयात में किया जा सके। यदि ऐसा नहीं किया गया तो भारत उन आवश्यक वस्तुओं का आयात नहीं कर सकेगा जो योजना के लिए आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में सरकार को योजना में काट छांट करनी पड़ेगी। एक तरीका यह भी हो सकता है कि भारत को विदेशी आर्थिक सहायता के रूप में अथवा दीर्घकालीन कर्जे के रूप में पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त हो जाए जिससे भारत विदेशी बाजारों से मशीनें, लोहा तथा इस्पात तथा अन्य वस्तुएं खरीद सके। इस सम्बन्ध में अधिक सफलता की कोई आशा प्रतीत नहीं होती। इसलिए योजना को बचाने के लिए एक मात्र उपाय यही है कि अनावश्यक वस्तुओं के आयात को कम किया जाए और निर्यात को प्रोत्साहन देकर व्यापार सतुलन को बहुत अधिक बिगड़ने न दिया जाए। इस सम्बन्ध में दूसरी योजना में उत्पादन के कुछ लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं जो निम्नलिखित हैं —

	निर्यात के लक्ष्य *	
जूट का सामान	९०००००	टन
इस्पात	३०००००	टन
मैंगनीज	१०००००	टन
नमक	३०००००	टन
वनस्पति तेल	२५०००	टन
कोक	३००००	टन
सूती कपड़ा	११०००	लाख गज
साइकिलें	१९००००	

उपरोक्त वस्तुओं के निर्यात के लक्ष्यों को योजना काल में और अधिक बढ़ाने के विषय में निर्यात प्रोत्साहन समिति ने कुछ सुझाव दिये हैं जो सरकार के विचाराधीन हैं।

अध्याय १४

भारतीय मुद्रा तथा विनिमय

प्रश्न ६१—१९२५ तक भारतीय चलन के इतिहास की पूर्ण विवेचना कीजिए।

Give an outline of the history of Indian currency till the Year 1925

उत्तर —भारतीय चलन के इतिहास के अध्ययन की सुविधा के लिए हम १८३५ के बाद के काल तक ही अपने अध्ययन को सीमित रखेंगे। भारतीय मुद्रा प्रणाली अनेक प्रकार के परिवर्तनों के काल से होकर गुजरी है और प्रत्येक का भारतीय अर्थ व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। १८३५ से १९३९ तक के लगभग १०० वर्षों की इस लम्बी अवधि को हम चार मुख्य खण्डों में बांट सकते हैं। यह काल खंड इस प्रकार है —

प्रथम महायुद्ध से पूर्व का काल (१८३५ से १९१४):— १८३५ तक भारत में द्विधातुमान का चलन था। भारत के विभिन्न राज्यों में भांति २ के सोने और चांदी के सिक्के चलन मे पाए जाते थे। इनमे किसी प्रकार की समानता अथवा एकरूपता नहीं थी। १८३५ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ध्यान केवल अपने राज्य के विस्तार की ओर रहा। १८३५ मे प्रथम बार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने आधीन प्रदेशों मे रजतमान की स्थापना की। समस्त प्रदेशों मे एक तोला तथा १८० ग्रेन भार के चादी के सिक्के चलाए गये जिनमे शुद्ध चादी की मात्रा १६५ ग्रेन थी। इस प्रकार चाँदी का रुपया पूरी तरह भारत का प्रामाणिक सिक्का बन गया। चांदी के सिक्कों की ढलाई मुक्त (Free Coinage) कर दी गई। चादी का मूल्य सोने में घोषित किया गया। यद्यपि सोने और चादी के बीच कोई निश्चित अनुपात नहीं था। जिस प्रकार सोने और चाँदी के बाजार भाव में परिवर्तन होते थे उसी प्रकार यह अनुपात भी बदलता रहता था। सोने के सिक्को का चलन बिल्कुल समाप्त कर दिया गया। सन् १८६ में भारतीय रुपये का मूल्य १ रुपया=२ शिलिंग के रखा गया किन्तु इस दर को स्थिर रखना लगभग असम्भव था। इसके कई कारण थे। सर्व प्रथम तो इसी काल में चादी की कई नई खानों का पता चल गया था जिससे चादी की पूर्ति बढ़ गई और सोने में चादी का मूल्य घटने लगा। दूसरे संसार के कुछ प्रमुख देशों ने चादी के सिक्को की ढलाई बन्द कर दी और इस प्रकार द्विधातुमान के स्थान पर स्वर्णमान के रूप मे एक तुमान की स्थापना की। इन देशों में फ्रांस, इटली,

जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन, नार्वे आदि शामिल थे। १८७३ मे लेटिन संघ (Latin Union) ने भी स्वर्णमान स्थापित किया। इस प्रकार चादी का मूल्य बराबर घटता ही गया और १८९२ मे एक रुपया केवल १ शिलिंग ३ पेंस के बराबर रह गया। १८६६ मे मैसफील्ड आयोग (Mansfield Commission) ने भारत मे सोने को भी कानूनी ग्राह्य बनाने की सलाह दी थी किन्तु परिस्थितिया कुछ इस प्रकार की रही कि प्रयत्न करने पर भी भारत मे स्वर्णमान स्थापित नही हो सका।

१८९३ तक चादी के मूल्य इतने अधिक गिर गये थे कि सरकार के सामने एक भयकर समस्या उत्पन्न हो गई। लोगो ने सस्ते भाव पर चांदी खरीदकर बडी सख्या मे सिक्के बनवाना प्रारम्भ कर दिया जिससे कुछ २ मुद्रा प्रसार की स्थिति पैदा हो गई और वस्तुओ के मूल्य बढने लगे। १८७३ से १८९३ तक मूल्य स्तर मे लगभग ५६ प्रतिशत की वृद्धि हो गई। इसका सबसे बुरा परिणाम यह हुआ कि भारत को प्रतिवर्ष घरेलू व्यय (Home Charges) के रूप मे जो धन इगलैंड को भेजना पडता था उसका भार भारत पर बहुत अधिक बढ गया क्योकि अब भारत को अधिक मात्रा मे अपनी मुद्रा प्रदान करनी पडती थी। भारत के विदेशी व्यापार को भी इससे हानि हुई। सरकार ने स्थिति का सामना करने के लिए करो मे वृद्धि की तथा बजट को भी सतुलित करने का प्रयास किया। किन्तु हालत मे कोई सुधार नही हुआ। परिस्थिति का सामना करने के लिये सरकार को एक समिति नियुक्त करनी पडी जिसका उद्देश्य स्थिति की जाच करना तथा सरकार को आवश्यक परामर्श देना था। यह समिति १८९२ मे नियुक्त की गई और यह हरशैल कमेटी के नाम से प्रसिद्ध है।

हरशैल समिति के सुझाव—लार्ड हरशैल (Lord Herschell) इस समिति के अध्यक्ष थे। इस समिति को तीन प्रश्नो पर विचार करके अपना सुझाव देना था। यह प्रश्न इस प्रकार थे –

(१) भारत मे चादी की मुक्त ढलाई समाप्त करके स्वर्णमान की स्थापना का प्रश्न।

(२) भारत मे सोने के सिक्के चालू करने का प्रश्न।

(३) रुपये स्टर्लिङ्ग विनिमय दर को १ शिलिंग ६ पेंस निश्चित करने का प्रश्न।

उपरोक्त समिति ने १८९६ मे अपने सुझाव पेश किये। इन सुझावो के अनुसार भारत मे सोने के सिक्के चालू करना अनावश्यक तथा अनुपयुक्त था। सोने के सि के चालू करने से स्थिति और भी गम्भीर हो जाने का भय था। इसी प्रकार समिति ने १ शिलिंग ६ पेंस की विनिमय की दर को भी अनुपयुक्त समझा। इसके विचार मे इस दर का भारत के उद्योग, व्यापार तथा आर्थिक जीवन पर बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना थी। समिति ने अनुभव किया कि रुपये की मुक्त ढलाई बन्द हो जानी चाहिये। सरकार यह कर सकती है कि १ शिलिंग ४ पेंस प्रति रुपया की दर पर अपनी टकसालो मे चादी के रुपये ढालती रहे और सरकारी खजानों मे सभी

प्रकार के भुगतान इसी दर पर सोने के रूप मे स्वीकार करती रहे। इसी प्रकार बिना सोने के सिक्को के चलाए भी स्वर्णमान की स्थापना हो सकती है।

हरशैल समिति के सुझावो के परिणामस्वरूप सोने और चादी दोनो की मुक्त ढलाई बन्द कर दी गई। टकसालो के दरवाजे जनता के लिए सदैव के लिए बद हो गये। दूसरी ओर एक रुपये मे उतने वजन की चादी नही रही जितना कि उसका वाहरी मूल्य था। दूसरे शब्दो मे रुपया एक सांकेतिक सिक्का बन गया।

सरकार ने समिति की सिफारिशों के आधार पर १८९३ म भारतीय मुद्रण कानून (Indian Coinage Act) पास किया जिसके अनुसार रुपये की मुक्त ढलाई बन्द हो गई और अन्य सिफारिशो को कानूनी रूप दे दिया गया। रुपये की विदेशी विनिमय की दर १ शिलिंग ४ पैंस हो गई और इसी दर पर सोने के बदले टकसाल से रुपए देने तथा करो आदि के रूप मे सोने के सिक्के स्वीकार करने की सरकार ने जिम्मेदारी ली। कुछ अस्थाई कमी अथवा वृद्धि के अतिरिक्त रुपए की विनिमय दर मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ और १९१६ तक इसी प्रकार कार्य चलता रहा। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि अब चाँदी की कीमतो का विनिमय दर पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था।

फाऊलर समिति १८९८ (Fowler Committee 1898)—जब विनिमय की दर १ शिलिंग ४ पैंस पर स्थिर हो गई तो एक बार भारत मे पूर्ण स्वर्णमान स्थापित करने का प्रश्न उठाया गया। मार्च १८९८ मे भारत सरकार ने इस सबंध म भारत सचिव स प्रार्थना की। इस प्रकार इसी वर्ष सर हेनरी फाऊलर (Sir Henry Fowler) की अध्यक्षता मे एक और समिति नियुक्त की गई। इस समिति न निम्नलिखित सुझाव दिये—

(१) रुपये और स्टर्लिंग की विनिमय दर १ शिलिंग ४ पैंस पर ही स्थिर रहनी चाहिये

(२) भारत मे ब्रिटिश सावरन (सोने का सिक्का) चलन मे होना चाहिये और उसे असीमित विधिग्राह्यता प्रदान की जाय। इसकी ढलाई भारत तथा इंग्लैंड दोनो देशो मे हो।

(३) रुपया सांकेतिक सिक्का तो रहे किन्तु उसे भी असीमित विधिग्राह्यता ही रखा जाये। जब तक कि सोने के सिक्के एक निश्चित मात्रा से अधिक चलन मे न हो जाए चादी और अधिक रुपयो की ढलाई बन्द रखी जाये।

(४) विनिमय दरो मे स्थिरता लाने के लिये भारत मे सोने का एक सचित कोष होना चाहिए।

(५) सरकार को एक अलग सोने का सुरक्षित कोष रखना चाहिये जो पत्र मुद्रा कोष तथा अन्य कोषो से प्रथक हो। इस प्रकार के कोष से विदेशी भुगतानो के लिये सोने के निर्यातो मे सुगमता होगी। रुपये की ढलाई से जो लाभ प्राप्त हो वह सुरक्षित कोष म रखा जाये।

(६) भारत सरकार ने फाऊलर समिति के सुझावो को स्वीकार कर लिया ब्रिटिश सावरेन (सोने का सिक्का) को कानूनी विधिग्राह्यता प्रदान कर दी गई और भारत मे उनकी ढलाई की भी व्यवस्था कर दी गई। सरकार भारत मे स्वर्ण चलन (Gold Cur ency Standard) स्थापित करना चाहती थी किन्तु उसे अपने प्रयत्नो मे सफलता नही मिली। सन् १९०० मे रुपये की ढलाई का कार्य फिर से प्रारम्भ कर दिया गया। सरकार ने घोषणा की कि रुपये के बदले सावरेन केवल विदेशी भुगतानो के लिये ही दिया जायेगा। इसका अर्थ यह था कि देश के अन्दर सोने के सिक्कों का चलन समाप्त हो गया। इस प्रकार भारत मे जो मुद्रामान स्थापित हुआ उसे स्वर्ण विनिमय मान कहा जा सकता है। कुछ विद्वानो ने उसे स्टर्लिंग विनिमय मान माना है। इस मुद्रा मान की चार प्रमुख विशेषताए थी।

(१ देश मे सोने के सिक्कों का चलन नही था।

(२) देश की घरेलू आवश्यकताओ के लिये चादी के रुपये सोने के सिक्को अथवा सोने मे परिवर्तनशील न थे।

(३) विदेशी भुगतानो के लिए सरकार रुपयो के बदले एक निश्चित मात्रा मे सोना देने के लिये बाध्य थी।

(४) विदेशी भुगतान की सुविधा के लिये सोने का सुरक्षित कोष रखा जाता था जिसका एक भाग इगलैंड मे था। वास्तविक भुगतान काउन्सिल बिल (Council Bills) तथा रिवर्स काउन्सिल बिल (Rev rse Council Bills) के चलन के द्वारा होता था।

फाउलर समिति की सिफारिशो के अनुसार भारत मे स्वर्ण मान स्थापित तो हुआ किन्तु उसका जो प्रभाव देश के घरेलू मूल्य स्तर पर पडा तथा उसकी जो कडी आलोचना हुई उसके कारण सरकार को एक अन्य समिति नियुक्त करनी पडी।

चैम्बरलेन आयोग (Chemberlain Commission) १९१३ —

सन् १९१३ मे चैम्बरलेन आयोग की नियुक्ति हुई जिसने अपनी रिपोर्ट १९१४ मे प्रस्तुत की। इसकी मुख्य सिफारिशें निम्न लिखित थीं —

(१) इस आयोग ने स्वर्ण विनिमय मान को जारी रखने का समर्थन किया।

(२) आयोग ने अनुभव किया कि भारत मे सोने के सिक्को की ढलाई के लिये टकसाल खोलने की कोई आवश्यकता नही है किन्तु यदि भारत सरकार इसका व्यय स्वीकार करे तो सावरेन तथा ½ सावरेन ढालने के लिए एक टकसाल की स्थापना भारत मे की जा सकती है।

(३) स्वर्णमान कोष म वृद्धि की जाये और यह कोष इगलैंड मे रखा जाय।

(४) सरकार यह गारन्टी दे कि यदि विनिमय दर गिरने लगे अथवा अन्य किसी कारण से आवश्यकता पडने पर वह शिलिंग ३$\frac{29}{32}$ पैंस प्रति रुपए की दर पर रिवर्स काउन्सिल बिल (Reverse Council Bills) बेच देगी।

(५) भारत मे पत्र मुद्रा (Paper money) को और अधिक लोचदार बना देना चाहिये।

(६) स्वर्णकोष की चादी वाली शाखा बन्द कर देनी चाहिये । चैम्बरलेन आयोग की सिफारिशो पर विचार करने से पूर्व ही प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रथम महायुद्ध मे भारती मुद्रा (१६१४ से १६१६)—प्रथम महायुद्ध का भा त की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव पडा। विदेशी व्यापार मे अस्थिरता आ गई। विनिमय की दरें गिरने लगी। लोगो ने कागज के नोटो को चादी के रुपयो तथा सोने मे बदलवाने की कोशिश करनी प्रारम्भ करदी क्योंकि लोगों को पत्र मुद्रा पर विश्वास नही रहा था। १० करोड रुपये से अधिक मूल्य के कागज के नोट सरकारी खजानो को लौटा दिये गए। अगस्त १६१४ मे सरकार ने स्वर्ण विनिमय मान कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया और लोगो को नोटो के बदले सोना देना बन्द कर दिया।

जैसे जैसे युद्ध प्रगति करता गया भारत के निर्यातो की वृद्धि होती गई और आयात कम होते गए। इस प्रका॰ एक वर्ष के भीतर ही विदेशी भुगतान सतुलन भारत के पक्ष मे हो गया। वैसे तो भारत को इस स्थिति मे सोना बाहर से मिलना चाहिए था किन्तु युद्ध के कारण यह सम्भव न था। इधर भारत मे मुद्रा की माँग का बढना स्वाभाविक था। सरकार ने पत्र मुद्रा चालू की। इसी काल मे चादी के भाव चढने लगे जिसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय की दर १ शिलिंग ४ पैंस से बढकर २ शि० ४ पैंस तक हो गई। इसका सोने के मूल्यों पर भी प्रभाव पडा। मुद्रा सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण इगलैंड ने भी अस्थाई रूप से स्वर्णमान स्थगित कर दिया। सोने और चादी की कमी के कारण भारत मे भी अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा का चलन शुरू हो गया। चादी के रुपयो की ढलाई पूरी तरह बन्द कर दी गई थी।

इस प्रकार प्रथम युद्ध के काल मे स्वर्ण विनिमय मान पूरी तरह टूट गया।

प्रथम महायुद्ध के बाद का काल (१६१६ से १६२५)—सन् १६१६ मे महायुद्ध समाप्त हो गया किन्तु युद्ध के काल मे उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ बनी रही। विदेशी भुगतान सतुलन अब भी भारत के अनुकूल था। चाँदी के भाव बढे रहने के कारण कागज के नोटो को चादी के सिक्को मे बदलना कठिन था। सरकार के सामने यह प्रश्न था युद्ध के बाद के काल मे इन समस्याओ का किस प्रकार सामना किया जावे। स्थिति की पूर्ण रूप से जाच करने के लिए १६१६ मे एक और समिति नियुक्त की गई।

बैबिंगटन स्मिथ समिति (Babington Smith Committee)—इस समिति ने यह सुझाव दिया कि १ रुपया=२ शिलिंग की विनिमय की दर स्थापित की जाए। समिति के विचार मे चादी के भाव कुछ और वर्षो तक ऊंचे रहने की सम्भावना थी। इसलिये ऊंची विनिमय की दर स्थापित करना आवश्यक था जिससे रुपये की सांकेतिक दशा बनी रह सके। दूसरे ऊंची विनिमय की दर से गृह व्यय (Home charges) के भुगतान मे भी बचत होने की आशा थी। तीसरे यह दर वस्तुओं के मूल्यो की और अधिक बढने से रोकने मे सहायक होगी। समिति के अन्य सुझाव इस प्रकार थे —

१—सावरेन के बदले में रुपये देने की सरकारी जिम्मेदारी बन्द होनी चाहिये।

२—सोने के आयात निर्यात पर कोई प्रतिबंध न हो।

३—स्वर्ण कोष का अधिक से अधिक आधा भाग भारत में रखा जाना चाहिये शेष ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर रखा जाये।

४—पत्र मुद्रा के सम्बन्ध में अनुपातिक निधि प्रणाली (Proportional Deposit Method) अपनाई जाये।

—रुपये की विनिमय दर स्टर्लिङ्ग के स्थान पर सोने में निर्धारित की जाए।

समिति की सिफारिशों को स्वीकार करते हुये १६२० में एक कानून द्वारा भारत में १ रु०=२ शिलिंग की विनिमय दर लागू हो गई किन्तु इसे बनाये रखना सरकार को कठिन प्रतीत हुआ। सरकार को इस दर पर भारी आर्थिक हानि होने लगी। इधर भारत के विदेशी भुगतान की स्थिति अनुकूल से प्रतिकूल हो गई। विनिमय की दर में अस्थिरता के कारण देश में असतोष उत्पन्न होने लगा। सरकार के प्रयत्नों के बावजूद भी विनिमय की दर गिरती गई और उसे ऊंचा रखने के सारे प्रयत्न व्यर्थ गए तथा भारत के लिये अहितकर सिद्ध हुये।

१६२५ में इंगलैंड ने स्वर्णमान ग्रहण कर लिया और सोने तथा स्टर्लिङ्ग की कीमतों में समानता स्थापित कर दी। १६१६ से १६२५ तक का काल अस्थिरता का काल था जिसमें सरकार ने अपनी मुद्रा सबन्धी नीति की भूल के कारण भारी हानि उठाई।

प्रश्न ६६— १६२५ से १६३६ तक के भारतीय चलन के इतिहास की पूर्ण विवेचना कीजिए।

Describe the history of Indian currency from the year 1925 to 1939

उत्तर—प्रथम महायुद्ध के बाद के काल में भारतीय मुद्रा तथा चलन पर भी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अस्थिरता तथा अनिश्चितता का गहरा प्रभाव पड़ा। यह काल युद्धकालीन अर्थव्यवस्था से शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था की ओर जाने का था। इन परिस्थितियों में सरकार ने २ शिलिंग की विनिमय की दर को स्थगित कर दिया। यह कदम ठीक ही था क्योंकि उस हालत में किसी बात का सही अनुमान पहिले से लगा लेना सम्भव न था। इधर इंगलैंड में युद्ध काल में काफी मुद्रा प्रसार हो गया था जिसका मुख्य कारण यह था कि युद्धकाल में स्टर्लिङ्ग का मूल्य बराबर गिरता गया। १६२५ में इंगलैंड ने फिर से स्वर्णमान ग्रहण कर लिया। अब रुपये का भी स्टर्लिङ्ग अथवा सोने से सबन्ध स्थापित हो गया और विनिमय की दर १ शिलिंग ६ पैंस हो गई। इस समय तक संसार भर में युद्धकालीन अर्थव्यवस्था के स्थान पर शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था स्थापित हो गई थी और स्थिति स्थिर होती जा रही थी। भारत सरकार ने यह अनुभव किया कि देश की मुद्रा व्यवस्था में भी आवश्यक सुधार किये जाने चाहिएं ताकि उसका नए रूप से संगठन हो सके।

हिल्टन यग आयोग (Hilton Young Commission)—१६२१ मे श्री हिल्टन यग की अध्यक्षता म एक नया आयाग नियुक्त किया गया जिसमे श्री पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास, एक मात्र भारतीय सदस्य थ। इस आयाग का उद्देश्य भारतीय चलन और विनिमय प्रणाली तथा व्यवहार की जाच करना तथा उस पर अपना मत प्रकट करना था। आयाग ने १६२६ म अपनी रिपोट प्रस्तुत की जो एक बहुमतीय रिपोट थी क्योकि श्री पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास इससे सहमत न थे। हिल्टन यग आयाग न निम्नलिखित सिफारिश की।

१—भारत म स्वर्ण विनिमय मान क स्थान पर स्वर्ण खण्ड मान (Gold Bullion Standard) की स्थापना होनी चाहिए। इस मान पर जनता का अधिक विश्वास प्राप्त हो सकता है क्योकि स्पष्ट रूप स जनता को रुपय का सोने स सम्बन्ध दिखाई देने लगेगा। स्वर्ण खण्ड मान का निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए —

(अ) देश म सोने क सिक्को का चलन न हो किन्तु मुद्रा का मूल्य सोन की एक निश्चित मात्रा क मूल्य से सबन्धित होना चाहिये।

(ब) मुद्रा सचालक को एक निश्चित मूल्य पर असीमित मात्रा मे सोना खरीदने अथवा बचने क लिय उत्तरदायी होना चाहिय। यह क्रय विक्रय चाहे किसी भी काय के लिए क्यो न हो।

(स) सोन क आयात अथवा निर्यात पर कोई प्रतिबन्ध नही होना चाहिय।

(द) प्रत्यक व्यक्ति सरकार स कागजी नोटो क बदले सोना प्राप्त करने का अधिकारी हो।

२—रुपए त 1 स्टर्लिंग अथवा रुपए तथा सोने का विनिमय दर १ शिलिंग ६ पेन्स पर स्थिर रखी जाए

३— सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी भारत म एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना होनी चाहिए जिसका मुख्य काय देश की मुद्रा तथा साख पर नियन्त्रण करना हो और जो विदेशी विनिमय की दर का भी प्रबन्ध करे। इस केन्द्रीय बैंक क निम्नलिखित काम होने चाहिए —

(अ) २५ वर्ष तक नोट छापने का अधिकार केवल केन्द्रीय बैंक को ही हो।

(ब) केन्द्रीय बैंक द्वारा छापे गये नोटो पर भारत सरकार की गारन्टी होनी चाहिये।

(स) जनता को नोटो के बदले रुपए के सिक्के प्राप्त करने का कानूनी हक न हो केन्द्रीय बैंक जो आगे से मुद्रा सचालक का कार्य करेगा इस बात के लिये स्वतन्त्र हो कि वह जनता को नोटो के बदले रुपये क सिक्के दे अथवा छोटी कीमत के नोट दे।

४—स्वर्णमान निधि तथा पत्र मुद्रा निधि जो अब तक दो अलग सोने क कोषों के रूप म रखी जाती थीं उन्हे मिलाकर एक कोष कर दिया जावे।

(५) भारत सरकार द्वारा चलू किए गये एक रुपये के नोटो का फिर से केन्द्रीय बैंको द्वारा निर्गम किया जाए।

उपरोक्त सिफारिशें आयोग के सदस्यो के बहुमत स की गई थी। कुछ प्रश्नो पर ऐसा मतभेद उत्पन्न हो गया जिसके कारण आयोग सर्व सम्मति से अपनी रिपोर्ट नही दे सका। जैसा कि ऊपर कहा गया है आयोग के एक मात्र भारतीय सदस्य श्री पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास ने आयोग की सिफारिशो का विरोध किया। उनका विरोध दो बातो पर था। प्रथम तो यह कि वे भारत में पूर्ण स्वर्ण चलनमान (Gold Currency standard) की स्थापना चाहते थे जिसमे सोने के सिक्को का चलन हो, दूसरे वे १ शिलिंग ६ पैंस के बजाये १ शिलिंग ४ पैंस की विनिमय की दर के समर्थक थे। उनका मत था कि भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसम तीन चार साल की लगातार अच्छी फसलो के कारण एक प्रकार की आर्थिक सम्पन्नता दिखाई देने लगी है जो केवल अस्थाई है। इस अस्थाई सम्पन्नता के कारण ही १ शि० ६ पेंस की विनिमय की दर स्थापित हो गई थी। यह दर अवास्तविक थी क्योकि देश की आर्थिक सम्पन्नता के अधिक काल तक बने रहने की कोई आशा नही थी। इसका बाद मे देश के विदेशी व्यापार पर बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना थी। ऊची दर के कारण विदेशी प्रतियोगिता बढने तथा देश के उद्योग धन्धो को हानि पहुचने की भी आशका थी।

हिल्टन यङ्ग आयोग की सिफारिशो को सरकार ने मन्जूर कर लिया। मार्च सन् १९२७ मे भारतीय धारा सभा ने एक करेन्सी बिल पास किया जिसके द्वारा विनिमय की दर १ शि० ६ पैंस निश्चित कर दी गई। सरकार पर यह भार सौंपा गया कि वह २१ रु० ७ आने १० पाई की दर पर जनता स सोना खरीदे और ४०—४० तोले की सोने की छड़ों के रूप मे जनता के हाथ सोना बेचे। विदेशी भुगतान के लिये सरकार उपरोक्त विनिमय दर पर विदेशी मुद्रा भी बेच सकती थी। इसके साथ २ सोने के सिक्को (सावरेन तथा ½ सावेरन) का चलन बन्द कर दिया गया। भारत मे केन्द्रीय बैंक की स्थापना के प्रश्न को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया।

विनिमय दर सम्बन्धी वाद विवाद—जिस समय हिल्टन यङ्ग आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसी समय से १ शि० ६ पेंस की विनिमय की दर के विषय मे एक भारी वाद विवाद उठ खडा हुआ। सरकारी क्षेत्रो से इसके समर्थन मे अनेक तर्क पेश किये गए और गैर सरकारी क्षेत्रो से इसके विरोध मे बहुत कुछ कहा गया। उपरोक्त विनिमय की दर के पक्ष मे निम्नलिखित तर्क पेश किये गए:—

(१) यह दर पिछले दो वर्षों से स्थिर थी जो इस बात का सकेत था कि यह प्राकृतिक दर थी तथा भारत और ससार की आर्थिक परिस्थितियो के कारण उत्पन्न हुई थी। इसलिये इसे स्थिर रखना उचित था।

(२) इस दर पर देश के मूल्य-स्तर, उत्पादन व्यय तथा अन्य क्षेत्रो मे भारत

की अर्थव्यवस्था मे सामजस्य स्थापित हो चुका था और इसमे परिवर्तन की कोई आवश्यकता न थी।

(३) केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारो ने अपने बजट बनाते समय इसी दर को आधार माना था। इस दर के परिवर्तन से और अधिक कर लगाने की आवश्यकता पड सकती थी।

(४) एक शिलिंग ४ पेंस की दर पर भारत के घरेलू मूल्य स्तर के नीचे गिर जाने की सम्भावना थी जिसे ऊपर उठाने के लिए और अधिक मुद्रा प्रसार करना पडता।

(५) १ शिलिंग ३ पेंस को दर अवास्तविक मानी गई क्योकि उसे बनाए रखने के लिये मुद्रा प्रसार करना अनिवार्य था इसके बिना कार्य नही चलता।

विपक्ष के तर्क—गैर सरकारी क्षेत्रो से १ शि० ६ पेंस की विनिमय दर के विरोध मे निम्नलिखित तर्क पेश किये गए—

(१) पिछले २० वर्षो से विनिमय की दर १ शि० ४ पेंस पर बनी हुई थी और यही उसकी वास्तविक दर थी।

(२) भारत मे वस्तुओ का मूल्य स्तर १९१४ तथा १९२६ मे एक समान ही था। इस प्रकार १९१४ म १ शि० ४ पेंस जो विनिमय की दर थी वही १९२६ मे भी रहनी चाहिये।

(३) पिछले चार वर्षो मे भारत मे अच्छी फसलो के कारण एक प्रकार की अस्थाई सम्पन्नता उत्पन्न हो गई थी। इसके आधार पर विनिमय की दर को १ शि० ६ पेंस स्थाई रूप से स्वीकार कर लेना भारी भूल है क्योकि यह दर आगे चलकर अवास्तविक सिद्ध होगी।

(४) ऊची विनिमय की दर विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देगी और भारतीय उद्योगो को जो सरक्षण सरकार द्वारा प्रदान किया गया था उसका उद्देश्य विफल हो जायेगा।

(५) उस समय तक जो विदेशी व्यापार की स्थिति भारत के अनुकूल थी अर्थात् भारत के निर्यात आयातो से अधिक थे, उनकी स्थिति विपरीत हो जाने की आशका थी। इससे देश का आर्थिक हानि होगी।

(६) नई विनिमय की दर को बनाये रखने के लिये मुद्रा सकुचन की आवश्यकता पडेगी जिसके परिणामस्वरूप देश की उत्पादन प्रगति को ठेस पहुचेगी।

(७) ससार भर मे सोने के भाव गिर जाने की आशा थी जिसके कारण १ शि० ६ पेंस की दर को बनाए रखना बडा कठिन कार्य होगा।

(८) इस दर को बनाये रखने का एक मात्र उपाय भारत से भारी मात्रा मे सोने का निर्यात करना है। यह देश के लिए अहितकर सिद्ध होगा क्योकि इससे भारत के स्वर्ण कोष कम हो जाने की सम्भावना रहेगी।

(९) ऊची विनिमय दर का मतलब एक प्रकार से परोक्ष ढग के कर लगाने का है क्योकि इसे एक प्रकार का अदृश्य मुद्रा प्रसार माना जाता है।

भारत सरकार ने उपरोक्त तर्कों पर कोई ध्यान नही दिया। नई व्यवस्था के कारण देश को काफी आर्थिक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा।

हिल्टन यङ्ग आयोग ने भारत के लिये सभी प्रकार के स्वर्ण मानो की सम्भावनाओं पर विचार करने के बाद स्वर्ण खण्डमान को सबसे उपयुक्त समझा था तथा स्वर्ण विनिमय मान की समाप्ति की सिफारिश की थी किन्तु व्यवहार में सरकार ने इस पर अमल नही किया। अब भी विदेशी मुद्राओं से रुपए का सम्बन्ध सोने के स्थान पर स्टर्लिंग से ही बना हुआ था। यहा तक कि जब स्टर्लिंग का सोने में अवमूल्यन हो गया तब भी रुपये तथा स्टर्लिंग की विनिमय दर पहिले जैसी ही बनी रही। १९२७ तथा २८ के दो वर्ष भारत में तथा ससार भर मे आर्थिक सतुलन के वर्ष थे। १९२९ में विश्व व्यापी मन्दी (World Depression) शुरू हुई जिसका सबसे बुरा प्रभाव कृषि प्रधान देशो पर पडा। भारत भी इसके परिणाम से अछूता नही रह सका। १९३० मे इस मन्दी के प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी नजर आने लगे। धीरे २ भारतीय निर्यात कम होने लगा और अनुकूल व्यापार संतुलन समाप्त होता गया। इसका एक प्रभाव यह हुआ कि १ शिलिंग ६ पेंस की विनिमय की दर को स्थिर रखना कठिन हो गया। इधर भारत मे कई कारणो से विदेशी मुद्राओं की माग बढने लगी और विदेशो में भारतीय रुपये की माग कम होती गई।

१९३१ में इङ्गलैण्ड ने स्वर्ण मान का त्याग कर दिया। इसका भारतीय मुद्रा प्रणाली पर गहरा प्रभाव पडा। अब रुपये का सम्बन्ध स्टर्लिंग से रह गया। रुपये की सोने में परिवर्तनशीलता समाप्त करदी गई क्योंकि स्टर्लिंग का अब सोने से कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार १९३१ के बाद भारत मे स्वर्ण खण्ड मान के स्थान पर स्टर्लिंग विनिमय मान (Sterling Exchange Standard) स्थापित हो गया।

स्वर्णमान समाप्त हो जाने के कारण स्टर्लिंग का सोने में मूल्य घटने लगा और यही बात रुपये के साथ भी हुई। इस पतन को रोकने के लिये सरकार ने विनिमय नियंत्रण लागू कर दिया जिसका मुख्य उद्देश्य सट्टे की प्रवृत्ति को रोकना था। अनुभव ने यह सिद्ध किया कि इस विनिमय नियंत्रण की कोई आवश्यकता ही न थी। इसलिए १९३२ मे इसे समाप्त कर दिया गया।

१९३२ से १९३८ तक के काल में विनिमय की दर १ शिलिंग ६ पेंस पर ही स्थिर रही किन्तु इसकी भारत को भारी कीमत चुकानी पडी। जैसा कि अनुमान था आर्थिक मन्दी के काल मे भारत का विदेशी व्यापार संतुलन अनुकूल से प्रतिकूल हो गया और इस प्रतिकूल व्यापार सतुलन के कारण भारी मात्रा में सोना भारत से निर्यात किया गया। सोने का निर्यात ही विनिमय की दर को स्थिर रखने का एक मात्र उपाय था। १९३१ से १९३८ तक के काल में भारत से लगभग ३५० करोड रुपये के मूल्य का सोना निर्यात किया गया। यह नीति सरकार ने जान बूझकर अपनाई थी। जब ससार के अन्य देश सोने का सचय कर रहे थे भारत से सोने का निर्यात हो रहा था क्योंकि विदेशी सरकार भारत से अधिक से अधिक मात्रा में सोना इङ्गलैंड ले जाना चाहती थी। भारत के लोगो ने इस बात की माग भी की कि सोने

के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया जाए किन्तु उस पर कोई विचार नहीं किया गया। सरकार का कहना था कि भारत में सोने की कोई कमी नहीं है और भारत को उसका अच्छा मूल्य मिल रहा है।

रिजर्व बैंक की स्थापना—*हिल्टन यंग* आयोग ने भारत में एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की सिफारिश की थी जिसे सरकार ने कुछ समय के लिये स्थगित कर दिया था। १९३१ को केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति (Central Banking Enquiry Committee) ने इसकी स्थापना पर फिर से जोर दिया। अगस्त सन् १९३४ में भारत सरकार ने रिजर्व बैंक आफ इण्डिया एक्ट (Reserve Bank of India Act) पास किया जिसके द्वारा १ अप्रैल १९३५ को इस बैंक की स्थापना हो गई। रिजर्व बैंक की स्थापना से भारतीय चलन प्रणाली में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। नोट छापने तथा उनकी निकासी का कार्य अब रिजर्व बैंक के हाथ में सौंप दिया गया। रिजर्व बैंक को देश में साख नियन्त्रण (Credit Control) का भी भार सौंपा गया। पत्र मुद्रा कोष (Paper Currency Reserve) स्वर्ण कोष (Gold Reserve) तथा बैंकिंग कोष को एक में मिला दिया गया जिसके संचालन तथा प्रबन्ध की जिम्मेदारी अब रिजर्व बैंक पर थी। रिजर्व बैंक को विदेशी विनिमय की दर का प्रबन्ध करने का भार भी सौंप दिया गया।

भारत से चांदी का निर्यात— १९३१ से १९३९ के बीच सोने के साथ २ भारत से भारी मात्रा में चांदी का भी निर्यात किया गया। इसके दो कारण थे। प्रथम तो यह कि विदेशों में चांदी के भाव भारत की अपेक्षा अधिक थे। दूसरे अब भारत सरकार के रजत कोषों (Silver Reserves) की कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी क्योंकि सरकार ने कागज के नोटों के बदले चांदी के रुपए देना बन्द कर दिया था। १९३४ तक ७ करोड़ औंस चांदी भारत से निर्यात की गई। १९३३ में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार अमेरिका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया आदि देशों ने प्रतिवर्ष ३·५ करोड़ औंस चांदी खरीदने का निर्णय किया। १९३५ में अमेरिका ने बहुत बड़ी मात्रा में चांदी खरीदना शुरू कर दिया जिससे चांदी के भाव बढ़ गये। उसी समय चीन को रजत मान (Silver Standard) का त्याग करना पड़ा जिस से अमेरिका को भी अपनी नीति बदलनी पड़ी और चांदी के दाम फिर गिरने लगे। १९३९ तक भारत से चांदी का निर्यात होता ही रहा।

हिल्टन यंग आयोग की सिफारिशों का भारतीय चलन प्रणाली के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है यद्यपि आयोग के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई। आयोग रुपये का सोने से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था जबकि व्यवहार में रुपये का सम्बन्ध स्टर्लिंग से ही स्थापित हो सका। इस प्रकार विदेशी बाजार में रुपये की कोई स्वतन्त्र स्थिति न थी। आयोग ने १ शिलिंग ६ पैंस की विनिमय दर की सिफारिश अवश्य की थी किन्तु उसका यह अभिप्राय नहीं था कि हर स्थिति में इसी दर को कायम रखा जाय। उस समय इगलैंड द्वारा स्वर्णमान की समाप्ति का कोई

प्रश्न नही था यह दर तो केवल रुपये का सोने से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से बनाई गई थी।

प्रश्न ९७—भारतीय चलन तथा विनिमय के इतिहास में दूसरे महायुद्ध के काल में होने वाले परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।

Discuss the changes brought about by the 2nd World War in the history of Indian Currency and exchange

उत्तर—दूसरा महायुद्ध सितम्बर सन् १९३९ को प्रारम्भ हुआ था। उस समय तक भारत मे स्टर्लिंग विनिमय मान स्थापित था और भारत से सोने तथा चादी का निर्यात बराबर हो रहा था। युद्ध शुरू होने के बाद भी यह निर्यात चलता रहा। १९३८—३९ में १३ ७९ करोड रुपये तथा १९३९—४० में ४२·०२ करोड रुपये के मूल्य का सोना भारत से निर्यात किया गया। वैसे तो अब विदेशी भुगतान का सतुलन (Balance of Payments) भारत के लिए अनुकूल था और भारत को इगलैंड से सोना मिलना चाहिए था किन्तु भारत सरकार को केवल स्टर्लिंग प्रतिभूतिया (Sterling Securities) ही प्राप्त हुईं और उनके आधार पर देश मे मुद्रा प्रसार होने लगा। स्थिति को सुधारने के लिए सरकार के सामने कई सुझाव रखे गए जिनमें एक तो यह भी था कि सोने के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया जाय और अमेरिका से जो भारत का व्यापाराधिक्य है उसके बदले अमेरिका बाजार से ही सोना खरीद लिया जावे। रिजर्व बैंक को अधिकार दिया जाय कि वह अपने पास सुरक्षित कोष में रखे हुए सोने का मूल्य बाजार भाव के अनुसार आकले और उसका प्रयोग भारत तथा अमेरिका में रखे जाने वाले कोषो के लिए कर सके।

युद्ध के दिनो में भारतीय मुद्रा की अजीब स्थिति थी। भारतीय रुपया एक आकैतिक-प्रामाणिक सिक्के की हैसियत से कार्य कर रहा था। घरेलू आवश्यकताओ के छोटे सिक्के निकिल के तथा तावे के पैसे चालू किये गए थे। लोग चादी के रुपयो को दबाकर रखने लगे थे। इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार को अनेक कदम उठाने पडे।

वैसे तो भारत का दूसरे महायुद्ध से कोई सम्बन्ध नही था किन्तु एक गुलाम देश होने के कारण भारत को भी युद्ध में भाग लेना पडा। युद्ध की प्रगति के साथ साथ भारतीय अर्थ व्यवस्था मे भी परिवर्तन होते गये। युद्ध का सबसे बडा प्रभाव यह हुआ कि भारत मे मुद्रा प्रसार (Inflation) हो गया। एक ओर तो वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि हुई और दूसरी ओर उनके लाभ प्रतिदिन बढने लगे। इसका सबसे अधिक लाभ किसानों को हुआ। उनके पुराने कर्जे समाप्त हो गये और उनकी आर्थिक दशा मे सुधार होने लगा। समस्त भारतीय उद्योगो को भी प्रोत्साहन मिला क्योंकि विदेशो से वस्तुओ के आयात लगभग बन्द हो गये थे और भारतीय उद्योगो को ही सैनिक तथा नागरिक आवश्यकताओ को पूरा करना पड रहा था। विनिमय की दर १ शिलिंग ६ पैंस पर ही थी किन्तु उसे स्थिर रखने के लिये विनिमय नियंत्रण की शरण लेनी पडी। देश मे कागज के नोटो का चलन बहुत अधिक बढ गया।

युद्ध के प्रारम्भ की स्थिति को देखते हुए जनता को यह विश्वास होने लगा कि अंग्रेज युद्ध मे हार जावेंगे और यह सरकार बदल जावेगी। इसलिये लोगों ने डाकखानों तथा बैंकों से रुपया निकालना शुरू कर दिया। सरकारी प्रतिभूतियां (Government Securities) तथा डाकखाने के कैश सर्टिफिकेट (Cash Certificates) बदले जाने लगे जिससे सरकार के सामने एक गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई। रिजर्व बैंक ने जनता का विश्वास बनाए रखने के लिए कुछ समय तक नोटों को सिक्कों मे बदलना जारी रखा किन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव नही हुआ। सरकारी टकसालें इतनी अधिक मात्रा मे चांदी के रुपये नही ढाल सकती थी जितनी कि देश मे उनकी माग थी। सरकार ने इस माग को कम करने के लिए कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए किन्तु कोई लाभ न हुआ। हार कर सरकार ने जून १९४० में १ रुपये के मूल्य के नोट जारी किए जो हर प्रकार से रुपये के सिक्के के बराबर माने गये और उन्हे भी वही दर्जा मिला जो रुपये के सिक्को का था। इस प्रकार चांदी के रुपयों के स्थान पर १ रुपये के नोटों का चलन बढ गया। इसी काल में देश में छोटे मूल्य के सिक्कों का भी अभाव हो गया। लोगों ने रेजगारी को दाब कर रखना शुरू कर दिया।

सरकार ने स्थिति का सामना करने के लिए महारानी विक्टोरिया के रुपये तथा अठन्नियाँ गैरकानूनी घोषित कर दिए और इनके स्थान पर नये प्रकार के सिक्के बनाए जिनमें चाँदी की मात्रा पहिले से बहुत कम थी। छोटी रेजगारी को जमा कर के रखना एक अपराध घोषित किया गया। एक समय तो ऐसा आ गया था कि डाक के टिकट दियासलाई तथा अन्य वस्तुए रेजगारी के रूप मे प्रयोग होने लगी थी और जनता को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड रहा था। सरकार ने नये प्रकार की रेजगारी चालू की जो भार तथा स्वरूप मे पहिले से भिन्न थी। इसमें छेददार पैसा, नया दो पैसे का सिक्का, पीले रंग की दुअन्नी तथा इकन्नी तथा पीतल और निकिल की बनी हुई चवन्नी तथा अठन्नी भी शामिल थी। सरकार ने सिक्कों के उत्पादन को बढाने के विचार से एक नई टकसाल खोलने का भी निश्चय किया। कुछ समय बाद स्थिति काबू मे आ गई।

मुद्रा प्रसार—युद्ध काल में मुद्रा का बहुत अधिक प्रसार हुआ। शुरू में कुल मिलाकर १८० करोड रुपये के नोट चलन मे थे जिनकी संख्या बाद में १०३५ करोड़ रुपये हो गई। इसका एक कारण यह था कि युद्ध को चालू रखने के लिए भारी मात्रा में वस्तुएं भारत से मित्र राष्ट्रों को भेजी जा रही थी। विदेशी भुगतान सतुलन भारत के अनुकूल था किन्तु बदले मे भारत को न तो सोना मिला और न किसी प्रकार की वस्तुए अथवा सेवाए। केवल स्टर्लिंग प्रतिभूतियाँ (Sterling Securities) प्राप्त होती रही जो पौंड पावनों (Sterling Balances) के रूप में एकत्र होती रही। इसके विपरीत देश मे बराबर मुद्रा प्रसार होता गया और वस्तुओं की कमी होती गई। सरकार ने मुद्रा प्रसार को रोकने का कोई प्रयत्न नही किया। सामान्य मूल्य स्तर (General Price Level) लगभग चार गुना बढ गया था।

विनिमय नियंत्रण (Exchange Control)—विदेशी विनिमय की दर में स्थिरता रखने के उद्देश्य तथा युद्ध को सुचारु रूप से चलाते रहने के लिए इंगलैंड ने विनिमय नियंत्रण का निश्चय किया। भारत सरकार ने भी इस नीति का अनुसरण किया ताकि किसी प्रकार की विनिमय सम्बन्धी समस्या उत्पन्न न होने पावे, भारतीय रक्षा विधान (Defence of India Rules) के आधीन सरकार ने निम्नलिखित बातों पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया—

(१) विदेशी विनिमय का खरीदना

(२) विदेशी विनिमय प्राप्त करना

(३) प्रतिभूतियों का बेचना तथा उनका निर्यात

(४) प्रतिभूतियों का प्राप्त करना

अपनी ओर से इन बातों के शासन का अधिकार सरकार ने रिज़र्व बैंक को दे दिया।

सरकार की ओर से विदेशी विनिमय सम्बन्धी कार्य करने के लिए कुछ व्यक्तियों तथा संस्थाओं को लाइसेंस (Licences) दे दिए गये। इसी प्रकार के लाइसेंस कुछ विदेशी विनिमय बैंकों को भी दिए गए। यह प्रतिबन्ध ब्रिटिश साम्राज्य वाले देशों पर लागू नहीं था। विदेशी भुगतानों के लिए रिजर्व बैंक से आज्ञा लेनी पड़ती थी। आज्ञा के बिना प्रतिभूतियों का आयात-निर्यात नहीं हो सकता था।

देश का विदेशी व्यापार (आयात तथा निर्यात दोनों) विनिमय नियंत्रण के फलस्वरूप नियंत्रित कर दिया गया था। यह नियंत्रण स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों पर तो लागू नहीं था किन्तु दुर्लभ मुद्रा वाले देशों तथा डालर क्षेत्र के देशों से व्यापार करने पर लागू था। कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था बिना लाइसेंस प्राप्त किए अथवा रिजर्व बैंक से अनुमति लिये हुये इन देशों से न तो कोई चीज आयात कर सकता था और न किसी प्रकार का विदेशी भुगतान कर सकता था। केवल युद्ध तथा उपभोक्ता सम्बन्धी वस्तुएं ही आयात करने की अनुमति दी जाती थी। यह प्रतिबन्ध निर्यातों पर भी था। भारत सरकार ने ऐसी वस्तुओं की कीमतों पर नियंत्रण करना उचित समझा जो स्टर्लिंग क्षेत्र के बाहर वाले देशों को भेजी जाती थी इन वस्तुओं के निर्यात पर नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य निर्यात से अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करना तथा उसके भुगतान को शीघ्र से शीघ्र प्राप्त करना था। इस उद्देश्य में सरकार सफल हुई किन्तु उसका जो लाभ हुआ वह ब्रिटिश सरकार को भारत के खाते में दिया गया दूसरे शब्दों में भारत के पौंड पावने (Sterling Balances) दिन प्रतिदिन बढ़ते गये किन्तु तत्काल लाभ कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। यह कमाई युद्ध के संचालन के कार्यों में ही व्यय होती रही।

साम्राज्य डालर कोष (The Empire Dollar Pool)—युद्ध के शुरू के दिनों में ही ब्रिटिश सरकार साम्राज्य वाले देशों की विदेशी विनिमय निधि (Foreign Exchange Reserves) पर नियंत्रण कर दिया था ताकि उनका प्रयोग व्यक्तिगत देशों द्वारा न होकर सामूहिक रूप से युद्ध के लिये संचालन किया।

करोड रुपए था जिसमें से पुराने कर्जों को घटाकर १७२४ करोड रुपए की वास्तविक बचत हुई थी। दूसरा महायुद्ध समाप्त होते ही पौंड पावनो के भुगतान का प्रश्न उत्पन्न हुआ। भुगतान की बातचीत युद्ध में ही शुरू हो गई थी। ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि या तो यह भुगतान न करना पड़े और यदि करना पड़े तो इसमें भारी कमी कर दी जावे। दूसरी बात भुगतान के समय तथा स्वरूप की थी। ब्रिटिश सरकार अपनी सुविधा के अनुसार दीर्घकाल में भुगतान करना चाहती थी। यह भुगतान वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में होना था। लम्बे वाद विवाद के बाद भारत सरकार तथा ब्रिटिश सरकार के बीच पौंड पावनों के भुगतान के विषय में एक समझौता हो गया जो दोनों पक्षों को मंजूर था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध का काल भारतीय मुद्रा तथा चलन के इतिहास में काफी महत्व का स्थान रखता है।

प्रश्न ९८ — भारतीय मुद्रा तथा चलन के इतिहास में दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद के काल में होने वाली प्रमुख घटनाओं की विवेचना कीजिए।

Discuss the principal developments in the history of Indian Curreny since the close of the second world war

उत्तर — दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद के काल में भारतीय मुद्रा तथा चलन प्रणाली में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि १९४५ में दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ और १९४७ में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। १९४६ से ही भारत की मुद्रा सम्बन्धी नीति एक स्वतन्त्र देश की नीति के रूप में निर्धारित होने लगी थी। युद्ध के दिनों में भारतीय अर्थ-व्यवस्था पूरी तरह विदेशी सरकार की इच्छानुसार निर्धारित की गई थी जिसका उद्देश्य युद्ध के संचालन में इंगलैंड को सहायता प्रदान करना था।

युद्ध के दिनों में जिन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ था वे युद्ध के बाद के काल में भी चलती रहीं। उदाहरण के लिये भारत में मुद्रा प्रसार (Inflation) उसी रूप में बना हुआ था जैसा कि युद्ध के दिनों में था वरन् उसकी तीव्रता में कुछ वृद्धि ही हुई थी। विदेशी व्यापार तथा विनिमय के क्षेत्र में जो नियन्त्रण लगाये थे वे कुछ सीमा तक ढीले कर दिये गए थे किन्तु विनिमय की कठिनाइयां जारी थीं। भारत ने जो पौंड पावने (Sterling Balances) जमा कर लिये थे उनके भुगतान का प्रश्न था। युद्ध के अन्तिम दिनों में ही अमेरिका में ब्रैटन वुड्स (Brattan (Woods) नामक स्थान पर १९४४ में एक सम्मेलन बुलाया गया था जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (Internationol Monetary Fund) तथा विश्व बैंक (World Bank) की स्थापना का निश्चय किया गया। भारत भी इन संस्थाओं का सदस्य बन गया। उपरोक्त काल की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं में रिजर्व बैंक तथा इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण, रुपए का अवमूल्यन, भारत की पंचवर्षीय योजनाएं, मुद्रा प्रसार विरोधी नीति तथा अन्य बातें शामिल हैं। हम इनमें से प्रत्येक का पृथक-पृथक अध्ययन करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना—दूसरे महायुद्ध के बाद प्रत्येक देश को अपनी अर्थ व्यवस्था के पुनगठन की आवश्यकता थी। इस बात का अनुमान उसी समय लगा लिया गया जब दूसरा महायुद्ध चल रहा था। १९४४ में अमेरिका में ब्रैटन वुड्स (Bratton Woods) नामक स्थान पर संयुक्त-राष्ट्र-मौद्रिक एवं वित्त सम्मेलन (United Nations Monetary & Financial Conference) बुलाया गया था जिसमे ४४ देशो ने भाग लिया था। भारत भी इसमें शामिल था। इस सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा सस्थाओं का सदस्य बनना स्वीकार किया। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता से भारत को अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं। १९४७ में कोष ने भारत को स्टर्लिंग से सम्बन्ध तोड देने की अनुमति दे दी। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। इससे पूर्व ससार में भारतीय मुद्रा को कोई स्वतन्त्र स्थान प्राप्त नही था। रुपये की परिवतनशीलता स्टर्लिंग के रूप में ही होती थी। अब भारतीय रुपये का ससार की अन्य मुद्राओं से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसका भारत के विदेशी व्यापार पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। भारत ने कई देशो से सीधे व्यापार समझौते किये। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भारत को अपने विदेशी भुगतान के सन्तुलन को स्थिर रखने में भी समय समय पर सहायता प्रदान की। स्वतन्त्रता मिलने के बाद भारी सख्या में मशीनें तथा पूंजीगत सामान (Capital Goods) अमेरिका से मगानी पडी। इससे भारत की डालर क्षेत्र में विदेशी भुगतान की स्थिति प्रतिकूल हो गई। इसी काल मे भारत को इन देशो से भारी मात्रा मे अनाज आयात करना पडा क्योंकि देश के सामने खाद्य सकट उत्पन्न हो गया था। इसका भी भारत की विदेशी भुगतान की स्थिति पर विपरीत प्रभाव पडा। मुद्रा कोष से भारत को इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I M F) की सदस्यता के साथ २ भारत विश्व बैंक का भी सदस्य है। यह दोनो सस्थाएं एक दूसरे की पूरक तथा सहायक सस्थाएं हैं। एक का सदस्य बनने के लिये दूसरे का सदस्य बनना अनिवार्य है। विश्व बैंक सदस्य देशों के आर्थिक विकास तथा पुनर्निमाण के लिये साख की व्यवस्था करता है। विश्व बैंक की स्थापना का उद्देश्य ऐसे देशो के आर्थिक विकास में सहायता देना है जो युद्ध मे बर्बाद हो चुके थे अथवा जो कम विकसित देश थे। भारत को भी अपनी विकास की नई योजनाओं के लिये विश्व बैंक से कर्ज प्राप्त हुआ है। ३ करोड ४ लाख डालर का एक कर्ज रेल के इंजिन खरीदने के लिए, १ करोड डालर का कर्ज ट्रैक्टर खरीदने के लिये तथा १ करोड ८५ लाख डालर का एक कर्ज दामोदर घाटी योजना के लिये प्राप्त हुआ है। रेलो के विकास के लिये एक अन्य कर्ज की बातचीत चल रही है। भारत को अन्य योजनाओं के लिये भी विश्व बैंक से कर्ज मिलने की आशा है। यह आशा की जाती है कि उपरोक्त दोनों विश्व सस्थाओं की सदस्यता से जिस प्रकार भारत को अब तक लाभ पहुचा है वैसे आगे भी पहुचता रहेगा।

मुद्रा प्रसार विरोधी नीति (Anti Inflationary Measures)—

युद्ध काल मे ही मुद्रा प्रसार के प्रभाव दिखाई देने लगे थे और उनकी रोक थाम के लिये सरकार ने कुछ प्रयत्न भी किये। परन्तु यह प्रयत्न केवल युद्ध को ठीक ढंग से चलाते रहने के उद्देश्य से ही किये थे। इन प्रयत्नो मे अन्तर्राष्ट्रीय बचत की योजना, नए कर लगाना, जनता से कर्ज प्राप्त करना वस्तुओ के मूल्यो पर नियन्त्रण (Price Control), सट्टे पर प्रतिबन्ध, साख नियन्त्रण तथा अन्य उपाय शामिल थे। शुरू मे इन प्रयत्नो का कोई विशेष प्रभाव नही हुआ किन्तु युद्धके बाद के काल मे सरकार ने मुद्रा प्रसार विरोधी नीति अधिक तीव्रता के साथ लागू की और उसके अच्छे परिणाम निकले। वैसे तो आज भी भारत मे मुद्रा प्रसार के प्रभाव देखने को मिलते हैं किन्तु स्थिति सरकार के काबू मे है। प्रथम तथा दूसरी पचवर्षीय योजनाओ की सफलता के लिए सरकार को घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing) की शरण लेनी पडी है जिसके परिणाम स्वरूप भारत मे मुद्रा प्रसार बढ गया है किन्तु दूसरी ओर वस्तुओ के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। मुद्रा प्रसार के बुरे परिणामो की रोक थाम के लिए १९५६ मे रिजर्व बैंक अधिनियम मे आवश्यक संशोधन किया गया जिसके अनुसार रिजर्व बैंक को साख नियन्त्रण के लिए व्यापक अधिकार दे दिये गये है। इसी नियम के द्वारा पत्र मुद्रा निर्गम प्रणाली मे भी संशोधन कर दिया गया है जिसका प्रभाव यह होगा कि पचवर्षीय योजनाओं के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing) के लिए सरकार को अधिक स्वतन्त्रता मिल गई है।

रुपए का अवमूल्यन--जब कोई देश आर्थिक सकट अनुभव करता है तथा देश के आयात निर्यात से अधिक होने लगते हैं तो उनमे सुधार करने के लिये मुद्रा के अवमूल्यन की आवश्यकता पडती है। मुद्रा के अवमूल्यन का अर्थ दूसरे देश की मुद्रा के विनिमय मे अपनी मुद्रा का मूल्य कम कर देने मे होता है। भारत ने भी १९४९ मे रुपये का अवमूल्यन किया था जिसके निम्नलिखित कारण थे —

(१) भारत राष्ट्र मडल का सदस्य है तथा भारत का अधिकांश विदेशी व्यापार राष्ट्र मडलीय देशो से ही है। युद्ध के दिनो से ही इंगलैंड को डालर वाले देशो से व्यापार करने मे प्रतिकूल भुगतान सतुलन का सामना करना पड रहा था। यह स्थिति युद्ध के बाद के दिनो मे और अधिक जटिल हो गई। इस आर्थिक सकट का सामना करने के लिए इंगलैंड ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I M F.) से अनुमति प्राप्त करके १८ सितम्बर १९४९ की रात्रि को पौंड के अवमूल्यन की घोषणा कर दी। इस घोषणा से १ पौंड का मूल्य डालर मे ४०३ से घटकर २८० डालर रह गया। राष्ट्रमडल के सदस्य देशो को भी इस नीति का अनुसरण करना पडा। पाकिस्तान को छोडकर अन्य देशो ने जिनमे भारत भी शामिल था सभी अनुपात मे अपनी मुद्रा के अवमूल्यन की घोषणा कर दी। इससे स्टर्लिंग क्षेत्र के देशो की आपसी विनिमय की दरो पर कोई प्रभाव नही पडा। वैसे भारत के सामने कोई तत्कालिक समस्या ऐसी न थी जिसकी वजह से उसे उसी समय रुपए का अवमूल्यन करना पडता किन्तु भारत राष्ट्रमण्डल मे रहते हुये तथा स्टर्लिंग क्षेत्र से इतना पुराना सम्बन्ध रखते हुये अपनी स्वतन्त्र नीति अपना नही सकता था वरना उसे हानि उठानी पडती जैसा

कि बाद मे पाकिस्तान के साथ हुआ। इसलिए मजबूर होकर भारत को इंगलैंड का साथ देना पड़ा और रुपये का डालर मे अवमूल्यन हो गया।

(२) यदि भारत सरकार रुपये का अवमूल्यन न करती तो भारत के पौंड पावनो (Sterling Balances) का मूल्य उसी अनुपात मे कम हो जाता जिस अनुपात मे इंगलैंड ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया था।

(३ उस समय तक भारत को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे पूरी तरह स्वतन्त्र स्थान प्राप्त नही था। भारत का विदेशी व्यापार तथा भुगतान स्टर्लिंग के ही रूप मे होता था। अवमूल्यन न करने से भारत को विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे भी भारी हानि उठानी पड़ती।

(४) रुपए के अवमूल्यन से डालर क्षेत्र के देशों मे भारत का निर्यात व्यापार बढ़ने तथा आयात व्यापार कम होने की आशा थी। यह भारत के विपरीत व्यापार सतुलन को कम करने मे सहायक होती इसलिए आर्थिक लाभ के विचार से भी भारत सरकार ने अवमूल्यन का निश्चय किया।

(५) यदि भारत रुपए का अवमूल्यन न करता तो डालर क्षेत्र के देशो म उस अपनी वस्तुए बेचने के लिए राष्ट्रमण्डल के अन्य देशो से प्रतियोगिता का मुकाबला करना पड़ता। इस प्रतियोगिता मे भारत को हानि होने की सम्भावना थी क्योंकि भारतीय वस्तुए विदेशी बाजारो मे महगी बिकती।

रुपये के अवमूल्यन का भारतीय अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव—रुपये के अवमूल्यन का सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ कि अमरीका से आने वाली वस्तुओ के मूल्यों मे वृद्धि हो गई। मुद्रा प्रसार के कारण वैसे ही भारत मे कीमते अधिक थीं किन्तु रुपए के अवमूल्यन म उनमे और अधिक वृद्धि कर दी। वास्तव मे अवमूल्यन से भारत को लाभ ही हुआ १९४९ तथा १९ ० के बीच डालर क्षेत्र से भारत का व्यापारिक घाटा ७९ करोड रुपये था। एक दो वर्ष के भीतर ही यह घाटा बचत म बदल गया। इस प्रकार डालर मे भारत के विदेशी भुगतान की समस्या हल हो गई। इसका कारण यह था कि सरकार ने आयातो पर नियन्त्रण कर दिया तथा निर्यातो को प्रोत्साहन मिला और व्यापाराधिक्य भारत के अनुकूल हो गया। भारत इससे और अधिक लाभ उठा सकता था किन्तु इसी काल मे खाद्य सकट के कारण भारत को अमरीका तथा कनाडा से भारी मात्रा मे गेहू आयात करना पडा जिसका भारत को अवमूल्यन के कारण अधिक मूल्य देना पड़ा।

रुपए के अवमूल्यन का भारत पाकिस्तान व्यापार पर गहरा प्रभाव पड़ा। दोनों देशो के व्यापार सम्बन्ध खराब हो गये और कुछ समय के लिये व्यापार स्थगित कर देना पड़ा। इसका मुख्य कारण यह था कि पाकिस्तान ने अपने रुपये का अवमूल्यन नही किया। इससे पाकिस्तानी वस्तुओ, मुख्य रूप से कच्ची जूट तथा कपास का भारत को अधिक मूल्य चुकाना पडा। पाकिस्तान का १ रुपया भारत के १ ४४ रुपये के बराबर हो गया। भारत ने इस दर को स्वीकार नही किया। बाद मे जब मुद्रा कोष (I M F.) ने इस दर को स्वीकार कर लिया तो १९५१ मे भारत

को पाकिस्तान से एक नया व्यापार समझौता करना पड़ा। भारत को पाकिस्तान की इस नीति के कारण करोड़ो रुपये की हानि उठानी पड़ी। बाद को पाकिस्तान को भी अपने रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा। पाकिस्तान का प्रथम निर्णय आर्थिक कारणो से नही वरन् राजनैतिक कारणो से लिया गया था।

रुपए के पुनर्मूल्यन का प्रश्न—कुछ विद्वानो का मत है कि जिन परिस्थितियों मे रुपए का अवमूल्यन किया गया था वे इंगलैंड के लिये लाभदायक सिद्ध हुईं। भारत ने उस समय इस नीति को अपनाकर भारी भूल की। जो भी हो अब समय आ गया है कि रुपए का पुनर्मूल्यन कर दिया जावे। कुछ विद्वान अब भी पुनर्मूल्यन के पक्ष मे नही हैं क्योकि दूसरी पचवर्षीय योजना के लिए डालर की कमी को पूरा करने के लिए भारत को अपने निर्यातो को प्रोत्साहन देना है तथा आयात को कम करना है। ऐसी हालत मे पुनर्मूल्यन का प्रश्न ही नही उठता। पुनर्मूल्यन के पक्ष तथा विपक्ष मे जो तर्क पेश किये गये वे इस प्रकार है —

पुनर्मूल्यन के पक्ष मे तर्क—रुपए के पुनर्मूल्यन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क पेश किये हैं :—

(१) भारत मे आयात होने वाली मशीनो आदि का कम मूल्य चुकाना पड़ेगा। अन्य वस्तुओ के आयात पर सरकार पहले की भांति प्रतिबन्ध लगा सकती है। इस प्रकार आयातो के बढ़ जाने का कोई भय नही है।

(२) भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओ का देश को अधिक मूल्य प्राप्त होगा। भारत से निर्यात होने वाली अधिकाश वस्तुए ऐसी हैं जिनकी विदेशी माँग बेलोचदार है इसलिये पुनर्मूल्यन से निर्यात व्यापार के कम हो जाने का कोई भय नही है।

(३) देश के बढ़ते हुए मूल्य स्तर को कम करने का यही एक मात्र उपाय है। करो के भार तथा बढ़े हुए मूल्यो से जनता पीड़ित है। पचवर्षीय योजना के लिए पूंजी की आवश्यकता है किन्तु देश मे पूंजी के सचय अथवा बचत का अभाव है। लोगो मे बचाने की क्षमता ही नही है। ऐसी स्थिति में पुनर्मूल्यन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही है।

(४) रुपये का अवमूल्यन विदेशी भुगतान की स्थिति सुधारने के लिये किया गया था। अब पुनर्मूल्यन देश की आन्तरिक अर्थ व्यवस्था को सुधारने के लिये होना चाहिये।

पुनर्मूल्यन के विपक्ष मे तर्क—रुपये के पुनर्मूल्यन के विपक्ष मे निम्नलिखित तर्क पेश किये जाते है —

(१) रुपये के पुनर्मूल्यन से भारत के आयात व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा और भारत के निर्यात कम हो जावेगे। भारत इस समय ऐसी स्थिति मे से गुजर रहा है कि भारत को अपनी दूसरी पचवर्षीय योजना के लिये अधिक विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है। भारत अपने निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन देकर तथा आयात मे कमी करके इस स्थिति का सामना करना चाहता है। ऐसी हालत मे पुनर्मूल्यन की बात

तो सोची भी नहीं जा सकती। यदि हो सके तो रुपये के और अधिक अवमूल्यन के प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए।

(२) यदि अकेले भारत ने रुपये का पुनर्मूल्यन कर दिया तो डालर क्षेत्र के देशो मे भारत स्टर्लिङ्ग क्षेत्र के देशो की प्रतियोगिता का मुकाबला नही कर सकेगा। भारत पुनर्मूल्यन के प्रश्न पर उसी समय विचार कर सकता है जब राष्ट्रमण्डल के अन्य देश भी इसके पक्ष मे हो।

(३) भारत के भूतपूर्व वित्त मन्त्री श्री देशमुख के अनुमान के अनुसार पुनर्मूल्यन से भारत को विदेशी व्यापार मे लगभग ६५ करोड रुपए तक का घाटा हो सकता है।

(४) पुनर्मूल्यन के लिए भारत को मुद्रा कोष (I. M F.) की अनुमति लेनी होगी जो उसे किसी भी सूरत मे नही मिल सकती। भारत ने अपने विदेशी सतुलन को स्थिर रखने के लिये मुद्रा कोष से १००० लाख डालर का कर्ज ले रखा है जो अभी तक चुकाया नही गया है। भारत को और अधिक कर्ज की आवश्यकता है। ऐसी सूरत मे मुद्रा कोष कैसे भारत को पुनर्मूल्यन की आज्ञा दे सकता है?

पौंड पावने का भुगतान—पौंड पावनो के भुगतान के सम्बन्ध मे भारत तथा इंगलैंड के बीच पहिला समझौता जनवरी सन् १९४७ में हुआ किन्तु कुछ दिन बाद इंगलैंड तथा अमेरिका के बीच एक नया समझौता हो जाने के कारण भारत व इस समझौते की कोई उपयोगिता ही नही रह गई। ४ अगस्त सन् १९४७ को भारत तथा इंगलैंड के बीच एक नया समझौता किया गया जिसके अनुसार पौंड पावने की रकम १५४७ पौंड निश्चित की गई। इस समझौते के आधीन दो खाते चालू किये गये। पहले खाते मे ६५ करोड पौंड जमा किया गया जिसमे से भारत को यह अधिकार था कि वह किसी भी देश से माल खरीद सकता था। दूसरे खाते मे ११६ करोड पौंड जमा किये गये जिसमे से भारत केवल पूंजीगत माल (Capital Goods) ही खरीद सकता था। भारत ने दूसरे खाते मे से ४० करोड रुपया चालू अन्तर के लिए तथा ४७ करोड रुपया विदेशी विनिमय प्राप्त के लिए प्रयोग किए।

जनवरी सन् १९४८ मे एक दूसरा समझौता किया गया। इस समझौते के अनुसार भारत को अपने पौंड पावनो मे से २४ करोड रुपए और अधिक निकालने की अनुमति मिल गई। भारत इस समस्त धन राशि का प्रयोग नही कर सका क्योंकि भारत के पास उस समय तक कोई निश्चित आयात योजना नहीं थी।

जुलाई १९४८ म फिर एक समझौता हुआ जिसमे निम्नलिखित बातें तय हुईं :—

(१) भारत छोड़ने समय इगलैंड ने जो फौजी सामान भारत मे छोडा था उसे भारत सरकार ने १३३ ३ करोड रुपने मे खरीद लिया।

(२) स्वतन्त्रता के बाद भारत को अग्रेज अफसरो की पेंशन तथा वेतन आदि के रूप मे रुपया देना था उसे भारत सरकार ने एक साथ भुगतान कर दिया। इस मद मे १६७ करोड रुपने भारत सरकार की ओर से तथा २७ करोड रुपये प्रान्तीय सरकारो की ओर से दिये गये। यह धन पौण्ड पावनो मे से कम कर दिया गया।

(३) पिछले समझौतो के अनुसार भारत को पौंड पावनो मे से जो धन लेना था उसका भारत ने प्रयोग नही किया था। वह उसे अब प्रयोग करने का अधिकार मिल गया। लगभग इतना ही धन भारत को अगले तीन वर्षों में अर्थात् ३० जून १९५१ तक व्यय करने का अधिकार मिल गया।

(४) यह भी तय हुआ कि भारत एक साल मे दुर्लभ मुद्रा वाले देशो से व्यापार के लिए २० करोड रुपये से अधिक व्यय नही कर सकता।

(५) इससे पूर्व पौण्ड पावनो मे से पाकिस्तान को १२६ करोड रुपये उसके हिस्से के दे दिये गये थे।

जुलाई सन् १९४९ मे फिर से समझौता करने की आवश्यकता इगलैड को अनुभव हुई यद्यपि पिछला समझौता १९५१ तक के लिये था। नये समझौते की आवश्यकता इस लिए अनुभव हुई कि इंगलैंड डालर की कमी अनुभव कर रहा था और अपने वायदे को पूरा करने मे असमर्थ था। भारत को यह अधिकार मिला कि विश्व बैंक से उधार लेकर अमेरिका से माल खरीद सकता है।

फरवरी सन् १९५२ में फिर एक समझौता हुआ। उस समय भारत के पौड पावने केवल ७६१ करोड के मूल्य के रह गये थे। शेष राशि मे से काफी धन खाद्य सामग्री आयात करने मे व्यय हो गया था। नया समझौता ३० जून सन् १९५७ तक के लिये था। इसके अनुसार भारत को प्रतिवर्ष ३५ करोड पौड मिलना था। इसके अतिरिक्त खाता न० १ मे ३१ करोड पौंड की रकम जमा की गई जिसका प्रयोग सकट काल मे भारत ब्रिटिश सरकार की अनुमति से कर सकता है।

पचवर्षीय योजनाओ के लिए तेजी से पौंड पावनो का प्रयोग किया जा रहा है मई १९५७ तक केवल ५०० करोड रुपये के मूल्य के पौड पावन शेष रह गये हैं। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त तक यह राशि समाप्त हो जाने की आशा है।

रिजर्व बैंक तथा इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण

रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण की माग बहुत दिनो से चली आ रही थी किन्तु सरकार ने इस पर विशेष ध्यान नही दिया। दूसरे महायुद्ध के बाद यह माग और भी तीव्र हो गई। भारत स्वतन्त्र हो जाने के बाद सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया और १ जनवरी सन् १९४९ को रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। यह समाजवादी अर्थव्यवस्था की ओर प्रथम कदम था।

१९५५ मे सरकार ने इम्पीरियल बैंक का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया और स्टेट बैंक आफ इण्डिया (State Bank of India) के नाम से स्थापित किया गया है। स्टेट बैंक का मुख्य कार्य ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का सगठन करना तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे साख सुविधाओ का विस्तार करना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध के बाद का काल भारतीय चलन प्रणाली के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रश्न ९९—भारत की वर्तमान मुद्रा प्रणाली क्या है? १९५६ तथा १९५७ के रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियमो का इस पर क्या प्रभाव पडा।

What is the present Monetary System in India ? What has been the influence of the Reserve Bank of India (Amendment) Act 1956 & 57 on it ?

उत्तर—किसी देश की मुद्रा प्रणाली के अन्तर्गत हम दोनों बातों को शामिल करते है। एक तो यह कि देश की आन्तरिक मुद्रा व्यवस्था किस चीज पर आधारित है दूसरे यह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे देश की मुद्रा का मूल्य अर्थात् विनिमय की दर किस प्रकार निर्धारित होती है। इन्ही दोनो बातो को ध्यान मे रखते हुए हम भारत की वर्तमान मुद्रा प्रणाली का अध्ययन करेंगे। जहा तक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विनिमय की दर के निर्धारण का प्रश्न है हमे यह बात ज्ञात है कि भारतीय मुद्रा का स्टर्लिंग से सम्बन्ध टूट चुका है। अब भारत मे स्टर्लिंग विनिमय मान नही है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) का सदस्य है। मुद्रा कोष के नियमो के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश को अपनी मुद्रा का मूल्य सोने की एक निश्चित मात्रा के मूल्य के रूप मे घोषित करना पडता है। इसी के अनुसार प्रत्येक मुद्रा की एक दूसरे से विनिमय की दर निर्धारित हो जाती है। इस दर मे थोडी मात्रा मे तो परिवर्तन किया जा सकता है किन्तु अधिक परिवर्तन के लिए मुद्रा कोष की अनुमति लेना आवश्यक है। इगलैंड तथा भारत आदि देशो ने १६४६ मे जब अपनी मुद्राओ का अवमूल्यन किया था तो उससे पूर्व मुद्रा कोष (I M F) की अनुमति प्राप्त कर ली थी। मुद्रा कोष के प्रत्येक सदस्य देश को अपने कोटे की रकम सोने तथा अपनी मुद्रा के रूप मे कोष के पास जमा करनी पड़ती है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म विनिमय दर मुद्रा कोष द्वारा नियन्त्रित रहती है जिसका सम्बन्ध परोक्ष रूप से स्वर्ण से रहता है। हम कह सकते हैं कि विदेशी विनिमय की सुगमता के लिये परोक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णमान स्थापित हो गया है और भारत भी इसका एक सदस्य है।

भारत की आन्तरिक मुद्रा व्यवस्था अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा पर आधारित है। दूसरे शब्दो मे भारत मे पत्र मुद्रा मान (Paper Standard) है तथा पत्र मुद्रा किसी धातु (स्वर्ण अथवा चादी) मे परिवर्तन शील नहीं है। भारत मे दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ होने तक चादी के सिक्को का चलन था तथा कागज के चादी के सिक्को के परिवर्तन की माग इतनी अधिक बढ गई कि सरकार को मजबूर होकर १ रुपये के मूल्य के नोट चालू करने पडे। धीरे २ चादी के रुपयो का चलन पूरी तरह बन्द हो गया। वर्तमान स्थिति यह है कि रुपया भारत को प्रधान मुद्रा है किन्तु रुपये का जो सिक्का बनाया जाता है उसमें चादी की मात्रा बिल्कुल नही होती। दूसरी ओर १ रु० के मूल्य के कागज के नोट ही चलने मे देखने को मिलते है जिनका निर्गम भारत सरकार के वित्त विभाग (Finance Department) द्वारा होता है।

भारतीय पत्र मुद्रा

भारत मे कागज के नोटो का चलन बहुत दिनो से होता आ रहा है। १६३५ मे जब रिजर्व बैंक की स्थापना हुई तो नोटों के निर्गम का अधिकार रिजर्व बैंक को

दे दिया गया तथा सरकार द्वारा इन नोटो की परिवर्तनशीलता की गारन्टी दी गई। यह नोट असीमित विधि ग्राह्य (Unlimited legal tender) होते हैं। पत्र मुद्रा के निर्गम (Issue) के लिए रिजर्व बैंक के दो विभाग खोले गये है —

(१) निर्गम विभाग (Issue Department)—जो नोटो को छापने तथा उनके निर्गम के लिए उत्तरदायी है।

(२) अधिकोषण विभाग (Banking Department)—जो मुद्रा सम्बन्धी नीति की सफलता के लिये देश के अन्य बैंको को सहायता प्रदान करता तथा साख पर नियन्त्रण करता है।

उपरोक्त दोनो विभाग एक दूसरे से पृथक हैं तथा उनके कार्य क्षेत्र भी एक दूसरे से भिन्न हैं।

१६३४ के रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम (Reserve Bank of India Act) के अनुसार जिसमे १६४८ मे कुछ संशोधन कर दिए गए थे, निर्गम विभाग के लिये यह आवश्यक था कि यह जितने भी नोट छापे उसका ४०% सुरक्षित निधि के रूप मे अपने पास रखे। दूसरे शब्दो में हम यह कह सकते हैं कि भारत मे नोट छापने की अनुपातिक कोष प्रणाली (Proportional Deposit Method) का चलन था। इस प्रणाली के अनुसार नोटो की कुल मात्रा का ४० प्रतिशत जो सुरक्षित कोष के रूप मे रखा जाता था उसका कुछ भाग सोने अथवा सोने के सिक्को के रूप मे कुछ भाग विदेशी प्रतिभूतिया (Foreign Securities) के रूप मे होना चहिये था। शेष के लिए चादी के सिक्के, भारत सरकार की प्रतिभूतिया Govt of India Securities), स्वीकृत विनिमय विपत्र (Authorized Bills of Exchange) तथा स्वीकृत प्रतिज्ञा पत्रे (Authorized Promissory Notes) की आड के रूप मे रखा जा सकता है।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम म यह बात स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी गई थी कि ४० प्रतिशत सोने के सिक्को तथा विदेशी प्रतिभूतियो के रूप मे रखना अनिवार्य तो है ही किन्तु इसमे से कम से कम ४० करोड रु० के मूल्य का सोना अथवा सोने के सिक्को का होना अनिवार्य है। १६४८ के संशोधन से पूर्व विदेशी प्रतिभूतियो का अर्थ केवल स्टर्लिङ्ग प्रतिभूतियो (Sterling Securities) से ही लगाया जाता था क्योंकि वे सोने के ही समान सुरक्षित मानी जाती थी। युद्ध के दिनो मे जो मुद्रा प्रसार हुआ उसके पीछे स्टर्लिङ्ग प्रतिभूतियो की ही आड मे रखी गई थी।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम मे यह भी व्यवस्था की कि भारत सरकार की जो प्रतिभूतिया आड के लिये रखी जाएं उनका मूल्य ५० करोड रुपए से अधिक नही होना चाहिये। विशेष परिस्थितियो मे भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से इस मात्रा में १० करोड रु० की वृद्धि की जा सकती थी।

जहा तक विनिमय विपत्रो (Bills of Exchange) तथा प्रतिज्ञा पत्रो (Promissory Notes) का प्रश्न था, रिजर्व बैंक केवल उन्ही विपत्रो तथा प्रतिज्ञापत्रो को खरीद सकता था जिन पर किसी अनुसूचित बैंक (Scheduled

Bank) की गारन्टी हो और कम से कम एक आदरणीय पक्ष के हस्ताक्षर हों।

उपरोक्त नियमो मे कुछ छूट देने की भी व्यवस्था की किन्तु वह तभी सम्भव था जब निम्नलिखित नियमो का पालन किया जावे —

(१) राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति प्राप्त करना।

(२) केवल ३० दिन के नियमो को ढीला करना जो अवधि राष्ट्रपति की आज्ञा से १५ दिन को और बढाई जा सकती थी।

(३) नियत निर्गम की मात्रा से ऊपर जितना भी निर्गम किया जाता था उस पर रिजर्व बैंक को एक प्रकार का कर देना पडता था जिसकी दर निर्गम की मात्रा मे वृद्धि के साथ २ बढती जाती थी।

उपरोक्त व्यवस्था इसलिये की गई थी कि देश मे अत्यधिक मुद्रा प्रसार न होने पावे अथवा रिजर्व बैंक के नोट छापने के अधिकारो पर समुचित नियन्त्रण रखा जा सके साथ ही मुद्रा प्रणाली लोचदार बनी रहे।

नोट छापने की नवीन प्रणाली अर्थात १९५६ का संशोधन—भारत मे पत्र मुद्रा के निर्गम की जिस प्रणाली का उल्लेख ऊपर किया गया है उसमे १९५६ मे मूल परिवर्तन कर दिए गये हैं। अब भारत मे अनुपातिक कोष प्रणाली (Proportional Deposit Method) के स्थान पर न्यूनतम कोष प्रणाली (Minimum Deposit Method) को अपना लिया गया है। इस नवीन परिवर्तन को करने के लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम मे १९५६ मे आवश्यक संशोधन कर दिया है। इस परिवर्तन की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हुई कि सरकार को दूसरी पचवर्षीय योजना को पूरा करने के लिए अधिक मात्रा मे धन की आवश्यकता थी। सब मुमकिन साधनो को खोज लेने के बाद भी लगभग १२०० करोड रुपये की कमी का अनुमान लगाया गया। इस कमी को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing) की शरण लेने का निश्चय किया गया जिसका अर्थ दूसरे शब्दो मे यह होता है कि सरकार अधिक मात्रा मे नोट छापकर अथवा मुद्रा प्रसार करके इसे पूरा करना चाहती थी। इतनी बडी मात्रा मे पत्र मुद्रा का निर्गम करने के लिए रिजर्व बैंक अधिनियम मे संशोधन करना आवश्यक था। इसके दो कारण थे। प्रथम तो यह कि वर्तमान नियमो के अनुसार रिजर्व बैंक को कुल नोटो का ४० प्रतिशत सोना अथवा विदेशी प्रतिभूतियो के रूप मे रखना पडता जबकि इतनी बडी मात्रा मे विदेशी प्रतिभूतियां एकत्र करना संभव न था। दूसरे १२०० करोड रुपये के निर्गम से मुद्रा प्रसार का भय था जिसकी रोकथाम के लिये कडे साख नियन्त्रण (Credit Control) की आवश्यकता पडती। इसलिये यह भी आवश्यक हो गया कि साख नियन्त्रण के लिये रिजर्व बैंक को और अधिक अधिकार प्रदान किये जायें।

इन दोनो बातो को ध्यान मे रखते हुये १९५६ मे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया (संशोधन) अधिनियम [Reserve Bank of India (Amendment) Act] पास किया गया। इस अधिनियम मे निम्नलिखित बातो की व्यवस्था है—

(१) अब रिजर्व बैंक को नोट छापते समय ४० प्रतिशत सुरक्षित कोष रखने की आवश्यकता नहीं है। अब कम से कम ४०० करोड रुपये के मूल्य की विदेशी प्रतिभूतियां प्र ड के रूप में रखना अनिवार्य है। यह निधि घटाकर ३०० करोड रुपये भी की जा सकती है। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सरकार दण्ड के रूप में कोई कर वसूल नहीं कर सकती।

(२) निर्गम विभाग (Issue Department) को सोने अथवा सोने के सिक्कों के रूप में कम से कम ११५ करोड रुपये के मूल्य का सोना अवश्य रखना चाहिए।

उपरोक्त न्यूनतम मात्रा (Minimum Quantity) में सुरक्षित कोष की आड रखकर रिजर्व बैंक जितने भी चाहे नोट छाप सकता है। इस प्रकार अब रिजर्व बैंक को मुद्रा प्रसार की अधिक स्वतन्त्रता मिल गई है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि रिजर्व बैंक के निर्गम विभाग को अब ११५ करोड रुपए के मूल्य का सोना रखना अनिवार्य है जबकि पहिले केवल ४० करोड का सोना ही काफी था। शेष मूल्य का सोना कहां से प्राप्त किया जाय इस प्रश्न का उत्तर संशोधित अधिनियम में ही दे दिया गया है। पहिले जो ४० करोड रुपये के मूल्य का सोना रखा जाता था उसका मूल्य २१ रु० १३ आने १० पाई प्रति तोले की दर से लगाया जाता था जबकि अब सोने का मूल्य काफी बढ गया है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सोने का मूल्य ६२ रु० ८ आने प्रति तोला निर्धारित किया है। इसी दर पर यदि रिजर्व बैंक के कोष में रखे हुये सोने का मूल्य लगाया जाय तो वह ४० करोड से बढकर ११५ करोड हो जाता है। इसलिए और अधिक सोना खरीदने के आवश्यकता नहीं है। संशोधन अधिनियम में रिजर्व बैंक को साख नियन्त्रण के विशेषाधिकार प्रदान किए गए है ताकि घाटे की वित्त व्यवस्था से जो मुद्रा प्रसार हो उसका सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सके।

रिजर्व बैंक अनुसूचित बैंक को यह आदेश दे सकता है कि वे अधिक अनुपात में रुपया रिजर्व बैंक के पास जमा करे। अभी तक प्रत्येक अनुसूचित बैंक ने अपनी माग देनदारी अथवा चालू खातों में जमा धन (Demand Liability or Current Deposits) का ५ प्रतिशत और समय देनदारी (Time Liability or Fixed Deposits) का २ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा करना पडता था। अब नये अधिनियम के अनुसार अनुसूचित बैंकों को अपनी माग देनदारी (Demand Liability) का ५ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक तथा समय देनदारी (Time Liability) का २ प्रतिशत से ८ प्रतिशत तक रिजर्व बैंक के पास जमा करना पड सकता है। इससे उनकी साख उत्पन्न करने की शक्ति कम हो जावेगी।

इस प्रकार रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम के संशोधन से भारतीय नोट निर्गम प्रणाली में मूल परिवर्तन हो गया है सोने के मूल्याकन का आधार बदल गया है और साख नियन्त्रण के लिए रिजर्व बैंक को विशेष अधिकार प्राप्त हो गए हैं।

रिजर्व बैंक ग्राफ इण्डिया अधिनियम मे अक्तूबर १९५७ में फिर संशोधन किया गया है जिसके अनुसार विदेशी प्रतिभूतियों को न्यूनतम मात्रा घटाकर २०० करोड रुपये करदी गई है। यह इसलिए किया गया है कि भारत की दूसरी पच वर्षीय योजना के लिए विदेशी मुद्रा की कमी अनुभव हो रही थी। अब रिजर्व बैंक के पास जो विदेशी प्रतिभूतियां सुरक्षित कोष मे रखी हुई हैं उनका प्रयोग पच वर्षीय योजना के लिये आवश्यक सामान आयात करने के लिए किया जा सकेगा। इस नीति के अपनाने से पूर्व सरकार को काफी सोच विचार करना पडा क्योंकि इस प्रश्न पर विशेषज्ञों के विचारो मे मत भेद था। कुछ विशेषज्ञ जिन मे डाक्टर बी० के० आर० बी० राव भी हैं इस नीति के समर्थक हैं। उनके विचार मे इसका कोई हानिकारक परिणाम निकलने की आशका नही है। वह केवल एक अस्थाई कदम है। योजना पूरी होने ही पुरानी व्यवस्था पर वापिस जाया जा सकता है। कुछ विद्वान इस नीति को देश के लिए घातक समझते हैं। उनके विचार मे यह आर्थिक दिवालिएपन का सकेत मात्र है और इस नीति को अपनाकर सरकार ने एक खतरनाक कदम उठाया है।

प्रधान मन्त्री नेहरू के मतानुसार भारत हर प्रकार का त्याग तथा जोखिम सहन कर सकता है किन्तु इस पचवर्षीय योजना को सफल बनाने का पूरा प्रयत्न किया जावेगा। देश का भविष्य इसी योजना की सफलता पर निर्भर है।

इस प्रकार भारत की वर्तमान मुद्रा प्रणाली मे पत्र मुद्रा का मुख्य स्थान है। देश मे १ रुपये तथा २ रुपये के नोट भारत सरकार के वित्त विभाग द्वारा तथा ५, १०, १०० तथा १००० के नोटो का निर्गम रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। १००० रुपये का नोट कुछ सालो के लिये बन्द कर दिया गया था किन्तु अब फिर नये रूप मे चालू किया गया है।

प्रश्न १००—दशमिक मुद्रा प्रणाली से आप क्या समझते हैं। भारत को इस प्रणाली के लागू करने से क्या लाभ होंगे?

✓ **what do you understand by the Decimal system of coinage. How will India be benifitted by adopting it?**

दशमिक प्रणाली—यह ससार मे सबसे सरल मुद्रा प्रणाली मानी जाती है। इसके अनुसार देश की प्रधान मुद्रा को १०० अथवा १० से विभाजित होने वाले छोटे सिक्को मे विभाजित किया जाता है। उदाहरण के लिये रुपया भारत की प्रधान मुद्रा है। अभी तक इसे १६ आनो मे विभाजित किया जाता था। प्रत्येक आने मे १२ पाई अथवा ४ पैसे होते थे। इस प्रकार एक रुपये मे १९२ पाई अथवा ६४ पैसे होते थे। दशमिक प्रणाली मे केवल दो इकाईया ही होती हैं अर्थात् प्रधान सिक्का या रुपया और उसका १०० वा भाग अथवा एक नया पैसा। रुपये और नये पैसे के बीच कोई दूसरी इकाई आने पाई के रूप मे नही होती। वैसे तो चलन की सुविधा के लिये २, ५, १०, २५ तथा ५० नये पैसे के सिक्के भी बनाये गय हैं किन्तु हिसाब किताब के लिए केवल रुपया तथा नया पैसा नाम की ही दो इकाईया

मानी जावेंगी। दूसरे शब्दो मे नया पैसा भारतीय मुद्रा की सबसे छोटी इकाई है। इसका नाम नया पैसा इसलिए रखा गया है कि तीन साल तक नये तथा पुराने सिक्के एक साथ चलेगे जिनके मूल्य मे भिन्नता होगी। पुराने पैसो का मूल्य नये पैसे के मूल्य से अधिक है। जनता के भ्रम को दूर करने के लिये नये सिक्के का नाम नया पैसा रखा गया है। जब पुराने सिक्को का चलन बन्द हो जायेगा तब पैसे के आगे से नया शब्द उठा दिया जावेगा।

दशमिक मुद्रा प्रणाली अपनाने वाला भारत प्रथम देश नही है। ससार के लगभग सभी प्रगतिशील देशो ने इस प्रणाली को अपनाया हुआ है। इस समय ससार मे लगभग १४० देशो की अपनी मुद्राए हैं जिनमे से १०५ ने दशमिक प्रणाली को अपनाया हुआ है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार सर्व प्रथम अमेरिका ने १७८६ तथा ७६ मे दशमिक प्रणाली को अपनाया और डालर को मुद्रा की इकाई तथा सेन्ट को उसका १०० वा भाग माना। १७९९ तथा १८०३ मे फ्रास ने इसे अपनाया। १८६५ मे लेटिन सघ के देशो ने इसे अपनाया। अन्य प्रमुख देशो ने इसे जिस सन् म अपनाया है उनके नाम इस प्रकार हैं —

जर्मनी	१८७३
डेनमार्क	१८७५
नार्वे	१८७५
स्वीडन	१८७५
आइलैंड	१८७५
आस्ट्रिया	१८७०
हगरी	१८७० तथा १८९२
रूस	८३९ तथा १८९७
लैटिन अमेरिकन देश	१८७१
जापान	१८७१
भारत	१९५७

भारत में दशमिक प्रणाली की आवश्यकता

भारत मे दशमिक सिक्के चालू करने के प्रश्न पर सर्व प्रथम १८६७ मे विशेषज्ञो ने आवाज उठाई थी। उसी समय सरकार ने इस प्रश्न पर काफी विचार करने के बाद यह निश्चय किया कि धीरे धीरे भारत मे यह प्रणाली लागू होनी चाहिए। १८७१ मे इस विषय पर एक कानून भी बनाया गया परन्तु अनेक कारणो से वह लागू नही हो सका।

१९४६ मे भारतीय विज्ञान कांग्रेस (Indian Science Congress) ने इस प्रश्न पर विचार किया और भारतीय विज्ञान कांग्रेस के ३४ वें अधिवेशन के निर्वाचित अध्यक्ष श्री जवाहर लाल नेहरू तथा भारतीय विज्ञान कांग्रेस ऐसोसिएशन के अध्यक्ष प्रोफेसर अफजल हुसैन ने एक सयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया था जिसके

अनुसार "भारतीय विज्ञान कांग्रेस एसोसिएशन कई सालो से सिक्को तथा नाप तोल के पैमानो का दशमिकीकरण करने का समर्थन करता आया है। जनवरी १९४६ मे बंगलौर मे विज्ञान कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसम सदस्यो की साधारण सभा ने सर्व सम्मति से दशमिकीकरण के पक्ष मे राय दी। विज्ञान कांग्रेस इस बात पर सन्तोष प्रकट करती है कि भारतीय मुद्रा के दशमीकरण के बारे मे एक विधेयक विधान सभा में पेश किया गया है।"

उसी वर्ष केन्द्रीय विधान सभा मे भी सिक्को के दशमिकीकरण करने के बारे मे एक बिल पेश किया गया किन्तु उस पर विचार नही हो सका।

भारत सरकार ने तौल और नाप के पैमानो के दशमिकीकरण के बारे मे एक विशेष समिति नियुक्त की थी जिसकी रिपोर्ट १९४९ मे सरकार के सामने पेश हुई। इस रिपोर्ट में सिक्को के दशमिकीकरण के बारे मे निम्नलिखित विचार प्रकट किया गया था।

समिति यह अनुभव करती है कि नाप तोल की दशमिक प्रणाली अपनाने से पहले दशमिक मुद्रा चालू करना अधिक लाभदायक होगा। इसलिये समिति यह सिफारिश करती है कि भारत की अन्त कालीन सरकार के दशमिक मुद्रा अपनाने के निर्णय को जल्दी से जल्दी कार्यान्वित किया जाये। समिति यह भी सिफारिश करती है कि नये सिक्को के आकार और वजन मे तथा नाप और तौल की दशमिक प्रणाली मे आपसी सबन्ध हो, ताकि जनता को इन नये सिक्को तथा नाप और तौल के पैमानों से परिचित होने मे सुविधा हो।"

उस समय से जनमत बराबर इस प्रणाली के अपनाए जाने के पक्ष मे होता गया और १९५५ मे भारत सरकार ने इन विषय पर एक बिल ससद म पेश किया। सितम्बर १९५५ मे यह बिल एक कानून के रूप म पास कर दिया गया। इन कानून के अनुसार भारत सरकार को देश मे दशमिक मुद्रा प्रणाली लागू करने का अधिकार मिल गया। सरकार ने १ अप्रैल १९५७ स दशमिक सिक्को को सारे देश मे लागू कर दिया है।

दशमिक सिक्को को चालू करने से पूर्व सरकार ने योजना आयोग (Planning Commission) राज्य सरकारो रिजर्व बैंक, उच्च शिक्षण सस्थाओ तथा वाणिज्य-मण्डलो (Chambers of Commerce) से भी परामर्श कर लिया था और उनकी राय पर पूरी तरह ध्यान दिया गया है।

हमारे नए सिक्के

जैसा कि ऊपर कहा गया है नई मुद्रा प्रणाली मे भारतीय रुपये को १०० इकाईयो मे बाटा गया है। रुपये के १०० वे भाग को १ नया पैसा कहते हैं। १ नए पैसे के अतिरिक्त २ ५ १०, २५ तथा ५० नए पैसे के सिक्के भी होंगे। सरकार ने २, ५ तथा १० नये पैसे के सिक्के तो चालू कर दिए है किन्तु २५, ५० तथा १०० नये पैसे (अर्थात् रुपए) का नया सिक्का अभी चालू नही किया है।

वर्तमान चवन्नी, अठन्नी तथा रुपया ही २५, ५० और १०० नये पैसे के सिक्को के स्थान पर प्रयोग होंगे। इसका कारण यह है कि समस्त देश में नए सिक्के चालू करने के लिए भारी संख्या मे सिक्के ढालने की आवश्यकता है। भारत की वर्तमान टकसालें इतने कम समय में पर्याप्त मात्रा मे सिक्को की ढलाई नहीं कर सकती इसलिये केवल छोटे मूल्य के सिक्के ही बनाये जा रहे हैं। चवन्नी, अठन्नी तथा रुपए का मूल्य पहले १६ पैसे, ३२ पैसे तथा ६४ पैसे था किन्तु अब २५, ५० तथा १०० नये पैसे है।

नये सिक्को के आकार, वजन तथा धातु रचना का ब्यौरा इस प्रकार है—

एक नया पैसा—यह कासे का बना सिक्का है जिसका आकार गोल है। इसका व्यास १६ मिलिमीटर तथा भार १.५ ग्राम है। इसकी सीधी तरफ तीन शेर वाली छाप है तथा अंग्रेजी और हिन्दी भाषा मे India व भारत लिखा हुआ है। इसकी उल्टी तरफ 'रुपये का सौवा भाग / नया पैसा' हिन्दी मे लिखा हुआ है। इसके चालू होने की वर्ष अर्थात् १९५७ भी अंकित है।

२ नये पैसेः— यह सिक्का तांबा और गिलट को मिलाकर बनाया गया है। इसका आकार ८ वक्र किनारेदार हैं तथा भार ३ ग्राम है। इसका व्यास १८ मिलीमीटर तथा दोनो तरफ के दाने (Beads) ५६ हैं। सिक्के के सीधी तरफ तथा उल्टी तरफ की डिजाइन १ नये पैसे जैसी ही है। अन्तर केवल इतना है कि इसमे उल्टी तरफ रुपये का ५० वा भाग २ नये पैसे लिखा हुआ है।

५ नये पैसे :—यह सिक्का भी तावा और गिलट को मिलाकर बनाया गया है। यह वर्गाकार है किन्तु इसके किनारे गोल हैं। इसका व्यास २२ मिलीमीटर तथा भार ४ ग्राम है। दोनों तरफ के दानो की सख्या ४४ है।

१० नये पैसे—यह सिक्का भी तावा और गिलट को मिलाकर बनाया गया है। इसका आकार आठ वक्र किनारेदार है। इसका व्यास २३ मिलीमीटर तथा वजन ५ ग्राम है। दोनों तरफ के दानो की सख्या ५६ है।

२५ नये पैसे —यह सिक्का अभी चालू नहीं हुआ है। यह शुद्ध गिलट का बना हुआ होगा। इसका आकार गोल दोनो तरफ के दानो की सख्या ०, व्यास १६ मिलिमीटर, वजन २.५ ग्राम तथा किनारो के दानो (serrations) की सख्या १०० होगी।

५० नये पैसे :—यह सिक्का भी अभी चालू नहीं हुआ है। यह भी शुद्ध गिलट का होगा। इसका आकार गोल, दोनो तरफ के दानो की सख्या ५०, व्यास २४ मिलीमीटर, वजन ५ ग्राम तथा किनारों के दानो की सख्या १८० होगी।

१ रुपया अथवा ०० नये पैसे —यह सिक्का भी अभी चालू नही हुआ है। यह भी शुद्ध गिलट का होगा। इसका वजन दस ग्राम, आकार गोल, व्यास २८ मिलिमीटर, दोनो तरफ के दाने ५० तथा किनारो के दानो की सख्या २०० होगी।

नये और पुराने सिक्कों का आपसी सम्बन्ध—वर्तमान दुअन्नी, इकन्नी, अधन्ने और पैसे के मूल्य के बराबर वाले सिक्के नही बनाए गए हैं। उनकी जगह १०, ५, २ तथा १ नये पैसे के सिक्के चालू किए गए हैं। पुराने सिक्कों का नये सिक्को मे मूल्य जानने के लिए परिवर्तन तालिकाए छाप दी गई हैं। परिवर्तन करते समय मूल्य मे जो थोडा बहुत अन्तर आता है उसे पूरी इकाई मे बदल दिया गया है। इस प्रकार या तो लेनदार को या देनदार को थोडी बहुत हानि उठानी पडती है। यह समस्या केवल उसी समय तक रहेगी जब तक पुराने तथा नये दोनो प्रकार के सिक्कों का चलन देश मे रहेगा।

भारतीय टकसालें:—भारत में सिक्के ढालने की कई टकसाले हैं। इनमे से एक अलीपुर (कलकत्ता) मे दूसरी बम्बई में, तीसरी मद्रास में तथा चौथी छोटी टकसाल हैदराबाद मे है। अलीपुर की टकसाल आधुनिकतम तथा सबसे बडी है। यह १९५२ मे स्थापित की गई है। इससे पूर्व भी कलकत्ता मे एक टकसाल थी जिसका काम अब नई टकसाल मे ही होता है।

हमारे नये सिक्के अलीपुर बम्बई तथा हैदराबाद की टकसालों मे ढाले जा रहे हैं। आशा है एक दो साल मे पर्याप्त मात्रा मे नये सिक्के चलन मे आ जावेंगे।

दशमिक मुद्रा प्रणाली से भारत को लाभ-दशमिक मुद्रा प्रणाली को अपनाने से भारत को बहुत से लाभ प्राप्त होंगे। इनमे से निम्नलिखित महत्व-पूर्ण हैं —

(१) **हिसाब किताब की सुविधा**—दशमिक मुद्रा प्रणाली से हिसाब किताब के कामो मे बडी आसानी हो गई है। अब केवल दशमलव (Decimal) बिन्दु को आगे पीछे करने से बडी २ संख्याओं का गुणा भाग आसानी से होने लगा है। रुपये आने पाई वाली प्रणाली इस दृष्टि से काफी जटिल थी। गणित की शिक्षा आदि के क्षेत्र मे भी बच्चो को हिसाब किताब सीखने मे आसानी होगी।

(२) **हिसाब किताब की मशीनों का प्रयोग**—अभी तक भारत मे हिसाब किताब लगाने वाली मशीनो का प्रयोग बडी संख्या मे नही होता है। किन्तु भारत औद्योगिक प्रगति के युग मे प्रवेश कर रहा है। अगले १० या १५ वर्षों मे पचवर्षीय योजनाओं के कारण भारत की अर्थ व्यवस्था काफी जटिल हो जावेगी। देश के औद्योगिक विकास के साथ साथ हिसाब किताब की मशीनो का लाखो की संख्या मे प्रयोग होगा। अभी भारत मे इन मशीनो का निर्माण नही हो रहा है किन्तु आगे चलकर होगा। इसलिये मुद्रा सुधार का यही सबसे उपयुक्त समय है। अब दशमिक प्रणाली पर आधारित मशीनो का ही निर्माण किया जावेगा क्योंकि यह कार्य सरल है।

(३) **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग**—संसार के अधिकांश देश इसी प्रणाली को अपनाये हुये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे आपसी लेन देन के समय हिसाब किताब मे बडी असुविधा होती है। भारत द्वारा इस प्रणाली के अपनाए जाने से अब विदेशी

विनिमय में सुगमता होगी तथा आपसी सहयोग बढ़ेगा।

(४) नाप तथा वजन के पैमानों मे सुधार—भारत मे काफी समय से नाप तथा वजन के पैमानो मे भी सुधार की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। यह सुधार उस समय तक अधूरे रहेंगे जब तक मुद्रा सम्बन्धी सुधार पूरे न हो जावें तथा जनता उनसे भली भांति परिचित न हो जावे। सरकार ने इसी उद्देश्य से दशमिक मुद्रा प्रणाली को पहिले लागू किया है। अब शीघ्र ही नाप तथ वजन के पैमानो मे भी सुधार होने वाला है। इससे सम्बन्धित अधिनियम भी प स हो चुका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दशमिक मुद्रा प्रणाली के लागू होने से भारत को बहुत से लाभ होंगे। कुछ काल तक एक पद्धति के स्थान पर दूसरी पद्धति के परिवर्तन से देश की जनता को (विशेषकर ग्रामीण जनता को) कुछ असुविधा अनुभव होना स्वाभाविक ही है क्योंकि बहुत काल से पुरानी प्रणाली मे परिचित चले आ रहे हैं और यह उनके लिए एक नई चीज है किन्तु यह असुविधा तथा कठिनाइयां एक दो साल के भीतर ही दूर हो जावेंगी। जब नये वजन व नाप के पैमाने लागू हो जावेंगे तो कार्य और भी सरल हो जावेगा।

— —

अध्याय २५

भारतीय बैंकिंग प्रणाली

प्रश्न १०१—भारतीय बैंकिंग प्रणाली के मुख्य दोष क्या हैं ? रिजर्व बैंक द्वारा उन्हें दूर करने में क्या सहायता मिली है ? इसे मजबूत बनाने के लिए अपने सुझाव दीजिए। (दिल्ली ५४, पंजाब ५६, बम्बई ५३)

What are the main defects of Indian Banking system? How far the Reserve Bank of India has succeeded in removing them? Suggest remedies *(Delhi 54, Punjab 53, Bombay 53)*

उत्तर—भारतीय बैंकिंग प्रणाली को दो अंगों में विभाजित किया जाता है। प्रथम अंग के अन्तर्गत आधुनिक बैंकिंग संस्थाएं आती हैं जिनमें व्यापारिक बैंक, विनिमय बैंक, औद्योगिक बैंक, स्टेट बैंक आफ इण्डिया तथा रिजर्व बैंक आफ इंडिया आदि शामिल हैं। दूसरे अंग के अन्तर्गत देशी बैंकस आदि शामिल हैं। भारतीय बैंकिंग प्रणाली के विभिन्न अंगों का समुचित तथा सुसंगठित विकास नहीं हुआ। इसके प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं —

अर्द्ध विकसित बैंकिंग प्रणाली—जिस प्रकार भारतीय अर्थ व्यवस्था का पूर्ण विकास नहीं हुआ है उसी प्रकार भारतीय बैंकिंग प्रणाली के विभिन्न अंगों का पूर्ण विकास नहीं हुआ है। भारत की जनसख्या तथा क्षेत्रफल को देखते हुये देश में बैंकों की संख्या बहुत कम है। यदि हम अन्य देशों से भारत की तुलना करें तो हमें पता चलेगा कि बैंकिंग सुविधाओं के विकास में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है। निम्नलिखित आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है :—

देश	(प्रति दस लाख व्यक्ति बैंक शाखाओं की संख्या)
आस्ट्रेलिया	४५०
कनाडा	५५६
इंगलैण्ड	२२६
भारत	१५.५

यह आंकड़े १९४९ के वर्ष से सम्बन्ध रखते हैं।

भारतीय बैंकिंग प्रणाली के अर्द्ध विकसित होने का मुख्य कारण यह है कि अभी तक भारत में औद्योगिक विकास नहीं हुआ है। कृषि व्यापार तथा अन्य क्षेत्रों में भी स्थिति एवं जैसी ही है। भारत की प्रतिव्यक्ति आय केवल २६६ रुपये है जबकि इंगलैण्ड में ४३५१ रुपये तथा अमेरिका में ६४१० रुपये हैं। जिस देश में

प्रति व्यक्ति आय इतनी कम हो वहा के लोग न तो पूंजी का सचय कर सकते हैं और न बैंकिंग सुविधाओं का लाभ उठा सकते हैं।

1 भारतीय जनता मे बैंकिंग की आदत (Banking Habits) की कमी है—भारतीय बैंकिंग प्रणाली के पिछडे हुए होने का एक कारण यह भी है कि भारतीय जनता पूरी तरह शिक्षित नहीं है। लोगो मे बैंकिंग की आदतो का उदय नही हुआ है। लोग बैंक मे रुपया जमा करने मे सकोच करते है। चैक अथवा साख पत्रो के प्रयोग की आदतो का भी विकास नही हुआ। अशिक्षित होने के कारण बैंक की काय प्रणाली भी एक साधारण व्यक्ति की समझ मे आसानी से नही आती। कुछ लोग अपनी धन दौलत को गुप्त रखना चाहते हैं और बैंक मे रुपया इसलिए जमा नही करते कि उन्हे आयकर विभाग का भय रहता है।

2 देश के विभिन्न क्षेत्रो मे बैंकों का असमान वितरण— भारत एक विशाल देश है। कुछ भाग आर्थिक दृष्टि से काफी विकसित हो चुके हैं। ऐसे क्षेत्रो मे बैंकिंग सुविधाओ का भी विकास हुआ है। कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जो औद्योगिक तथा वाणिज्य के क्षेत्र म अविकसित अथवा कम विकसित है। इन स्थानो म बैंकिंग का विकास भी बहुत कम हुआ है। हम देखते हैं कि कुछ स्थानो पर तो अनेक बैंको की शाखाए स्थापित की गई हैं और कुछ स्थानो पर एक भी बैंक की शाखा नही है।

भारतीय जनता अधिकतर ग्रामो मे रहती है। ग्रामीण क्षेत्रो मे आधुनिक बैंकिंग सुविधाओं का पूर्णतया अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रो म तथा छोटे कस्बो मे जो भी बैंकिंग सुविधाए उपलब्ध हैं वे या तो देशी बैंकर्स अर्थात् महाजनो और साहूकारो द्वारा प्रदान की जाती हैं या सहकारी साख सस्थाओ द्वारा। दुर्भाग्य यह है कि आधुनिक बैंको तथा देसी व सहकारी बैंको क बीच किसी प्रकार का सामजस्य नही पाया जाता। दूसरे यह सहकारी साख समितियो तथा महाजन स्वय अनेक दोषो तथा कमियो के शिकार हैं।

3 असन्तुलित बैंकिंग प्रणाली—जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली मे कई प्रकार की बैंकिंग सस्थाएं शामिल है। इनम से प्रत्येक का समान विकास नहीं हुआ है। इससे सम्पूर्ण बैंकिंग प्रणाली मे असन्तुलन पाया जाता है जो देश के सर्वमुखी आर्थिक विकास मे बाधक हुआ है। देश मे अधिकाश बैंक मिश्रित पूजी वाले व्यापारिक बैंक हैं। यह बैंक प्रमुख नगरो तथा व्यापार केन्द्रो मे कार्य करते है और मुख्य रूप से व्यापार तथा वाणिज्य को साख की सुविधाए प्रदान करते है। देश के औद्योगिक विकास के लिये औद्योगिक बैंक (Industrial Banks) की आवश्यकता होती है जनका भारत मे पूरी तरह अभाव रहा है। १९४८ मे भारत सरकार के प्रयत्नो से औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Corporation) की स्थापना हुई थी। यह औद्योगिक विकास के लिये साख प्रदान करने वाली प्रथम सस्था थी। पिछले एक दो वर्षों मे इस प्रकार की कई अन्य सस्थाओ की भी स्थापना की गई है। किन्तु देश की आवश्यकताओ को देखते हुए यह सुविधाए आज भी अपर्याप्त है। यही स्थिति कृषि बैंको की भी है। कृषि भारतीय जनता का मुख्य

व्यवसाय है किन्तु कृषि साख प्रदान करने वाले आधुनिक बैंकों का भारत में पूर्ण अभाव है। इस कमी को सहकारी साख समितियों की स्थापना करके पूरा करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु भारतीय सहकारी आन्दोलन में भी अनेक दोष है। सबसे बड़ी कमी यह है कि सहकारी साख संस्थाओं तथा आधुनिक बैंकों में सामजस्य स्थापित नहीं हो सका है। स्टेट बैंक आफ इण्डिया की स्थापना से इस कमी को दूर करने में सहायता मिल सकती है।

यदि हम विनिमय बैंकों (Exchange Banks) की ओर नजर डालें तो यहा भी स्थिति अच्छी नही है। भारत के विदेशी व्यापार तथा विदेशी भुगतान का कार्य विदेशी बैंकों के हाथ में है। यह सभी बैंक वास्तव में विदेशी हैं। अभी तक भारत में एक भी विनिमय बैंक स्थापित नहीं हो सका है। वर्तमान विनिमय बैंकों की नीति भी पक्षपातपूर्ण रही है यद्यपि अब उनकी कार्य विधि पर रिजर्व बैंक का पूरा नियन्त्रण है।

४. **भारतीय बैंकिंग प्रणाली में सुसगठन का अभाव**—ऊपर बताया जा चुका है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली में दो अंग हैं। प्रथम अंग में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया मिश्रित पूँजी वाले बैंक (Joint Stock Banks) जिन्हे व्यापारिक बैंक भी कहते हैं (Commercial Banks) औद्योगिक बैंक, विनिमय बैंक सहकारी बैंक तथा भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks) आदि शामिल हैं। दूसरे अंग में देशी बैंकर्स महाजन साहूकार तथा ग्राम बनिया आदि शामिल हैं। भारतीय बैंकिंग प्रणाली के इन दोनों अंगों की कार्य प्रणाली एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। देशी बैंकर्स तो लाखों की संख्या में देश भर में फैले हुए हैं और बड़े ही विस्तृत क्षेत्र में लेन देन का काम करते हैं किन्तु यह पूर्णतया असगठित हैं। ये रिजर्व बैंक से किसी प्रकार से सम्बद्ध नहीं हैं। आधुनिक बैंकिंग संस्थाएं जो प्रथम अंग के अन्तर्गत आती हैं उनके भी आपसी सम्बन्ध सहयोगपूर्ण नहीं हैं। स्टेट बैंक बनने से पूर्व इम्पीरियल बैंक एक व्यापारिक बैंक था किन्तु उसे विशेषाधिकार प्राप्त थे जिनके कारण अन्य सहवर्गी बैंक उनकी प्रतियोगिता या मुकाबला नहीं कर पाते थे। आज भी स्टेट बैंक बन जाने से स्थिति में कोई भारी अन्तर नहीं हुआ है। अन्य व्यापारिक बैंक भी एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं और कड़ी प्रतियोगिता भी करते हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि भारत में कोई अखिल भारतीय बैंक संघ (All India Banks Association) नहीं है जो इनमें आपसी सहयोग पैदा कर सके। सहकारी बैंकों तथा मिश्रित पूँजी वाले बैंकों में आपसी सहयोग की बहुत अधिक आवश्यकता है किन्तु इसका भी देश में अभाव है। इस असगठन तथा सूत्र बद्धता के अभाव के कारण रिजर्व बैंक बैंकिंग प्रणाली के सुसगठित विकास में पूरा योग नहीं दे पाता जैसा कि अन्य देशों के केन्द्रीय बैंकों द्वारा किया जाता है।

५. **विपत्र बाजार का अभाव**—भारतीय मुद्रा बाजार (Indian Money Market) का एक बड़ा दोष यह है कि यहा सुसगठित तथा सुव्यवस्थित विपत्र बाजार (Bill Market) का अभाव है। विपत्र बाजार के विकसित होने से व्यापारी वर्ग

को सुगमता पूर्वक सस्ती दरो पर साख प्राप्त होने लगती है और बैंको को अपनी फालतू निधि (Surplus Funds) का विनियोग करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। भारत मे बहुत दिनो से विपत्र बाजार की कमी अनुभव की जा रही है किन्तु कुछ विशेष कमियो के कारण एक सुसगठित बिल बाजार का विकास नही हो सका है। रिजर्व बैंक ने भी इस कमी को अनुभव करते हुये विपत्र बाजार के विकास के लिये एक योजना लागू की है। इस योजना की सफलता के लिए काफी समय चाहिए। विपत्र बाजार का विकास बैंकिंग प्रणाली के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है क्योकि इससे बैंको को साख सृजन (Creation of Credit) के लिए नकद साख की आवश्यकता नही रहती। नकद साख के आधार पर साख का सृजन अपेक्षाकृत महँगा पडता है। विपत्र बाजार के विकसित होने से साधनो की सरलता बनी रहती है। किसी भी समय साख पत्रो को बिल बाजार मे बेचकर नकद रुपया प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये खजाने मे अधिक मात्रा मे नकदी रखने की आवश्यकता नही पडती।

उपरोक्त दोषो के अतिरिक्त भारत मे जितने भी प्रकार के बैंक पाये जाते है वे सब स्वय अपनी समस्याओं तथा दोषो से पीडित हैं जिनका उल्लेख आगे किया गया है।

रिजर्व बैंक द्वारा इन दोषो को दूर करने के उपाय—रिजर्व बैंक की स्थापना १९३५ मे हुई थी। तब से निरन्तर रिजर्व बैंक ने भारतीय बैंकिंग प्रणाली को सुधारने तथा सुसगठित करने के उपाय किये है। इस समय रिजर्व बैंक के चार विभाग हैं। इनमे से निर्गम विभाग (Issue Department) तो पत्र मुद्रा के सचालन तथा निर्गम से सम्बन्ध रखता है। दूसरा विभाग बैंकिंग विभाग (Banking Department) है जो बैंकिंग सम्बन्धी सब प्रकार के कामो का सचालन करता है। इन कामो में निरीक्षण, अनुसन्धान तथा परामर्श आदि के कार्य भी शामिल हैं। रिजर्व बैंक का तीसरा विभाग कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department) है। इस विभाग के द्वारा कृषि साख की सुविधाओ का विस्तार तथा सहकारी आन्दोलन को सहायता देने का काम किया जाता है। रिजर्व बैंक सहकारी आन्दोलन की प्रगति का अध्ययन करके उसमे सुधार के सुझाव पेश करता है। रिजर्व बैंक की स्थापना से सहकारी आन्दोलन के पुनर्गठन तथा कृषि साख सुविधाओं के विस्तार मे बडी सफलता मिली है। रिजर्व बैंक का चौथा विभाग विनिमय नियन्त्रण विभाग (Exchange Control Department) है जो विनिमय बैंको की कार्य प्रणाली का नियन्त्रण करता है और विदेशी विनिमय की समस्याओ को हल करने मे सरकारी नीति का सचालन करता है।

इस प्रकार रिजर्व बैंक भारतीय बैंकिंग प्रणाली के विभिन्न भागो को न केवल आर्थिक सहायता प्रदान करता है वरन् उनके कार्यो पर नियन्त्रण भी करता है। साथ ही उन्हे एक मित्र की हैसियत से सलाह भी देता है। रिजर्व बैंक द्वारा प्रतिवर्ष एक बुलिटन प्रकाशित किया जाता है जिसमे साल भर की बैंकिंग समस्याओ की प्रगति

का सर्वेक्षण रहता है। साथ ही उनकी कमियों का उल्लेख तथा उन्हें दूर करने के सुझाव भी रहते हैं।

रिजर्व बैंक बैंक दर नीति (Bank Rate Policy) तथा खुले बाजार के कार्य क्रमों (Open Market Operations) के द्वारा साख नियन्त्रण का कार्य भी करता है। १९३९ में जो बैंकिंग कम्पनीज ऐक्ट (Indian Banking Companies Act) पास किया गया है उससे रिजर्व बैंक को अन्य बैंकों पर (सहकारी बैंकों को छोड़कर) नियन्त्रण के विस्तृत अधिकार प्राप्त हो गये हैं। रिजर्व बैंक ने भारत में एक सुसंगठित विपत्र बाजार की स्थापना के लिये भी एक योजना चालू की है।

सुधार के लिए अन्य सुझाव

(१) भारतीय बैंकिंग प्रणाली के सुधार के लिये यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी आधुनिक बैंकिंग सुविधाओं को पहुँचाया जाये। देश की आर्थिक उन्नति के साथ ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति में भी सुधार होना अनिवार्य है। ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ी हुई प्रति व्यक्ति आय को उत्पादक कार्यों में ले जाने के लिये यह आवश्यक है कि बचत को प्रोत्साहन दिया जाये। इस प्रकार बैंकिंग सुविधाओं के विकास से ग्रामीण जनता को धन बचाने तथा उसका विनियोग करने का प्रोत्साहन मिलेगा और सस्ती दर पर उन्हें उत्पादन कार्यों के लिये साख की सुविधाएं प्राप्त हो सकेंगी। इसके लिये व्यापारिक बैंकों तथा सहकारी बैंकों में पूर्ण सहयोग तथा सामञ्जस्य की आवश्यकता है। स्टेट बैंक आफ इण्डिया की स्थापना से यह समस्या हल होने की सम्भावना है।

(२) देशी बैंकर्स तथा आधुनिक बैंकों में सामञ्जस्य की भी बहुत अधिक आवश्यकता है। भारत में देशी बैंकर्स लाखों की संख्या में लेन-देन का कार्य करते हैं। उनके संगठन की आवश्यकता है तथा साथ ही उनकी कार्य विधियों में समानता स्थापित की जाये। यह कार्य रिजर्व बैंक को करना चाहिए। देशी बैंकर्स भी रिजर्व बैंक के नियन्त्रण में कार्य करें तथा आधुनिक बैंकिंग संस्थाओं के साथ उनका सामञ्जस्य तथा सहयोग होना चाहिये।

(३) विपत्र बाजार की स्थापना—जैसा कि ऊपर कहा गया है रिजर्व बैंक ने १९५२ में विपत्र बाजार के संगठन की एक योजना लागू की है। योजना को पूरा होने में बहुत समय लगेगा। इसकी सफलता के लिये और अधिक प्रयत्नों की जरूरत है। यह एक मुश्किल कार्य है जिसके लिए काफी सोच विचार की आवश्यकता है।

(४) लोगों में बैंकिंग की आदतों का विकास—शिक्षा तथा प्रचार के द्वारा जनता को बैंकों के लाभ से परिचित कराया जावे और उन्हें बचत करने तथा बैंकों में रुपया जमा करने के लिये प्रोत्साहन दिया जावे। भारत में चैक (Cheques) का बहुत कम प्रयोग होता है। लोगों को चैक तथा अन्य साख पत्रों के प्रयोग तथा फायदों से परिचित किया जावे।

(५) आपसी प्रतियोगिता के स्थान पर परस्पर सहयोग को प्रोत्साहन दिया

जावे। विभिन्न प्रकार की बैंकिंग संस्थाएं एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करें और उनमें आपसी सहयोग हो तभी बैंकिंग प्रणाली की उन्नति हो सकती है।

प्रश्न १०२—भारत मे व्यापारिक बैंकों की वर्तमान स्थिति क्या है ? इनके मुख्य दोष क्या हैं ? १९४९ के बैंकिंग कानून द्वारा इन्हें दूर करने में क्या सहायता मिली है ? (दिल्ली १९३५ ४०, ५०, पंजाब ४८)

What is the present position of Joint stock Banks in India? What are their main defects? How far have they been removed by the Banking Act of 1949? *(Delhi 1935, 40, 50, Punjab 48)*

उत्तर भारतीय आधुनिक मुद्रा बाजार (Indian Money Market) में मिश्रित पूंजी वाले व्यापारिक बैंकों का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। १९ वीं शताब्दी के अन्त में भारतीय पूंजी से देश में कुछ व्यापारिक बैंकों की स्थापना हुई थी। तब से ज्यों २ घरेलू व्यापार तथा वाणिज्य का विकास हुआ है उसी के साथ २ भारत में बहुत से व्यापारिक बैंकों की स्थापना हुई है तथा इनकी शाखाओं का विस्तार हुआ है। आज भारत के प्रत्येक प्रमुख नगर तथा व्यापारिक केन्द्र पर इन बैंकों की शाखाएं स्थापित हो चुकी हैं।

व्यापारिक बैंकों को दो भागों में विभाजित किया जाता है :—

(१) अनुसूचित बैंक (Scheduled Banks)।

(२) गैर अनुसूचित बैंक (Non-Scheduled Banks)।

(१) अनुसूचित बैंक—वह बैंक जिसकी चुकता पूंजी (Paid up Capital) ५ लाख रुपए या इससे अधिक है और जिसका नाम रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की अनुसूची में दर्ज है, एक अनुसूचित बैंक कहलाता है। अनुसूचित बैंक बनने के लिये बैंक को रिजर्व बैंक के पास प्रार्थना पत्र भेजना पड़ता है। जब रिजर्व बैंक इस प्रार्थना पत्र को स्वीकार कर लेता है और बैंक का नाम अनुसूची में दर्ज कर लेता है तो वह बैंक अनुसूचित बैंक बन जाता है। ३१ मार्च १९५६ को भारत में कुल मिलाकर ८९ अनुसूचित बैंक थे।

अनुसूचित बैंकों को अपनी माग देनदारी (Demand Liability or Current Deposits) का ५ प्रतिशत तथा समय देनदारी (Time Liability or Fixed Deposits) का २ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा करना पड़ता है। उन्हें प्रति सप्ताह अपने हिसाब किताब का ब्यौरा रिजर्व बैंक के पास भेजना पड़ता है जिसमें यह दिखाया जाता है कि बैंक के पास कितना नकद रुपया है, कितने कर्जे बैंक ने दिये तथा कितने विपत्रों को भुनाया।

अनुसूचित बैंकों को रिजर्व बैंक से अनेक प्रकार की सुविधाएं तथा सहायताएं भी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिये वे आवश्यकता पड़ने पर रिजर्व बैंक से उधार ले सकते हैं, विनिमय विपत्रों को दुबारा भुना सकते है (Rediscount) तथा नि:शुल्क रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेज सकते हैं।

१९५६ के रिजर्व बैंक आफ इण्डिया (संशोधन) अधिनियम के अनुसार रिजर्व

बैंक को यह अधिकार प्राप्त हो गया है कि वह अनुसूचित बैंको से अपनी माग देनदारी Demand Liability का ५ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक तथा समय देनदारी (Time Liability) का २ प्रतिशत से ८ प्रतिशत तक अपने पास जमा करा सकता है। यह अधिकार इसलिये दिया गया है कि बैंको द्वारा साख सृजन पर रिजर्व बैंक का अधिक कठोर नियन्त्रण रह सके।

(२) गैर अनुसूचित बैंक—गैर अनुसूचित बैंक वे होते हैं जो रिजर्व बैंक से इतना निकट का सम्बन्ध नही रखते। उनके नाम रिजर्व बैंक की अनुसूची मे दर्ज नही होते। उन्हे वे सुविधाएं प्राप्त नही होती जो अनुसूचित बैंको को होती हैं। ३१ मार्च १९६६ को भारत मे कुल गैर अनुसूचित बैंको की सख्या ३८४ थी।

व्यापारिक बैंकों के कार्य—व्यापारिक बैंक मुख्य रूप से घरेलू व्यापार तथा वाणिज्य को साख की सुविधायें प्रदान करते हैं। कुछ बैंक अल्पकाल के लिये उद्योगों को भी वित्त प्रदान करते हैं किन्तु यह कार्य औद्योगिक बैंकों का है। कृषि साख अथवा विदेशी व्यापार के क्षेत्र में व्यापारिक बैंक कोई कार्य नहीं करते। इनके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं —

(१ विभिन्न प्रकार के खातो मे रुपया जमा करना—आमतौर पर व्यापारिक बैंको द्वारा तीन प्रकार के खातो मे रुपया जमा किया जाता है जो इस प्रकार हैं—

(अ) चालू खाता (Current A/c)—चालू खाते म रुपया जमा करने वालो को यह अधिकार होता है कि वे दिन मे जितनी बार चाहे रुपया जमा कर सकते हैं अथवा चैक द्वारा निकाल सकते हैं। इस खाते पर बैंक कोई ब्याज नही देता। उल्टा कुछ न कुछ वसूल करता है। यह खाता व्यापारी वर्ग की सुविधा तथा सहायता के लिये होता है यह जमा रुपया बैंक की माग देनदारी (Demand Liability) होती है क्योंकि जमा करने वाला किसी भी समय उसे माग सकता है।

(ब निश्चित खाता (Fixed Deposit A/c)—इस प्रकार के खाते में रुपया जमा करने वाला उस एक निश्चित समय से पूर्व नही निकाल सकता है। यह समय प्राय एक साल या ६ माह होता है। इस खाते पर बैंक ३½ प्रतिशत अथवा ३ प्रतिशत का ब्याज देता है। समय समाप्त होने से पूर्व जमा करने वाले को अपनी इच्छा बतानी पडती है कि वह अपना रुपया वापिस लेना चाहता है अथवा जमा रखना चाहता है। निश्चित खाते मे जमा रुपया बैंक की समय देनदारी (Time Liability) कहलाती है।

(स) बचत खाता (Savings Bank A/c)—यह खाता उन लोगो के लिये है जो छोटी बचत का पैसा बैंक मे जमा करना चाहते हैं। इन खातो मे से सप्ताह में केवल एक या दो बार रुपया निकाला जा सकता है। इस खाते पर बैंक १½ प्रतिशत या २ प्रतिशत ब्याज देता है।

(२) रुपया उधार देना—व्यापारिक बैंक उचित जमानत पर अपने ग्राहको को साख की सुविधाएं प्रदान करते हैं। यह साख अल्पकाल के लिये प्रदान की जाती

है और इस पर बैंक ५% या ६% का व्याज लेता है। साख प्रदान करने के दो तरीके हैं—

(अ) नकद साख (Cash Credit)—नकद साख में बैंक सामान अथवा अन्य प्रकार की उचित जमानत पर रुपया उधार देता है।

(ब) ओवर ड्राफ्ट (Over Draft)—इसके अन्तर्गत बैंक अपने ग्राहकों को अपने चालू खातों में से कुछ सीमा तक अधिक रुपया निकालने की अनुमति दे देता है। इस प्रकार जो रुपया निकाला जाता है वह एक प्रकार का उधार है जिस पर बैंक ब्याज वसूल करता है।

(३) हुन्डी तथा विनमय विपत्रों को भुनाना—व्यापारिक हुन्डी तथा विपत्रों (Bills of Exchange) का आधुनिक वाणिज्य में बड़ा महत्व है। व्यापारिक बैंक इन साख पत्रों को भुनाने का कार्य करते हैं। भारत में अभी तक विपत्र बाजार का पूरी तरह विकास नही हुआ है।

(४) व्यापारिक बैंक को अपने ग्राहकों के अभिकर्ता (Agents) के रूप में कार्य करना—व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए उनके चैकों का रुपया जमा करते हैं। उनके लिए बीमे के प्रीमियम (Premium) जमा करना तथा लाभांश (Dividends) आदि वसूल करने का कार्य भी करते हैं।

(५ रुपए को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने में सहायता देना—बैंक ड्राफ्ट (Bank drafts) के द्वारा रुपया सुगमतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सकता है। बैंक द्वारा रुपया भेजने की पद्धति काफी सस्ती, सुरक्षित तथा सुगम है।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त बैंक विभिन्न प्रकार के अन्य बहुत से कार्य भी करते हैं।

भारत की जनसख्या तथा क्षेत्रफल को देखते हुये देश में व्यापारिक बैंकों का पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। व्यापारिक बैंकों के निम्नलिखित दोष हैं—

व्यापारिक बैंकों के दोष

(१) नकद कोषों (Cash Reserve) की कमी—बैंक के प्रयोग की आदत का देश म पूरी तरह विकास न होने के कारण बैंकों को अधिक मात्रा में नकद रुपया अपने पास रखने की आवश्यकता पड़ती है। मुनाफे के लालच में बहुधा बैंक अपने नकद कोष का विनियोग कर देते हैं अथवा उधार दे देते हैं। प्रारम्भ के काल में काफी मात्रा में नकद रुपया अपने पास रखना बैंक की सुरक्षा के लिये आवश्यक है। इस नीति का पालन न करने के कारण ही अकसर बैंक फेल हो जाते हैं।

(२) बैंकिंग के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में भाग लेना—बहुधा बैंक अपने क्षेत्र के बाहर के व्यवसायों में भी भाग लेने लगते है जिनमे सट्टा तथा वाणिज्य आदि शामिल है। यह नीति बैंक के लिये घातक सिद्ध हो सकती है।

(३) बैंक के साधनों का गलत उपयोग—भारत के अधिकांश व्यापारिक बैंक

बैंक के कार्य क्षेत्र के अनुसार न्यूनतम पूंजी की मात्रा निर्धारित करने में हेर फेर नहीं किया जा सकता है। कोई भी बैंक रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति लिये बिना नई शाखा नहीं खोल सकता और न पुरानी शाखा का स्थान परिवर्तन कर सकता है।

(२) जो व्यक्ति किसी बैंक का डायरेक्टर अथवा मैनेजिंग एजेन्ट है वह दूसरे बैंक में यह पद ग्रहण नहीं कर सकता।

(३) कोई बैंक बैंकिंग के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य के लिये अपनी कोई सहायक कम्पनी स्थापित नहीं कर सकता और न अपनी चुकता पूंजी अथवा उस सहायक कम्पनी की चुकता पूंजी का ३० प्रतिशत से अधिक उसमें विनियोग कर सकता है।

(४) बैंक स्वय अपने शेयरों (Shares) की जमानत पर अथवा बिना जमानत के किसी भी डायरेक्टर अथवा किसी फर्म अथवा कम्पनी को उधार नहीं दे सकता जिसका बैंक स्वय अथवा उसका डायरेक्टर साझीदार है अथवा उसमें रुचि रखता है।

(५) प्रत्येक बैंक को सुरक्षित कोष (Reserve Fund) रखना पड़ेगा जिसमें उसे प्रतिवर्ष अपने लाभ का २० प्रतिशत उस समय तक जमा करना पड़ेगा जब तक कि यह सुरक्षित बैंक कोष बैंक की चुकता पूंजी के बराबर न हो जावे।

(६) प्रत्येक बैंक को अपनी माँग देनदारी का ५ प्रतिशत तथा समय देनदारी का २% नकद कोष के रूप में अपने पास अथवा रिजर्व बैंक के पास रखना पड़ेगा।

(७) प्रत्येक बैंक को अपने पास विभिन्न खातों में जमा हुआ कुल धन का कम से कम २० प्रतिशत नकदी सोने अथवा स्वीकृत प्रतिभूतियों के रूप में रखना पड़ेगा।

(८) विभिन्न खातों में जमा कुल धन के ७५ प्रतिशत भाग को भारत में रखना पड़ेगा।

उपरोक्त अधिनियम द्वारा रिजर्व बैंकों को व्यापक तथा विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिए गए हैं ताकि वह व्यापारिक बैंकों पर कठोर नियन्त्रण रख सके। यदि सार्वजनिक हित में आवश्यक हो तो रिजर्व बैंक इन बैंकों की साख नीति (Lending Policy) का स्वय निर्धारण कर सकता है। रिजर्व बैंक को इन बैंकों के हिसाब किताब की जाँच करने का अधिकार है और वह अपनी रिपोर्ट सरकार के सामने पेश कर सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९३६ के इस अधिनियम से व्यापारिक बैंकों के दोषों को दूर करने में बड़ी सहायता मिली है। रिजर्व बैंक को जो अधिकार दिये गये हैं उसका उसने बड़ी समझदारी के साथ प्रयोग किया है। यह कहना अनुचित न होगा कि यह अधिनियम बैंकों को सुसंगठित करके उनके दोषों को दूर करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

प्रश्न १०३—इम्पीरियल बेंक को स्टेट बैंक में क्यों परिवर्तित किया गया? इसकी स्थापना से ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग की समस्या कहा तक हल हो सकेगी?

Why was the imperial Bank Converted into the State Bank? How far will its establishment solve the problem of rural bankig?

उत्तर — भारतीय बैंकिंग प्रणाली में इम्पीरियल बैंक का स्थान—इम्पीरियल

बैंक की स्थापना १९२१ मे बम्बई, मद्रास तथा बगाल के तीनो प्रेसीडेन्सी बैंको को मिलाकर की गई थी। इम्पीरियल बैंक की पूजी तथा व्यवस्था अंग्रेजो के हाथ मे थी। वैसे तो यह बैंक एक व्यापारिक बैंक ही था किन्तु इसे कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे जो अन्य व्यापारिक बैंको को नही थे। इस बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्य व्यापारिक कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक के कार्य भी करना था। उस समय तक रिजर्व बैंक की स्थापना नही हुई थी इसलिए इम्पीरियल बैंक ही वे सब कार्य करता था जो आज रिजर्व बैंक द्वारा किये जाते हैं अर्थात् सरकार बैंकर का कार्य, बैंको का बैंक तथा साख का नियन्त्रण आदि का कार्य इम्पीरियल बैंक ही करता था।

हिल्टन यग आयोग की सिफारिश पर भारत मे जब केन्द्रीय बैंक की स्थापना का प्रश्न उठा तो उस समय एक मत यह भी व्यक्त किया गया कि इम्पीरियल बैंक को ही केन्द्रीय बैंक मे बदल दिया जाए किन्तु भारतीय मत उसके विरोध मे था। अन्त मे रिजर्व बैंक के नाम से १९३५ मे एक पृथक केन्द्रीय बैंक भारत मे स्थापित किया गया। रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद इम्पीरियल बैंक अधिनियम मे भी सशोधन करना अनिवार्य हो गया। यह सशोधन अधिनियम १९३४ मे ही पास किया गया। इस अधिनियम के द्वारा इम्पीरियल बैंक पर से बहुत से प्रतिबन्ध हटा लिये गये। पहले बैंक को ६ महीने से अधिक के लिये साख प्रदान करने की आज्ञा नही था, न ही वह किसी व्यक्ति को बिना उचित जमानत के उधार दे सकता था। इसी प्रकार बैंक विदेशी विनिमय के क्षेत्र मे कार्य कर सकता था रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद इन प्रतिबन्धो की कोई आवश्यकता नही रही। रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद इम्पीरियल बैंक को रिजर्व बैंक का अभिकर्ता (Agent) नियुक्त किया गया। जिन स्थानो पर सरकारी खजाने नही हैं वहा यह बैंक सरकारी लेन देन का कार्य भी करता रहा है। इस प्रकार भारतीय बैंकिंग प्रणाली मे इम्पीरियल बैंक का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। रिजर्व बैंक की भाति यह भी अपने प्रकार का अकेला बैंक था जिसका उदाहरण ससार के अन्य किसी देश मे देखने को नही मिलता।

इम्पीरियल बैंक के स्टेट बैंक में परिवर्तन के कारण

(१) इम्पीरियल बैंक सदैव से एक अजीब प्रकार की स्थिति मे रहा है। न तो यह पूरी तरह एक व्यापारिक बैंक ही था और न केन्द्रीय बैंक। इसका पूजी प्रबन्ध अंग्रेजो के हाथ मे था। बैंक के उच्च पद के कर्मचारी भी अंग्रेज ही हुआ करते थे। यह लोग भारतीय ग्राहकों के साथ पक्षपात पूर्ण नीति अपनाते थे। दूसरे इस बैंक पर सरकार की हमेशा कृपा दृष्टि रहती थी जिससे अन्य बैंक इससे ईर्ष्या रखते थे। इम्पीरियल बैंक को कुछ कार्यों मे एकाधिकार प्राप्त था। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद इसकी पुरानी स्थिति बनाये रखना सम्भव नही था। इसलिये इसका राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक हो गया।

(२) इम्पीरियल बैंक ने सरकारी कृपा के कारण ही उन्नति की थी। इतनी उन्नति कर लेने के बाद उसकी स्थिति को अन्य बैंको के बराबर ले आना उचित न

था। दूसरे इसके राष्ट्रीयकरण की माग काफी जोर पकड़ती जा रही थी इसलिए सरकार को उस पर विचार करना पडा।

(३) रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण १६४६ मे ही कर दिया गया था। इसके बाद इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण होना भी स्वाभाविक ही था।

(४) रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (All India Rural Credit Survey Committee) ने भी अपनी रिपोर्ट मे इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की। उपरोक्त समिति के विचार ग्रामीण साख के पुनर्गठन मे इससे सहायता मिलेगी तथा ग्रामीण क्षेत्रों मे आधुनिक बैंकिंग सुविधाओं का प्रसार हो सकेगा।

उपरोक्त कारणों से १ जुलाई १६५५ को स्टेट बैंक आफ इण्डिया की स्थापना की गई। स्टेट बैंक ने इम्पीरियल बैंक की समस्त शाखाओं को अपने हाथमें ले लिया। इस प्रकार इम्पीरियल बैंक स्टेट बैंक आफ इण्डिया में परिवर्तित हो गया।

स्टेट बैंक आफ इण्डिया का संविधान

स्टेट बैंक का शासन एक केन्द्रीय बोर्ड द्वारा किया जाता है जिसके निम्नलिखित सदस्य हैं—

(१) रिजर्व बैंक की सलाह से केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष। श्री पी० सी० भट्टाचार्य स्टेट बैंक के वर्तमान अध्यक्ष है।

(२) केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत तथा केन्द्रीय बोर्ड द्वारा नियुक्त एक या दो डायरेक्टर।

(३) रिजर्व बैंक की सलाह से केन्द्रीय बैंक द्वारा नियुक्त ८ डायरेक्टर जिनमे से दो सहकारी सस्थाओ की कार्य प्रणाली से भली प्रकार परिचित होने चाहिए।

(४) रिजर्व बैंक के अतिरिक्त अन्य शेयर होल्डर्स (Share Holders) द्वारा चुने गये ६ डायरेक्टर।

(५) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक डायरेक्टर।

(६) रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त एक डायरेक्टर।

स्टेट बैंक की पूंजी - स्टेट बैंक की अधिकृत पूंजी (Authorized Capital) २० करोड रुपये है। ५·६२५ करोड रुपए की चुकता पूंजी (Paid up Capital) रिजर्व बैंक को हस्तांतरित कर दी गई है। यह पूंजी इम्पीरियल बैंक के शेयरों के बदले दी गई है जो रिजर्व बैंक के पास थे। इम्पीरियल बैंक के अन्य शेयर होल्डर्स को हर्जाने के रूप मे स्टेट बैंक के कुछ शेयर दिये गये हैं।

स्टेट बैंक के कार्य—स्टेट बैंक वे सब कार्य करता रहेगा जो उसकी स्थापना से पूर्व इम्पीरियल बैंक द्वारा किये जाते थे। हैदराबाद स्टेट बैंक, पटियाला स्टेट बैंक तथा सौराष्ट्र बैंक को स्टेट बैंक में मिला दिया गया है। व्यापारिक बैंक के कार्यों के साथ साथ स्टेट बैंक रिजर्व बैंक के अभिकर्ता (Agent) के रूप में भी कार्य करता रहेगा। स्टेट बैंक को कानून द्वारा आदेश दिया गया है कि वह ५ वर्ष के अन्दर अपनी ४०० नई शाखाएं स्थापित करे जिससे सारे देश मे बैंकिंग सुविधाओ

का विस्तार हो सके। १ जुलाई १९५५ से ३१ दिसम्बर १९५६ तक स्टेट बैंक ६६ नई शाखाएँ स्थापित कर चुका है। नई शाखाएं खोलने के कार्य क्रम को तेजी से बढ़ाया जा रहा है।

ग्रामीण बैंकिंग तथा स्टेट बैंक—भारत में बहुत दिनों से यह कमी अनुभव की जा रही थी कि आधुनिक बैंकिंग की सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं होतीं। देश के व्यापारिक बैंक इस ओर कोई ध्यान नहीं देते तथा अपना कार्य क्षेत्र केवल व्यापारिक केन्द्रों तथा बड़े नगरों तक ही सीमित रखते हैं ग्रामीण क्षेत्रों की साख तथा बैंकिंग सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने का भार सहकारी संस्थाओं पर है। सहकारी संस्थाए पूंजी के अभाव तथा आर्थिक कठिनाइयों से पीड़ित हैं। उनके तथा व्यापारिक बैंकों के बीच किसी प्रकार का सामञ्जस्य नहीं है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली का यह एक भारी दोष है। स्टेट बैंक की स्थापना से यह दोष बहुत कुछ दूर हो जावेगा। कारण यह है कि स्टेट बैंक अपना कार्य क्षेत्र का ग्रामों की ओर विस्तार करेगा। इससे ग्रामीण क्षेत्रों को भी आधुनिक बैंकिंग की सुविधाएँ प्राप्त हो सकेंगी और सहकारी संस्थाओं को स्टेट बैंक से आर्थिक सहायता प्राप्त होगी। स्टेट बैंक की जो ४०० नई शाखाएँ स्थापित की जा रही हैं वे ऐसे स्थानों में स्थापित होंगी जहा बैंकिंग सुविधाओं का अभाव है।

स्टेट बैंक की स्थापना से ग्रामीण बचत को भी प्रोत्साहन मिलेगा तथा इस बचत के संग्रह का समुचित प्रबन्ध हो सकेगा। यह कहना अनुचित न होगा कि स्टेट बैंक ग्रामीण साख का एक शक्तिशाली साधन बनेगा और सहकारी बिक्री तथा गोदामों के विकास में महत्वपूर्ण योग देगा।

भारत के वित्त उपमंत्री ने स्टेट बैंक के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि भारत जैसे विशाल देश में जहा की ८०% से अधिक जनसंख्या ग्रामों में रहती है ग्रामीण साख का विशेष महत्व है जिसके अभाव में ग्रामीण जनता ऋण के भार से दबी हुई है। वर्तमान ग्रामीण ऋण का अनुमान ७५० करोड़ रुपये है। भारतीय ग्रामों में एक भारी संख्या भूमिहीन किसानों की भी है। इन्हें रोजगार दिलाने तथा उन्नति के अवसर प्रदान करने के लिए भी सुसंगठित साख व्यवस्था की आवश्यकता है।

प्रश्न १०४—रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की कार्य प्रणाली की विवेचना कीजिए। (पंजाब ४०, ४५, ५०, दिल्ली ५२, बम्बई ५२)

Describe the various functions performed by the Reserve **Bank of India.** *(Punjab 40, 45, 50, Delhi 52, Bombay 52)*

उत्तर— रिजर्व बैंक की स्थापना—हिल्टन यग आयोग (Hilton Young Commission) ने १९२५ मे भारत मे एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की सिफारिश की थी जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया था और १९३४ में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया अधिनियम पास किया गया जिसके आधीन १९३५ में रिजर्व बैंक की स्थापना हुई। रिजर्व बैंक की स्थापना से भारतीय बैंकिंग के विकास तथा सुधार मे महत्वपूर्ण योग मिला है।

१९३४ के एक्ट के अनुसार रिजर्व बैंक एक हिस्सेदारों का बैंक था जिसकी कुल पूजी ५ करोड रुपये थी। १९४९ में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। सरकार ने प्रत्येक १०० रुपये के शेयर को ११८ रुपये १० आने देकर मोल ले लिया। इस प्रकार अब रिजर्व बैंक पूरी तरह सरकारी बैंक है।

रिजर्व बैंक का विधान

रिजर्व बैंक के प्रबन्ध का भार एक केन्द्रीय संचालक समिति (Central Board of Directors) के हाथ में है। इस सचालक समिति के १४ सदस्य हैं। एक गवर्नर तथा दो उप-गवर्नर केन्द्रीय सरकार नियुक्त करती है, ४ सचालक स्थानीय बोर्ड से लिए जाते है और ७ केन्द्रीय सरकार नामजद करती है।

प्रत्येक स्थानीय बोर्ड में तीन सदस्य होते है जो प्रादेशिक हितो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रिजर्व बैंक की पूजी आज भी ५ करोड रु० ही है जो भारत सरकार के हाथ मे है। इसका अब किसी हिस्सेदार से कोई सम्बन्ध नही है।

रिजर्व बैंक के विभाग—रिजर्व बैंक के प्रमुख विभाग चार हैं —

(१) निर्गम विभाग (Issue Department)।
(२) बैंकिंग विभाग (Banking Department)।
(३) कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department)।
(४) विनिमय नियन्त्रण विभाग (Exchange Control Deptt)

उपरोक्त विभागो में पहिला विभाग पत्र मुद्रा के निर्गम तथा सचालन (Issue & Regulation of Paper Currency) का कार्य करता है। दूसरा विभाग अर्थात् बैंकिंग विभाग तीन उपविभागो की सहायता से सामान्य बैंकिंग कार्य करता है। इसका मुख्य उद्देश्य देश की बैंकिंग प्रणाली का नियन्त्रण करना है। इसके तीन उपविभाग इस प्रकार हैं (अ) सचालन विभाग (Operation Division), (ब) निरीक्षण विभाग (Inspection Division), (स) निस्तारण विभाग (Liquidation Division)। यह तीनो विभाग अपने २ क्षेत्र में कार्य करते है। बैंक का तीसरा प्रमुख विभाग कृषि साख विभाग है जो कृषि साख का

संचालन करता है तथा सहकारी साख संस्थाओं को साख प्रदान करता है। यह विभाग उस कमी को पूरा करता है जो भारत में एक अखिल भारतीय सहकारी बैंक न होने के कारण पाई जाती है। रिजर्व बैंक का चौथा विभाग विनिमय नियन्त्रण विभाग है जिसकी स्थापना दूसरे महायुद्ध के काल में हुई थी। यह विभाग विनिमय बैंकों का नियन्त्रण करता है तथा देश की विदेशी विनिमय सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में सरकार की सहायता करता है।

इस प्रकार रिजर्व बैंक उपरोक्त चारों विभागों के द्वारा अपने कार्यों का संचालन करता है।

रिजर्व बैंक के कार्य—रिजर्व बैंक भारत का केन्द्रीय बैंक है इसलिये इसे वे सब कार्य सौंपे गए हैं जो एक देश के केन्द्रीय बैंक को करने चाहियें। रिजर्व बैंक के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं।—

(१) पत्र मुद्रा का निर्गम (Issue of Paper Money)।
(२) सरकार का बैंक (Banker of the Government)।
( ) बैंकों का बैंक (Banker of the Banks)
(४) साख का नियन्त्रण (Control of Credit)।
(५) विनिमय नियन्त्रण (Exchange Control)।
(६) कृषि साख की व्यवस्था (Supoly of Agricultural Credit)।
(७) सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीति का संचालन (Regulation of the Economic & Financial Policies of the State)।
(८) राष्ट्र की धात्विक निधि को धरोहर के रूप में रखना (Custodian of Nation's Metallic Reserve)।

(१) **पत्र मुद्रा का निर्गम**:—सरकार ने पत्र मुद्रा के निर्गम का अधिकार रिजर्व बैंक को दिया है। रिजर्व बैंक द्वारा ५, १०, १०० तथा १००० रुपये के नोट छापे जाते हैं जिनपर सरकार की गारन्टी होती है। यह कार्य निर्गम विभाग द्वारा किया जाता है। १९५६ के रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम के अनुसार अब भारत में अनुपातिक निधि प्रणाली के आधार पर नोट छापे जाते हैं। रिजर्व बैंक को ११५ करोड़ रुपये की न्यूनतम निधि सोने के रूप में तथा ४०० करोड़ रुपये की निधि विदेशी प्रतिभूतियों के रूप में रखनी पड़ती है। इस न्यूनतम निधि के बाद बैंक जितनी मात्रा में चाहे नोट छाप सकता है। अक्टूबर १९५७ के एक अन्य संशोधन के अनुसार विदेशी प्रतिभूतियों की न्यूनतम मात्रा घटाकर ३०० करोड़ रुपये कर दी गई है। प्रथम संशोधन दूसरी पंचवर्षीय योजना के लिए घाटे की व्यवस्था (Deficit Financing) में सरकार की सहायता देने के लिए किया गया था दूसरा संशोधन इस लिए किया गया है कि दूसरी योजना में विदेशी विनिमय की भारी कमी अनुभव हो रही है। यह विदेशी विनिमय कोष (Foreign Exchange) उस कमी को पूरा करने के लिये प्रयोग में लाए जावेंगे।

१९५४ — ५५ में भारत में कुल ११६६१६ लाख रुपए के नोट चलन में थे।

लिए इस नीति को सक्रिय रूप से अपनाया है। पहले भारत में बैंक दर ३% थी। सन् १९५१ में रिजर्व बैंक ने बढ़ाकर इसे ३½% कर दिया था। यह नीति भारत में मुद्रा प्रसार के रोकथाम करने मे सहायक सिद्ध हुई है।

(ब) खुले बाजार की क्रियाएं (Open Market Operations) रिजर्व बैंक साख नियन्त्रण के लिये खुले बाजार की क्रियाओं का भी विशेष प्रयोग करता है। इस रीति के अनुसार असाधारण परिस्थितियों में रिजर्व बैंक विपत्रों को अनुसूचित बैंकों के द्वारा न खरीद कर स्वयं खुले बाजार से खरीदता है। यह नीति उस समय अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है जब देश में सुसगठित मुद्रा बाजार तथा विपत्र बाजार स्थापित हो जाए। इस समय रिजर्व बैंक को खुले बाजार में केवल सरकारी प्रतिभूतियों का ही क्रय विक्रय करना पड़ता है। यदि वह अधिक मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय करता रहे तो इसमें सरकार की साख कम होने का भय रहता है क्योंकि रिजर्व बैंक सरकारी बैंक है और सरकार का अभिकर्त्ता भी है।

(स) नकद कोष अनुसूचित बैंक जो नकद कोष (Cash Reserve) अपने पास रखते हैं उनका प्रतिशत बढ़ाकर रिजर्व बैंक साख नियन्त्रण कर सकता है। उसे यह अधिकार प्राप्त है यद्यपि अभी इसने इस नीति का प्रयोग नहीं किया है।

(द) प्रत्यक्ष कार्यवाही (Direct Action)—रिजर्व बैंक को भी अधिकार है कि वह किसी भी बैंक को बैंकिंग व्यवसाय करने से रोक दे। वह उनका निरीक्षण भी करता है और आवश्यकता पड़ने पर उनकी साख सम्बन्धी नीति (Lending Policy) स्वयं निर्धारित करता है।

(५) विनिमय नियन्त्रण— विनिमय नियन्त्रण का कार्य रिजर्व बैंक अपने विनिमय नियंत्रण विभाग द्वारा करता है। विनिमय नियंत्रण दूसरे महायुद्ध के दिनों में लगाया गया था। अब कोई भी धन रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना देश से बाहर नहीं भेजा जा सकता। भारत सरकार की विदेशी व्यापार नीति के अनुसार तथा विदेशी भुगतान सतुलन की स्थिति को देखते हुए वह विनिमय नियन्त्रण करता है। देश में जितने भी विदेशी विनिमय बैंक हैं वे सभी रिजर्व बैंक के पूरे नियन्त्रण में है और रिजर्व बैंक द्वारा उन्हें लाइसेंस (Licences) प्रदान किये गये है। यह नीति पचवर्षीय योजना की सफलता के लिये अधिक कठोरता से अपनाई जा रही है।

(६) कृषि साख व्यवस्था (Provision of Agricultural Credit)—रिजर्व बैंक की स्थापना से पूर्व भारत मे सहकारी साख आन्दोलन की स्थिति बड़ी असन्तोषजनक थी। उसे मजबूत बनाने के लिये तथा साख की सुविधाओं का समुचित प्रबन्ध करने के लिए भारत में एक अखिल भारतीय सहकारी बैंक की स्थापना होनी चाहिए थी किन्तु यह भार रिजर्व बैंक को सौंप दिया गया है। रिजर्व बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंक को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता प्रदान करता है, देश में सहकारी आन्दोलन की गतिविधि की देखभाल करता है और उसमें सुधार के सुझाव सरकार के सामने पेश करता है। कृषि साख के पुनर्गठन के हेतु रिजर्व बैंक ने हाल ही में एक अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (All India Rural

Credit Survey) का आयोजन किया था। इसकी सिफारिशों के अनुसार अन्य महत्वपूर्ण कदम उठाये गए हैं जिनमे इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण भी शामिल है। स्टेट बैंक की स्थापना ग्रामीण क्षेत्र में आधुनिक बैंकिंग की सुविधाएं प्रदान करने तथा सहकारी आन्दोलन की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के उद्देश्य से ही किया है। ग्रामीण साख के क्षेत्र मे पिछले २२ वर्षों में रिजर्व बैंक ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

(७) सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीति का संचालन— भारत की आर्थिक नीति समाजवादी अर्थ व्यवस्था को आधार मान कर बनाई गई है। देश पच वर्षीय विकास योजनाओं के युग मे प्रवेश कर चुका है। इन योजनाओं की सफलता के लिए सरकार को अपनी वित्तीय नीति में समय समय पर हेर फेर करना पड़ता है। यह हेर फेर मुद्रा प्रसार विरोधी नीति, विदेशी भुगतान सम्बन्धी नीति, घाटे की अर्थ व्यवस्था तथा सार्वजनिक ऋण आदि से सम्बन्ध रखते हैं। इस विषय मे रिजर्व बैंक सरकार को आवश्यक परामर्श देता है और सरकारी नीति को कार्य-रूप देने अथवा उसे सफल बनाने में योग देता है। राष्ट्रीयकरण के बाद रिजर्व बैंक भारत सरकार की आर्थिक नीति के संचालन का एक महत्वपूर्ण साधन है।

(८) राष्ट्र की धात्विक निधि को धरोहर के रूप में रखना— देश के स्वर्ण कोष, रजत कोष तथा विदेशी विनिमय कोषों को रिजर्व बैंक धरोहर के रूप मे अपने पास रखता है और उनका संचालन करता है।

रिजर्व बैंक की असफलताएं

(१) रिजर्व बैंक देश के आन्तरिक मूल्य स्तर को स्थिर रखने में असफल रहा है। रिजर्व बैंक की समस्त मुद्रा प्रसार नीतियों के बाद भी भारत मे मुद्रा प्रसार का जोर है और मूल्य स्तर बहुत ऊंचा है। इस असफलता के अनेक कारण हैं जिसका उल्लेख अन्य प्रश्न के उत्तर मे किया जा चुका है।

(२) रिजर्व बैंक भारत की बैंकिंग प्रणाली को पूर्ण रूप से विकसित करने तथा उसे मजबूत बनाने में भी असफल रहा है। यद्यपि इसे स्थापित हुये भी २० वर्ष से अधिक हो चुके हैं।

(३) रिजर्व बैंक अभी तक भारत मे एक सुसगठित बिल बाजार की स्थापना करने में भी असफल रहा है। रिजर्व बैंक ने १९५२ में इसकी एक योजना लागू की है किन्तु अभी तक उसे कोई विशेष सफलता प्राप्त नही हुई है।

(४) भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न अगों मे सामजस्य स्थापित करने में भी रिजर्व बैंक असफल रहा है। विशेष रूप से देशी बैंकर्स की समस्या को सुलझाने तथा उन्हें आधुनिक बैंकों की ही भांति नियंत्रित करने के इसने कोई उपाय नही किए हैं।

आशा की जाती है कि भविष्य में रिजर्व बैंक अपने इन कार्यों को अधिक सफलता पूर्वक कर सकेगा और समाजवादी अर्थ व्यवस्था वाले देश इसका और अधिक महत्वपूर्ण स्थान होगा।

———

अध्याय १६

भारतीय वित्त व्यवस्था

प्रश्न १०५—भारत सरकार की आय तथा व्यय की मुख्य मदें क्या हैं ?

(पंजाब १९५२, देहली ५३)

What are the main sources of revenue and expenditure of the Union Government? *(Punjab 1952, Delhi 53)*

उत्तर—भारत गणराज्य का नया संविधान २६ जनवरी १९५० को लागू किया गया जिसके अनुसार भारत सरकार तथा राज्य सरकारों की आय तथा व्यय के साधन निर्धारित कर दिए गए। जिस आधार पर केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के कार्य क्षेत्र निश्चित किए गए हैं उसी आधार पर उनकी आय व व्यय के साधनों का भी बटवारा किया गया है। भारत सरकार की आय तथा व्यय के निम्नलिखित साधन है —

भारत सरकार की आय के साधन

(१) कस्टम्स अथवा आयात निर्यात कर (Customs)
(२) संघीय उत्पादन कर (Cent al Excise Duty)
(३) कारपोरेशन कर (Corporation Tax)
(४) आयकर (कारपोरेशन कर के अतिरिक्त) (Income tax)
(५) मृत्युकर (Death Duties)
(६) सम्पत्तिकर तथा व्यय पर कर (Tax on Property and Expenditure tax)
(७) ब्याज से आय
(८) अफीम
(९) सिविल शासन
(१०) करेन्सी तथा टकसाल
(११) सिविल निर्माण कार्य
(१२) डाक एवं तार विभाग से आय
(१३) आय के अन्य साधन
(१४) रेलवे से प्राप्त आय

आय के उपरोक्त साधनों का विस्तृत ब्यौरा इस प्रकार है—

(१) कस्टम्स अथवा आयात निर्यात कर—यह कर भारत से बाहर जाने वाले अथवा देश के अन्दर आने वाले सामान पर लगाया जाता है। यह भारत सरकार की

उसको वसूल भी करती है किन्तु बाद मे इसका कुछ भाग राज्य सरकारो को भी दिया जाता है। भारत सरकार तथा राज्य सरकारो के बीच आय कर के वितरण का प्रश्न विवाद पूर्ण रहा है। सर ओटोनियर तथा श्री देशमुख आदि ने इस पर अपने निर्णय दिये। वर्तमान वितरण प्रथम वित्त आयोग (Finance Commission) की सिफारिशो के आधार पर होता है। प्रत्येक पाच साल के बाद एक नया वित्त आयोग नियुक्त किया जाता है जो इस सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार करके अपनी सिफारिशें पेश करता है। भारत का दूसरा वित्त आयोग नियुक्त हो चुका है और उसकी रिपोर्ट शीघ्र सरकार के सामने पेश होने वाली है। १९५८—५९ के बजट मे आयकर से कुल १६१.५० करोड रुपये की आय प्राप्त होने का अनुमान है। १९५७—५८ के बजट के अनुसार ३६०० रुपये प्रतिवर्ष की आय वाले व्यक्तियों पर आयकर लग जाता है। इससे पूर्व यह सीमा ४२०० रुपये प्रतिवर्ष थी। आयकर लगाने की प्रणाली मे भी कुछ परिवर्तन कर दिये गये हैं।

(४) कार्पोरेशन कर—यह भी आय कर की ही भांति एक कर है जो कम्पनियों आदि की आय पर लगाया जाता है। १९५८—५९ के बजट के अनुसार इस मद से ५५.५० करोड रुपये की आय प्राप्त होने का अनुमान है।

(५) मृत्यु कर—मृत्यु कर अधिनियम १९५३ मे पास किया गया था। इस कानून के अनुसार मरने के बाद हर व्यक्ति की सम्पूर्ण चल और अचल सम्पत्ति का मूल्यांकन किया जाता है और यदि उस सम्पत्ति का मूल्य ५०००० रुपये से अधिक है तो उस पर मृत्यु कर अथवा उत्तराधिकार कर उसके उत्तराधिकारी से वसूल किया जाता है। इस कर के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की आलोचनाए की गई हैं किन्तु यह कर न्यायोचित ही है और लगभग सभी देशो की कर प्रणाली मे इसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस कर की आय राज्य सरकारों को दी जाती है। अभी तक इस कर से अधिक आय प्राप्त नही होती किन्तु भविष्य मे होने की आशा है।

(६) सम्पत्तिकर तथा व्यय पर कर—यह एक नये प्रकार का कर है जो १९५७—५८ के बजट मे लगाया गया है। भारत सरकार ने कुछ दिन पूर्व राजस्व के विदेशी विशेषज्ञ श्री काल्डर को भारत मे बुलाया था। व्यय पर कर लगाने का सुझाव उन्होंने दिया। यह सर्व प्रथम भारत द्वारा ही परीक्षण के रूप मे लगाया गया है। इस कर के सम्बन्ध मे तरह तरह की आलोचनाएं की गई है। इसी प्रकार सम्पत्ति कर के विषय मे भी अनेक प्रकार के मत व्यक्त किये गये हैं। वास्तव मे कर आय पर लगने चाहिये न कि सम्पत्ति पर किन्तु भारतीय कर प्रणाली का यह भी एक नया परीक्षण है। यह कर उन व्यक्तियो से वसूल किया जायेगा जिनकी सम्पत्ति २ लाख रुपये से अधिक मूल्य की है। सम्पत्ति के मूल्य मे वृद्धि के साथ कर की भी दर बदलती जावेगी। १९५८—५९ के बजट मे इससे १५ करोड रुपये का अनुमान है।

(७) करेंसी तथा टकसाल—रिजर्व बैंक तथा भारतीय टकसालों से जो आय होती है वह भारत सरकार को मिलती है। १९५८—५९ के बजट के अनुसार इन साधनो से ३६.६२ करोड रुपये की आय होने का अनुमान लगाया गया है।

(८) डाक तथा तार—डाक तथा तार विभाग की आय भी भारत सरकार को मिलती है किन्तु यह अधिक नही है। १९५८—५९ के बजट के अनुमान के अनुसार इस साधन से २ ३४ करोड रुपये की आय का अनुमान है।

(९) भारतीय रेलो से आय—१९५० के रेलवे प्रस्ताव (Railway Convention) के अनुसार भारत सरकार को रेलो मे लगी पूजी पर ४ प्रतिशत की दर से लाभाश (dividend) मिलता है। इसमे से ब्याज की दर घटा कर भारत सरकार के पास थोडी सी आय बच रहती है। १९५८—५९ के बजट के अनुसार रेलो से ७ ०४ करोड रुपये की आय प्राप्त होने की आशा है।

सितम्बर १९५७ मे रेल यात्री पर एक अतिरिक्त कर भी लगाया गया है १९५८—५९ मे जिससे ९ २२ करोड रुपये की आय होगी जो राज्य सरकारो को दे दी जायेगी।

(१०) अफीम—अफीम की खेती करने, उसे बनाने तथा बेचने से भारत सरकार को पहले काफी आय होती थी। अब सरकार ने इसकी खेती आदि कम करा दी है। १९५८-५९ के बजट मे इस साधन से केवल २ ८७ करोड रुपये की आय प्राप्त होने की आशा है।

(११) दान कर (Gift Tax)—यह एक नया कर है जो १९५८-५९ के बजट मे लगाया गया है। चालू वर्ष मे इससे ३ ०० करोड रुपये की आय प्राप्त होने का अनुमान है।

(१२) अन्य साधन—अन्य साधनो मे ब्याज की आय, सिविल शासन, सिविल निर्माण आदि से भी आय होती है। १९५७-५८ के बजट मे इनसे अनुमानित आय का ब्यौरा इस प्रकार है।

सिविल शासन	४३ २१ करोड रुपये
ब्याज	४ ९० ,, ,,
सिविल निर्माण	२ ९५ ,, ,,
अन्य आय	२० ९५ ,,

१९५८—५९ मे भारत सरकार को कुल ७६८ ९९ करोड रुपये की आय होने का अनुमान है।

व्यय की मदें

भारत सरकार की व्यय की मुख्य मदें इस प्रकार हैं—

१—राजस्व की सीधी मांगें।

२—प्रतिरक्षा व्यय।

३—सिविल शासन।

४—ऋण पर ब्याज।

५—सार्वजनिक निर्माण कार्य।

६—राज्य सरकारो को अनुदान।

७—शरणार्थियो पर व्यय।

८—असाधारण व्यय।

९—पेन्शन।
१०—करेंसी तथा टकसाल।
११—अन्य व्यय।

१९५८–५९ के बजट मे भारत सरकार का कुल व्यय ७९९'०१ करोड रुपये होने का अनुमान है।

(१) राजस्व को सीधी मांगें—विभिन्न प्रकार के करो आदि को वसूल करने मे जो धन व्यय किया जाता है वह इस मद के अन्तर्गत आता है। १९५८–५९ में इस पर ९४·४५ करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है।

(२) प्रतिरक्षा व्यय (Defence)—भारत सरकार को देश की सुरक्षा के लिये सेना रखनी पडती है यह सरकारी व्यय की सबसे बडी मद है। पाकिस्तान की शत्रुता पूर्ण नीति के कारण सरकार को इस पर अधिक व्यय करना पड रहा है। १९५८–५९ में बजट के अनुमान के अनुसार प्रतिरक्षा पर कुल २७८·१४ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान है। भारत जैसे गरीब देश के लिये यह व्यय बहुत अधिक है किन्तु दक्षिण पूर्व एशिया की राजनैतिक स्थिति को देखते हुये इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

(३) सिविल शासन—इस मद के अन्तर्गत भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयो पर होने वाले व्यय शामिल हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद से मन्त्रालयो की संख्या और आकार बहुत बढ गया है। १९५८–५९ के बजट के अनुसार इस मद पर २००·४४ करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है। कुछ क्षेत्रो में यह विचार प्रकट किया जाता है कि भारत सरकार जनता के पैसे को फिजूल खर्ची के साथ व्यय करती है। विशेषकर विदेशो मे भारत के दूतावास इस आलोचना के वास्तव मे पात्र हैं।

(४) ब्याज पर व्यय—भारत सरकार विकास की योजनाओ के चलाने के लिए जनता से तथा विदेशो से बडी मात्रा मे ऋण लेती है जिस पर उसे ब्याज देना पडता है। पचवर्षीय योजनाओ के कारण यह व्यय पिछले कुछ सालो मे बहुत अधिक बढ गया है। चालू वर्ष मे इस मद पर ३५ करोड रुपये के व्यय का अनुमान है

(५) शरणार्थियों पर व्यय—देश के विभाजन के बाद से यह भी व्यय की महत्वपूर्ण मद हो गई है। आशा की जाती है कि दूसरी पचवर्षीय योजना की समाप्ति तक यह कार्य समाप्त हो जावेगा और फिर इस पर व्यय की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। चालू वर्ष मे इस मद पर २०·४८ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है।

(६) राज्य सरकारों को अनुदान—राज्य सरकारो को अपनी विकास योजनाओ को चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है। भारत सरकार अनुदान तथा ऋण के रूप म उनकी सहायता करती है। चालू वर्ष म राज्यो को अनुदानो के रूप मे ४७·०३ करोड रुपये दिये जाने का अनुमान है।

(७) राष्ट्र निर्माण के कार्यों पर व्यय राष्ट्र निर्माण कार्यों के अन्तर्गत वह व्यय किया जाता है जो शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, मकान निर्माण आदि कार्यों पर व्यय किया जाए। चालू वर्ष मे इस मद पर १८·७१ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान है।

(८) अन्य व्यय—उपरोक्त मदो के अतिरिक्त सिचाई, पेन्शन, करेन्सी तथा टकसाल आदि पर भी सरकार धन खर्च करती है।

प्रश्न १०६—भारतीय राज्य सरकारों की आय तथा व्यय की मुख्य मदों की पूर्ण विवेचना कीजिये।

Giv• the main sources of revenue & expenditure of the State Governments in India

उत्तर—भारतीय राज्यो को संविधान के अनुसार आय के जो साधन तथा व्यय की जो मदें प्रदान की गई हैं उनमे से निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं :—

आय के साधन

(१) मालगुजारी (Revenue)—बहुत काल से मालगुजारी राज्य सरकारों की आय का मुख्य साधन बना हुआ है। भारत एक कृषि प्रधान देश है जहा की ६० प्रतिशत जनता ग्रामो मे रहती है तथा कृषि पर निर्भर है। प्रत्येक काश्तकार को या तो सरकार को या जमीदार को भूमि के प्रयोग के बदले कुछ न कुछ अनिवार्य रूप से देना पडता है। इसका सिद्धान्त यह है कि देश की सारी भूमि राज्य (State) की सम्पति है जिसे जोतने का अधिकार किसान को राज्य से प्राप्त होता है इसलिए उसे मालगुजारी देनी चाहिये। जमीदारी प्रथा वाले क्षेत्रो मे सरकार अपने अधिकार जमीदार को दे देती है। जमीदार मालगुजारी सरकार को देने के उत्तरदायी होते हैं परन्तु लगान के रूप मे उन्हे किसान से इसे वसूल करने का अधिकार होता है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् जमीदारी प्रथा का कई राज्यो मे उन्मूलन कर दिया गया है और अब किसान का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। उत्तर-प्रदेश भी इन राज्यो मे से एक है। कर जाच समिति (Taxation Enquiry Committee) ने मालगुजारी को राज्य सरकारो की आय का एक लोचदार साधन बनाने के लिये कुछ आवश्यक सुझाव दिये है। समिति के अनुसार जमीदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् राज्य सरकारों को लगभग ७० करोड रुपये साल की आय इस एक साधन से होने लगी है जबकि पहले केवल ३०-४० करोड रुपए की आय हुआ करती थी। मालगुजारी की दर निर्धारित करने की प्रथा दोषपूर्ण होने के कारण इससे अधिक आय नही हो पाती।

(२) आबकारी (Provincial Excise):—राज्य सरकारें नशीली वस्तुओ की बिक्री पर आबकारी कर लगाती है। यह कर शराब, अफीम, गाजा, चरस आदि वस्तुओ पर लगाया जाता है। आबकारी कर से दो लाभ प्राप्त होते है। एक तो इन वस्तुओ का मूल्य बढ जाने के कारण लोग अधिक मात्रा मे इनका प्रयोग नही कर पाते दूसरे सरकार को अच्छी आय प्राप्त हो जाती है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् इस साधन से प्राप्त होने वाली आय प्रतिवर्ष घटती जा रही है। इसका कारण यह है कि कांग्रेस सरकार शुरू से ही नशा बन्दी के पक्ष मे रही है। सरकार का अन्तिम लक्ष्य समस्त देश मे पूर्ण नशा बन्दी (Prohibition) लागू करना है। उस समय आय का स्रोत समाप्त हो जायगा। बम्बई, मद्रास तथा उत्तर

(६) सिचाई—राज्य सरकारो द्वारा सिंचाई की जो सुविधाए प्रदान की जाती हैं उनके शुल्क के रूप मे उन्हे काफी आय प्राप्त होती है। यह सुविधाए नहरों, बिजली के कुओं तथा तालाबो आदि से प्रदान की जाती है। प्रथम तथा दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं मे सिचाई के साधनो के विकास पर सबसे अधिक महत्व दिया गया है। इन योजनाओं के पूरा हो जाने से न केवल कृषि की उन्नति होगी वरन् राज्य सरकारो की आय भी बढ़ेगी।

(७) रजिस्ट्रेशन (Registration)—सम्पत्ति के हस्तांतरण तथा अन्य चीजों की रजिस्ट्रेशन कराते समय सरकार को उसका शुल्क देना पडता है। सरकारी शुल्क दिये बिना यह कार्य नही हो सकता। रजिस्ट्रेशन से राज्य सरकारो को बहुत अधिक आय प्राप्त नही होती। यह आय का महत्वपूर्ण साधन नही है।

(८) स्टाम्प्स Stamps)—अदालतो मे जो मुकदमे होते हैं उन पर कोर्ट फीस देनी पडती है। इसके लिए सरकार द्वारा स्टाम्प्स की बिक्री की व्यवस्था है, मुकदमेबाजी कम हो जाने के कारण अब इस साधन से होने वाली आय भी कम होती जा रही है।

(६) कृषि आय कर (Agricultural Income-Tax) —वैसे तो आयकर कृषि आय पर लागू नही होता किन्तु राज्य सरकारो को अलग से कृषि पर आयकर लगाने का अधिकार दे दिया गया है। उत्तर प्रदेश, मद्रास तथा उड़ीसा राज्य ने कृषि आयकर लगाया है। कुछ अन्य राज्यो ने भी इसका अनुसरण किया है। जमीदारो उन्मूलन के कारण इससे प्राप्त होने वाली आय घट गई है। अभी तक इस कर की प्रगति उत्साह जनक नही रही है।

(१०) आयकर का भाग (Share from Income Tax)—आयकर वैसे तो केन्द्र सरकार लगाती और वसूल करती है किन्तु इसका ५५% भाग राज्य सरकारों मे बाट दिया जाता है।

(११) केन्द्रीय सरकार से अनुदान—राज्य सरकारो की व्यय की मदो को देखते हुये उनकी आय के साधन बहुत अपर्याप्त हैं। भारत के संविधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्यो को अनुदान के रूप मे आर्थिक सहायता देनी है। इस सम्बन्ध मे हर पाच साल के बाद वित्त आयोग अपनी सिफारिशे पेश करता है। दूसरे वित्त आयोग ने अपनी अन्तिम सिफारिशो मे आयकर, मृत्युकर तथा केन्द्रीय उत्पादन कर का कुछ भाग राज्यो मे बाटे जाने के लिए दर निर्धारित की हैं। आयोग की पूर्ण रिपोर्ट अभी प्रकाशित नही हुई है।

(१२) अन्य कर—अन्य करो मे मोटर गाडियो तथा पैट्रोल की बिक्री पर कर तथा बिजली कर आदि शामिल हैं।

व्यय की मदें

(१) सिविल शासन (Civil Administration)—राज्य सरकारो की व्यय की यह सब से महत्वपूर्ण मद है। इसके अन्तर्गत सामान्य शासन, पुलिस, जेल

तथा न्याय आदि की व्यवस्था आती है। राज्य सरकारें अपनी कुल आय का लगभग २५% भाग इस एक मद पर व्यय करती हैं।

(२) राजस्व की सीधी मांगें—राज्य सरकारो को भी विभिन्न करो आदि को वसूल करने के लिए धन व्यय करना पड़ता है। यह व्यय इस मद के अन्तर्गत आता है।

(३) राष्ट्र निर्माण के कार्य (National Building Activities)—राष्ट्र निर्माण के कार्यों के अन्तर्गत वे समाज सेवाएं आती हैं जिन पर लोक कल्याण निर्भर है। वास्तव में यदि देखा जाय तो राष्ट्र निर्माण के सभी कार्य जिन पर अधिक धन व्यय होने की आवश्यकता है, राज्य सरकारो के सुपुर्द कर दिए गए हैं जबकि उन की आय के साधन अपर्याप्त तथा बेलोचदार हैं। राष्ट्र निर्माण के कार्यों में निम्न-लिखित विभाग शामिल हैं—

(अ) शिक्षा—भारत को अधिकांश जनता अशिक्षित है। देश मे शिक्षा के प्रसार का कार्य एक विशाल कार्य है। ग्रामीण क्षेत्रो में बेसिक प्राइमरी स्कूलो से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का विस्तार व पुनर्गठन करना है। इसके लिए बहुत अधिक धन की आवश्यकता है। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त टैकनीकल शिक्षा, कृषि शिक्षा तथा डाक्टरी शिक्षा पर भी धन व्यय करना पड़ता है। कुछ समय से केन्द्रीय सरकार का शिक्षा मन्त्रालय राज्य सरकारो को शिक्षा के प्रसार तथा सुधार के लिये आर्थिक सहायता प्रदान कर रहा है।

(ब) स्वास्थ्य सेवा (Public Health)—राज्य सरकारो को दवाखानो तथा अस्पतालों की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। ग्रामीण क्षेत्रो मे इन सुविधाओं का बड़ा अभाव है। इस कार्य के लिये भी बड़ी मात्रा मे धन चाहिये यदि हम वास्तव में एक लोक हितकारी राज्य की स्थापना करना चाहते हैं।

(स) उद्योग (Industries)—कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगो की स्थापना तथा विकास का भार राज्य सरकारों पर है। सरकार को यथा सम्भव धन निकाल कर उद्योगो के विकास पर व्यय करना पड़ता है क्योंकि राज्य की जनता की आर्थिक उन्नति इसी पर निर्भर है।

(द) कृषि सुधार तथा सामुदायिक विकास—कृषि विभाग मुख्यतया राज्य सरकारों के आधीन ही है। कृषि सुधार के महत्व को हम सब जानते है। भारतीय कृषि की समस्याओ से भी हम भली भांति परिचित हैं। इस विशाल कार्य के लिए राज्य सरकारो को प्रतिवर्ष अधिक से अधिक मात्रा मे धन व्यय करना पड़ता है।

(य) सहकारिता (Co-operation)—कृषि की ही भांति सहकारिता का भी हमारे आर्थिक जीवन में बड़ा महत्व है। सहकारिता भी एक प्रांतीय विषय है। सहकारी आन्दोलन की उन्नति के लिये राज्य सरकारो को काफी धन व्यय करना पड़ता है।

(४) सिविल निर्माण—यह भी राज्य सरकारो के व्यय की एक प्रमुख मद है जिस पर सब राज्यो का कुल व्यय लगभग ५० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष होता है।

(५) ब्याज—राज्य सरकारें जो ऋण केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक अथवा मुद्रा बाजार से लेती हैं उन पर उन्हें प्रतिवर्ष काफी ब्याज देना पड़ता है। पंचवर्षीय योजनाओं के कारण राज्य सरकारों को अधिक मात्रा में ऋणों की आवश्यकता पड़ने लगी है तथा इस मद के अन्तर्गत होने वाला व्यय बढ़ गया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हमारी राज्य सरकारें धन की कमी से पीड़ित हैं उन्हें जो कार्य सौंपे गये हैं उनकी तुलना में आय के पर्याप्त साधन प्रदान नहीं किये गये हैं। प्रथम वित्त आयोग के सामने यह प्रश्न आया था। काफी विचार करने के बाद आयोग ने सिफारिश की कि केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को अधिक मात्रा में वित्तीय सहायता प्रदान करे। इधर देश के आर्थिक विकास की गति तीव्र होती जा रही है जिससे राज्य सरकारों के वित्तीय उत्तरदायित्व भी बढ़ते जा रहे हैं। यह प्रश्न इस समय दूसरे वित्त आयोग (Second Finance Commission) के विचाराधीन है। दूसरे वित्त आयोग ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट में सिफारिश की है कि राज्य सरकारों को आयकर में से ५५ प्रतिशत भाग, मृत्यु कर की कुल आय (खर्च आदि निकालकर) तथा दिया सलाई तम्बाकू तथा वनस्पति तेल से प्राप्त उत्पादन कर का ४० प्रतिशत भाग राज्य सरकारों में बाँट दिया जाए। इसके अतिरिक्त राज्यों को कुछ विशेष योजनाओं के लिए अनुदानों के रूप में आर्थिक सहायता प्रदान की जाय। वित्त आयोग की पूरी रिपोर्ट शीघ्र ही सरकार के सामने पेश होने वाली है।

प्रश्न १०७—भारतीय सार्वजनिक ऋण के आकार तथा स्थिति पर प्रकाश डालिए। क्या आप स्थिति को संतोषजनक मानते हैं? (कलकत्ता १९५५)

Describe the size and position of India's public debt Do you regard the position as satisfactory? *(Calcutta 1955)*

उत्तर—आधुनिक युग में प्रत्येक सरकार के उत्तरदायित्व इतने अधिक बढ़ गये हैं कि उन्हें पूरा करने के लिये भारी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। यह धन करों के द्वारा तो प्राप्त किया ही जाता है किन्तु कुछ कार्यों के लिए सरकार ऋण लेकर भी अपना कार्य चलाती है। सार्वजनिक ऋण प्रायः विकास की दीर्घकालीन योजनाओं को चलाने के लिये, युद्ध के लिए अथवा अल्पकालीन तथा अस्थाई कमी को पूरा करने के हेतु लिए जाते हैं। जिस प्रकार राजस्व में सार्वजनिक व्यय तथा आय का महत्व है उसी प्रकार सार्वजनिक ऋण का भी है। सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न उसके भुगतान का है। इसके लिये सरकार के पास कई उपाय रहते हैं। प्रथम तो पुराने ऋणों को नये ऋणों में बदल दिया जाता है, दूसरे प्रकार अपनी राजस्व की आय में से कुछ भाग प्रतिवर्ष एक अलग सुरक्षित कोष में जमा करती जाती है और अन्त में उसी में से ऋण का भुगतान कर दिया जाता है। सरकार ऋण का भुगतान करने को मना भी कर सकती है (Repudiation) किन्तु यह साधारण परिस्थितियों में नहीं होता। विद्वानों का मत है कि सार्वजनिक ऋणों का भार आने वाली पीढ़ियों पर पड़ता है इसलिये सरकार को देख लेना चाहिये कि ऋण उचित कार्य के लिये ही लिए जा रहे हैं। अनुत्पादक कार्यों के लिये जो ऋण

लिए जाते हैं वे देश पर एक प्रकार के भार के रूप में होते हैं। यह बात केवल घरेलू ऋणों पर ही लागू नहीं होती वरन् विदेशी कर्ज पर भी लागू होती है।

भारतीय सार्वजनिक ऋण का आकार तथा स्थिति—भारत में सार्वजनिक ऋण का प्रचलन ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सार्वजनिक ऋण प्राप्त करके भारत में कई युद्ध लड़े और अपने शासन का विस्तार किया। जिस समय भारत का शासन कम्पनी के हाथ से ब्रिटिश सरकार के हाथ में आया उस समय भारत का कुल सार्वजनिक ऋण लगभग १० करोड़ पौंड था। इसका कुछ भाग रुपये के रूप में था और कुछ स्टर्लिंग के रूप में था।

१८६० के पश्चात भारत सरकार ने उत्पादक कार्यों के लिये कर्ज प्राप्त किये। इन कार्यों में नहरों तथा रेलों का बनाना प्रमुख था। १८७६ में भारत का उत्पादन ऋण ८५.६ करोड़ रुपये तथा अन्य ऋण १०५.८ करोड़ रुपये था। २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारतीय रेलें घाटे में ही चलती रहीं और रेलों का निर्माण बजट की बचतों में से न होकर ऋणों के द्वारा ही होता रहा। १८९८ में भारत का उत्पादक ऋण ११६.३ करोड़ रुपये तथा साधारण ऋण ६१ करोड़ रुपये हो गया था।

१८९९ से १९१३ तक भारत के उत्पादक ऋणों में और अधिक वृद्धि हुई। इसका कारण यह था कि सरकार ने रेलवे कम्पनियों से कुछ रेलें खरीद ली तथा साधारण ऋण को उत्पादक ऋण में बदल दिया। १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया जिसके फलस्वरूप भारत के अनुत्पादक ऋण बढ़कर २०४.६५ करोड़ रुपये हो गये। यह स्थिति उत्पादक ऋण की भी थी। यह १९१४ में ४११.२ करोड़ से उठकर १९२० में ४९६.२ करोड़ रुपये हो गया था। रेलों की उन्नति पर और अधिक धन व्यय होने के कारण यह १९२४ में ५७८.३६ करोड़ रुपये हो गया।

जब देश में आर्थिक मन्दी (१९२९–३०) आई तो सरकार को निरन्तर बजट के घाटे सहन करने पड़े जिससे सार्वजनिक ऋण की मात्रा बढ़ती गई। १९३७ में यह कुल १२०६ करोड़ रुपये थी। जब भारत में प्रान्तीय स्वशासन (Provincial Autonomy) लागू हुआ तो उसके बाद भी सार्वजनिक ऋण में वृद्धि ही होती रही। १९३९ में दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व केन्द्रीय सरकार का ऋण १२०३.८६ करोड़ रुपये तथा प्रान्तीय सरकारों का ऋण १ ७.६१ करोड़ रुपये था। इसके पश्चात की वृद्धि का अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है—

वर्ष	केन्द्रीय	प्रान्तीय अथवा राज्यों का
१९४०—४१	१२४७.६	१६६.६१
१९४५—४६	३२८३.३८	१६२.६७
१९४७—४८	२१६२.३४	११८.१४
१९४९—५०	२.९९.६४	१८६.६४
१९५०—५१	२५५०.०९	२४५.८६
१९५१—५२	२६११.१६	३२२.८
१९५२—५३	२६४०.२६	३१.८६
१९ ५—५६	३३११.५९	—
१९५६—५७	३९३१.६२	—

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि भारत के सार्वजनिक ऋण में पहिले कुछ वर्षों में तीव्र वृद्धि हुई है। इस वृद्धि का मुख्य कारण भारत की विकास योजनाएं हैं जिन्हें पूरा करने के लिए भारी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता सामान्य राजस्व के साधनों से पूरी नहीं की जा सकती।

१९५६-५७ के बजट के अनुमान के अनुसार राजस्व की कुल आय (Revenue Income) ४९३·६० करोड़ रुपये थी जबकि सार्वजनिक ऋण का अनुमान ३९११·९९ करोड़ रुपये का था। इसका अर्थ यह हुआ कि सार्वजनिक ऋण सार्वजनिक आय से ८ गुना अधिक है। यह स्थिति देखने में बड़ी गम्भीर प्रतीत होती है किन्तु वास्तव में इतनी खराब नहीं है। जो भी धन विकास के कार्यों के लिए उधार लिया जाता है उससे देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और यह ऋण देश के लिए आवश्यक ही है।

भारतीय सार्वजनिक ऋण की एक बड़ी विशेषता यह है कि अब तक इसका ९०% से भी अधिक भार घरेलू ऋण (Rupees Loans) के रूप में है जो देश के अन्दर ही प्रसारित किया गया है। विदेशी कर्जों की मात्रा अपेक्षाकृत कम है। ३९३१·९९ करोड़ के कुल ऋण में से ३७५ २९ करोड़ रुपये के मूल्य का घरेलू ऋण है। शेष भाग स्टर्लिंग, डालर अन्य देशों की मुद्राओं के रूप में है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के काल में भारत सरकार को लगभग ७०० करोड़ रुपया घरेलू ऋण के रूप में तथा ५०० करोड़ छोटी बचत के रूप में प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ेगी। लगभग ७५० करोड़ रुपये की विदेशी सहायता भी चाहिये जिसे भारत विदेशों से दीर्घकालीन ऋण के रूप में लेना चाहता है। आशा की जाती है कि अमेरिका, रूस पश्चिम जर्मनी जापान तथा अन्य देशों से भारत को विदेशी ऋण प्राप्त हो सकेंगे। इन सबका सामूहिक प्रभाव यह होगा कि देश के सार्वजनिक ऋण की मात्रा और अधिक बढ़ जावेगी। यदि हम शीघ्रता के साथ देश का विकास करना चाहते हैं तो यह कार्य करना ही पड़ेगा।

भारत सरकार जो ऋण लेती है उसका कुछ भाग राज्य सरकारों को भी ऋण के रूप में दिया जाता है। केन्द्रीय सरकार को इस पर ब्याज प्राप्त होता है। १९५६—५७ के बजट के अनुसार सरकार ने रेलों को १०८७·०९ करोड़ रुपये, राज्यों को १०८०·३२ करोड़ रुपये तथा पाकिस्तान पर ३०० करोड़ रुपये ऋण के रूप में प्रदान किये हुए हैं। इसके अतिरिक्त सरकार के पास नकदी तथा अन्य प्रतिभूतियां आदि हैं जिनमें पूंजी का विनियोग किया हुआ है। इन सबका मूल्य कम कर देने के बाद कुल सार्वजनिक ऋण जिस पर सरकार को ब्याज देना पड़ता है उसका मूल्य केवल ८८४ करोड़ रुपये रह जाता है। शेष पर सरकार एक ओर से ब्याज वसूल करती है और दूसरी ओर दे देती है। घरेलू ऋणों के कारण कर दाताओं पर अवश्य कुछ अधिक भार रहता है किन्तु देश की सामान्य आर्थिक स्थिति पर कोई भार नहीं पड़ता क्योंकि देश का धन देश के अन्दर ही रहता है। विदेशी ऋणों का देश के भुगतान सतुलन पर प्रभाव पड़ सकता है किन्तु अभी तक ऐसे कर्जों का भार बहुत अधिक नहीं है।

अगर हम इस प्रश्न पर दूसरी तरह से विचार करें तो हम देखेंगे कि भारत सरकार ने लगभग १००० करोड रुपए से अधिक राज्यो को उनके विकास कार्यों के लिये दे रखे हैं। १००० करोड रुपए से अधिक भारतीय रेलो को पूंजीगत विनियोग के उधार दिये हैं। १००० करोड रु० से अधिक सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो तथा अन्य योजनाओं पर लगा रखे है जिनसे बाद में सरकार को आय होने लगेगी। इसी आय मे से ऋणों के ब्याज तथा असल का भुगतान भविष्य मे हो सकेगा।

सरकार जो ऋण लेती है वह कई प्रकार के होते हैं। अल्पकाल के लिये जो ऋण दिये जाते हैं वे राज्य कोष विपत्रो (Treasury Bills) के रूप मे होते हैं। इनका उद्देश्य दिन प्रतिदिन के व्यय मे होने वाले धन की कमी को पूरा करना है। यह अधिक से अधिक ६ मास तक के लिये लिए जाते है।

सरकार राष्ट्रीय बचत के रूप मे भी ऋण प्राप्त करती है। दूसरे महायुद्ध के दिनो मे ही प्रतिरक्षा बचत सर्टिफिकेट (Defence Savings Certificates) के रूप मे जनता को धन बचाने और उसका विनियोग करने का प्रोत्साहन दिया था। प्रथम पचवर्षीय योजना के काल मे राष्ट्रीय बचत योजना तथा अल्प बचत पर विशेष जोर दिया था। दूसरी योजना के काल मे भी लगभग ५०० करोड रुपया इस प्रकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया जावेगा। इस प्रकार प्राप्त धन भी एक प्रकार का सार्वजनिक ऋण है जो १० या १२ वर्ष मे सरकार को वापिस करना पडेगा।

प्रथम योजना के काल मे सरकार ने राष्ट्रीय योजना ऋण (National Plan Loans) प्राप्त किये है। दूसरी योजना मे इस प्रकार के कई बडे ऋण लिये जावेगे। यह ऋण दीर्घ काल के लिये होते हैं और ५ या २० वर्ष के बाद इनके भुगतान का प्रश्न उठता है।

ऋण उत्पादन कार्यों के लिये ही लिये जा रहे है इतना ही काफी नही है। हमे यह भी देखना चाहिये कि उनका उपयोग किस प्रकार होता है। यदि इस धन का अपव्यय होता है और योजना सफल नही होती तो अन्त में यह भार आने वाली पीढियो को उठाना पडेगा। इसलिये ऋण लेने से पूर्व उसके उद्देश्य की सफलता की सम्भावनाओं पर भली प्रकार विचार कर लिया जाता है।

प्रश्न १०८—भारतीय सविधान के अनुसार केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के बीच आय के साधनों का बटवारा किस प्रकार किया गया है ? केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धो पर भी प्रकाश डालिये। (दिल्ली ५०, ५१ कलकत्ता ५४)

Examine the allocation of financial resources between the centre and the states Discuss also the financial relation between the two *(Delhi 50, 51, Calcutta 54)*

उत्तर—भारतीय सविधान मे जिस आधार पर केन्द्र तथा राज्य सरकारो के बीच आय के साधनो का बटवारा किया गया है तथा केन्द्र और राज्यो के वित्तीय सम्बन्धों की जो व्यवस्था की गई है उसे भली प्रकार समझने के लिये हमे १९३५ के भारत सरकार कानून (Government of India Act of 1935) तथा

उसकी वित्तीय व्यवस्थाओं का अध्ययन करना आवश्यक है क्योंकि इसी के आधार पर नये संविधान में संघात्मक वित्त व्यवस्था का उल्लेख किया गया है और केन्द्र तथा राज्य सरकारों को आय के वे ही साधन दिए गये हैं जो १९३५ के कानून के अनुसार दिए गए थे। इन सूचियों में दो एक मदों की वृद्धि अवश्य कर दी गई है ताकि भविष्य में अपने बढ़ते हुये व्यय को पूरा करने में सरकारों को सफलता मिल सके। केन्द्र तथा राज्य सरकारों की आर्थिक स्थिति को संतुलित रखने के लिये इनके वित्तीय सम्बन्धों के विषय में भी संविधान में उचित व्यवस्था की गई है जिसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

१९३५ का भारत सरकार कानून—वैसे तो १९१९ के भारत सरकार कानून के द्वारा ही केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों के आय तथा व्यय के साधन कुछ सीमा तक अलग कर दिये गये थे किन्तु इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम १९३५ के कानून के द्वारा उठाया गया था। इस कानून में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों की आय के स्रोत निम्नलिखित थे —

संघीय स्रोत अथवा भारत सरकार की आय के साधन

(१) आयात निर्यात कर

(२) औषधियों तथा कुछ अन्य नशीले पदार्थों को छोड़कर भारत में बनने वाले माल पर उत्पत्ति कर।

(३) कारपोरेशन कर।

(४) नमक कर।

(५) कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर।

(६) कृषि भूमि को छोड़ अन्य सम्पत्ति पर सम्पत्ति कर।

(७) उत्तराधिकार कर (कृषि भूमि को छोड़कर)।

(८) तमाम व्यवसायिक आदान प्रदानों पर स्टाम्प्स कर।

(९) वायु तथा रेल मार्ग द्वारा भेजे जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमा कर।

(१०) न्यायालयों के स्टाम्प्स से कर।

(११) अन्तर्देशीय जल मार्गों द्वारा भेजे जाने वाले माल तथा मुसाफिरों पर कर।

उपरोक्त कर केन्द्रीय संघ सरकार द्वारा लगाये जाते हैं तथा वही इनको वसूल करती है। परन्तु इनमें कुछ करों की आय बाद को प्रान्तों को बाटने की व्यवस्था थी। इन करों में निम्नलिखित शामिल हैं —

(१) कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर उत्तराधिकार कर। (२) चैक बिल आदि पर स्टाम्प्स कर। (३) मुसाफिरों तथा माल पर सीमा कर। (४) भाड़े तथा महसूल पर लगाये हुये कर।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य करों से प्राप्त आय के संघ तथा प्रान्तों के बीच बाटे जाने की भी व्यवस्था थी ताकि प्रान्त अपने व्यय को भली प्रकार चला सकें और उनके बजट में असंतुलन उत्पन्न न हो। इन करों में निम्नलिखित शामिल हैं —

(१) आय कर (कृषि आय को छोडकर)। (२) केन्द्रीय उत्पत्ति कर। (३) निर्यात कर (विशेष कर जूट के निर्यात कर) में होने वाली आय को सम्बन्धित प्रांतो तथा केन्द्र के बीच विभाजित करने का व्यवस्था थी।

प्रांतीय आय के स्रोत—१६३५ के कानून मे प्रांतों की आय के निम्नलिखित साधन प्रदान किए गये थे —

(१) मालगुजारी
(२) सिंचाई कर
(३) कृषि आय कर
(४) वनों से आय
(५) आबकारी
(६) बिक्री कर
(७) मोटर गाडियों पर कर
(८) स्टाम्प
(९) रजिस्ट्रेशन।
(१०) मनोरंजन कर।
(११) घुड दौड आदि पर कर।

१६३५ के कानून के अनुसार राष्ट्रीय विकास के कार्य प्रांतो को दे दिये गये थे। किन्तु प्रांतो की आय के अधिकतर स्रोत बेलोचदार थे। दूसरी ओर सघ सरकार के व्यय को देखते हुए आय के सब लोचदार साधन सघ सरकार को दिये गये थे। इससे प्रांतो की वित्तीय स्थिति में असन्तुलन उत्पन्न होने का भय था। इस समस्या का समाधान करने के लिये वार्षिक अनुदान के रूप मे सघ सरकार द्वारा प्रांतो को वित्तीय सहायता देने की भी व्यवस्था थी।

प्रांतों तथा केन्द्र के बीच आय कर आदि के बटवारे तथा अनुदानो के प्रश्न को तय करने के लिये १६३६ मे सर ओटोनीमियर, १६४६ मे श्री देशमुख तथा १६५२ मे प्रथम वित्तीय आयोग ने अपने सुझाव दिये हैं। दूसरे वित्तीय आयोग की रिपोर्ट नवम्बर १६५७ मे प्रकाशित हुई है। दोनो वित्तीय आयोगो की रिपोर्ट का उल्लेख हम आगे करेंगे।

नये सविधान मे वित्तीय व्यवस्था—जैसा कि ऊपर कहा गया है नये सविधान मे भी सघ सरकार तथा राज्यो के बीच आय के साधनो का बटवारा उसी प्रकार किया गया है जैसा कि १६५३ के कानून में किया गया था। सघ सरकार की आय ■ पुराने स्रोतो के अतिरिक्त समाचार पत्रो के क्रय, विक्रय तथा विज्ञापन के प्रकाशन पर कर भी सघ की आय सूची मे शामिल कर दिये गये हैं।

राज्य सरकारों की आय के स्रोतो मे बिजली के क्रय, विक्रय तथा उपयोग पर कर शराब तथा अफीम के प्रयोग से बनने वाली औषधियो पर कर तथा सौन्दर्य बढाने वाले उपकरणो पर करों को भी शामिल कर दिया गया है।

नये सविधान की जिन धाराओ म आय के स्रोतों के बटवारे का उल्लेख है

उनमे से निम्नलिखित धाराएं महत्वपूर्ण हैं —

सविधान की धारा २६८ में यह व्यवस्था की गई है कि स्टाम्प कर और केन्द्रीय सरकार की अधिकार सूचि मे शामिल दवाइयो, शृगार के प्रसाधनो इत्यादि पर उत्पादन कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये और वसूल किए जावेंगे। इनकी आय राज्य सरकारो को दी जायेंगी।

धारा २६६ के अनुसार अन्य प्रकार के कर जैसे उत्तराधिकार और सम्पत्ति-कर, रेल अथवा वायु मार्ग के यातायात पर सीमा कर और रेल के किराये तथा भाडे पर कर आदि तथा वितरण ससद के द्वारा बनाये गए कानून द्वारा होगा।

धारा २७० के अन्तर्गत आय कर वितरण वित्तीय आयोग की स्थापना से पूर्व राष्ट्रपति के आदेश से होगा। सविधान लागू होने के दो वर्ष के भीतर राष्ट्रपति प्रथम वित्तीय आयोग की नियुक्ति तथा उसके हर पाच साल के बाद एक वित्तीय आयोग की नियुक्ति करते रहेंगे और इन आयोगो की सिफारिशो पर वितरण सम्बन्धी आयोग जारी करते रहेंगे।

धारा २७३ के अन्तर्गत जूट तथा जूट के सामान के निर्यात कर के बदले में पश्चिम बगाल बिहार आसाम तथा उडीसा को १० वर्ष तक सहायता अनुदान (Grants in aid) देने की व्यवस्था की गई है। यह अनुदान भारत की सचित निधि मे से दी जायेगी। राज्यो को अनुदान देने के विषय मे उदारतापूर्ण नीति अपनाए जाने की भी व्यवस्था है। यह अनुदान राज्यो की आवश्यकताओ के आधार पर अथवा कुछ विशेष कार्यक्रमो के लिए भी दिये जा सकते हैं। परिगणित जातियो के कल्याण तथा आसाम के कबाईली क्षत्रों के प्रशासन के लिए भी अनुदान दिये जाने की व्यवस्था है।

इस प्रकार भारतीय सविधान ने केवल आय के साधनो का बटवारा राज्य तथा सघ के बीच कर दिया है वरन् दोनों की वित्तीय स्थिति मे सतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से राजस्व प्रणाली को लोचदार बना दिया है।

सघ तथा राज्यो के वित्तीय सम्बन्ध —केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्ध स्थापित करने का प्रश्न नया नही है। सघात्मक वित्त व्यवस्था मे इसकी आवश्यकता पडती ही है।

प्रारम्भ मे जब केन्द्र तथा राज्यो के आय के साधन अलग किये गये, प्रांतों की स्थिति मजबूत हो गई थी और प्रान्तो द्वारा केन्द्र की सहायता की व्यवस्था की गई थी। बाद मे स्थिति उल्टी हो गई। अब केन्द्र की स्थिति मजबूत है और राज्यों को केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता है।

केन्द्र तथा राज्यो के बीच वित्तीय सतुलन बनाये रखने के लिये नये सविधान मे कुछ ऐसे करो की व्यवस्था है जो केन्द्र द्वारा वसूल किये जाते हैं किन्तु उनकी आय का बटवारा केन्द्र तथा राज्यो के बीच किया जाता है। कुछ कर केन्द्र द्वारा लगाये जाते हैं किन्तु उनसे प्राप्त आय राज्यो को दे दी जाती है। इन सबका सक्षिप्त उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

प्रथम वित्तीय आयोग (First Finance Commission)—भारतीय संविधान लागू होने के २ वर्ष बाद राष्ट्रपति ने प्रथम वित्तीय आयोग को नियुक्त की जिसका उद्देश्य केन्द्र द्वारा प्रबन्धित तथा विभाजनशील आय में से राज्यों का भाग निर्धारित करना तथा राज्यों को मिलने वाले सहायता अनुदानों की मात्रा निर्धारित करना था। प्रथम वित्तीय आयोग ने १९५१ में राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट पेश की जिसकी मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी।

(१) आयकर में से राज्यों को ५० प्रतिशत के स्थान पर ५५ प्रतिशत भाग दिया जाए। प्रत्येक राज्य का अपना हिस्सा ८ प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर तथा २ प्रतिशत कर वसूली के आधार पर दिया जाये। उस समय के राज्यों को निम्नलिखित प्रतिशत मिलना तँ हुआ।

बम्बई	१७.५० प्रतिशत	राजस्थान	३.५०
उत्तर प्रदेश	१५.७५ "	पजाब	३.२५
मद्रास	१५.२५ "	ट्रावनकोर-कोचीन	२.५०
पश्चिम बगाल	११.२५ "	आसाम	२.२५
बिहार	९.७५ "	मैसूर	२.२५
मध्य प्रदेश	५.२५ "	मध्य भारत	१.७५
हैदराबाद	४.५० "	सौराष्ट्र	१.००
उड़ीसा	३.५० "	पेप्सू	०.७५

(२) केन्द्रीय उत्पादन करों में से तम्बाकू, दियासलाई तथा वनस्पति तेल से प्राप्त होने वाली आय का ४० प्रतिशत भाग राज्यों को उनकी जनसख्या के आधार पर दिया जाता है।

(३) जूट निर्यात कर के बदले में सम्बधित राज्यों को जो वार्षिक अनुदान दिया जाता है वह इस प्रकार है—

	लाख रुपये
पश्चिम बङ्गाल	१५०
आसाम	७५
बिहार	७५
उड़ीसा	१५

(४) सहायता अनुदानों के विषय में वित्तीय आयोग ने कई सुझाव दिए थे। आयोग के अनुसार मद्रास, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, हैदराबाद, राजस्थान, मध्य भारत तथा पेप्सू को सहायता अनुदान की कोई आवश्यकता नहीं है। पश्चिम बगाल, उड़ीसा तथा सौराष्ट्र को प्रतिवर्ष ८० लाख रुपये, ७० लाख रुपये तथा ४० लाख रुपये दिये गये। पजाब और आसाम को १.२५ करोड़ रुपये तथा १ करोड़ रुपये दिये गये। मैसूर तथा ट्रावनकोर-कोचीन को ४० लाख तथा ४५ लाख रुपये के वार्षिक अनुदान दिये गये।

(५) कुछ राज्यो को प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार के लिए चार वर्ष तक वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई। यह राज्य निम्नलिखित हैं —

राज्य	लाख रुपये
बिहार	४१
मध्य प्रदेश	४५
हैदराबाद	२०
राजस्थान	२०
उड़ीसा	१६
पजाब	१४
मध्य भारत	६
पेप्सू	५

प्रथम वित्तीय आयोग की सिफारिशो के विषय मे अनेक प्रकार की आलोचनाएं की गई हैं क्योकि वित्तीय आयोग प्रत्येक राज्य सरकार को उसकी इच्छा के अनुसार अनुदान तथा आयकर मे भाग प्रदान नही कर सका।

दूसरा वित्तीय आयोग—१९५६ मे राष्ट्रपति ने दूसरा वित्तीय आयोग नियुक्त किया जिसका कार्य प्रथम वित्तीय आयोग की ही भांति केन्द्रीय तथा राज्यो के बीच आय कर के बटवारे, उत्तराधिकार कर, तथा रेल के भाड़ो पर लगाय गये करो के वितरण पर विचार करना था। इसके अतिरिक्त सविधान की धारा २७३ तथा २७५ के अन्तर्गत निर्धारित प्रश्नो पर विचार करना था। दूसरे वित्तीय आयोग की रिपोर्ट १४ नवम्बर १९५७ को वित्त मत्री श्री टी० टी० कृष्णामाचारी द्वारा भारत ससद मे पेश की गई जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया है। इसकी प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं —

(१) आयकर वितरण—आयोग ने सिफारिश की है कि राज्यो को आयकर मे मे ५५ प्रतिशत के स्थान पर ६० प्रतिशत भाग प्रदान किया जाय। प्रत्येक राज्य को जो हिस्सा मिलेगा उसका निर्धारण ९० प्रतिशत जनसख्या के आधार पर तथा १० प्रतिशत वसूली के आधार पर किया जावेगा।

(२) केन्द्रीय उत्पादन कर मे से तम्बाकू दियासलाई तथा वनस्पति तेल के अतिरिक्त पाँच अन्य वस्तुओ पर कर की जो आय होगी उसमे से भी राज्यो को भाग दिया जावेगा। यह वस्तुयें हैं—कहवा, चाय चीनी कागज तथा वनस्पति गैर आवश्यक तेल (Vegetable Non-Essential Oils)। इस प्रकार अब इन ८ वस्तुओ के उत्पादन कर की आय का २५ प्रतिशत भाग राज्यो मे बाट दिया जावेगा। यह बटवारा जनसख्या के आधार पर होगा।

(३) सहायता अनुदान—भारतीय गणराज्य के १४ वर्तमान राज्यो मे से ११ को आयोग ने काफी बडी मात्रा मे सहायता अनुदान देने की सिफारिश की है। मद्रास बम्बई तथा उत्तर प्रदेश को कोई सहायता नही दी जायगी क्योकि इन्हे इसकी आवश्यकता नही है। अन्य राज्यो को निम्नलिखित अनुदान दिए जावेंगे —

राज्य	करोड रुपए
आन्ध्र प्रदेश	४ ००
आसाम	४·०५
बिहार	३·८०
बम्बई	—
केरल	१·७५
मध्य प्रदेश	३·००
मद्रास	—
मैसूर	६ ००
उडीसा	३ ३५
पजाब	२·२५
राजस्थान	२ ५०
उत्तर प्रदेश	—
पश्चिम बगाल	३ ३५
जम्मू तथा काश्मीर	३ ००
योग	३७ ५५

उपरोक्त अनुदानो को देते समय इस बात का कोई विचार नही होगा कि यह प्रारम्भिक शिक्षा अथवा अन्य किसी विशेष कार्य के लिये ही व्यय किये जाए।

(४) उत्तराधिकार कर का वितरण—अभी तक उत्तराधिकार की सम्पूर्ण आय राज्यो को ससद के कानून के अनुसार बाट दी जाती थी। इसका आधार वही था जो आय कर का है अर्थात् ८० प्रतिशत जनसख्या तथा २० प्रतिशत वसूली के आधार पर बाटा जाता है।

भविष्य के लिये आयोग ने सिफारिश की है कि इस मद की कुल आय को दो श्रेणियो मे बाटा जाये –(१) अचल सम्पत्ति से उत्तराधिकार कर की आय। (२) अन्य सम्पत्ति से आय। प्रथम को प्रत्येक राज्य मे स्थित अचल सम्पत्ति के आधार पर तथा दूसरे को जनसख्या के आधार पर वितरित किया जाये।

(५) रेल के किराये पर कर—जो अभी हाल मे लगाये गए हैं उनका वितरण राज्यो मे किया जाएगा। प्रत्येक राज्य को जो अनुमानित आय मिलेगा उसका उल्लेख निम्नलिखित तालिका में किया गया है।

देश	लाख रुपए
आन्ध्र प्रदेश	१३१
आसाम	४०
बिहार	१३६
बम्बई	२४१
केरल	२७

मध्य प्रदेश	१२३
मद्रास	६६
मैसूर	६६
उडीसा	२६
राजस्थान	१००
पंजाब	१२०
उत्तर प्रदेश	२७८
पश्चिम बंगाल	६४
कुल योग	१४८१

(६) मिल का सूती कपडा, चीनी तथा तम्बाकू से विभिन्न राज्यो को प्रति वर्ष लगभग ३२.५० करोड रुपये की आय बिक्री कर के रूप मे होती है। इस कर के स्थान मे जो उत्पादन कर मे वृद्धि की गई है उससे राज्यो को बिक्री कर की हानि होगी। उसकी क्षति पूर्ति के रूप मे उपरोक्त अतिरिक्त उत्पादन कर को सम्बन्धित राज्यों मे बाट दिया जाएगा।

इस प्रकार दूसरे वित्तीय आयोग की सिफारिशो के परिणामस्वरूप केन्द्रीय आय मे से प्रतिवर्ष लगभग १४० करोड रुपया राज्यो मे वितरित हो जाया करेगा। इससे राज्यों को भी अपनी बजटीय स्थिति मे संतुलन स्थापित करने मे सहायता मिलेगी।

दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्यो को केन्द्र से अपनी विकास योजनाओ के लिए जो सहायता मिलती है उस पर वित्तीय आयोग की सिफारिशो का कोई प्रभाव नही पड़ेगा।

———

University Examination Papers

1955

Answer any five questions All questions are of equal value

1 Discuss the economic significance of the occupational distribution of population in India

Suggest measures to remove rural under employment in India

2 Examine the position from the point of view of security of tenure and fair rents, of different tenure holders after the abolition of zamindari in the U P

3 Discuss the working of either a multi purpose co operative society or a primary credit society

What are the conditions for their success ?

4 Give an account of the river valley projects in India Discuss their influence on (a) agriculture and (b) industries

5 Describe the growth and state the present position of either the coal industry or the cotton industry in India

What are the main problems from the point of view of management ?

6 Examine the working of the First Five Year Plan

Discuss the role of foreign aid in its success

7 Examine the necessity and importance of rail road co ordination in India

Discuss the working of state transport in the U P. from the above point of view

8 Examine the functions of the Reserve Bank of India How far has it succeeded in co ordinating urban and rural banking in India

9 Describe the division of revenues between the Union and the States under the Constitution

State the position of income tax in the above allocation.

10 Write comprehensive notes on any two of the following —

(a) National income of India. (b) Early famines in India (c) Labour welfare and efficiency in India (d) Air transport

1956

Answer any five questions All questions carry equal marks

1 What economy system and pattern of society would you advocate for India and why ?

2 Discuss what solution you consider to the main problem of Indian population

3 What improvements would you suggest in the present system of agricultural marketing in India ?

4 Discuss the present position of the Indian cotton textile Industry.

5 Heavy, small and other industries—all need to be developed at the same time in the present economic conditions of India Do you agree ? Give reasons for your answer.

6 Discuss the desirability of nationalizing insurance in India in the next five years

7 State the role which the State should play in the agricultural development of India

8 What are the main problems of transport in India today ? How may they best be tackled ?

9 Attempt a lucid essay on the progress of the co operative movement in India

10 Write brief notes on any three of the following —

(a) Agricultural holdings in india, (b Provincial Co operative Banks, (c) Factory Legislation, (d) Transport Co ordination (e) Labour Welfare (f) Co operative Marketing in India.

B. A. Part II 1956

Answer any five questions. All questions are of equal value.

1 In what sense is India over populated ? Do you advocate population control ? Give reasons

2 Examine the national income of the country Why is it so low ?

3 How is agricultural land distributed in India ? Examine the case for land distribution and suggest lines of further land reforms in U P

4 Discuss the main problems of agricultural marketing in India. Suggest suitable remedies

5 How does the Government promote and regulate the large scale industries in India ? What further measures do you advocate in this regard ?

6 To what extent is social security guaranteed to industrial and agricultural workers in India ? How would you proceed to extend its scope ?

7 Distinguish between various economic systems and bring out the salient features of the economic system of India

8 Discuss the main features of the Indian money market and suggest suitable steps to improve its functioning

9 Examine critically the main sources of local revenue in U P Do you advocate transfer of any State taxes to local bodies ?

10 Write short notes on any three of the following —

(a) Agricultural holdings in India (b) Multipurpose Co-operative Societies (c) Trade Unions in India (d) Protective Tariff (e) Sales Tax.

Paper I 1957

Five questions only are to be attempted All questions carry equal marks Write concisely and to the point Not more than six pages should be written in answer to any question

केवल पाँच सवालों का जवाब दीजिये। सब सवालों के नम्बर बराबर हैं। जवाब संक्षिप्त मे लिखिये, और जो पूछा गया है उस ही का जवाब दीजिये। किसी भी सवाल में अपनी कापी के छ पृष्ठों से अधिक न लिखिये।

1 What do you understand by national income? What is the national income of India,

राष्ट्रीय आय से आप क्या मतलब समझते हैं? भारत की राष्ट्रीय आय क्या है?

2 What are the causes and effects of sub division and fragmentation of agricultural holdings? What remedial measures have been adopted to check and eradicate the evil?

खेतो के विभाजन और टुकड़े टुकड़े हो जाने के कारणों और और परिणामों पर प्रकाश डालिये। इस बुराई को रोकने और दूर करने के क्या उपाय किये गये हैं?

3 What is the importance of co operative marketing in the rural economy of India? What are the difficulties in making it more widespread and successful? Sugge t remedies

भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था म सरकारी क्रय-प्रणाली का क्या महत्व है? इस व्यवस्था को फैलाने और अधिक सफल बनाने म क्या २ कठिनाइयां हैं? उनको दूर करने के उपाय बतलाइये।

4 What is the present position of India in the matter of hydro electric development? Mention a few schemes undertaken recently to develop hydro electric power in the country

भारतवर्ष म पानी से बिजली की उत्पत्ति क सम्बन्ध म वर्तमान स्थिति क्या है? देश मे पन-बिजली बढाने की कुछ हाल की योजनाओ पर प्रकाश डालिये।

5 In what respects have trade unions in India helped to improve the working and living conditions of factory labour?

भारतवर्ष म मजदूरो के काम करने और रहन-सहन की दशा सुधारने म मजदूर सघों ने किस हद तक सहायता की है?

6 Discuss the importance of water transport in India How can this type of transport be further developed and made more beneficial for the country?

भारत म जल यातायात के महत्व का वर्णन कीजिये। इस प्रकार के यातायात को और अधिक उन्नत और उपयोगी बनाने के लिए क्या प्रयत्न किए जाने चाहिए?

7 Give in brief the main features of the Second Five Year Plan for India

भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना में आर्थिक उन्नति के लिए किये जाने वाले कुछ मुख्य प्रयत्नों का वर्णन कीजिये।

8 *Give* an estimate of the forest wealth of India How can this wealth be better preserved and utilized ?

भारत की वन-सम्पत्ति का उल्लेख कीजिये। इस सम्पत्ति को सुरक्षित रखने और अधिक उपयोगी बनाने के लिये क्या प्रयत्न किये जाने चाहिये ?

9 What do you understand by the public and private sectors of Indian industries ? *What measures* have been *suggested* to secure the co existence of both sectors ?

भारतीय उद्योगों में public और private क्षेत्र से आप क्या मतलब समझते हैं ? इन दोनों में सह-अस्तित्व कायम करने के लिये क्या यत्न किये जा रहे हैं ?

10 Write short notes on any two of the following —

(a) Joint family system
(b) Family planning
(c) Sale and purchase societies
(d) Scope of Indian economics

निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर टिप्पणी लिखिये —

(अ) संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली।
(ब) कुटुम्ब रचना
(स) क्रय और विक्रय समितियां।
(द) भारतीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र।

B. A. Paper II 1957

Answer any five questions All questions carry equal marks

किन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

1 Explain how the economic development of India has been conditioned by its social environment

भारत का आर्थिक विकास उसके सामाजिक वातावरण पर किस प्रकार निर्भर रहा है स्पष्ट कीजिये।

2 How far do you agree with the view that the rapid growth of population in India stands in the way of economic progress ?

भारतीय जनसंख्या की तीव्र वृद्धि आर्थिक विकास में बाधक है। इस बात से आप कहां तक सहमत हैं ?

3 Discuss the significance of cottage industries in solving the problem of unemployment in India.

भारत में बेकारी की समस्या सुलझाने में कुटीर उद्योग-धन्धों का क्या स्थान है ? समझाइये ?

4 Is the supply of capital for new industrial concerns in India

inadequate present time ? Give the factors responsible for such inadequacy.

क्या नये उद्योग-धन्धों के लिये पूंजी वर्तमान समय में अपर्याप्त है ? इस अपर्याप्त मात्रा के क्या कारण हैं ?

5 Describe the present position of the sugar industry in India.

भारत में शक्कर-उद्योग की वर्तमान स्थिति का वर्णन कीजिए।

6 How far have the Co-operative societies proved helpful to the agriculturists in India ?

भारत में सहकारी समितियां किसानों के लिए कहां तक लाभप्रद रही हैं ?

7 Explain the difficulties of Indian costal shipping and show how they can be met ?

भारतीय तटीय जहाजरानी की समस्या पर प्रकाश डालिये और यह बताइये कि इस समस्या को किस प्रकार हल किया जाय।

8 How far can the State help in the developmet of road transport in India

प्रान्तीय शासन सड़क यातायात की प्रगति में कहाँ तक सहायक हो सकता है ?

9 Write short notes on any three of the following :—

(a) Principal Agricultural Crops of India
(b) Indian Road Transport
(c) Shortage of Seaports in India.
(d) The Food problem
(e) Classification of Co operative societies
(f) The state and Agriculture.

निम्नलिखित में से किन्हीं तीन पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :—

(अ) भारत में कृषि की मुख्य फसलें।
(आ) भारतीय सड़क यातायात।
(इ) भारत में बन्दरगाहों की न्यूनता।
(ई) खाद्य समस्या।
(उ) सहकारी समितियों का वर्गीकरण।
(ऊ) राज्य और कृषि का सम्बन्ध।

1958

1 'Viewed over a long period the Indian economy has been more or less stagnant and has failed to meet the demands of a rapidly growing population'

Do you agree with the above statement ? Give reasons for your answer.

"प्राचीन काल से भारतीय अर्थ व्यवस्था बहुत कुछ स्थिर चली आती है,

ग्रौर जनसख्या की वेगयुक्त वृद्धि की माग के अनुसार उत्पादन
नही हुआ । " rists

क्या आप ऊपर दिये हुए कथन से सहमत हैं ? अपना उत्तर कारणों के सहित दीजिए ।

2 'Agriculture is the dominant issue in India. It can not be dealt with unless all feudal relics *are swept away* and *modern met*hods introduced and Co operative farming encouraged.'

Discuss the above statement, with special reference to Uttar Pradesh

"भारत म कृषि समस्या बहुत महत्वपूर्ण है और इसका उस समय तक हल नही हो सकता जब तक सामन्त प्रणाली का कोई भी चिन्ह रहता हैं ग्रौर जब तक ग्राधुनिक तरीको का प्रयोग नही किया जाता और सहकारी खेती को प्रोत्साहन नही दिया जाता ।

ऊपर दिये हुए कथन पर, उत्तर-प्रदेश की स्थिति विशेष रूप से ध्यान मे रखते हुए बहस कीजिए ।

3 Discuss the steps taken in recent years to reorganize rural credit Co operation in Uttar Pradesh

उत्तर प्रदेश मे पिछले कुछ वर्षों मे ग्रामीण साख सहकारिता को पुन सगठित करने के लिये क्या किया गया है ?

4 Point out the distribution of sugarcane, cotton, tea and coal in India, and discuss their importance in Indian trade and industry.

*गन्ना, कपास चाय और कोयला भारत मे कहा कहा होता है भारतीय व्या*पार ग्रौर उद्योग के लिए उनका क्या महत्व है ?

5 Examine the importance of cottage industries in Indian economy How can they hold their own against large scale industries ?

भारतीय ग्रर्थ व्यवस्था मे कुटीर उद्योग के महत्व का परीक्षण कीजिए । बडे पैमाने पर चलाने वाले उद्योगो का किस प्रकार सामना कर सकते हैं ?

6 Discuss India's industrial policy under the Second Five Year Plan and describe the steps that are going to be taken to implement it

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे भारतीय ग्रौद्योगिक नीति पर बहस कीजिए ग्रौर यह बतलाइये कि इसे क्रियात्मक रूप देने के लिए क्या क्या करने का विचार है ।

7 'If Indian labour does not Co operate with employers in increasing production, not only the community but also labour will suffer' Examine Carefully this statement

inadequate "यदि भारतीय मजदूर कारखानेदारों से मिलकर उत्पादन मे वृद्धि नही करें तो इससे केवल समाज को ही नही बल्कि उनके अपने हितों को भी हानि पहुँचेगी।" इस कथन का ध्यान पूर्वक विश्लेषण कीजिए।

8 How far do our means of transportation serve the needs of rural areas? Make suggestion for their development.

हमारे यातायात के साधन ग्रामीण क्षेत्रो की आवश्यकता कहा तक पूर्ण करते हैं? उनके विकास के उपाय बतलाइये।

9 Discuss the merits of re grouping of Indian railway What measures would you recommend to reduce over crowding in railways?

भारतीय रेलों के पुन. समूहकरण से क्या क्या लाभ प्राप्त हुए है? रेलों म भीड कम करने के लिए आप क्या बतायेंगे?

10 Write short notes on any two of the following.—

(a) Positive and preventive Checks;
(b) Land mortgage banks,
(c) Managing agency system,
(d) Recent trends in India's foreign trade.

निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर टिप्पणी कीजिए —

(क) नैसर्गिक और कृत्रिम रोक, (ख) भूमि बन्धक बैंक, (ग) प्रबन्ध अभिकाय प्रणाली, (घ) भारतीय विदेशी व्यापार मे आधुनिक प्रवृत्ति।

Supplementary Examinations, 1958

केवल पाच सवालो का जवाब दीजिए। सब सवालो के नम्बर बराबर हैं। जवाब संक्षेप मे लिखिए और जो पूछा गया है उसी का जवाब दीजिए। किसी भी सवाल के जवाब मे छ. पृष्ठों से अधिक न लिखिए।

1 Discuss the economic advantages and disadvantages of the joint family system Why is this system breaking up in India.

संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली के आर्थिक गुणो और अवगुणो पर बहस कीजिए। यह प्रणाली भारत मे क्यो समाप्त होती जा रही है?

2 Discuss the present occupational distribution of population in India. What trend would you suggest for the future?

भारत की जनसख्या के आधुनिक व्यवसायिक वितरण पर बहस कीजिए। आप भविष्य के लिये किस प्रकार की प्रवृत्ति की सिफारिश करेंगे?

3 Point out the distribution of mineral resources of India and discuss their importance in industrialization of the country

भारत के खनिज पदार्थों के वितरण के विषय मे लिखिए और यह बताइये कि देश के औद्योगीकरण मे उनका क्या महत्व है।

4 Discuss the importance of Central Banks and Provincia

Co-operative Banks in providing credit to Indian agriculturists.

भारतीय कृषकों को ऋण देने मे केन्द्रीय बैंक और सहकारी प्रान्तीय बैंकों का महत्व बताइये।

5 What is the present position of the Indian steel industry? What are its future prospects?

भारत के इस्पात उद्योग की आधुनिक स्थिति क्या है? उसके भविष्य के विषय मे आपका क्या मत है।

6 Write a note on the achievements of the First Five Year Plan

प्रथम पंच-वर्षीय योजना के कारण देश मे जो प्रगति हुई है उस पर टिप्पणी कीजिए।

7 Bring out clearly the role of cottage industries in removing unemployment and under employment in India How can Government assist in their development?

भारत में बेकारी या अर्द्ध-बेकारी हटाने मे कुटीर-उद्योग क्या भाग ले सकते है? सरकार इनके विकास मे किस प्रकार सहायता दे सकती है?

8 Write a note on the working conditions of labour in Indian factories What part has legislation played and can play in this regard?

भारतीय कारखानो मे श्रमिको के कार्य-स्थानो की दशा पर टिप्पणी लिखिए? इस विषय मे कानून ने क्या सहायता दी है और क्या दे सकता है?

9 What have been the effects of the development of rail transport upon Indian rural economy?

रेल-यातायात के विकास से भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर क्या क्या प्रभाव पडा है?

10 Write short notes on *any two* of the following :—

(a) Sale and Purchase Societies,
(b) Co operative farming,
(c) Air transport in India,
(d) Agricultural improvements.

निम्नलिखित मे से किन्हीं दो पर टिप्पणी कीजिए:—

(क) क्रय-विक्रय समितिया,
(ख) सहकारी खेती,
(ग) भारत मे वायु यातायात,
(घ) कृषि सम्बन्धी उन्नतिया।

